ब्रह्मपुराण

(प्रथम खण्ड)

(मूल व सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)



सम्पादकः

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चार वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ,
१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग
१५० हिन्दी ग्रन्थों के रचियता



प्रकाशकः

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली (उ०प्र०)

ka is the predecessor of Vasumitra, the president

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

✻

सम्पादक :
श्रीराम शर्मा आचार्य

✻

✻

मुद्रक :
बाऊदयाल गुप्त
सस्ता साहित्य प्रेस
मथुरा

✻

पंचम संस्करण:
मूल्य सात रुपये पचास पैसे
१९७१

भूमिका

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज. ।
न चेत्पुराण सम् विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षण. ।।

"ब्रह्म पुराण" का यह कथन पुराणो के प्रति प्राचीन काल के विद्वानो की भावना का दिग्दर्शन कराता है। इस लेखक के मतानुसार यद्यपि 'वेद' भारतीय धर्म के मूलाधार है, पर केवल उन्ही के पठन पाठन से मनुष्य धर्म के सम्पूर्ण स्वरूप की जानकारी प्राप्त नही कर सकता। इसीलिये वह कहता है कि "मनुष्य चाहे चारो वेदो का उपनिषदो सहित अध्ययन कर ले, पर यदि पुराणो की जानकारी नही है, तो उसे "विद्वान्" नही कहा जायगा।" हम जानते हैं कि हिन्दू-समाज के ही अनेक व्यक्ति और एकाध नवीन सम्प्रदाय वाले इस कथन से असन्तुष्ट होगे कि पुराणो की तुलना वेदो से की जा रही है, पर हमारी सम्मति मे जो कुछ ब्रह्माण्ड पुराणकार" ने कहा है वह ठीक ही है। यह सत्य है कि वेदो का महत्त्व बहुत अधिक है और अध्यात्म विद्या की दृष्टि से उपनिषद् उनसे भी आगे बढ़े हुये हैं, पर यह समस्त एकांगी है। भारतीय मनीषियो ने धार्मिक ज्ञान के तीन विभाग किये हैं, आध्यात्मिक, आधिदैविव और आधिभौतिक। वेद और उपनिषदो को आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत माना गया है, पर शेष दो विभागो का वर्णन विस्तार के साथ पुराणो मे ही पाया जाता है।

जो व्यक्ति भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का व्यापक परिचय और व्यावहारिक स्वरूप जानना चाहता है उसको पुराणो का अध्ययन करना अनिवार्य है। यद्यपि पुराणो मे प्राचीन काल के महापुरुषों, राजवंशो और प्रसिद्ध दासरो का वर्णन कथा के रूप मे ही किया गया है तो भी उनसे विभिन्न कालो की राजनैनिक तथा सामाजिक स्थिति का कुछ आभास तो प्राप्त होता ही है। इस प्रकार के वर्णनो का आधार

पर ही हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि तत्कालीन व्यक्ति उन आध्यात्मिक तथा धार्मिक आदर्शों का वास्तव में कितनी हद तक पालन कर पाते थे। इस समस्या पर विचार विमर्श करते हुये एक विद्वान् ने कहा है—

भारतीय गवेषणा के स्रोत पुराण ग्रन्थ हैं। वेदों में सब प्रकार की गवेषणाओं का सूक्ष्म रूप है। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में आधिदैविक और आधियज्ञ गवेषणा प्रधानतया दिखाई देती हैं।। पुराणों में सब प्रकार की बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक गवेषणाओं को इतिहास और कथानकों के माध्यम से आकर्षक तथा बुद्धि गम्य साहित्य के रूप में श्री व्यास जी ने विस्तृत किया है। इसमें न केवल शास्त्राभिप्रेत आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्तादि दैनिक क्रियाओं की गवेषणा मात्र है, अपितु मनुष्य जीवनोपयोगी महती भावनाओं का विस्तृत विधान है। भारतीय ज्ञान-गाथा में वेदार्थ को प्राप्त करने में मनुष्यता रूपी निधि की प्राप्ति बताई गई है। "इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" के अनुसार महाभारतादि इतिहास तथा अष्टादश पुराणों को समझने से वेदार्थ की निधि प्राप्त हो सकती है।

'बिना पुराण ग्रन्थों के अध्ययन के तथा निरुक्तादि शास्त्रों के जानने के वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान असम्भव है। तपस्वी कृष्णद्वैपायन वेदव्यास जी ने "उत्तरमीमांसा ब्रह्मसूत्र" में वेद प्रतिपाद्य अध्यात्म निष्ठा द्वारा त्रिविध सन्ताप से मुक्त होने का सरल उपाय ज्ञान निष्ठा की प्राप्ति बतलाया है, और इस ज्ञान निष्ठा का परिपाक पुराण पाठ द्वारा कहा है। इतिहास, पुराणों के कथानक ही प्रत्येक साधन को बुद्धि में सरलता पूर्वक ग्रहण करा सकते हैं। "यजुर्वेद" में कहा गया है—"ईशावास्यमिदंसर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।" मनुष्यता के विकास का पूरा पूरा साधन इस मन्त्र में आ गया है, पर केवल मन्त्र पाठ और उसके अर्थ का ज्ञान लेने से ही जीवन में इस भावना का अनुरूप सचार होना कठिन है। अतः पुराणों में

वर्णित सत्यनिष्ठा,त्यागनिष्ठा,अद्रोह-निष्ठा के "प्रतिपादक हरिश्चन्द्र" "शङ्ख" "च्यवन" आदि के कथानकों का मनन करते हुये जीवन में सत्य एवं करुणा का सचार तत्काल होने लगता है। अतः "सत्यवद धर्मंचर" जैसे सूत्र रूप वेद वाक्यों का भावार्थ समझाने का प्रयास वेदव्यास जी ने पुराण ग्रन्थों में किया है।"

इसमें सन्देह नहीं कि सामान्य जनसमुदाय में धार्मिक तत्वों की जानकारी तथा उनका प्रसार होने के लिये कथा-ग्रन्थों का पठन-पाठन आवश्यक और उपयोगी है। मध्यकाल में एक प्रकार से वेदों का लोप ही हो गया था और उनके जानने वाले उँगलियों पर गिनने लायक रह गये थे, फिर भी महाभारत, रामायण और विविध पुराणों की कथाओं और उनके आधार पर लिखे गये धार्मिक आख्यानों की पुस्तकों ने जनता की धर्मनिष्ठा को स्थिर रखा। यद्यपि उस समय वेदों का दर्शन होना भी कठिन हो गया था, तथापि पुराणों में उनकी चर्चा सुनकर ही लोग उनके प्रति श्रद्धा बनाये रहे। पुराणों में सत्यनिष्ठा के सम्बन्ध में महाराज हरिश्चन्द्र का उपाख्यान, पतिव्रत की निष्ठा के लिये सुकन्या और सावित्री का उपाख्यान, पितृभक्ति के लिये भीष्म पितामह का उपाख्यान पढ सुन कर लोग धर्म-मार्ग की भावना को ग्रहण करते रहते थे। रामायण की कथा सुनकर लोग अनुभव करते थे कि किस प्रकार राम ने पिता के वचनों की रक्षा के लिये राज्य-त्याग कर दिया, अन्याय और दुराचार का अन्त करने के लिये रावण जैसे महाबली सम्राट् से संघर्ष किया, जनमत का आदर करने के लिये अपनी परम प्रिय पत्नी का त्याग कर दिया। इन कथाओं का प्रभाव जन जीवन पर बहुत अधिक पडता था और बहुसंख्यक लोग ऐसे महामानवों के चरित्र को आदर्श मानकर उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे।

हम इससे भी इन्कार नहीं करते कि वर्तमान समय में पुराणों का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है वह "मूल रूप" से बहुत बढा हुआ और भिन्न भी है। पुराणों में ही जगह-जगह यह कथन आता है कि आरम्भ

में 'वेद' एक था और "पुराण" भी एक ही था। साथ ही यह भी कहा गया है—

पुराण सर्व शास्त्राणा प्रथम ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता' ॥

(मत्स्यपुराण ५३ १)

"अर्थात्" सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने पुराण कथन किया और तदनन्तर उनके मुखो से वेद बहिर्गत हुये।"

इस तथ्य को सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं कि पौराणिक कथानकों मे उपमा, अलङ्कार और दृष्टान्त आदि का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है, जिससे सामान्य बुद्धि के श्रोता उन्हे रुचि पूवक सुन सकें और धम के सूक्ष्म तत्वो का सार उन कथाओ मे से ग्रहण कर सकें। इसलिये उपर्युक्त श्लोक मे वर्णित "पुराण' और 'वेद" कौन से थे जो "चतुर्मुख ब्रह्मा' द्वारा प्रकट किये गये इस वाद विवाद को उठाना हम तनिक भी आवश्यक नही समझते। इस तरह के पचडे मे पडना तो हम उन्ही 'खडन मडन प्रिय" सज्जनो के लिये छोड देते हैं जिन्हें 'आम खाने से नही वरन् पेड गिनने' से ही प्रयोजन होता है। हम तो इसका आशय इतना ही मानते हैं कि वेद और पुराणो का आदिस्रोत एक ही है। वही से प्रकट एक धारा ने "सिद्धान्त' का रूप ग्रहण किया और दूसरी ने 'कथा' का। ये दोनो ही आवश्यक हैं। बिना सिद्धान्त के "कथा" का कोई महत्व नही और बिना कथा के "सिद्धान्त" का हृदयगम होना सभव नही। वर्तमान समय मे भी विद्यालयो मे पढने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को प्रत्येक सिद्धान्त अनेक 'उदाहरण' (एक्जाम्पिल) देकर ही बताया और समझाया जाता है।

हम 'पुराणों' को ऐसे ही ग्रन्थों के रूप मे ग्रहण करते हैं जिनमें भारतीय धम के सभी सिद्धान्त अनेक प्रकार के 'उदाहरण" देकर समझाये गये हैं। इनमें "सत्य" "अर्द्ध सत्य" और "काल्पनिक' सभी तरह के उदाहरण हो सकते हैं। पर जिस प्रकार "बीज गणित" मे

एक संख्या की कल्पना के द्वारा ही बड़े से बड़े जटिल प्रश्नों का सही उत्तर जान लिया जाता है, वही बात अधिकांश में "पुराणों" की है। यद्यपि उनमें मनोरंजक कथाएँ भरी पड़ी है, पर उनका उद्देश्य श्रोताओं को धार्मिक नियमों पर सुदृढ़ रखना ही है। हम यह भी समझते हैं कि मूल लेखकों ने "पुराणों" को जिस रूप में रचा था उसमें आगे उत्पन्न होने वाले "कथा-व्यास" नये-नये उदाहरण और भी जोड़ते चले गये। इतना ही नहीं नवीन लेखकों ने अठारह पुराणों के छत्तीस, फिर चौअन और अन्त में बहत्तर तक बना दिये ! और तो क्या गुजरात में निवास करने वाले एक "पहलवान-वंश" का वर्णन करने के लिये "मल्ल-पुराण" भी तैयार कर दिया गया।

पर इसका आशय इतना ही है कि उनके लेखकों ने "पुराण" शब्द को "कथा वाचक" मान कर अपनी रचनाओं का वैसा नाम करण कर दिया है। फिर उन्होंने बड़े पुराणों की यह "शैली" भी ग्रहण कर ली कि प्रत्येक रचना पर अलग-अलग लेखकों का नाम न देकर सबको "मूल लेखक" व्यासजी के ही नाम से प्रचलित कर दिया। अब छापे-खानों की वृद्धि होकर पुस्तकों की बाढ़ आ जाने से हमको सबसे पहले प्रत्येक पुस्तक के लेखक और प्रकाशक की खोज करने की आवश्यकता पड़ती है, पर पहले जमाने में जब छापेखानों की "ऑटोमेटिक मशीनें" तो दूर रहीं, लिखने का कागज भी एक दुर्लभ वस्तु माना जाता था, पुस्तकें लिख कर नाम और धन कमाने का विचार किसी के ध्यान में नहीं आता था। विशेषतः धार्मिक लेखक तो अपनी रचनायें परोपकार और पुन्य की भावना से ही प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार की प्रथा आरम्भ हो जाने से कुछ दोष और भ्रम भी उत्पन्न हो गये पर तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उनको क्षम्य माना जा सकता है। जब पचास वर्ष पहले हमारे सामने अंग्रेज शासकों के पर्याप्त प्रयत्न करने और लाखों सार्वजनिक स्कूल खोल दिये जाने पर भी "साक्षर" व्यक्तियों की संख्या सौ में से सात ही थी तो पुराने समय में जब कि कागज़ था।

उपयोग अधिकांश में राजा और अमीर लोग ही करते थे, पढने-लिखने वाले व्यक्तियो की सख्या दो चार सौ मे केवल एक हो तो भी कुछ आश्चर्य नहीं, ऐसे समय में जिन सज्जनो ने धार्मिक विचारो को लिखने और फैलाने मे जो परिश्रम किया उसे गनीमत ही समझना चाहिये।

इतने विवेचन से पाठक यह अनुमान करने मे समर्थ हो सकते हैं कि भारतीय धार्मिक साहित्य मे पुराणो का क्या स्थान है ? उन्हें न तो धर्म का "मूलाधार" अथवा "अन्तिम निर्णायक" माना जा सकता है और न सर्वथा "अनुपयोगी" या "त्याज्य" कहना उचित है। यह दोनो ही प्रकार की सम्मतियाँ "अतिवादी" अथवा "कट्टर" श्रेणी के सज्जनो की ही हो सकती हैं। हम पुराणों की त्रुटियो को जानते हुये भी उनके महत्व से इनकार नही करते। गुण दोष किसमे नही होते। केवल "गुणों" का दावा करने वाले "कल्पना राज्य" मे भले ही विचरण करते हो, प्रत्यक्ष ससार मे तो उनका अस्तित्व ढूंढने पर भी नहीं मिलता। इसी दृष्टि से समन्वय वादी प्रवृत्ति के सत्पुरुष पुराणो को भी उपयोगी मान लेते हैं।

हमने इसी दृष्टिकोण से अपनी यह "पुराण-सीरीज" तैयार की है। कितनी ही बातें ऐसी हैं जो "पुराणो के पच लक्षणो" की पूर्ति के लिये सब पुराणो में एक प्रकार से ही वर्णन कर दी गई है। कुछ बातें साम्प्रदायिक महत्ता सिद्ध करने के लिये किसी विशेष पुराण मे बहुत अधिक मात्रा में वर्णन की गई हैं। कुछ बातें लेखक की रुचि या जानकारी का परिचय देने के ख्याल से विस्तारपूर्वक शामिल की गई हैं। कुछ उपाख्यान विशेष प्रभावशाली और लोकप्रिय समझ कर एक दूसरे से उद्धृत कर लिये गये हैं। इन कारणो से अधिकांश पुराणो का कलेवर बहुत बढ गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि औसत दर्जे के पाठकों द्वारा पुराणों का पठन पाठन प्राय समाप्त ही हो गया। यदि किसी ने साहस करके पुराणो को प्रकाशित भी किया तो वे बीसियो वर्ष तक ज्यों के त्यों धरे रह गये और धीरे धीरे साहित्य-क्षेत्र से लोप होने लग गये। आज

स्थिति ऐसी आ गई है कि कितने ही मूल पुराणो का प्राप्त कर सकना भी बडा कठिन हो गया है। उदाहरण के लिये अठारह पुराणो की 'नामावली' मे इस "ब्रह्म पुराण" का नम्बर सबसे पहला है, पर कही भी प्राप्त न हो सकने के कारण इसका प्रकाशन सम्भव न हो सका। अब सब पुराणो के छप चुकने पर अन्त मे यह प्राप्त हो सका है।

इस स्थिति को देखकर ही हमने पुराणो के "जनोपयोगी" (पोपुलर) सस्करण निकालने का निश्चय किया। इनमे से सब पुराणो मे बार-बार आने वाले वर्णनो, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से बहुत बढा-चढाकर किये गये वर्णनो, एक दूसरे से उद्धृत किये हुये उपाख्यानो, लेखको की विशेष रुचि के आधार बहुत विस्तार से वर्णन की गई कला, विद्या सम्बन्धी बातो और किसी विशेष स्वार्थपूर्ति या अभिसन्धि की दृष्टि से शामिल किये गये अनुचित और हानिकारक वर्णनो को पृथक् करके हमने प्रत्येक पुराण के उपयोगी अशो को सङ्कलित किया है। इनमे पाठको को प्रामाणिक मूल पाठ के सहित उसका निष्पक्ष भाव से किया गया भावार्थ मिल जाता है। इससे उनकी ज्ञान वृद्धि होकर पुराणो की समस्त उपयोगी सामग्री की जानकारी हो जाती है। इससे सामान्य जनता मे पुराणो के प्रति आकर्षण पर्याप्त मात्रा मे बढा है और वे उनको रुचि-पूर्वक पढने लगे हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रेमियो की दृष्टि मे हमारी यह सेवा महत्वपूर्ण प्रतीत हुई जिसका अनुमान हमारे पास ऐसे प्रेमियो के आये हुये पत्रो से किया जा सकता है।

"ब्रह्मपुराण" की महत्ता—

विभिन्न पुराणो के अन्तर्गत और अन्य प्राचीन ग्रन्थो मे भी पुराणो की जो सूचियाँ दी गई हैं, उनम थोडा बहुत भेद देखने मे आता है, किन्तु सभी लेखको ने प्रथम स्थान "ब्रह्मपुराण" को ही दिया है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह समस्त विश्व 'ब्रह्म' से ही उद्भूत है, इसलिये सर्व प्रथम उसी का कीर्तन किया जाना उचित है। पर इसमे निराकार ब्रह्म चर्चा कही नही पाई जाती, आरम्भ से अन्त तक "ब्रह्म" के साकार

रूपो की ही चर्चा है। सबसे पहले सूर्योपासना का विषय आया है और वास्तव मे इस जगत् के प्रत्यक्ष कर्त्ता-धर्त्ता "सूर्य नारायण" ही हैं। पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) की चर्चा बडे विस्तार से की गई है, और इसे पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कहा जा सकता है। अन्य भी बहुत से तीर्थों का वर्णन है, पर वह प्रायः पाँच सात पृष्ठों मे ही पूरा होता चला गया है। शिव-पार्वती का विवाह और कृष्ण-चरित्र पर्याप्त विस्तार से वर्णित हैं। कस के अत्याचारो से लेकर द्वारिका गमन तथा बाणासुर वध तक की समस्त कथायें जो भागवत आदि मे वर्णित हैं "ब्रह्मपुराण" मे भी पूर्ण रीति से दी गई हैं। बाराह, नृसिंह, वामन आदि अन्य अवतारो के चरित्र भी उसमे स्थान-स्थान पर अच्छे रूप मे दिये गये हैं। इन समस्त कथाओ के सुपरिचित होने तथा अन्य पुराणो मे अधिक विस्तार से वर्णित होने के कारण हमने उनको सक्षिप्त रूप मे ही दिया है।

सूर्य माहात्म्य और सूर्यपूजा—

"ब्रह्म पुराण" की विषय सूची पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि सूर्य भगवान् का माहात्म्य, उनकी पूजा-उपासना की विधि, और उनके द्वारा महान् पुण्य-फल की प्राप्ति का वर्णन इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। "सूर्यदेव" का प्रमुख मदिर उडीसा प्रान्त के "कोणादित्य" (अथवा "कोणार्क") नामक स्थान मे अवस्थित है, उसका परिचय भी इस पुराण में बडी भक्ति प्रवणता से दिया गया है। अन्य पुराणों में जैसी विस्तृत और सागोपाग उपासना विधि विष्णु और शिव की दी गई है वैसी ही इस पुराण के आरम्भ मे "सूर्य भगवान्" की सन्निवेशित है। "कोणार्क" के प्रसिद्ध मन्दिर का परिचय देते हुये पुराणकार ने लिखा है।

"भारतवर्ष मे दक्षिण सागर मे सस्थित "ओड्र देश" (उडीसा) है जो स्वर्ग और मोक्ष दोनो के प्रदान करने वाला है। वह सब गुणो से अलंकृत और पुण्य शीलो का देश है। उस देश मे उत्पन्न ब्राह्मण तपस्या

और स्वाध्याय मे निरत रहने वाले हैं और सदा ही वन्दना करने योग्य तथा पूज्य हैं । उसी प्रदेश मे "कोणादित्य" नाम से प्रसिद्ध भगवान सूर्य देव का मन्दिर अवस्थित है जिसमे भुवन-भास्कर का दर्शन करके मनुष्य सभी पापो से छुटकारा पा जाता है। भगवान रविदेव का यह पुण्य-क्षेत्र डेढ योजन विस्तार वाला है जो भोग और मोक्ष दोनो का प्रदानकर्त्ता है। वहाँ पर सहस्रांशु-देव स्वय विराजमान रहते हैं, जिनका शुभ नाम "कोणादित्य" प्रसिद्ध है। माघ शुक्ल सप्तमी के दिन सूर्य-भगवान की उपासना का विशेष पर्व होता है। उस दिन "कोणादित्य" की यात्रा करके मकरालय मे स्नान करे और विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे। रात्रि के अन्त मे समाहित होकर सागर मे विधिपूर्वक स्नान करके देव, ऋषि तथा मनुष्यो का भली भाँति तर्पण करना चाहिये।

"इसके पश्चात् नवीन धुले हुये वस्त्र धारण करके आचमन करे और भक्ति पूर्वक समुद्र तट पर उपविष्ट हो जाय। उस सूर्योदय काल मे पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्थित होना चाहिये और रक्त-चन्दन को घिस कर उससे एक अष्ट दल पद्म चित्रित करना चाहिये। तत्पश्चात् एक ताम्र पात्र अथवा अर्क-पत्रो से बने दोने मे तिल, अक्षत रक्त चन्दन स युक्त जल, रक्त पु प और दर्भ रख कर सूर्य भगवान की पूजा करे। उदय आदि भ गो से करन्यास तथा अग न्यास करके परम श्रद्धा के साथ भगवान भास्कर का ध्यान करे फिर उस रक्त चन्दन से निर्मित अष्टदल पद्म मे अन्तरिक्ष म स्थित सूर्यदेव का आवाहन करके विधि पूर्वक पूजा करे। पूजा समाप्त हो जाने पर फिर ध्यान मग्न होकर भास्कर देव का ध्यान करे कि पिंगल वर्ण के नेत्र वाले, दो भुजाओ से युक्त रक्त वर्ण वाले, पद्म दल के समान अरुण अम्बर से युक्त रवि देव सब सुलक्षणो से समन्वित हैं और समस्त आभरणो से सुशोभित हैं। वे सुन्दर रूप वाले, वरदान प्रदान करने वाले, परम शान्त रूप से स्थित और प्रभा-मडल से मडित हैं। सिन्दूर के समान सघन वर्ण के

उदय कालीन सूर्य-देव का दर्शन करे। फिर उस पूजा पात्र को मस्तक पर रख कर, जानुओ से पृथ्वी पर स्थित होकर चित्त को एकाग्र करे और मौन रह कर भगवान सूर्यदेव को अर्घ्य दे। भगवान सूर्य भक्ति-भाव से युक्त मनुष्य का ही अर्घ्य ग्रहण करते हैं, वह दीक्षित हैं या अदीक्षित इसका ध्यान नही रखते।"

लेखक ने उपरोक्त वर्णन मे कोई नई बात नही कही है। जो पूजा-विधान अन्य प्रमुख देवताओ का है वही सूर्य का भी बतला दिया है। केवल ध्यान करने मे सूर्य की विशेषताओ के अनुसार उनके स्वरूप और वर्ण का वर्णन थोडा पृथक है। इस पूजा और उपासना का फल भी ज्यो का त्यो कहा गया है। यथा—

"भगवान आदित्य देव को अर्घ्य देने से रोग युक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हो जाता है, धन के अभिलाषी को धन की प्राप्ति होती है, विद्यार्थी विद्या के प्राप्त करने मे सफल होता है और पुत्र की अभिलाषा रखने वाला पुत्रवान बन जाता है। जिस जिस कामना को रख कर सूर्य भगवान को अर्घ्य दिया जाता है सुधी पुरुष उसी-उसी कामना के अनुसार फल प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् सूर्यदेव के मन्दिर मे जाकर पुष्प द्वारा देवार्चन करके मौन रहते हुये तीन बार प्रदक्षिणा करना चाहिये। फिर दण्डवत प्रणाम करके "जय" शब्दो की ध्वनि के साथ स्तवन करे। इस प्रकार सहस्रांशु देव का, जो इस जगत के पति हैं, पूजन करने से मनुष्य को दश अश्वमेधो का फल प्राप्त होता है।"

सूर्य की सर्वोपरि महिमा—

"आदित्य-माहात्म्य" की इति श्री यही नही हो गई है। जिज्ञासुओ ने फिर प्रश्न किया कि "गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी-इनमे से जो मोक्ष चाहता है, वह किस देव की उपासना करे, इस विश्व-ब्रह्माण्ड मे देवो का भी देव कौन है ? और पितृगणो का भी पिता कौन होता है ? हम सब से बडे देव को जानने के अभिलाषी हैं।"

इस प्रश्न का समाधान करते हुये ब्रह्मा बाबा ने कहा—"हे द्विजोत्तमो ! ये भगवान् भास्कर ही समस्त जगत को अन्धकार से रहित कर दिया करते हैं। इनसे बड़ा कोई भी देव नही है। अर्थात् यह सूर्य ही परात्पर देव हैं। यह देव आदि और अन्त से रहित है और यह शाश्वत और अव्यय पुरुष हैं। अपनी किरणो से अत्यन्त तेजोमय रूप धारण करके यह तीनो लोको को तपाया करते हैं। ये सर्व देवमय और तपन करने वालो में सर्व श्रेष्ठ हैं। ये ही इस सम्पूर्ण जगत् के नाथ और सर्व साक्षी हैं। ये सब भूतो को लय और पुनः सृजन करते रहते हैं। ये ही प्रकाश देते हैं, अपनी उष्णता द्वारा शीत से रक्षा करते हैं और अपनी किरणों द्वारा वर्षा किया करते हैं। यही धाता है, यही विधाता हैं, यही समस्त भूतो के आदि हैं और समस्त भूतो पर कृपा करके उनका पालन करने वाले हैं, इनका कभी क्षय नही होता, इनका मण्डल चिरस्थायी ही बना रहता है। यही पितृगणो के पिता तथा देवो के भी देव हैं। जब सृष्टि का अवसर होता है तो सम्पूर्ण जगत आदित्य से ही प्रसूत होता है और जब प्रलय होती है तो समस्त विश्व उन्ही मे लीन हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण तो शब्द से ही कहे जाते हैं, वास्तव मे तो यह सूर्य ही परम देव हैं जिनकी एक मात्र भक्ति की जानी चाहिये ॥"

सूर्य के स्वरूप का जो यह विवेचन धार्मिक भावना से और वैसी ही भाषा मे किया गया है पूर्णतः सत्य और प्रमाण सिद्ध है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इस सम्बन्ध मे यही कहा है। उनके मतानुसार हमारी पृथ्वी और इसके समीप के बुध, मगल, शुक्र, बृहस्पति, शनि आदि समस्त ग्रह और चन्द्रमा आदि उपग्रह सूर्य के ही भाग हैं जो एक-एक करके सूर्य मे से निकले हैं और अन्त मे एक समय ऐसा आयेगा जब ये पुनः उसी मे लीन हो जायेंगे। ये दोनो अवस्थायें सृष्टि और प्रलय की ही मानी गई हैं। इसी प्रकार वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि संसार के समस्त पदार्थ और प्राणी सूर्य के प्रभाव से भिन्न-भिन्न स्वरूपों और

रङ्गो के दिखाई पडते हैं। जब सूर्य की शक्ति उनमें से निकल जाती है, उनके देह प्राकृतिक अथवा कृत्रिम ताप से दग्ध हो जाते हैं तो सब कोपले या उसके भी पश्चात् भस्म के रूप मे परिणित हो जाते हैं, जो कि समस्त भौतिक पदार्थों का मूल रूप है। इस प्रकार नेत्रो से दिखाई पडने वाला यह प्रत्यक्ष जगत असंदिग्ध रूप से सूर्य से ही प्रादुर्भूत होता है और उसी मे लीन हो जाता है, ऐसी परिस्थिति मे सूर्य को सबका "आदि कारण" या "आदि देव" कहा जाय तो कोई गलती नहीं है।

उत्कल प्रदेश की महिमा —

यद्यपि वर्तमान समय मे उत्कल (उडीसा) का प्रदेश अनेक दृष्टि से पिछडा हुआ माना जाता है और उससे लगे हुए बगाल प्रान्त मे अधिकाश उडिया लोगो को 'कुली' या मजदूर ही कहा जाता है, पर यह स्थिति सदैव से नही चली आई है। अब से दो ढाई हजार वर्ष पहले यह भू-भाग "कलिङ्ग" के नाम से प्रसिद्ध था और भारतवर्ष का एक महत्त्वपूर्ण भू भाग माना जाता था। मगध के जगत प्रसिद्ध सम्राट अशोक ने कलिंग को जीतने के लिये अत्यन्त घोर सग्राम किया था। वहाँ का शासक महाराज खारवेल (जिसको नई इतिहासकारो ने जैन धर्मावलम्बी कहा है) उस युद्ध मे अत्यन्त वीरता से लडा था। इतिहास से विदित होता है कि इस अवसर पर इतनी अधिक सख्या मे सेना का विनाश हुआ कि उसे देख कर अशोक का हार्दिक भाव बदल गया। यद्यपि उसने एक लाख से भी अधिक सैनिको का वध हो जाने पर कलिंग को विजय कर लिया, पर उसके पश्चात् उसने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर ली और बौद्ध धर्म का अनुयायी होकर आजन्म अहिंसा और जीव दया का प्रचार करता रहा। पर उस युद्ध के फल से उत्कल की शक्ति और वैभव कई शताब्दियों के लिये नष्ट हो गया और वह हीनावस्था में पहुच गया।

हम नही कह सकते कि "ब्रह्म पुराण" के लेखक ने किस जमाने के "उड़ीसा-प्रदेश" का वर्णन किया है, पर इस ग्रन्थ में "कोणार्क" के

मन्दिर के साथ ही वहा के अन्य समस्त तीर्थों और विशेष रूप से पुरुषोत्तम क्षेत्र का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। जिस प्रकार शैव-पुराणो मे कहा गया है कि वाराणसी क्षेत्र से बढ़ कर ससार मे कोई "पुण्य स्थान" नही है और वैष्णव पुराणो मे जिस प्रकार वृन्दावन की महिमा सर्वोपरि बतलाई है, उसी प्रकार लक्ष्मी जी के प्रश्न करने पर भगवान विष्णु ने कहा है।

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसत्फला ।
आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यातः पुरुषोत्तमः ।।
न तेन सदृशः कश्चित् त्रिपु लोकेपु विद्यते ।
कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्व पातकैः ।।

इस प्रकार पुराणकार ने इस क्षेत्र को सब प्रकार से सुख देने वाला, सुविधापूर्ण, सुन्दर और उत्तम फलो से युक्त कहा है। यहाँ पर स्थित पुरुषोत्तम क्षेत्र के समान स्थल तीनो लोको मे अन्य कोई नही है। उसका कीर्तन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। "जगन्नाथ जी" की महिमा राजस्थान और उत्तर प्रदेश के एक बड़े भाग मे अब भी बहुत अधिक मानी जाती है और प्रतिवर्ष लाखो व्यक्ति यहाँ से उसकी यात्रा करने जाते हैं। पर हमने इन यात्रियो को "सुन्दरता" अथवा "फल फूलो" की प्रशसा करते नही सुना, वरन् वे एक भजन गाते हुये यही कहा करते हैं—"झारखण्ड मे आय विराजे वृन्दावन के स्वामी।" कुछ भी हो सूर्योपासना और महाराज इन्द्रद्युम्न, द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र की स्थापना का सविस्तार वर्णन ब्रह्मपुराण की विशेषता अवश्य है जो अन्य पुराणो मे (स्कन्द महापुराण को छोड़कर) देखने मे नही आती।

शिव पार्वती विवाह—

'ब्रह्म पुराण' मे अनेक कथायें अन्य पुराणो से भिन्न प्रकार से लिखी गई हैं। शिव पार्वती के विवाह के सम्बन्ध मे कहा गया है कि पहले शिवजी विकृत रूप बनाकर स्वय पार्वती जी के पास गये और

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वै पृथक् पृथक् ।
यावन्न तीर्थ राजस्य माहात्म्य वर्ण्यते द्विजा ॥

सागर स्नान की विधि मे "नारायण" का जो वर्णन किया गया है, वह भी सागर की महत्ता को प्रतिपादित करने वाला है। उसमें कहा है—

"सागर के समीप जाकर सर्व प्रथम आचमन करे और सब प्रकार से पवित्र होकर परम पुरुष नारायण का ध्यान करे। तत्पश्चात् शरीर और हाथो मे अष्टाक्षर म न्त्र का न्यास करना चाहिये। उसका म न्त्र है– "ॐ नमो नारायणाय"। इस म न्त्र की ही समस्त मनीषीगण प्रशसा किया करते हैं। जब यह मन्त्र प्राप्त हो गया तब अन्य बहुत से मन को विभ्रम मे डालने वाले मन्त्रो की क्या आवश्यकता है। "ॐ नमो नारायणाय" यह मन्त्र सब मनोरथो की पूर्ति करने वाला है। 'नर' के पुत्र होने से ही जल का नाम "नारा" प्रसिद्ध हुआ है। वही 'नारा' नामक जल भगवान् का "अयन" (निवास-स्थल) होने से इनका नाम "नारायण" कहा गया। समस्त पुराण भगवान नारायण का ही पारायण और प्रतिपादन करने वाले है। सब द्विजगण भी नारायण के स्मरण मे ही तत्पर रहते है। सब यज्ञ भी नारायण की प्राप्ति के लिये किये जाते है। समस्त शास्त्रोक्त धर्म क्रियाएँ भी नारायण के उद्देश्य से ही की जाती हैं। यह समस्त पृथ्वी भी नारायण मे परायण होती है। इस विश्व के समस्त पदार्थ नारायण के ही विभिन्न स्वरूप होते हैं। उनके अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नही है। जल में, स्थल मे, पाताल मे स्वर्गलोक मे, अम्बर मे, पर्वत मे भगवान नारायण ही स्थित हैं। आप अर्थात् जल ही भगवान विष्णु का आयतन (निवास स्थल) है इसलिये जलनिधि (समुद्र) मे स्नान करते समय नारायण का स्मरण करना अनिवार्य है।"

पुरुषोत्तम क्षेत्र के वर्णन में मत्स्य वाराह नरसिंह आदि समस्त अवतारो के स्थान भी वही पर बतलाये हैं। सबके मन्दिर वहाँ पर बने हैं जिनकी पूजा-उपासना महान् फलो को देने वाली कही गई है। इन

वाली है। पाँचो भूतो मे जल ही परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है। उसमे जो तीर्थभूत जल है वह सब से प्रमुख माना गया है। सब तीर्थ जलो मे भागीरथी का जल श्रेष्ठ कहा गया है, और उससे भी गौतमी का जल परम श्रेष्ठ है। यह गौतमी शिवजी की जटाओ सहित ही लाई गई है। इससे बढकर शुभ तथा समस्त मनोरथो का पूरा करने वाला तीर्थ स्वर्ग मे तथा भूतल मे कही भी नही है।"

पौराणिक माहात्म्य वर्णन की यह विशेषता है कि जिसकी प्रशसा की जाती है उसी को उस अवसर पर सर्वोपरि बना दिया जाता है। गगा के वर्णन मे स्थान-स्थान पर ऐसी ही प्रशसा की गई है। एक अन्य पुराण मे सर्व श्रेष्ठ तीर्थ सरिता और तीर्थ का स्थान नर्मदा को दिया गया है।

"ब्रह्मपुराण" का तीर्थ वर्णन—

"ब्रह्म पुराण" के तीर्थ वर्णन में भी कुछ विशेषता है। इसमें जिन कपोत तीर्थ, पैशाच तीर्थ, क्षुधा तीर्थ, चक्र तीर्थ, गणिका सगम, अहिल्या सगमेन्द्र तीर्थ, श्वेत तीर्थ, वृद्धा-सगम तीर्थ, ऋण प्रमोचन तीर्थ, सरस्वती सगम तीर्थ, रैवती सगम तीर्थ, राम तीर्थ, पुत्र तीर्थ, यक्षिणी सगम तीर्थ, वाणी सगम तीर्थ, कपिला सगम तीर्थ, खड्ग तीर्थ, आनन्द तीर्थ, निम्न भेद तीर्थ, आदि का नामोल्लेख है वे किसी अन्य पुराण में नहीं मिलते। फिर दूसरी विशेषता यह भी है कि इन तीर्थों में से अधिकाश 'गौतमी' से सम्बन्ध रखते हैं। इन कथाओ से सम्बन्ध रखने वाले अधिकाश व्यक्तियों का उद्धार "गौतमी" द्वारा ही हुआ। इन कथाओं में से कितनी में बिल्कुल नई बातो का पता लगता है।

"वृद्धा सगम तीर्थ" मे एक बड़ी विचित्र कथा कही गई है कि एक गौतम वशीय ब्राह्मण, जो भाग्यवश विद्या, धन तथा सौन्दर्य, सभी गुणो से वचित रह गया था, भ्रमण करता हुआ एक दिन किसी पहाड की गुफा में जा पहुचा। उसे वहाँ एक बहुत वृद्धा स्त्री दिखाई पड़ी।

वृद्धा ने ब्राह्मण से आग्रह किया कि तुम मेरे गुरु बन जाओ। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मैं सब प्रकार से गुणहीन हूं तुम्हारा गुरु कैसे बन सकता हूं ? वृद्धा ने बतलाया कि मैं क्षत्रिय राजा और गन्धर्व कन्या से उत्पन्न हुई हूं। मेरी माता चलते समय मुझ से कह गई थी कि तेरी इस गुफा मे जो पुरुष सबसे पहले प्रविष्ट हो वही तेरा पति होगा। पर सैकड़ो वर्ष बीत जाने पर भी यहाँ कोई पुरुष नही आया। आज सबसे पहले पुरुष तुम्ही इसमे प्रविष्ट हुये हो, इसलिये मैंने तुमसे इस प्रकार का प्रस्ताव किया। फिर वृद्धा ने अग्नि देव से प्रार्थना करके गौतम ब्राह्मण को विद्वान् और स्वरूपवान भी करा दिया। तब वे दोनों उसी गुफा मे पति पत्नी के रूप मे निवास करने लगे। किसी समय सप्त ऋषिगण उनकी गुफा के निकट होकर निकले और गौतम ब्राह्मण ने उनकी भली प्रकार अभ्यर्थना की। वे ऋषिगण इस युवक तथा वृद्धा की जोड़ी को देख कर विस्मित हुये और इसका कारण पूछा। गौतम ने पूरा किस्सा कह सुनाया। अगस्त ऋषि ने उस पर दयार्द्र होकर गौतमी मे स्नान करने की सम्मति दी। गौतमी की कृपा से वृद्धा नव-यौवना हो गई और फिर वे पति-पत्नी बहुत काल तक सुख पूर्वक निवास करते रहे।

दूसरी कथा "सरमा" नामक कुतिया की है जो स्वर्गलोक में देवताओं की गौओं की रखवाली करती थी। एक बार वहां कुछ दैत्य आये और सरमा को घूस (रिश्वत) के रूप मे कुछ धन देकर गायों का हरण करके ले गये। जब इस घटना की जाँच पड़ताल की जाने लगी तो सरमा ने कहा कि दैत्यगण मुझे बाँध कर जबर्दस्ती गायों को लेकर चले गये। पर देवगुरु बृहस्पति ने ध्यान द्वारा सारी घटना को जान लिया और सरमा के दोष की बात इन्द्र को बतलादी। इन्द्र ने कुतिया को लात मारी और शाप दिया कि तू मनुष्य लोक मे जाकर जन्म ले। सरमा पृथ्वी पर कुतिया के रूप में इधर-उधर फिरती हुई कष्ट सहन करने लगी। यह देख कर उसके दो पुत्रों ने जो यमराज के

समर्थन करने वाला मणिकुण्डल वैश्य यद्यपि अपने दुष्ट मित्र द्वारा बहुत सताया गया और ठगा गया, पर अन्त मे उसके सब कष्ट दूर हो गये और वह एक प्रसिद्ध तथा वैभव-शाली व्यक्ति बन गया।

जैसा हम कह चुके हैं कि "ब्रह्म पुराण" मे वर्णित सभी तीर्थ एक प्रकार से नये ढङ्ग के हैं और उनका मुख्य उद्देश्य गौतमी- गङ्गा के महत्व का प्रतिपादन करना है। इस प्रकार की कथाओ मे ऐतिहासिक तथ्य अथवा वास्तविक घटनाओ को ढूंढना अनावश्यक है। उन्हें धर्म कथा या कहानी मानना ही ठीक है और जितना सदुपदेश उनसे प्राप्त हो सके उतना करना चाहिये।

कलियुग वर्णन

अन्य पुराणो की तरह इस पुराण मे भी कलियुग का वर्णन काफी विस्तार से दिया गया है और वर्तमान दशा से उसका मिलान करके उसे हम बहुत कुछ ठीक भी कह सकते हैं। ऐसे वर्णनो मे ज्योतिष शास्त्र द्वारा प्राप्त भविष्य-ज्ञान की विशेष आवश्यकता नही पडती। वह समय के चिह्नो को समझ सकने वाली मानव-बुद्धि से ही जाना जा सकता है जिन बातो के बीज आज समाज और व्यक्तियों मे मौजूद हैं वे आगे चलकर पौधे और वृक्ष के रूप मे प्रत्यक्ष होंगे ही, यह तथ्य स्वाभाविक और प्रकृति के अनुकूल ही है। इसी के आधार पर बुद्धिमान व्यक्ति कितने ही आगामी परिवर्तनो का अनुमान सही तौर पर कर लेते हैं। कलियुगी आचार विचारो की चर्चा करते हुये पुराणकार का कथन है—

"कलियुग में वर्णाश्रम- धर्म तथा आचार-विचार की प्रवृत्ति मनुष्यो में नहीं रहती। वह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद के अनुकूल वैदिक आचरणों में भी श्रद्धा नहीं रखते। कलियुग में विवाह को राजधर्म क्रिया न मान कर उसका मुख्य उद्देश्य विलासता ही समझा जाता है। शिष्यगण गुरु की आज्ञा और अनुशासन में नहीं रहते। उस समय अग्निहोत्रादि

क्रियाओं को भी नियम से करना रुक जाता है। वंश की श्रेष्ठता नष्ट होकर किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति जो शक्तिशाली होता है, वही सर्वोपरि बन जाता है। सभी वर्णों के व्यक्ति क्रयोपजीवी बन जाते हैं। कलियुग के व्यक्ति चाहे जिससे किसी प्रकार दीक्षा लेकर ही दीक्षित बन जाते हैं। प्रत्येक क्रिया को प्रायश्चित्त के योग्य मान लिया जाता है। कलियुग में जो कुछ कहीं भी लिखा या कहा गया होता है उसी को 'शास्त्र' मान लिया जाता है। कलियुग में सभी देवता हैं और चाहे जो व्यक्ति इच्छानुसार किसी भी आश्रम का अनुयायी बन जाता है।"

'कलियुग म लोग उपवास और पर्व आदि मनाते हैं तथा धन व्यय भी करते हैं, पर यह सब कार्य शास्त्र विधि के बजाय अपनी रुचि के अनुसार ही किये जाते हैं। बहुत थोड़े धन से लोगों को धन मद हो जाता है और स्त्रियाँ प्राय रूप का मद करती देखी जाती है चाहे केश प्रसाधन के अतिरिक्त उनके पास कोई अन्य साधन न हो। वे अपने पतियों को भी धन के आधार पर ही मान्यता देती हैं। इसी प्रकार जो अधिक धन दे सके वही दूसरों का स्वामी बन जाता है। इस समय में जो भी धन प्राप्त होगा वह भोगों में ही व्यय किया जायेगा और अन्याय से द्रव्योपार्जन में किसी को तनिक भी सकोच न होगा। किसी निजी सम्बन्धी अथवा मित्र के प्रार्थना करने पर भी कोई अपनी स्वार्थ हानि करके सहायता को प्रस्तुत न होगा। सब मनुष्य सदव अपनी स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से उद्योग करेंगे। गौओं की मान्यता भी अधिक दूध देने की दृष्टि से होगी न कि धार्मिक विचार से। वर्षा का क्रम बिगड़ जाने से प्रजा सदैव अकाल से भयभीत रहा करेगी। लोग आलस्य और श्रम से बचने के कारण सदा ही अकाल का कष्ट भोगते रहेंगे। उस समय लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे और अग्निहोत्र, अतिथि पूजन, पिण्डादक आदि धर्मानुष्ठानों की तरफ किसी का ध्यान नहीं रहेगा।"

इसी प्रकार चारों वर्ण आश्रम तथा स्त्रियों का वर्णन करते हुये बताया गया है कि उस समय सभी विषयों में लोग धर्म शास्त्रों के

नियमों की परवाह न करके स्वेच्छा व्यवहार करने वाले बन जायेंगे। यद्यपि वर्तमान समय में हम इस प्रकार के व्यवहार को उन्नति का चिन्ह मानते हैं और उसे विचार स्वातंत्र्य का नाम देते हैं पर समाज-कल्याण की दृष्टि से यह प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। हम यह नहीं कहते कि प्राचीन काल के सब नियम उपयोगी अथवा सब कालों में लाभकारी हैं। अग्निहोत्र पिण्डोदक और अतिथि पूजा के जो नियम शास्त्रों में वर्णन किये गये हैं वे समाज-सगठन और आर्थिक-व्यवस्था में अनावश्यक भी हो सकते हैं पर समाज में अनुशासन और मर्यादा-पालन की प्रवृत्ति सदैव उचित और आवश्यक है। समस्त समाज के हित-अनहित के कार्यों में मनमाना व्यवहार किसी काल में उचित नहीं कहा जा सकता। यही दोष वर्तमान समय में विशेष बढ गया है और इसी से सर्वत्र एक हलचल फैली हुई है। इस समय मनुष्यों का मुख्य लक्ष्य अधिक से अधिक धन कमाना हो गया है चाहे उसके कारण अन्य व्यक्तियों अथवा समस्त समाज की कितनी भी हानि क्यों न होती हो। हम इसी स्वार्थ पूर्ण प्रवृत्ति को वास्तविक कलियुगी भावना कहते हैं और पुराणकार के वर्णन से भी यही ध्वनि निकलती है। इस कलियुगी-भावना को दूर करना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है।

योगाभ्यास की वास्तविकता —

योग, सांख्य, वेदान्त, जैसे ज्ञानमार्गीय विषयों का संक्षिप्त वर्णन अनेक पुराणों में पाया जाता है और अधिकांश विद्वान् इन्हीं को मुक्ति का हेतु स्वीकार करते हैं। यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य किसी न किसी देव की भक्ति और उपासना का निरूपण और उसी के द्वारा सब कामनाओं की सिद्धि प्रतिपादन करना है, फिर भी पुराण-कारों ने 'ज्ञान मार्ग" के महत्व को स्वीकार किया है। "भगवद्गीता" में कृष्ण भगवान् ने कहा कि जो व्यक्ति मेरा भक्त बनकर अपने सब कर्मों को मुझे समर्पित कर देता है वह मुझे सब से अधिक प्रिय है। पर इसके साथ उन्होंने यह भी बतलाया है कि "इस संसार में ज्ञान से बढ़कर पवित्र अन्य कोई

तथ्य या शक्ति नही है।" इसलिये "ब्रह्मपुराणकार" ने भी अति संक्षेप मे योग का वर्णन किया है और हमे स्वीकार करना पडता है कि उनका विवेचन अन्य कितने ही पुराणो से उच्च कोटि का है। जहां अन्य लेखको ने प्रायः आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि अष्टांगों का पचडा ही सुनाया है "ब्रह्मपुराण" में योग का मूल मन की एकाग्रता बतलाया है, जैसा कि "पातंजल योग-दर्शन" का भी अभिमत है। उसने लिखा है—

"जिस योगाभ्यासी का मन वशीभूत हो जाता है और वह उस मन को परमात्मा में भली प्रकार संलग्न कर देता है और विषयो से बचे रहने का सदैव पूर्ण प्रयत्न करता रहता है, वही योग की सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। जिस समय चित्त विषयो से छूटकर परब्रह्म में लीन हो जाता है उस समय समाधि बहुत सहज ही में लग जाती है। जब योगी का मन किसी कर्म मे आसक्त नहीं रहता तभी वह आनन्द प्राप्त करके निर्वाण-पद का अधिकारी बन जाता है। योग बल से योगी आध्यात्मि क्षेत्र के तीनो दर्जों से भी ऊपर उठकर उस तुर्यावस्था को पा जाता है, जिसमें परमात्मा का सान्निध्य निश्चित हो जाता। जो योगी सभी इच्छाओ से रहित होकर संसार के प्रत्येक पदार्थ मे अनित्य-भावना रखता है। साथ ही सब से शुद्ध प्रेम की भावना को त्याग नही करता, वह जन्म, जरा, मृत्यु से अवश्य छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है, इसमे संशय नही। अन्य कोई मार्ग छुटकारा पाने का नही है। योग मार्ग वाले को भूलकर भी इन्द्रियो का सेवन नही करना चाहिये और वैराग्य धारण करके ही रहना चाहिये। यदि कोई केवल पद्मासन लगाकर और नासिका के अग्रभाग का निरीक्षण करते रह कर योग मे पूर्णता पाने की आशा करे, तो यह उसकी भूल है। इन्द्रियो और मन के संयोग को मिटा देना या नियंत्रण में रखना ही योग का सच्चा स्वरूप है।"

सांख्य-योग से आत्मा की एकता—

आगे चल कर सांख्य-योग के अनुसार मुक्ति-प्राप्ति का मार्ग दर्शन करते हुये कहा है—

"समस्त प्राणियो मे जब एक ही परमात्मा विराजमान है और उस परमात्म-तत्व की दृष्टि से किसी में कुछ अन्तर नही है तो हमको सब प्राणियो मे अपनी आत्मा ही देखनी चाहिये। जब ऐसा सच्चा दृष्टिकोण प्राप्त हो जाता है तो मनुष्य स्वयं ही "ब्रह्म" के समान हो जाता है। वह जितना ही अधिक आत्मा को जानता है उतना ही पराई आत्मा में भी अपनी आत्मा को देखने लगता है। इस प्रकार की भावना निरन्तर बनी रहने से मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है। जिस तरह पक्षियों की गति अन्तरिक्ष में होती है और मत्स्यो की जल में हुआ करती है उसी प्रकार उपर्युक्त ज्ञानवेत्ताओ की गति ऐसी सूक्ष्म होती है जो एकाएक दिखलाई नही पडती। आत्मा के द्वारा आत्मा को यह काल ग्रसता और पचन करता रहता है पर उस काल के विषय में सभी सांसारिक व्यक्ति अनभिज्ञ रहा करते हैं। ये सभी लोक उस काल के भीतर ही रहा करते है, उससे बाहर कुछ भी नही है।"

उपर्युक्त आत्म-भावना किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है इसका विवेचन करते हुये पुराणकार ने कहा है कि "आत्मा की सर्व व्यापकता का ज्ञान मनुष्य के अपने प्रशान्त, दमनशील और आत्म प्रेमी स्वभाव द्वारा प्राप्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में विद्वानो ने पाँच दोष ऐसे बतलाये हैं कि जिनका मूलोच्छेदन करने से आत्मज्ञान प्रबुद्ध हो सकता है। वे दोष हैं— काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न। योगी क्रोध को शम के द्वारा जीतता है, काम को सकल्पो को वर्जित करने से दबाया जाता है, सत्व के अभ्यास से निद्रा का उच्छेद किया जाता है। धैर्य से शिश्न और उदर की रक्षा करनी चाहिये। श्रोत्र तथा चक्षु की मन के द्वारा और वाणी की कर्म के द्वारा सुरक्षा करे। प्रमाद का त्याग कर देने से भय भी जाता रहता है और सत्पुरुषो की सेवा करने से दम्भ दूर हो सकता है।"

ज्ञान योग की प्रशंसा—

अध्यात्म-योग और सांख्य योग का वर्णन करके लेखक ने ज्ञान-योग का परिचय दिया है इसके लिये उन्होने मनुष्यो की प्रवृत्ति को मुख्यतः

दो भागों में बाँटा है–कर्म और विद्या। कर्म से मनुष्य सुख और दुःख प्राप्त करता है और विद्या द्वारा संसार-सागर को पार करके मुक्ति का अधिकारी बनता है। इन कर्ममय तथा विद्या से परिपूर्ण दो प्रकार के व्यक्तियों में बड़ा अन्तर होता है। 'सूक्ष्म कला से युक्त होकर चन्द्रमा के समान सुखद स्पर्श वाला विद्या से युक्त हुआ करता है वह वस्त्र में चक्र के तन्तु के समान देखा जा सकता है, किन्तु बतलाया नहीं जा सकता। प्रकृति के प्रभाव से मनुष्य का जीवात्मा सत्, रज, तम के गुण वाला होता है, अन्य दृष्टि से उसे परमात्मा के गुण वाला कहा जाता है। सामारिक रूप में जीव का गुण चेष्टा करना होता है और उस अवस्था में वह 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है। इससे ऊपर ज्ञान की दृष्टि से वह "क्षेत्रविद्" कहा जाता है और सातों भुवनों की जानकारी रखने वाला होता है। जिस प्रकार योग्य सारथी उत्तम श्रेणी के अश्वों को स्ववश में रखते हुए रथ को इच्छानुसार चलाता है, वैसे ही सुयोग्य मन भी इन्द्रियों का सचालन करता है। इन्द्रियों से ऊपर अर्थ (विषय) होते हैं, उनसे ऊपर मन होता है, मन से ऊपर बुद्धि और उससे भी ऊपर महान आत्मा होता है। "महत्" से ऊपर 'अव्यक्त' और उससे भी ऊपर "अमृत" अर्थात् आदि-अनन्त, अविनाशी होता है। इस अमृत पद को प्राप्त कर लेना ही जीव का अन्तिम और सर्वोच्च लक्ष्य होता है।"

इस प्रकार ज्ञान योग का उपासक समस्त विश्व के गूढ़ तत्व को करतलगत करके भी उसे प्रकट नहीं करता। जैसा भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है सासारिक मनुष्यों में बुद्धि भेद उत्पन्न करने के उद्देश्य से वह बाह्य दृष्टि से समाज के सामान्य नियमानुसार चलता रहता है। फिर भी अन्य बुद्धिमान व्यक्तियों में उसकी परम सूक्ष्म बुद्धि अनुभव द्वारा जानी जा सकती है। वह आत्मज्ञान से अधिष्ठित होकर बुद्धि, मन, और विषयों सहित इन्द्रियों को सचालित करता है और उनको पूर्णतः स्ववश रखता है। "इस प्रकार विद्या-मार्ग वाला साधक संसार में

रहता हुआ भी परम पद मे स्थित होकर "अमृत" स्थान को प्राप्त करता है। इसके विपरीत कर्म-मार्ग वाला मनुष्य सासारिक कार्यों और उपलब्धियो को ही मुख्य उद्देश्य मान कर जीवन का सचालन करता है, इस लिये वह मृत्यु को प्राप्त होता है और आवागमन चक्र मे पड़ा सुख-दुख भोगता रहता है।'

इस प्रकार पुराणकार ने कर्म-योग, साख्य-योग और ज्ञान-योग कि मार्गों का परिचय दिया है, जिनको एक से बढ़ कर एक समझ लेना चाहिये। इनमे "ज्ञान-योग" सर्व श्रेष्ठ कहा गया है, पर इसका अर्थ यह नही है कि मनुष्य गेरुआ वस्त्र धारण करके अथवा नग्न होकर सासारिक कार्यों को छोड़ कर संन्यासी अथवा अवधूत बन जाय, और स्वय उपार्जन न करके दूसरो से भिक्षा माग कर या दान ग्रहण करके पेट भरने लगे। ऐसा व्यक्ति तो सब से निम्न श्रेणी का और सबसे अधिक "अज्ञानी" होता है। अथवा उसे ढोगी या पाखण्डी कहा जा सकता है, क्यो कि वह स्वयं परिश्रम और उत्तरदायित्व से बच कर दूसरों के परिश्रम के फल को अपहरण करना और चैन का जीवन व्यतीत करना चहता है। हमे खेद से कहना पड़ता है कि आजकल हमारे देश के अधिकाश "ज्ञान मार्गी" कहलाने वाले "सत" "महात्मा" "महन्त" "स्वामी" "साधु" आदि इसी श्रेणी मे आते है। वे अपनी स्वार्थपरता और ठग विद्या को ढकने के लिये "ज्ञानी" होने का दावा तो करते हैं, पर भीतर से न तो उनका हृदय शुद्ध होता है और न वे स्वय "अमृत" पद को प्राप्त करने के लिये सचेष्ट होते हैं। वे तो अन्य मनुष्यों को भुलावे में डालकर सासारिक भोगों का उपभोग करने मे ही प्रयत्नशील रहते हैं। वे दूसरो को आत्म-ज्ञान का उपदेश क्या देंगे जब स्वय उनका ही आचरण और उद्देश्य उसके विपरीत होता है।

इसलिये "अमृतत्व" के अभिलाषी व्यक्ति के लिये सर्वोत्तम और सच्चा मार्ग वही है जिसे भगवान कृष्ण ने "गीता" में बहुत स्पष्ट रूप से प्रगट किया है। अपने जीवन निर्वाह के निमित्त

कभी त्याग न करो और कभी किसी अन्य के आश्रित बन कर न रहो। ज्ञान की ऊँची से ऊँची स्थिति तक पहुँच कर भी उसके आधार पर कोई ऐसा व्यवहार न करो जिससे सामान्य जनता में बुद्धि भेद उत्पन्न हो और वे अपने उचित कर्तव्यों को त्याग कर अनुचित मार्ग को ग्रहण करने लगें। इसलिये सच्चा "ज्ञानी" अथवा 'विद्या मार्ग' का पथिक वही कहा जा सकता है जो सांसारिक दृष्टि से आदर्श जीवन व्यतीत करता हुआ समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्मुख उच्च उदाहरण उपस्थित करता है और हर तरह से उन्हें नीचे स्तर से ऊँचे स्तर पर जाने का मार्ग प्रदर्शन करता है। और इन सब व्यवहारों को करते हुये भी वह सांसारिक मोह, लोभ, माया आदि में तनिक भी लिप्त नहीं होता और अपना आन्तरिक लक्ष्य सदा आत्मा और परमात्मा में ही रखता है।

"ब्रह्मपुराण" के रचयिता ने भी अन्त में यही निष्कर्ष निकाला है। उसका कथन यह है कि "जिस प्रकार जल में संचरण करने वाला पक्षी जल में लिप्त नहीं हुआ करता वैसे ही आत्मजयी योगी त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहता हुआ भी उसके दोषों में कभी लिप्त नहीं होता। ऐसा योगमुक्त मनुष्य चाहे प्रकट में विषयों और वैभव में रहता जान पड़े पर वह उनसे सदा अलिप्त ही रहता है। (ऐसा उदाहरण महाराज विदेह जनक का बतलाया जाता है) । इस प्रकार आत्मा "त्रिगुणों" को जानता है और उनको उत्पन्न भी करता है, पर 'त्रिगुण" आत्मा को नहीं जानते और न ज्ञानी की आत्मा को वशीभूत कर सकने में समर्थ हो सकते हैं।'

हमने इस जनोपयोगी संस्करण में यही प्रयत्न किया है कि सभी श्रेणी के व्यक्ति इससे लाभ उठा सकें। आशा है कि पुराण-पाठकों के लिए यह सब प्रकार से कल्याणकारी सिद्ध होगा और वे धर्ममार्ग में निरन्तर प्रगति करते हुए अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

—श्रीरामशर्मा आचार्य

ब्रह्मपुराण

प्रथम खण्ड

विषय सूची

नानापक्षिगणाकीर्णे नानामृगगणैर्युते।
नानाजलाशयैः पुण्यैर्दीर्घिकाद्यैरलङ्कृते ॥७

प्रथमाध्याय के आदि मे नैमिषारण्य का वर्णन है—सर्व प्रथम नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया जाता है—भगवान् नारायण की सेवा म तथा नरों में उत्तम नर को और देवी सरस्वती के चरणो मे प्रणाम करके इसके अनन्तर "अथ" शब्द का उच्चारण करना चाहिए। जिससे प्रपञ्च के द्वारा रचना किया हुआ यह सम्पूर्ण माया जगत् समुत्पन्न हुआ करता है, जिसमें यह सम्पूर्ण विश्व स्थित रहा करता है और अन्त के समय में पुन कल्प-अनुकल्प में गमन किया करता है, जिस प्रपञ्च से रहित विशुद्ध स्वरूप वाले भगवान् का ध्यान करके मुनिगण अटल मोक्ष पद को प्राप्त किया करते हैं मैं उन्हीं नित्य-विभु॰ निश्चल और अमल पुरुषोत्तम नाम वाले भगवान् की वन्दना करता हूँ ॥१॥ जिसका बुध पुरुष समाधि के समय में अन्तरिक्ष [redacted] तुल्य शुद्ध स्वरूप का ध्यान किया करते हैं जो नित्य और आनन्द मय है, जिसका स्वरूप परम प्रसन्न, अमल है और सबका ईश्वर एव निर्गुण है जो व्यक्त और अव्यक्त से भी परे है एव प्रपञ्च से रहित तथा ध्यान के ही द्वारा जानने के योग्य है और विभु (व्यापक) है उन्ही इस ससार के विनाश के हेतु तथा जरा से रहित और मुक्ति के प्रदान करने वाले भगवान् श्रीहरि की मैं वन्दना करता हू ॥२॥ नैमिषारण्य परम पुण्यमय सुमनोहर एव पावनतम स्थान है जो अनेक मुनिग॰ो से घिरा हुआ और विविध भाति के पुष्पों से शोभायमान है ॥३॥ जिस नैमि॰ षारण्य मे सरल कर्णिकार-पनस-प्रर्धखादिर-आम्र-जामुन-कपित्थ-वट और देवदारु के वृक्षों से शोभित है तथा अश्वत्थ-पारिजात-चन्दन-अगुरु पाटल वकुल सप्तपर्ण पुन्नाग -नागकेशर-शाल ताल तमाल-नारियल और अर्जुन के द्रुमों से एव अन्य चम्पक आदि बहुत प्रकार के वृक्षों से परम शोभा सम्पन्न है ॥४ ६॥ उस नैमिषारण्य में विविध भाँति के पक्षियो का समूह निवास किया करता है और अनेक तरह के वन्य पशुओं का समुदाय वहाँ विचरण किया करता है जिससे उस

विपिन की अत्यधिक शोभा होती है। उसमें बहुत-से जलाशय हैं और पुण्यमय दीर्घ का आदि से वह परम विभूषित रहा करता है ॥७॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः।
वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥८
सम्पन्नैर्गोकुलैश्चैव सर्वत्र समलंकृते।
यवगोधूमचणकमाषमुद्गतिलेक्षुभिः ॥९
चीनकाद्यैस्तथा मेध्यःशस्यैश्चान्यैश्च शोभिते।
तत्र दीप्ते हुताशहे हूयमाने महामखे ॥१०
यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके।
आजग्मुस्तत्र मुनयस्तथाऽन्येऽपि द्विजातयः ॥११
तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजांचक्रुर्यथोचिताम्।
तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भि. सहितेषु च ॥१२
तत्राजगाम सूतस्तुमतिर्माल्लोमहर्षणः।
त दृष्ट्वा ते मुनिवराः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥१३
सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव सविवेश वरासने।
कथां चक्रुस्तदान्योन्यं सूतेन सहिता द्विजाः ॥१४
कथान्ते व्यासशिष्य ते पप्रच्छु. सशयं मुदा।
ऋत्विग्भिः सहिताः सर्व्वे सदस्यैः सह दीक्षिताः ॥१५

उस नैमिषारण्य में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जातियाँ भी तपश्चर्या के लिये निवास किया करते हैं। वहाँ पर सभी आश्रमों में स्थित रहने वाले मनुष्य रहते हैं ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ और सन्यासी लोग अपना व्रतानुष्ठान किया करते हैं वह विपिन सुसम्पन्न गायों के कुलों से परम अलंकृत रहता है। उस अरण्य मे सभी प्रकार के धान्यों की उत्पत्ति होती है-यव-गोधूम-चना-उर्द-मूग-तिल-ईख और चीनक आदि एवं परम पवित्र शस्यों एवं धान्यों की उपज होने के कारण उस नैमिषारण्य की अनुपम शोभा होती है। उस वन में अग्नि के प्रदीप्त होने पर जब महामख में आहुतियाँ दी जाया करती हैं तो वहाँ की अद्भुत शोभा हुआ करती है। एक बार वहाँ पर बारह वर्ष

आद्यं सुसूक्ष्मं विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च ।
इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदांगपारगम् । २८ ॥२८
सर्व्वं शास्त्रार्थतत्वज्ञं पराशरसुतं प्रभुम् ।
गुरु प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ॥ २६

महा महर्षि श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—जो विकारों से रहित हैं—परम शुद्ध स्वरूप वाले हैं—नित्य एवं परमात्मा हैं और जो सदा ही एक ही रूप वाले हैं तथा सबको जीत लेने के शील स्वाभाव वाले हैं उन भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ॥२१॥ हिरण्य गर्भ—श्रीहरि और भगवान् शंकर के लिये तथा वासुदेव तार और ससार की उत्पत्ति परिपालन एवं जगत् के अवसान के कर्मों के करने वाले प्रभु हैं उनके लिये शतशः प्रणाम हैं ॥२२॥ जो एक ही होते हुए भी अनेको स्वरूप धारण करने वाले हैं तथा स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले हैं उनके लिये नमस्कार है । जो अव्यक्त व्यक्त रूप वाले तथा संसार में बारम्बार वाले जन्म मरण के आवागमन रूपी बन्धन से छुटकारा दिलाने के हेतु हैं उन भगवान् श्रीविष्णुदेव के लिये नमस्कार है ॥२३॥ इस जगत् की सृष्टि स्थिति और विनाश करने वाले हैं और स्वयं जो अजर एवं अमर हैं तथा मूलभूत हैं उन परमात्मा भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ॥२४॥ जो सम्पूर्ण विश्व का आधार भूत हैं अर्थात् यह पूर्ण विश्व जिसके आश्रय को प्राप्त कर टिक हुआ है और जो सूक्ष्मो से भी परम सूक्ष्म स्वरूप वाले हैं जिनमें समस्त भूत स्थित रहा करते हैं उन भगवान् पुरुषोत्तम अच्युत को प्रमाण करता हू ॥२५॥ जो प्रभु ज्ञान के ही स्वरूप वाले है और परमार्थ रूप से अत्यन्त निर्मल हैं वही अर्थ स्वरूप से स्थित रहते हैं—ऐसी भ्रान्ति से दर्शन उनका हुआ करता है ॥२६॥ जो इस विश्व की स्थिति में विष्णु तथा प्रसिष्णु हैं तथा जो स्वर्ग में प्रभु हैं । जो सर्वज्ञ हैं—जगतों के जो ईश हैं जो अजन्मा है—अक्षय है और अव्यय स्वरूप वाले हैं ॥२७॥ उन सब के आदि में स्थित रहने वाले परम सूक्ष्म विश्व के स्वामी को और ब्रह्मा आदि को प्रणिपात करके उसके अनन्तर समस्त शास्त्रों के अर्थ के तत्व के पूर्ण ज्ञाता-इतिहास

और पुराणों के अच्छे ज्ञान रखने वाले-समस्त वेदों और वेदों के छै अङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् प्रभु पराशर मुनि के पुत्र अपने श्रीगुरुदेव वेदव्यास जी के चरणों में प्रणाम करके जो वेदों का सम्मित पुराण है उस ब्रह्मपुराण का मैं वर्णन करूंगा। तात्पर्य यह है-कि यह पुराण वेदानुकूल है॥२८-२९॥

कथयामि यथापूर्व्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः ।
पृष्टः प्रोवाच भगवान अब्जयोनिः पितामहः ॥३०
शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ।
कथ्यमाना मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिविस्तराम् ॥३१
यस्त्विमां धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥३२
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं पुरुषस्तस्माद्निर्ममे विश्वमीश्वरः ॥३३
तं बुध्यध्व मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माणममितौजसम् ।
स्रष्टारं सर्व्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥३४
अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि जज्ञिरे ।
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः सनातनः ॥३५

दक्ष आदि परम श्रेष्ठ मुनियों ने अजयोनि पितामह भगवान् से पूछा था उस समय जो भी उन्होने वर्णन किया था वही कथा पूर्व में अब आप लोगों के समक्ष में वर्णन करता हूं ॥३०॥ अब आप लोग सब परम समाहित मन वाले होकर श्रवण कीजिए मैं वर्णन करूंगा। यह कथा सभी प्रकार के पाप-तापों का विनाश कर देने वाली है और मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा अतीव अद्भुत-बहुत विशेष अर्थ से भरी हुई और श्रुति के विस्तार से समन्वित है ॥३१॥ जो पुरुष इस कथा को नित्य ही धारण किया करता है अथवा बारम्बार इस का श्रवण किया करता है वह अपने वंश को धारण करके स्वर्ग लोक में निवास करने की प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥३२॥ जो सत् और असत् स्वरूप वाला-नित्य कारण अव्यक्त है वह प्रधान है परम पुरुष प्रभु जो सर्वेश्वर [redacted] उसी से इस विश्व का निर्माण उन्होंने किया था

॥३३॥ हे परम श्रेष्ठ मुनिगणो ! अपरिमित ओज से युक्त-नारायण परायण उसी ब्रह्म को समस्त भूतों का सृजन करने वाला समझलो ॥३४॥ उस प्रधान अव्यक्त से यह तत्व और महत् से अहङ्कार और अहंकार से सब भूत और उन भूतों से भूतों के भेद-इन सबको हम उक्त क्रम से उत्पन्न किया था—यही सर्वदा से चले आने वाला सनातन सर्ग होता है ॥३५॥

विस्तरावयवं चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रुति ।
कीर्त्यमानं शृणुध्वं वः सर्व्वेषां कीर्तिवर्द्धनम् ॥३६
कीर्तितं स्थिरकीर्त्तीनां सर्व्वेषां पुण्यवर्द्धनम् ।
ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥३७
अप एव ससर्ज्जादौ तासु वीर्य्यमथासृजत् ।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥३८
अयन तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः ।
हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ॥३९
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् ।
हिरण्यवर्णो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥४०
तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च ।
तयोः शकलयोर्म्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ।
तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥४२

इस सर्ग का विस्तार जिन अवयवों से होता है उसको भी जैसा मैंने श्रवण किया है और जैसी भी मेरी प्रज्ञा है उसी के अनुसार मेरे द्वारा कीर्तित किया जारहा है । इस का श्रवण करिए । यह श्रवण करना आप सबकी कीर्ति की वृद्धि करने वाला है ॥३६॥ जिनकी कीर्ति सदा स्थिर रहा करती है ऐसे उन सबके चरित का कीर्त्तन करना भी महान् पुण्य का वर्धन करने वाला ही होता है । रचना करके प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होगये थे । ॥३७॥ सबके आदि में जल की ही सृष्टि की थी और उन्हीं जलों में वीर्य का सृजन किया था ।

ये जल 'नार''-इस नाम से कहे गये हैं और ये जल नर की सन्तति हैं। ये ही जल सबसे पूर्व उस परम पुरुष नर के निवास का स्थल था और इसी कारण से उनका नाम नारायण होगया है। उनके अन्दर जल में शयन करने वाले हिरण्य वर्ण हुए थे ॥३८-३९॥ वहीं पर स्वयं ब्रह्मा जी ने जन्म ग्रहण किया था जिनको स्वयम्भू-यह नाम से हम लोगों ने सुना या जाना है यह स्वयं ही समुत्पन्न हुए थे अतएव स्वयम्भू नाम अन्वर्थ है। हिरण्य वर्ण भगवान् कितने ही वर्षों तक वहां पर निवास करते रहे थे ॥४०॥ इसके अन्त में दो प्रकार की रचना की थी। एक तो दिव लोक बनाया और भूलोक बनाया था। उन दोनों खण्डों के मध्य में प्रभु ने आकाश की रचना की थी ॥४१॥ यह पृथ्वी जल में पारिप्लवित हो रही थी अर्थात् डूबी हुई थी। सभी दशों दिशाओं को निर्मित किया था। वहीं पर फिर काल-मन-वाणी काम-क्रोध और रति का सृजन किया था ॥४२॥

ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥४३
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्।
सप्त ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४
नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्।
ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम् ॥४५
सनत्कुमारं च विभुं पूर्व्वषामपि पूर्व्वजम्।
सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजाः ॥४६
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः।
तेषां सप्त महावंशाः दिव्या देवगणान्विताः ॥४७
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृता।
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च॥ ४८
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यश्च ससर्ज ह।
ऋचो यजूंषि सामानि निर्म्ममे यज्ञसिद्धये॥ ४९

प्रजापतियों की सृष्टि करने की इच्छा वाले प्रभु ने तद्रूप ही सृष्टि का सृजन किया था। मरीचि-अत्रि-अङ्गिरा-पुलस्त्य पुलह-क्रतु और वसिष्ठ की महान् तेज वाले परमेष्ठी ने इन सात मानस पुत्रों का सृजन किया था। ये सातों ब्रह्माजी के मन से ही समुत्पन्न हुए थे अतएव मानस पुत्र कहे जाते हैं। ये सात ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं-ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए थे ॥४३-४४॥ ये सातों ब्रह्माजी से जन्म ग्रहण करने वाले हैं और साक्षात् नारायण के ही स्वरूप वाले हैं। इसके अनन्तर पहिले ब्रह्माजी ने रोष के स्वरूप से जन्म लेने वाले भगवान् रुद्रदेव का सृजन किया था। ॥४५॥ पूर्व में होने वाले में भी सब से पूर्व में समुत्पत्ति प्राप्त करने वाले विप्र सनत्कुमार की सृष्टि की थी। हे द्विजगण! इन्हीं सातों से यह सम्पूर्ण प्रजा और रुद्र गण उत्पन्न हुए थे ॥४६॥ तेज को सक्षिप्त करके सनत्कुमार और स्कन्द स्थित हुए थे। उनके ही दिव्य देवगणों में समन्वित सन्त महान् वश हुए थे। ॥४७॥ ये महावश सब क्रियाओं वाले प्रजाओं से युक्त और महर्षियों से समलङ्कृत हुये थे। फिर विद्युत-वज्र-मेघ-रोहितेन्द्र धनुष-पक्षीगण और पर्जन्य इन सबका आदि काल में सृजन किया था। इसके उपरान्त यज्ञ कर्मों को सुसम्पादित करके सिद्धि प्राप्त करने के लिये ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद की ऋचाओं का सृजन तथा निर्माण किया था ॥४८-४९॥

साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुसञ्ज्ञशु ।
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५०
आपर्वस्य प्रजासर्ग सृजतो हि प्रजापते. ।
सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१
द्विधाकृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्द्विविधा. प्रजा ॥५२
दिवञ्च पृथिवी चैव महिम्न व्याप्य तिष्ठति ।
विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुष विराट् ॥५३
पुरुष त मनु विद्यात्तस्य मन्वन्तर स्मृतम् ।
द्वितीय मानसस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते । ५४

स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः ।
नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः ॥५५
आयुष्मान् कीर्तिमान् तूर्णंप्रज्ञावांश्च भवेन्नरः ।
आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टां चाप्नुयाद्गतिम् ॥५६

इसके अनन्तर साध्य देवों को जन्म दिया था जो दश प्रकार से नित्य ही भली भाँति अनुगमन किया करते थे। उन ब्रह्माजी के अंगों से उच्चावच अर्थात् ऊँचे-नीचे भूतों ने जन्म ग्रहण किया था ॥५०॥ आपवं प्रजाओं के सृजन करने वाले प्रजापति की ये सब सृष्ट हुई प्रजा थी किन्तु जब देखा कि वह प्रजा बढ़ती हुई नहीं है तो प्रजा की पुष्कल वृद्धि का ध्यान हुआ था ॥५१॥ अयोनिज प्रजा से विशेष वृद्धि होती हुई न देख कर अयोनि से जन्म ग्रहण करने वाली प्रजा के लिये ब्रह्माजी ने अपने शरीर के दो भाग निर्मित किये थे आधे शरीर के भाग से वे पुरुष हुए थे और आधे भाग से नारी का स्वरूप निर्मित किया था। उसी नारी में फिर उन्होंने विविध भाँति की प्रजा की सृष्टि की थी जो दिव लोक और पृथ्वी में व्याप्त होकर महिमा से समवस्थित है। भगवान् विष्णु ने विराट् का सृजन किया था और उस विराट् ने पुरुष का सृजन किया था ॥५२-५३॥ उस पुरुष को मनु समझलो। उसका मन्वन्तर भी कहा गया है। मानस का यह द्वितीय मन्वन्तर कहा जाता है ॥५४॥ उस प्रभु पुरुष वैराज ने प्रजा के सर्ग का सृजन किया था। उस नारायण विसर्ग की समस्त प्रजा भी अयोनिज ही थी। इस आदि सर्ग का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य आयुष्मान्—कीर्तिमान् और पूर्ण प्रज्ञावान् हो जाया करता है तथा अपनी अभीष्ट गति को भी प्राप्त कर लेता है ॥५५-५६॥

२—स्वयम्भुव मनु वंश वर्णन

स सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजापतिः ।
लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१

आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठन्‌ ।
धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायत ॥२
सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्‌ ।
भर्त्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३
सा वै स्वायम्भुवो विप्राः पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४
वैराजात्‌ पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात्‌ काम्या व्यजायत ॥५
काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः ।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट्‌ कुक्षिर्विराट्‌ प्रभुः ॥६
उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुषुवे सुतान्‌ ॥७

श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—उन आपव प्रजापति ने इस प्रकार से प्रजाओं का सृजन किया था। उस पुरुष ने अर्थात्‌ स्वायम्भू मनु ने जोकि प्रजापति के दक्षिणार्ध अंग से समुत्पन्न हुआ था अयोनिजा शतरूपा पत्नी को प्राप्त किया था ॥१॥ आपव की महिमा से वे दिव को आवृत करके ही स्थित थे। हे श्रेष्ठ मुनियो! धर्म से ही शतरूपा समुत्पन्न हुई थी ॥२॥ उस शतरूपा ने दश हजार वर्ष पर्यन्त तपश्चर्या की थी और परम दुश्चर तप किया था इस तप के प्रभाव से ही उस शतरूपा ने प्रदीप्त तप वाले पुरुष स्वायम्भू मनु को अपना भर्त्ता प्राप्त किया था ॥३॥ हे विप्रो! वही स्वायम्भुव पुरुष मनु कहा जाता है उस स्वायम्भुव मनु का कार्य काल इकहत्तर युगों की चौकड़ियाँ होती हैं जो एक मन्वन्तर कहा जाया करता है ॥४॥ यहीं से योनिज सृष्टि का समारम्भ होता है जो पुरुष के साथ नारी सम्भोग का सुख प्राप्त करती हुई गर्भ धारण किया करती है और अपनी योनि द्वार से प्रसव काल समुपस्थित होने पर सन्तति को जन्म ग्रहण कराया करती है। मनु के द्वारा उत्पन्न होने ही से मनुष्य कहलाये जाते हैं। उस शतरूपा नारी ने वैराज पुरुष के साथ सहवास करके उसके वीर्य से वीर को

उत्पन्न किया था। उस वीर की पत्नी काम्या थी उस काम्या ने वीर वीर के साथ सपवास करके उसके वीर्य से प्रिय व्रत और उत्तानपाद को उत्पन्न किया था ॥५॥ यह काम्या प्रजापति कर्दम की परम श्रेष्ठ सुता थी। इस काम्या से सम्राट्-कुक्षि विराट् और प्रभु ये चारपुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥६॥ प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद को पुत्र ग्रहण कर लिया था। उस उत्तानपाद के साथ सग कर उसकी वीर्य से सुन्दर श्रोणी तट वाली परम विश्रुत सूनृता ने चार पुत्रों को प्रसूत किया था ॥७॥

धर्म्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा । ८
ध्रुवञ्च कीर्तिमन्तञ्च आयुष्मन्त वसुं तथा ।
उत्तानपादोऽजनयत् सूनताया प्रजापतिः ॥९
ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भो द्विजाः।
तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् समुहद्यशः ॥१०
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसम प्रभुः ।
अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणा प्रजापति· ॥११
तस्याभिमानमृद्धिञ्च महिमान निरीक्ष्य च ।
देवासुराणामाचार्य्यः श्लोक प्रागुशना जगौ ॥१२
अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम् ।
यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुव सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३
तस्माच्छिलष्टि च भव्य च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत ।
श्लिष्टे राधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रनकल्मषान् ॥१४

सूनृता नाम से विख्यात सुन्दर श्रोणी वाली कन्या धर्म की पुत्री थी। यह परम भक्त ध्रुव की माता जो अतीव-शुभ थी वाजिमेध यज्ञ के द्वारा समुत्पन्न हुई थी ॥८॥ प्रजापति राजा उत्तानपाद ने अपनी प्रिय पत्नी सूनृता के कार्य से ध्रुव-कीर्तिमान्-आयुष्मान् और वसु नामों वाले पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥९॥ हे द्विजवरो ! महान् भाग वाले ध्रुव ने पाँच वर्ष की कुमार अवस्था ही मे सुमहान् यश की

इच्छा रखते हुए तीन सहस्रा दिव्य वर्षों तक परम दुश्चर तप किया था ।।१०।। प्रभु ब्रह्माजी ने उसको परम प्रसन्न होकर अपने ही समान स्थान प्रदान किया था जो बहुत ही अमल स्थान था । प्रजापति ने सप्तर्षियों के समक्ष में वह स्थान प्रदान किया था ।।११।। उस कुमार ध्रुव के स्वाभिमान-महिमा और समृद्धि को देख कर देवासुरों के आचार्यवर उशना (शुक्राचार्य) ने इस श्लोक का गान किया था ।।१२।। अहो हो ! इस कुमार के तप का वीर्य और श्रुत कितना अद्भुत है जिस ध्रुव को अपने आगे स्थित करके सप्तर्षिगण विराजमान रहते हैं ।।१३।। उस ध्रुव से शम्भु ने श्लिष्टि और भव्य को उत्पन्न किया था । उस श्लिष्टि के साथ सहवास करके उसके वीर्य से सुच्छाया नामक उसकी प्रिय पत्नी ने कल्मष रहित पाँच पुत्रों को प्रसूत किया था ।।१४।।

रिपु रिपुञ्जय वीर वृकलं वृकतेजसम् ।
रिपोराधत्त बृहती चक्षुष सर्वतेजसम् ।।१५
अजीजनत् पुष्करिण्या वैरण्या चाक्षुष मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजाया वीरणस्य महात्मनः ।।१६
मनोरजायन्त दश नड्वलाया महौजस ।
कन्याया मुनिशार्दूला वैराजस्य प्रजापते ।।१७
कुत्स पुरु शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कवि ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ।।१८
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलाया महौजस. ।
पुरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ।।१९
अङ्ग सुमनस ख्याति क्रतुमङ्गिरस गयम् ।
अङ्गात् सुनीथापत्य वै वेनमेक व्यजायत ।।२०
अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत् ।
प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिण करम् ।।२१

उन पाँचो पुत्र के शुभ नाम ये थे—रिपु रिपुञ्जय वीर-वृकल और वृकतेजा । बृहती ने सब तेजस चक्षुष को रिपु से धारण किया था

॥१५॥ महान् आत्मा वाले प्रजापति वीरण की आत्मजा मे जो पुष्क-रिणी में रिणी थी उसमे चाक्षुप मनु को समुत्पन्न किया था ॥१६॥ हे मुनि शार्दूलो ! प्रजा पति वैराज की कन्या नंवला मे मनु से महान ओजवाले दश पुत्रो की समुत्पत्ति हुई थी ॥१७॥ उनके नाम ये हैं—कुरुन-पुरु-शतद्युम्न-तपस्वी-सत्यवाक्-कवि-अतिष्टुत्-अतिरात्र और सुद्युम्न ये नौ हैं ॥१८॥ अभिमन्यु दशय पुत्र था । ये नड्वला में महान् ओज वाले हुए थे । पुरु के वीर्य से आग्नेयी ने महती प्रभावाले छँ पुत्रो को जन्म ग्रहण कराया था ॥१९॥ उन छँ पुत्रो के नाम ये हैं—अंग-सुमनस-ख्याति-क्रतु-अंगिरा-गम । अग के वीर्य से सुनीथा नाम वाली भार्या ने एक ही सन्तति उत्पन्न की थी जिसका नाम वेन था ॥२०॥ वेन बहुत ही अय नारी था जिसके बुरे अपचार से ऋषियो का बहुत भारी प्रकोप हो गया था । प्रजा के लिये ऋषिगणो ने जिसके दक्षिण कर का मन्थन किया था ॥२१॥

वेनस्य मथिते पाणौ स बभूव महान्नृपः ।
तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः ॥२२
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ।
स धन्वी कवची जातो जलज्ज्वलनसन्निभः ॥२३
पृथुर्वैन्यस्तथा चेमा ररक्ष क्षत्रपूर्व्वजः ।
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ॥२४
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ।
तेनेयं गौर्म्मुनिश्रेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥२५
प्रजाना वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह ।
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥२६
सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्व्वतैस्तथा ।
तेषु तेषु च च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ॥२७
प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन प्राणानधारयन् ।
पृथोस्तु पुत्रौ धर्म्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपातिनौ ॥२८

राजा वेन के हाथ का मन्थन करने पर एक महान् नृप उत्पन्न हुआ था। उसको देखकर समस्त मुनियों ने कहा था—यह महान् तेज वाला राजा अपनी सब प्रजा को परम प्रसन्न करेगा और संसार में बहुत ही अधिक यश की प्राप्ति भी करेगा। वह धनुषधारी तथा कवच पहिने हुए उत्पन्न हुआ था और प्रदीप्त अग्नि के समान ही तेजस्वी था ॥२२-२३॥ वह क्षत्रियों में सबसे प्रथम उत्पन्न होने वाला पृथुवैन्य नामधारी था और उसने इस भूमि की पूर्णतया रक्षा की थी। राजसूय नामक यज्ञ के द्वारा जो अभिषिक्त राजा हुए हैं उनमें यह सबसे प्रथम वसुधा का स्वामी हुआ था ॥२४॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठो! उसी नृप से परम निपुण सूत तथा मागध उत्पन्न हुए थे। उसी राजा ने इस प्रकार से इस भूमि रूपिणी गौ को दोहन किया था जिसमें सभी प्रकार के शस्य समुत्पन्न होने लगे थे ॥२५॥ अपनी समस्त प्रजाजनों की वृत्ति की कामना वाले उस नृप ने देवगण-ऋषियों का समुदाय-पितृगण दानव-गन्धर्व-अप्सराओं के समूह-सर्प पुण्यजल वीरुध-और पर्वतों के साथ उन-उन पात्रों में यह वसुन्धरा दुह्यमान की थी अर्थात् भूमि का दोहन किया था ॥२६-२७॥ इस भूमि ने यथोचित क्षीरफल प्रदान किया था उनके द्वारा प्राणों को धारण न करते हुए ही दिया था। राजा पृथु के धर्म के पूर्ण ज्ञाता थे और अन्तर्धिपाती समुत्पन्न हुए थे ॥२८॥

शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्याजायत ।
हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान् ॥२९
प्राचीनर्बाहिषशुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ।
प्राचीनर्बहिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः ॥३०
हविर्धानान्मुनिश्रेष्ठा येन संवर्द्धिताः प्रजाः ।
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां द्विजसत्तमाः ।
प्राचीनर्बर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः ॥३१
समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः ॥३२

सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिषः ।
सर्व्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्व्वेदस्य पारगान् ॥३३
अपृथग्धर्म्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तप ।
दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशया. ॥३४
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेत सु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रु र्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥३५

अन्तर्धान के वीर्य से शिखण्डिनी ने हविर्धान को जन्म दिया था। आग्नेयी धिषणा नाम धारिणी पत्नी ने हविर्धान के साथ सहवास करके उसके वीर्य से छै सुतों को प्रसव दिया था ॥२९॥ उन छै पुत्रों के नाम ये हैं—प्राचीन बर्हि-शुक्र गय-कृष्ण-ब्रज और अजिन। भगवान् प्राचीन बर्हि महान् प्रजापति हुए थे ॥३०॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! जिसने हविर्धान से अपनी प्रजाजनों को भली भाँति वर्धित किया था। हे द्विज श्रेष्ठो ! उसके पृथिवी मे पृथ्वीतल पर चरण करने वाली प्राचीनाग्र कुशा हुए थे ॥३१॥ प्राचीन बर्हि भगवान् समुद्र की तनया से दारा को ग्रहण करने वाले प्रभु हुए थे। महान् तप से सवर्णा मे प्रजापति हुए ॥३२॥ सामुद्री सवर्णा ने दश प्राचीन बर्हीं धारण किये थे। उन सबके प्राचेतस नाम थे और वे सब धनुर्वेद के पारगामी विद्वान थे ॥३३॥ अपृथक् धर्म के चरण करने वाले उन्होने महान् तपश्चर्या की थी। दश हजार वर्ष पर्यन्त उन्होने समुद्र के जल मे ही शयन किया था ॥३४॥ प्रचेताओं के तप करने पर महीरुह अरक्ष्यमाण पृथिवी से बोले—प्रजाक्षय होगया था ॥३५॥

नाशकन्मारुतो वातु वृत खमभवद्द्रुम ।
दश वर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितु प्रजा ॥३६
तदुपश्रुत्य तपसा युक्ता सर्व्वं प्रचेतसः ।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः ॥३७
उन्मूलानथ वृक्षास्तु कृत्वा वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्घोर एवमासी द्द्रुमक्षय ॥३८

कमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतांस्तदा सोमः प्रजापतीन् ॥३९
कोपं यच्छत राजानः सर्व्वे प्राचीनवर्हिषः ।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥४०
रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ।
भविष्यं जानता तात धृता गर्भेण वै मया ॥४१
मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षाणामिति निर्मिता ।
भार्य्या वोऽस्तु महाभागाः सोमवंशविवर्द्धिनी ॥४२

वायु वहन नहीं कर सका था और आकाश द्रुमों से समावृत हो गया था। दश हजार वर्ष तक प्रजा कुछ भी चेष्टा न कर सकी थी ॥३६॥ यह श्रवण करके भय से युक्त सब प्रचेतस बहुत क्रोधित होगये थे और मुखों से उन्होंने वायु की और अग्नि की सृष्टि की थी ॥३७॥ वायु ने समस्त वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया था और घोर अग्नि ने उनको दग्ध कर दिया था। इस प्रकार से द्रुमों का क्षय हो गया था ॥३८॥ इसके इस क्रम से क्षय का ज्ञान प्राप्त करके जबकि कुछ थोड़े से ही शाखी अर्थात् वृक्ष शेष रह गये थे उस समय में सोम ने वहाँ उपस्थित होकर इन प्रजा पतियों से कहा था—आप सभी प्राचीन बर्हीं राजा लोगो! कोप को शान्त करो। इस पृथिवी को वृक्षों से शून्य कर दिया है अब अग्नि और वायु का शमन करो ॥३९ ४०॥ यह वर वर्णिनी वृक्षों की रत्न भूत कन्या है। हे तात! भविष्य का ज्ञान रखने वाले मैंने गर्भ के द्वारा इसको धारण किया था ॥४१॥ नाम से यह मारिषा है और यह वृक्षों की है—इसीलिये निर्मित की गयी। यह महान् भाग वाली सोमवंश का विवर्धन करने वाली आपकी भार्या होगी ॥४२॥

युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥४३
स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन च ।
अग्निनाग्निसमो भूय. प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥४४

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नी धर्म्मेण मारिषाम् ॥४५
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भो द्विजाः ॥४६
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।
स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ॥४७
ददौ दश स धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
शिष्टाः सोमाय राज्ञे च नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥४८
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः ।
गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९
ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मैथुनसम्भवाः ।
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्व्वेषां प्रोच्यते प्रजाः ॥५०

आपके आधे तेज से और मेरे आधे तेज से इसमें दक्ष नाम धारी एक प्रजापति की उत्पत्ति होगी ॥४३॥ वह प्रायः दग्ध हुई इसको आपके तेजोमय अग्नि से अग्नि के ही समान पुनः प्रजाओं का सम्वर्धन करेगा ॥४४॥ इसके अनन्तर सोम के वचन से उन्होंने प्रचेताओं ने इसको स्वीकार कर लिया था। कोप को हटाकर जो कि वृक्षों पर था मारिषा पत्नी को धर्म विधि के साथ ग्रहण किया था ॥४५॥ उन दश प्रचेताओं से उस मारिषा में वह महान् तेजस्वी हे द्विजगण ! सोम के अंश से प्रजापति दक्ष ने जन्म ग्रहण किया था ॥४६॥ उस दक्ष ने चर और अचर, द्विपद और चतुष्पद इन सबका सृजन करके फिर पीछे मन से उसने स्त्रियों की सृष्टि की थी ॥४७॥ उन सृजन की हुई कन्याओं में से दश तो उस प्रभु ने धर्म को समर्पित की थी—तेरह कश्यप ऋषि को प्रदान की और नक्षत्र नाम वाली कन्याओं को सोम के लिये प्रदान किया था ॥४८॥ उन्हीं कन्याओं के गर्भों से समस्त देवता-खग-गौएँ-नाग-दैत्य-दानव-गन्धर्व-अप्सराएँ और अन्य सब जातियाँ उत्पन्न हुए थे ॥४९॥ हे विप्रेन्द्रो ! तभी से आरम्भ करके ये सम्पूर्ण प्रजा मैथुन के द्वारा जन्म ग्रहण करने वाली हुई थी। इससे पूर्वकाल में तो केवल

मानसिक सङ्कल्प से—दर्शन मात्र से—स्पर्श कर लेने भर से प्रजा पूर्वजों को हुई थी और यह सब अयोनिज थी ॥५०॥

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ।
सम्भवस्तु श्रुतोऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मनः ।।५१
अंगुष्ठाद्ब्रह्मणो जज्ञे दक्ष किल शुभव्रतः ।
वामांगुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ।।५२
कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः ।
एतं न्नः संशयं सूत व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि ।
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ।।५३
उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु सोद्विजा ।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जना ।।५४
युगे युगे भवन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपाः ।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ।।५५
ज्येष्ठ कानिष्ठयमप्येषापूर्व्वनासीद्द्विजोत्तमाः ।
तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ।।५६
इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् ।
प्रजावानायुरुत्तीर्णं स्वर्गलोके महीयते ।।५७

शौनकादि मुनियों ने कहा—हे सूतजी ! देवों का-दानवों का-गन्धर्व-उरग और राक्षसों का जन्म जिस प्रकार से और जिनसे हुआ—यह तो हमने श्रवण कर लिया और महात्मा दक्ष की उत्पत्ति भी सुन ली है कि यह दक्ष प्रजापति जो परम शुभ व्रत वाला था ब्रह्माजी के अंगुष्ठ से समुत्पन्न हुआ था और प्रजापति दक्ष की पत्नी उन्हीं के बाँये अंगूठे से समुत्पन्न हुई थी ॥५१-५२॥ किन्तु यहाँ पर यह सन्देह होता है कि वह महा तपस्वी प्राचेत सत्व को पुनः कैसे प्राप्त होगया था। हे सूतजी ! हमारे हृदय में यह बड़ा संशय हो रहा है। अब आप इसका स्पष्टीकरण करते हुए व्याख्या करने की कृपा कीजिए। यह महानुभाव तो सोम का धेवता था फिर यह श्वशुर कैसे बन गया

था ? ॥५३॥ श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजगणो ! प्राणियों में उत्पत्ति और निरोध नित्य ही हुआ करता है। जो महापुरुष विद्वान् हैं तथा जो ऋषिगण हैं वे इस विषय में मोह को प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि उनको ज्ञान होता है और जो ज्ञानी है वह कभी मोह को प्राप्त नहीं करता है मोह तो अज्ञान से ही होता है ॥५४॥ युग-युग में ये दक्ष आदि नृप पुनः पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं और फिर-फिर इनका निरोध भी हुआ करता है। जो विद्वान् है वे इस विषय में मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥५५॥ हे द्विजोत्तमो ! पूर्व में इनकी ज्येष्ठता और कनिष्ठता नहीं थी केवल तप ही बड़ा होता था और उसका प्रभाव छोटे-बड़े होने का कारण था ॥५६॥ जो मनुष्य इस चर और अचर से युक्त दक्ष प्रजापति की विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह प्रजा वाला और आयु में उत्तीर्ण होकर अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥५७॥

३—देवादानवोत्पत्ति वर्णन

देवाना दानवाना च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्ति विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्त्तय ॥१
प्रजाः सृजति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजा. ॥२
मानसान्येव भूतानि पूर्व्वमेवासृजत् प्रभुः ।
ऋषीन् देवान्सगन्धर्व्वानसुरान्यक्षराक्षसान् ॥३
यदास्य मानसी विप्रा न व्यवर्द्धत वै प्रजाः ।
तदा सञ्चिन्त्य धर्म्मात्मा प्रजाहेतोः प्रजापतिः ॥४
स मैथुनेन धर्म्मेण सिसृक्षुर्विविधा. प्रजाः ।
असिक्नीमावहत् पत्नी वीरणस्य प्रजापतेः ॥५
सुता सुतपसा युक्ता महती लोकधारिणीम् ।
अथ पुत्रसहस्राणि वैरण्या पञ्च वीर्य्यवान् ॥६

असिक्न्या जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ।
तास्तु दृष्ट्वा महाभागान्सविवर्द्धयिषून् प्रजाः ॥७

मुनिगणों ने कहा—हे लोमहर्षणजी ! अब आप कृपा करके देवों को-दानवों की और गन्धर्व, उरग तथा राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक करिये ॥१॥ भगवान् लोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजगणो ! सबसे पूर्व में स्वयम्भू ने दक्ष प्रजा पति को विशेष रूप से आज्ञा प्रदान की और वह ही प्रजा का सृजन करता है। उसने जिस प्रकार से भूतों का सृजन किया उनका मैं वर्णन करता हूँ आप लोग श्रवण करो ॥२॥ सबसे प्रथम तो प्रभु ने मानसी सृष्टि की रचना की और समस्त भूतों को—ऋषियों को-देवों को-गन्धर्वों को- असुरों को-यक्षों को और राक्षसों को बनाया अर्थात् इन सबका सृजन मन से ही किया ॥३॥ किन्तु जब उन्होंने देखा कि वह मानसी सृष्टि जो हुई उससे प्रजा में कोई वृद्धि न हुई उस समय में धर्मात्मा प्रजापति ने सोच-विचार करके प्रजा की वृद्धि के लिये उसने विविध प्रकार की प्रजा की सृष्टि की इच्छा रखते हुए मैथुन के द्वारा रचना करने की बात सोची और वीरण प्रजापति की असिक्नी नाम वाली पत्नी हुई ॥४-५॥ वह सुता सुन्दर रूप से समन्वित महती और लोकों को धारण करने वाली थी। बल वीर्य वाले प्रजापति दक्ष ने उस असिक्नी के गर्भ से जो वैरिणी थी पाँच सहस्र पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया। देवर्षि श्रीनारदजी ने उन प्रजाओं के सवर्धन करने की इच्छा वाले महाभागों को देखा ॥६-७॥

देवर्षिः प्रियसवादो नारदः प्राब्रवीदिदम् ।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥८
यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत् ।
दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥९
पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ।
असिक्न्यामथ वैरण्यां भूयो देवर्षिसत्तम ॥१०
तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ।
तेन दक्षस्य वै पुत्रा हर्यश्वा इति विश्रुताः ॥११

निर्म्मथ्य नाशिताः सर्व्वे विधिना च न संशयः ।
तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः ॥१२
ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ।
ततोऽभिसन्धिश्चक्रे वै दक्षस्य परमेष्ठिना ॥१३
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ।
ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ।
स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयादृषिः ॥१४

परम प्रिय मन्त्राद वाले देवर्षि नारदजी ने उनको देखकर यह वचन कहा। उनका वह वचन नाश के लिये तथा अपने आपके शाप के लिये था ॥८॥ दक्ष की दुहिता में दक्ष के शाप के भय से परमेष्ठी कश्यप मुनि ने जिस पुत्र को समुत्पन्न किया था ॥९॥ वह पूर्व में परमेष्ठी के नारद समुत्पन्न हुआ। फिर वैरिणी वसिक्नी मे परम श्रेष्ठ देवर्षि हुआ ॥१०॥ पिता के ही समान पुनः उस मुनियों में श्रेष्ठ को जन्म ग्रहण कराया गया। इसी कारण दक्ष के पुत्र 'हर्यश्व'—इस नाम से प्रसिद्ध हुए ॥११॥ विधाता ने निर्मथन करके सबका नाश कर दिया था—इसमे कुछ भी संशय नहीं है। उस समय अपरिमित बल विक्रम शाली दक्ष उसके विनाश करने के लिए उद्यत होगया ॥१२॥ ब्रह्मर्षियों को आगे करके परमेष्ठी के द्वारा याचना की गयी। इसके अनन्तर, परमेष्ठी ने दक्ष की अभिसन्धि की थी ॥१३॥ मेरे लिये नारद कन्या मे तेरा पुत्र होवेगा, यह अभिसन्धि थी। इसके अनन्तर दक्ष ने प्रिय कन्या को परमेष्ठी के लिए अर्पित कर दिया। उस ऋषि ने पुनः शाप के भय से उसमे नारद होकर जन्म लिया था ॥१४॥

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।
प्रजापतेः सूतवर्य्य श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१५
दक्षस्य पुत्रा हर्य्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः ।
समागता महावीर्य्या नारदस्तानुवाच ह ॥१६
बालिशा बत यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः ।
प्रमाणं स्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥१७

अन्तरूर्द्ध्वमधश्चैव कथं सृजथ वै प्रजा. ।
ते तु तद्वचन श्रुत्वा प्रयाता. सर्व्वतो दिशः ॥१८
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ।
हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतस पुन. ॥१९
वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।
विवर्द्धयिषवस्ते तु शबलाश्वास्तथा प्रजाः ॥२०
पूर्व्वोक्तं वचन ते तु नारदेन प्रचोदिता ।
अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वं सम्यगाह महानृषिः ॥२१

शौनकादि मुनियों ने कहा—हे सूतजी ! महर्षि नारदजी ने प्रजापति के पुत्रों का क्यों नाश किया था ? हम लोग इसका कारण तात्विक रूप से श्रवण करना चाहते हैं। आप कृपया इसका वर्णन कीजिए ॥१५॥ श्री लोमहर्षण जी ने कहा—प्रजापति दक्ष के जो पुत्र हर्यश्व नाम वाले थे वे सब प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाले थे और महान् वीर्य वाले समागत हुए थे। उनसे श्री नारदजी ने कहा था। श्री नारदजी बोले—बड़े खेद की बात है कि तुम सब बड़े मूर्ख हो और इस भूमि के विषय में कुछ भी नहीं जानते हो कि इसका क्या प्रमाण है और प्राचेतसात्मज प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होगये हो ॥१६-१७॥ अन्दर ऊपर-नीचे कैसे प्रजा का सृजन करें। वे उनके वचन का श्रवण करके सभी दिशाओं की ओर प्रयाण कर गये थे ॥१८॥ समुद्र को प्राप्त करके जैसे फिर नदियाँ वापिस नहीं होती हैं वे आज तक निवृत्त नहीं हो रहे हैं। इस तरह हर्यश्वों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस प्रभु दक्ष प्रजापति ने वैरिणी में एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया था तथा वे सब शबलाश्व प्रजाओं के वर्धन करने की इच्छा वाले थे ॥१९-२०॥ देवर्षि नारदजी के द्वारा प्रेरित हुए उन्होंने परस्पर में पूर्वोक्त वचन कहा था कि महान ऋषि ने ठीक ही कहा है ॥२१॥

भ्रातृणा पदवी ज्ञातु गन्तव्य नात्र सशय ।
ज्ञात्वा प्रमाण पृथ्व्याश्च सुखम स्रक्ष्यामहे प्रजा ॥२२

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३
तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजाः ।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥२४
तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः ।
षष्टिं ततोऽसृजत् कन्या वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥२५
तास्तदा प्रतिजग्राह भार्य्यार्थं कश्यपः प्रभुः ।
सोमो धर्म्मश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः ॥२६
ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशतिः सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२७
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥२८

अपने भाइयों के मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जाना चाहिए—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। पृथ्वी के सूक्ष्म प्रमाण का ज्ञान प्राप्त करके प्रजा का सृजन करेंगे ॥२२॥ वे सब भी उसी मार्ग से सभी दिशाओं में चले गये थे और आज तक भी सागर में गई हुई सरिताओं के समान आज तक भी वापिस नहीं लौट रहे हैं ॥२३॥ हे द्विजगणो ! तब से लेकर भाई भाई के अन्वेषण में गया और शीघ्र नष्ट हो जाता है अतः यह कार्य विद्वान् पुरुष को नहीं करना चाहिए ॥२४॥ प्रजापति दक्ष ने उन पुत्रों को विनष्ट हुए जान कर फिर उस वैरिणी के गर्भ से साठ कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥ उस समय में प्रभु कश्यप ने उन सबको अपनी भार्या बनाने के लिये ग्रहण किया था। हे विप्रो ! सोम ने, धर्म ने तथा अन्य महर्षियों ने ग्रहण की थीं ॥२६॥ उन कन्याओं में से दश तो धर्म को दी थीं और तेरह कश्यप ऋषि को समर्पित की थीं—सत्ताईस सोम को दी और चार अरिष्टनेमि को प्रदान की थीं। दो बहुपुत्र के लिये तथा दो अंगिरा ऋषि को दी थीं। दो कृशाश्व को दी थीं जो परम विद्वान् थे। अब उन सबके नामों का श्रवण करिए ॥२७-२८॥

अन्तरूद्र्ध्वमधश्चैव कथं सृजथ वै प्रजाः ।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः ॥१८
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ।
हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ॥१९
वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।
विवर्द्धयिषवस्ते तु शवलाश्वास्तथा प्रजाः ॥२०
पूर्व्वोक्तं वचनं ते तु नारदेन प्रचोदिताः ।
अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह महानृषिः ॥२१

शौनकादि मुनियों ने कहा—हे सूतजी ! महर्षि नारदजी ने प्रजापति के पुत्रों का क्यों नाश किया था ? हम लोग इसका कारण तात्त्विक रूप से श्रवण करना चाहते हैं । आप कृपया इसका वर्णन कीजिए ॥१५॥ श्री लोमहर्षण जी ने कहा—प्रजापति दक्ष के जो पुत्र हर्यश्व नाम वाले थे वे सब प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाले थे और महान् वीर्य वाले समागत हुए थे । उनसे श्री नारदजी ने कहा था । श्री नारदजी बोले—बड़े खेद की बात है कि तुम सब बड़े मूर्ख हो और इस भूमि के विषय में कुछ भी नहीं जानते हो कि इसका क्या प्रमाण है और प्राचेतसात्मज प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाले होगये हो ॥१६-१७॥ अन्दर ऊपर-नीचे कैसे प्रजा का सृजन करें । वे उनके वचन का श्रवण करके सभी दिशाओं की ओर प्रयाण कर गये थे ॥१८॥ समुद्र को प्राप्त करके जैसे फिर नदियाँ वापिस नहीं होती हैं वे आज तक निवृत्त नहीं हो रहे हैं । इस तरह हर्यश्वों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस प्रभु दक्ष प्रजापति ने वैरिणी मे एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया था तथा वे सब शबलाश्व प्रजाओं के वर्धन करने की इच्छा वाले थे ॥१९-२०॥ देवर्षि नारदजी के द्वारा प्रेरित हुए उन्होंने परस्पर मे पूर्वोक्त वचन कहा था कि महान ऋषि ने ठीक ही कहा है ॥२१॥

भ्रातृणां पदवी ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः ।
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥२२

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३
तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजाः ।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्य्यं विपश्चिता ॥२४
तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः ।
षष्टिं ततोऽसृजत् कन्या वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ५
तास्तदा प्रतिजग्राह भार्य्यार्थं कश्यपः प्रभुः ।
सोमो धर्म्मश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः ॥२६
ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशतिः सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२७
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥२८

अपने भाइयों के मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जाना चाहिए—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । पृथ्वी के सूक्ष्म प्रमाण का ज्ञान प्राप्त करके प्रजा का सृजन करेंगे ॥२२॥ वे सब भी उसी मार्ग से सभी दिशाओं में चले गये थे और आज तक भी सागर में गई हुई सरिताओं के समान आज तक भी वापिस नहीं लौट रहे हैं ॥२३॥ हे द्विजगणो ! तब से लेकर भाई भाई के अन्वेषण में गया और शीघ्र नष्ट हो जाता है अतः यह कार्य विद्वान् पुरुष को नहीं करना चाहिए ॥२४॥ प्रजापति दक्ष ने उन पुत्रों को विनष्ट हुए जान कर फिर उस वैरिणी के गर्भ से साठ कन्याओं को जन्म ग्रहण कराया था—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥ उस समय में प्रभु कश्यप ने उन सबको अपनी भार्या बनाने के लिये ग्रहण किया था । हे विप्रो ! सोम ने, धर्म ने तथा अन्य महर्षियों ने ग्रहण की थी ॥२६॥ उन कन्याओं में से दस तो धर्म को दी थीं और तेरह कश्यप ऋषि को समर्पित की थीं—सत्ताईस सोम को दीं और चार अरिष्टनेमि को प्रदान की थीं । दो बहुपुत्र के लिये तथा दो अंगिरा ऋषि को दी थीं । दो कृशाश्व को दी थीं जो परम विद्वान् थे । अब उन सबके नामों का श्रवण करिए ॥२७-२८॥

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः ॥२९
धर्म्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि बोधत ।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥३०
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः सुताः ।
भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजा ॥३१
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ।
पृथिवीविषयं सर्व्वमरुन्धत्या व्यजायत ॥३२
सङ्कल्पायास्तु विश्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ।
नागवीथ्याश्च यामिन्या वृषलश्च व्यजायत ॥३३
परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ ।
सर्व्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिताः ॥३४
ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमाः ।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३५

हे द्विजगणो ! अरुन्धती-वसु यामी लम्बा-भानु-मरुत्वती-सङ्कल्पा-साध्या और विश्वा तथा मुहूर्त्ता—ये दश धर्म की पत्नियों के नाम थे। अब उनके गर्भों से जो सन्तति समुत्पन्न हुई उनका भी ज्ञान प्राप्त कर लो। जो विश्वेदेवा हैं वे विश्वा धर्म की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। साध्या नाम वाली पत्नी ने साध्यों को जन्म दिया था ॥२९-३०॥ मरुत्वती के गर्भ से मरुत्वान् उत्पन्न हुए तथा वसु से वसुगण प्रसूत हुए थे। भानु के भानुगण सुत हुए और मुहूर्त्ता ने मुहूर्त्तजों को जन्म दिया था ॥३१॥ लम्बा ने घोष को उत्पन्न किया और नागवीथी ने यामिजों को जन्म दिया था। पृथिवी का विषय सब अरुन्धती से समुत्पन्न हुआ था ॥३२॥ सकल्पा के गर्भ से विश्वात्मा सकल्प ने जन्म ग्रहण किया था। नागवीथी और यामिनी से वृषल समुत्पन्न हुआ था ॥३३॥ दूसरी जो सोम की पत्नियाँ थीं जिनको कि प्रजापति प्राचेतस दक्ष ने सोम को समर्पित किया था वे सब नक्षत्रों के नाम वाली थीं जोकि ज्योतिष शास्त्र में वर्णित की गयी हैं ॥३४॥ जो परम ख्याति वाले

ज्योतिष शास्त्र के पुरोगम हैं वे वेत्र आठ वसुगण हैं और इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। अब मैं उन सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ ॥३५॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३६
आपस्य पुत्रो वैतण्डः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालोलोकप्रकालनः ॥३७
सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते।
धवस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥३८
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा।
अनिलस्य शिवा भार्य्या तस्याः पुत्रो मनोजवः।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ॥३९
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बेश्रिया वृतः।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजः ॥४०
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाथ देवलम् ॥४१
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ।
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनी ॥४२

आप-ध्रुव-सोम-धव-अनिल-अनल-प्रत्यूष और प्रभास ये सब वसु नाम से कहे गये हैं ॥३६॥ आप का पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त तथा मुनि थे। ध्रुव का पुत्र भगवान् काल है जो लोक का प्रकालन करने वाला है ॥३७॥ सोम का भगवान् वर्च्चा था जिससे वर्चस्वी उत्पन्न होता है। धव का आत्मज द्रविण-तथा हुतहव्य रहा था ॥३८॥ मनोहरा का पुत्र शिशिर-प्राण तथा रमण थे। अनिल की भार्या शिवा थी। उसका पुत्र मनोजव हुआ था। और दूसरा अविज्ञातगति था। इस तरह से अनल के दो पुत्र हुए थे ॥३९॥ अग्निपुत्र कुमार शर की तम्बेश्री ने वरण किया। उसके शाख-विशाख और नैगमेय पृष्ठज हुए थे ॥४०॥ कृत्तिकाओं की सन्तति कार्तिकेय इस नाम से विश्रुत कहा गया है। प्रत्यूष

का पुत्र देवल ऋषि के नाम वाला था ॥४१॥ देवल के भी क्षमावान् मनीषी हुए थे। बृहस्पति की भगिनी ब्रह्मवादिनी वरस्त्री थी ॥४२॥

योगसिद्धा जगत् कृत्स्नमसक्ता विचचार ह ।
प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य तु ॥४३
विश्वकर्म्मा महाभागो यस्या जज्ञे प्रजापतिः ।
कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानाञ्च वार्द्धकिः ॥४४
भूषणानाञ्च सर्व्वेषां कर्त्ता शिल्पवतां वरः ।
यः सर्व्वेषां विमानानि दैवतानां चकार ह ॥४५
मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ।
सुरभी कश्यपाद् रुद्रानेकादश विनिर्म्ममे ॥४६
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वार्य्यवान् ॥४७
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्द्दी रैवतस्तथा ॥४८
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च द्विजोत्तमाः ।
एकादशैते विख्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥४९

सम्पूर्ण जगत् में असक्त योगसिद्धा विचरण किया करती थी। वसुगण में जो आठवां वसु प्रभास था, उसकी वह भार्या थी ॥४३॥ वसुगणों में जो अष्टम वसु प्रभास था उसकी वह भार्या थी जिसके गर्भ से महान् भाग वाला विश्वकर्मा प्रजापति समुत्पन्न हुआ। वह विश्वकर्मा सहस्रों प्रकार के शिल्पों की रचना वाले थे और देव गणों के वार्द्धकि अर्थात् भवनादि निर्माण कराने वाले थे ॥४४॥ विश्वकर्मा सहस्रों प्रकार के भूषणों के निर्माण करने वाले तथा शिल्प के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ थे। जिसने सब देवों के लिये विमानों की रचना की थी ॥४५॥ जिस महान् आत्मा के रखने वाले के शिल्प के द्वारा मनुष्य उपजीवित रहा करते हैं। सुरभी ने कश्यप ऋषि से एकादश रुद्रों की रचना की ॥४६॥ महादेवजी के प्रसाद से तप के द्वारा वह सती होगई थी। एकादश रुद्रों के नाम बताये जाते हैं—अजैकपाद अहिर्बुध्न्य-त्वष्टा

वीर्यवान् रुद्र-हर-बहुरूप-त्र्यम्बक-अपराजित-वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी-रैवत मृगव्याध शर्व कपाली हे द्विजोत्तमो ! ये एकादश रुद्र त्रिभुवन के ईश्वर विख्यात हुए हैं ॥४७-४६॥

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् ।
पुराणे मुनिशार्दूला यैर्व्याप्तं सचराचरम् ॥५०
दारान्शृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इला ।
कद्रु र्मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥५२
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठाद्वादशासन् सुरोत्तमाः ।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५३
उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
हितार्थं सर्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥५४
आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वं ।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नःश्रेयो भविष्यति ॥५५
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
मारीचात् कश्यपाज्जातास्त्वदित्या दक्षकन्यया ॥५६

हे मुनिशार्दूलो ! इस प्रकार से अमित ओज वाले रुद्रों के शत समाख्यात किये गये हैं अर्थात् बताये गये हैं। जिसकी पुराण में चर्चा है और जिनके द्वारा यह समस्त चराचर व्याप्त हो रहा है ॥५०॥ हे विप्रेन्द्रो ! अब प्रजापति कश्यप की पत्नियों के विषय में आप लोग श्रवण करिए। उनके नाम ये हैं—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इला, कद्रू और मुनि ये इतनी कश्यप मुनि की दाराएँ थी। हे विप्रो ! उन सब पत्नियों में जो सन्तानें हुई थी उनको भी जान लो ॥५१-५२। पूर्व मन्वन्तर में परम श्रेष्ठ द्वादश सुरोत्तम थे। वैवस्वत मन्वन्तर में वे परस्पर में 'तुषिता'—इस नाम से कहा करते थे ॥५३॥ चाक्षुष मनु के अन्तर में जब यह उपस्थित हुआ तो अति यशस्वी कहे जाते थे। समस्त लोकों के हित सम्पा-

दन करने के लिये सब देवगण परस्पर में समागत होकर बहुत शीघ्र ही अदिति के समीप आगये थे और अदिति में प्रवेश कर गये थे और उन्होंने कहा था—हम मन्वन्तर में प्रसूत होंगे उससे हमारा श्रेय होगा ॥५४-५५॥ इस प्रकार से कहे गये वे सब चाक्षुष मनु के अन्तर में मारीच कश्यप के वीर्य से दक्ष की कन्या अदिति के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥५६॥

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥५७
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासंस्ते तुषिताः सुराः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वा आदित्या द्वादश स्मृताः ।
सप्तविंशति ताः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः ।
तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसः ॥५९
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥६०
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वं ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ।
कृशाश्वस्य च देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः ॥६१
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।
सर्वे देवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥६२
तेषामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिरुच्यते ।
यथा सूर्यस्य गगने उदयास्तमयाविह ॥६३

उसमें विष्णु-इन्द्र-पुन: समुत्पन्न हुए थे। अर्यमा-धाता-त्वष्टा-पूषा-विवस्वान् सविता-मित्र-वरुण-अंश-भग और अतितेजा ये द्वादश आदित्य कहे गये हैं ॥५७-५८॥ वे चाक्षुष के अन्तर में पहिले तुषितासुर थे। वैवस्वत मन्वन्तर में वे द्वादश आदित्य कहे गये हैं। सोम की पत्नियाँ सत्ताईस महान् व्रत वाली कही गयी हैं। उनकी सन्तान अमित तेज वाली परम दीप्त हुई थीं ॥५९॥ अरिष्टनेमि की पत्नियों की सन्तति

सोलह हुई थीं। बहुपुत्र विद्वान् के चार विद्युत् कही गयी हैं ॥६०॥ चाक्षुषमनु के अन्तर में पूर्व ऋचाऐं ब्रह्मर्षियों के द्वारा सत्कृत थीं। वेवर्षि कृशाश्व की देव प्रहरण नाम से कही गयी हैं ॥६१॥ ये सब एक सहस्र युगों के अन्त में पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं समस्त देवगण कामज यहाँ पर तैंतीस हैं ॥६२॥ हे विप्रो ! उनकी भी निरोधोत्पत्ति कही जाती है। जिस तरह से गगन में सूर्यदेव का यहाँ पर उदय और अस्त दोनों ही हुआ करते हैं ॥६३॥

एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ।
दित्याः पुत्रद्वय जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥६४
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्य्यवान् ।
सिंहिकाचाभवत् कन्या विप्रचित्तेःपरिग्रहा ॥६५
सैंहिकेया इति ख्याता तस्याः पुत्रा महाबलाः ।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥६६
ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्य्यवान् ।
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ह्लादपुत्रो ह्लदस्तथा ॥६७
ह्लदस्य पुत्रौ द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च ।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिजज्ञे विरोचनात् ॥६८
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं तपोधनाः ।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्चचन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥६९
कुम्भनाभो गर्द्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः ।
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७०

इसी प्रकार से देवों के निकाय अर्थात् समुदाय युग-युग में उत्पन्न हुआ करते हैं। दिति के गर्भ से कश्यप महर्षि के वीर्य से दो पुत्र हुए थे—ऐसा ही हमने सुना है ॥६४॥ एक का नाम हिरण्यकशिपु था और दूसरा महान् बल वीर्य वाला हिरण्याक्ष था। एक सिंहिका नाम वाली कन्या थी जो विप्रचित्ति का परिग्रह थी ॥६५॥ उसके महान् बल वाले पुत्र "सैंहिकेय"—इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे। हिरण्यकशिपु के प्रथित ओज वाले चार पुत्र हुए थे ॥६६॥ ह्लाद-अनुह्लाद और वीर्यवान् प्रह्लाद

था चौथा पुत्र संह्लद था ह्लाद का पुत्र ह्रद हुआ था ।।६७।। ह्रद के दो महान् वीर पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनके नाम शिव और काल थे वो थे। प्राह्लादि विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचन से बलि ने जन्म ग्रहण किया था ।।६८।। राजा बलि के एक सौ पुत्रों ने जन्म लिया था। हे तपोधनो ! उन सब में बाण सबसे बड़ा पुत्र था। अन्य पुत्रों के नाम भी धृतराष्ट्र सूर्य-चन्द्रमा-चन्द्रतापन-कुम्भनाभ-गर्द्दभाक्ष और कुक्षि इत्यादि थे। *उन सब में बाण अत्यन्त बलवान् और ज्येष्ठ था जो कि* भगवान् पशुपति का अत्यन्त प्रिय भक्त था ।।६९-७०।।

पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम् ।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येव याचितो वरः ।।७१
हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः ।
उज्जरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ।।७२
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ।
अभवन् दनुपुत्राश्च शत तीव्रपराक्रमाः ।।७३
तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान् ।
द्विमूर्द्धा शङ्कुकर्णश्च तथा हयशिरा विभुः ।।७४
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ।
मारीचिर्मघवांश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ।।७५
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ ।
इन्द्रजित्सर्व्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ।।७६
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
वैश्वानर पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ।।७७
स्वर्भानुर्वृषपर्व्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान् ।
सर्व्वे एते दनोः पुत्रा कश्यपादभिजज्ञिरे ।।७८

पहिले कल्प में बाण ने उमापति प्रभु को प्रसन्न करके पार्श्व भाग में विहार करूँगा—यह वरदान माँगा था ।।७१।। हिरण्याक्ष के पुत्र भी महान बलवान और परम विद्वान् थे। उज्जर-शकुनि-भूत सन्तापन महानाभ विक्रान्त और कालनाभ आदि इनके परम तीव्र पराक्रम वाले

एक सौ पुत्र हुए थे। ये बड़े तपस्वी महान् वीर्य वाले थे। उनमें जो विशेष प्रधान थे उनके नाम इस समय में मैं बतलाता हूं। द्विमूर्धा-शंकुकर्ण, हयशिरा, विभु, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मारीचि, मघवान् इल्वल, खसृम ये तथा विक्षोभण, केतु, केतुवीर्य, शतहृद, इन्द्रजित्, सर्वजित् वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु महाबल, तारक वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण महाशिरा, स्वर्भानु, वृषपर्वा, वीर्यवान् विप्रचित्ति ये सब दनु के ही पुत्र थे जो महर्षि कश्यपजी के वीर्य से दनु के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥७२-७८॥

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ।
एतेषा पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्य द्विजोत्तमाः ॥७९
प्रसंख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥८०
उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी ।
पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।
वह्वपत्ये महापत्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥८१
तयो. पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवनन्दनाः ।
चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः ।
मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥८२
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ।
अवध्या देवताना हि हिरण्यपुरवासिनः ॥८३
पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना ।
ततोऽपरे महावीर्य्या दानवास्त्वतिदारुणाः ॥८४

विप्रचित्ति जिनमें परम प्रमुख था ऐसे ये सब दानव महान् बलवान् थे। हे द्विजोत्तमो ! इनके पुत्रों और पौत्रों की संख्या तो इतनी अधिक थी कि उनकी सख्या नहीं की जा सकती है क्योंकि इतने ज्यादा थे तथा अनन्त थे कि गणना हो ही नहीं सकती है। स्वर्भानु की कन्या प्रभा नाम वाली थी और शची पुलोमा की पुत्री थी ॥७९-८०॥ उपदानवी हयशिरा, शर्मिष्ठा, वार्षपर्वणी और पुलोमा कालिका ये दोनों

वैश्वानर की पुत्रियाँ थीं। बहुत सन्तति वाली और महान् सन्तान वाली मारीचि का परिग्रह था ॥८१॥ इन दोनों में महान् तपस्या से युक्त मारीचि ने साठ हजार दानव नन्दन पुत्र और चौदह सौ अन्य हिरण्यपुर वासी लोगों को जन्मग्रहण कराया था ॥८२॥ वे हिरण्यपुर के निवास करने वाले पौलोम कालकेय और महान् बलवान् दानव जो देवों के द्वारा भी वध करने के योग्य नहीं थे उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ पितामह के प्रसाद से ही वे ऐसे हुए थे किन्तु वे मनुष्यों के द्वारा हत हुए थे। इसके अनन्तर महान् वीर्यवाले अत्यन्त दारुण दूसरे दानव भी हुए थे ॥८४॥

सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा ।
दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ॥८५
सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः ।
वंश शल्यश्च बलिनो नलश्चैव तथा बलः ॥८६
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ।
अञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥८७
सरमाणस्तथा चैव स्वरकल्पश्च वीर्य्यवान् ॥८८
मुकश्चैव तुहुण्डश्च ह्रदपुत्रौ बभूवतुः ।
मारीचः सुन्दपुत्रश्च प्रस्तुतायां व्यजायत ॥८९
एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनोर्वंशविवर्द्धनाः ।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥९०
सह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले ।
समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः ॥९१

ये सब दानव विप्रचित्ति के सुत सिंहिका में उत्पन्न हुए थे और दैत्यों तथा दानवों के संयोग से ये सब बहुत ही तीव्र पराक्रम वाले हुए थे ॥८५॥ ये तेरह महान् बल वाले सैंहिकेय इस नाम से विख्यात हुए थे। बलवान् वंश और शल्य नल तथा बल वातापि,नमुचि इल्वल खसृम अञ्जिक,नरक,कालनाभ,सरमाण और वीर्यवान् स्वरकल्पक और तुहुण्ड दोनों ह्रद के पुत्र थे। मारीच और सुन्दपुत्र प्रस्तुता में समुत्पन्न हुए थे

॥८६-८६॥ ये परम श्रेष्ठ और दनु के वंश का वर्धन करने वाले हुए थे। उनके पुत्र पौत्र सैकड़ों तथा सहस्रों ही हुए थे ॥६०॥ संह्लाद दैत्य के कुल में निवात कवच सुमहान् तप से भावित आत्मा वाले समुत्पन्न हुए थे ॥६१॥

तिस्रः कोटयः सुतास्तेषांमनिवत्यां निवासिनः।
अवध्यास्तेऽपि देवानामर्जुनेन निपातिताः।
षट् सुताः सुमहाभागास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः ॥६२
क्रौञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका।
क्रौञ्ची तु जनयामास उलूकप्रत्युलूककान् ॥६३
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्यपि।
शुचिरौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥६४
अश्वानुष्ट्रान् गर्द्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्त्तितः।
विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारुणौ ॥६५
गरुडः पतता श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्म्मणा।
सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥६६
अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम्।
काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः ॥६७
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरे नैकमस्तकाः।
येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥६८

उसके तीन करोड़ पुत्र थे जो अनिवत्ती में निवास करने वाले थे। वे सभी देवों के द्वारा अवध्य थे तथा अर्जुन ने उनको मार गिराया था। छै पुत्र महान् भाग वाले ताम्रा के बताये गये हैं ॥६२॥ श्येनीने श्येनों को, भासी ने भासों को, गृध्यपि ने गृध्रों को, शुचि ने जल में रहने वालों को तथा हे द्विजोत्तमो! सुग्रीवी ने पक्षिगणों को उत्पन्न किया था तथा अश्वों का- उष्ट्रों को और गर्दभों को जन्म दिया था। यह ताम्र वंश वर्णन किया गया है। विनता नाम वाली कश्यप मुनि की पत्नी के दो पुत्र हुए थे। एक का नाम गरुड़ था और दूसरा अरुण था ॥६३-६५॥ गरुड़ पक्षियों में परम श्रेष्ठ था तथा महान् दारुण अपने कर्म से

था। सुरसा नाम की भार्या से अपरिमित ओज वाले सर्पों के एक सहस्र पुत्र हुए थे ॥९६॥ हे विप्रगणो! अनेक शिर वाले महात्मा खचरों के अमित ओज वाले एक सहस्र महान् बलवान् काद्रवेय हुए थे ॥९७॥ अनेक मस्तकों वाले सुपर्ण वशग नाग उत्पन्न हुए थे जिनमें निरन्तर शेष वासुकि और तक्षक ये तीनों प्रमुख थे ॥९८॥

ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ।
एलापत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥९९
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ।
कुहर पुष्पदन्तश्च दुर्म्मुख सुमुखस्तथा ॥१००
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा।
नहुषः शङ्खरोमा च मनिरित्येवमादयः ॥१०१
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणामनिलाशिनाम् ॥१०२
गण क्रोधवश विप्रास्तस्य सर्व्वे च दंष्ट्रिण।
स्थलजा पक्षिणोऽजाश्च धराया प्रसवा स्मृता ॥१०३
गास्तु व जनयामास सुरभिमहिषीस्तथा। *
इरा वृक्षलता वल्लीस्तृनजातीश्च सर्व्वश ॥१०४
खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा।
अरिष्टा तु महासिद्धा गन्धर्व्वानमितौजस. ॥१०५

ऐरावत-महापद्म दोनों कम्बल और अश्वतर एलापत्र-शङ्ख कर्कोटक धनञ्जय महानील महाकर्ण-धृतराष्ट्र-बलाहक-कुहर पुष्पदन्त दुर्मुख सुमुख शङ्ख शङ्खपाल कपिल-वामन-नहुष-शङ्ख रोमा और मनि इत्यादि इनके पुत्र तथा पौत्र सैकड़ों एवं सहस्रों ही थे। इन अनिल (वायु) के अशन करने वालों के जो बहुत ही क्रूर हैं चौदह सहस्र भेद प्रभेद हैं ॥९९-१०२॥ हे विप्रो! उसका गण क्रोध के वशीभूत था और उसके समस्त दंष्ट्रा वाले हुए हैं। स्थल में उत्पन्न पक्षी और अज ये सब धरा की सन्तति कही गयी हैं ॥१०३॥ गायों को सुरभि महिषियों का जन्म दिया था। इरा वृक्ष लता, बल्ली और सब तृनु जातीयों को उत्पन्न

किया था ॥१०४॥ खसा नाम वाली कश्यपजी की पत्नी ने यक्षों और राक्षसों को जन्म ग्रहण कराया था तथा मुनि ने अप्सराओं को समुत्पन्न किया था। अरिष्टा महासिद्धा थी। उसने अमित ओज वाले गन्धर्वों को उत्पन्न किया था ॥१०५॥

एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्थाणुजङ्गमाः।
येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६
एष मन्वन्तरे विप्राः सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः।
वैवस्वतेऽतिमहति वारुणे वितते क्रतौ ॥१०७
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते।
पूर्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८
पुनरवे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः।
ततो विरोधे देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥१०९
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्।
कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥११०
वरेण छन्दयामास सा च वव्रे वरं तदा।
पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥१११
स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहातपाः।
दत्वा च वरमव्यग्रो मारीचः समभाषत ॥११२
इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै धारयं शतम्।
यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥११३
तथेत्यभिहितो भर्त्ता तया देव्या महातपाः।
धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥११४

ये सब कश्यप मुनि के दायाद थे जो भी स्थाणु और जगम बताये गये हैं। जिनके पुत्र और पौत्र सैकड़ों तथा सहस्रों की संख्या वाले हुए हैं ॥१०६॥ हे विप्रो! यह सर्ग अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति स्वारोचिष मन्वन्तर में बताई गयी है। अति महान्- वैवस्वत मन्वन्तर में वारुण क्रतु के वितत होने पर आहुतियाँ देने वाले ब्रह्माजी का जो प्रजा का सृजन हुआ था वह सब यहाँ पर बतलाया जाता है ॥१०७॥ जहाँ

पर पूर्व मे सात मानस ब्रह्मर्षियों के उत्पन्न होने पर स्वयं ही पितामह ने उनको अपना पुत्र मान लिया था। इसके पश्चात् हे द्विजगणो ! देवों और दानवों का विरोध उत्पन्न होगया था ॥१०८-१०९॥ जिसके पुत्र युद्ध मे नष्ट हो गये थे ऐसी उस दिति ने कश्यप जी को सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न किया था। उन प्रसन्न आत्मा वाले कश्यप जी की उस दिति ने भली भाँति आराधना की थी ॥११०॥ जब कश्यपजी ने उसे वरदान माँगने की आज्ञा दी तो उस समय मे उसने कश्यप जी से यही वरदान माँगा था कि मुझे इन्द्र के वध करने के लिये शक्ति शाली एवं अपरिमित ओज वाला पुत्र प्रदान कीजिए ॥१११॥ वह महान् तपस्वी कश्यप महर्षि से जब ऐसी प्रार्थना की तो उन्होंने उसको वही वरदान दे दिया था। अत्यन्त उग्र मारीच ने वरदान देकर उससे यह कहा था ॥११२॥ इन्द्र के मारने वाला पुत्र तो होगा किन्तु उसको यदि तू सौ वर्ष तक गर्भ में परम शौच व्रत मे परायण होकर धारण कर लेगी। सौ वर्ष पर्यन्त पूरा व्रत रखना होगा ॥११३॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उस देवी दिति ने ऐसा ही करूंगी—यह कहकर अपने स्वामी कश्यप जी को सन्तुष्ट कर दिया था। फिर महा तपस्वी से उस देवी ने परम शुचि होकर गर्भधारण कर लिया था ॥११४॥

ततोऽभ्युपागमद्दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः ।
रोधयन् वै गणं श्रेष्ठं देवनामिमतौजसम् ॥११५
तेजः संहृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि ।
जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रता ॥११६
तस्याश्चान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः ।
जाते वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥११७
अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत् ।
निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सः ॥११८
वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तयत् ।
स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोद ह ॥११९

इसके अनन्तर कश्यप मुनि आप स्वयं दिति में गर्भ धारण कराकर वहा से चले गये थे और देवों का जो परम श्रेष्ठ गण था जिसका ओज अमित था उसका रोधन करने वाला तथा देवों के द्वारा भी अवध्य अपना दुर्धर्ष तेज उसमें डालकर वे चले गये थे। फिर व्रतधारिणी दिति भी तप के लिये पर्वत पर चली गयी थी ॥११५-११६॥ इन्द्र उस दिति के उदर में गमन करने की इच्छा वाला हो गया था। एक सौवां वर्ष जब व्रत का चल रहा था उस समय में इन्द्र ने उस तपोव्रत में अन्तर देखा था कि अपने पैरों को न धोकर ही बिना शौच किये दिति अपनी शय्या पर शयन करने को चली गयी थी और निद्रा लेने लग गयी थी। उसी व्रत के विरुद्ध होने के समय में इन्द्र देव ने उस दिति की कुक्षि में प्रवेश किया था ॥११७-११८॥ वज्रपाणि इन्द्र ने दिति के गर्भ को वज्र से काटकर सात टुकडे कर दिये थे। वज्र के द्वारा जब गर्भ के टुकडे किये गये थे उस समय में वह गर्भ रुदन करने लगा था ॥११९॥

मा रोदीरिति तं शक्रः पुनःपुनरथाब्रवीत् ।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥१२०
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्षणः ।
मरुतो नाम ते देवा बभूवु द्विजसत्तमा ॥१२१
यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन् ।
देवाश्चैकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥१२२
तेषामेव प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः ।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितौजसाम् ॥१२३
निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् ।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भो द्विजाः ॥१२४
स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः ।
पर्जन्यस्तपनोऽनन्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥१२५
भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमा ।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥१२६

उस समय में इन्द्र ने बारम्बार उस गर्भस्थ बालक से कहा था— 'तू रुदन मत करे'। वह गर्भ सात टुकड़ों में जब होगया था तो इन्द्र ने फिर उसके एक-एक टुकड़े के भी सात-सात खण्ड कर दिये थे क्योंकि इन्द्रदेव तो शत्रु के कर्षण करने के लिये ही उदर में प्रविष्ट हुए थे। हे द्विजश्रेष्ठो ! वे सब मरुद्गण नाम वाले देव हुए थे ॥१२०-१२१॥ मघवान् ने जैसा भी कहा था वैसे ही मरुत हुए थे। ये उनचास देवगण इन्द्र के सहायक ही हुए थे ॥१२२॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! अपरिमित ओज वाले देवों के जो समस्त भूतों में प्रवृत्त हैं उन्हीं गण श्रेष्ठों को वे देव रोचित किया करते हैं। इन्द्रदेव ने प्रजापतियों को उनके निकायों में उनको दे दिया था। हे द्विजो ! उनको क्रम से पृथु पूर्व राज्य प्रदान कर दिये थे। वह हरि वीर पुरुष है तथा कृष्ण जपन शील और प्रजाओं का स्वामी है। वही पार्जन्य है—तपन है—और अनन्त है तथा उसी का यह सम्पूर्ण जगत् है ॥१२३-१२८॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! इस प्रकार से इन भूतों के सृजन को जो जानता है और भली प्रकार से ज्ञान रखता है उसको पुनर्जन्म ग्रहण करने का भय तो होता ही नहीं है फिर परलोक का भय भी कैसे होसकता है ॥१२६॥

४—सूर्यवंश वर्णन (१)

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः ।
इक्ष्वाकुश्च व नाभागो धृष्ट शर्यातिरेव च ॥१

नरिष्यन्तश्च षष्ठो वै प्रांशू रिष्टश्च सप्तमः ।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैत मुनिसत्तमाः ॥२

अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः ।
मित्रावरुणयोर्विप्रा. पूर्वमेव महामतिः ॥३

अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजाः ।
तस्या च वर्त्तमानायामिष्ट्या च द्विजसत्तमाः ॥४

मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावहत् ।
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥५
दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुतिः ।
तमिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ॥६
अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह ।
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥७

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—वैवस्वत मनु के उन्हीं के समान परम श्रेष्ठ नौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम ये हैं—इक्ष्वाकु-नाभाग-धृष्ट-शर्याति-नरिष्यन्त और छटवाँ प्रांशु-सातवाँ रिष्ट-करूष-पृषध्न ये नौ पुत्र थे ॥१-२॥ पुत्र की कामना वाले प्रजापति मनु ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था हे विप्रो! उस महती मति वाले मनु ने पहिले ही मित्रावरुणो की इष्टि की थी जब तक इसके बहुत से पुत्र समुत्पन्न नहीं हुए थे। हे द्विज-श्रेष्ठो! उस वर्त्तमान इष्टि में अर्थात् यज्ञ में मनु ने मित्रावरुणों के अंश मे आहुतियाँ दी थीं। इसमें परम दिव्य वस्त्रों के धारण करने वाली तथा दिव्य आभरणो से विभूषित और दिव्य संहनन वाली इला समुत्पन्न हुई थी—ऐसी श्रुति है। उस अवस्था में दण्डधारी मनु ने उस इला से यह कहा था ॥३-६॥ हे भद्रे! मेरे पीछे आगमन करो। उस समय में उस मनु से इला ने जोकि धर्म से युक्त और पुत्र की कामना करने वाला प्रजापति था, यह कहा था ॥७॥

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदतांवर ।
तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्म्महतां कुरु ॥८
सेवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला ।
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥९
अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ।
मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्व मामिति ॥१०
तौ तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्म्मपरायणाम् ।
मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११

नाभागघृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यता गताः ।
प्राशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥२६
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दन्तधरो यमः ।
शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ॥२७
पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह ।
आनर्त्तस्य तु दायादो रैवो नाम महाद्युतिः ॥२८

हे उत्तम द्विजगण ! धर्मराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा यह थी कि महान् यश वाले में प्राप्त करके वह सम्पूर्ण राज्य पुरूरवा को दे दिया था ॥२२॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! वह मानवेय स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षणों से युक्त था। स्त्री के लक्षणों से उसका नाम इला-यही था और वह सुद्युम्ना-इस नाम से भी विश्रुत हुआ था ॥२३॥ नरिष्यन्त शक पुत्र थे और राजा नाभाग का पुत्र राजाओं में परम श्रेष्ठ अम्बरीष हुआ था ॥२४॥ धृष्ट का पुत्र धार्मिक क्षत्रिय था जो रण के बहुत अधिक दर्प वाला था। करूष के कारूष रण दुर्मद क्षत्रिय हुए थे ॥२५। नाभाग धृष्ट के पुत्र क्षत्रिय होते हुए भी वैश्य भाव को प्राप्त हो गये थे। प्राशु का एक ही पुत्र था जो प्रजापति-इस नाम से कहा गया है ॥२६॥ नरिष्यन्त का दायाद् (पुत्र) राजा दन्तधरयम था। शर्याति राजा के एक पुत्र और पुत्री का जोड़ा था। पुत्र का नाम आनर्त्त प्रसिद्ध था और सुकन्या नाम वाली पुत्री थी जो च्यवन ऋषि की पत्नी हुई थी। आनर्त्त के पुत्र का नाम रैव हुआ था जो महती द्युति से सम्पन्न था ॥२७-२८॥

आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली ।
रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः । २९
ज्येष्ठः पुत्रः स तस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।
स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३०
मुहूर्त्तभूतं देवस्य तस्थौ बहुयुगं द्विजाः ।
आजगाम स चैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥३१

कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः ॥३२
तत्रैव रैवतो ज्ञात्वा यथातत्वं द्विजोत्तमाः ।
कन्यां तां बलदेवाय सुभद्रां नाम रेवतीम् ॥३३
दत्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।
रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥३४

आनर्त्तों का विषय (देश) और इसकी पुरी कुशस्थली थी। रैव का पुत्र रैवत या ककुद्मी परम धार्मिक एवं उसका ज्येष्ठ पुत्र था। वह कुशस्थली के राज्य को पाकर अपनी कन्या के सहित गान्धर्व नगर को सुनकर ब्रह्मा-जी के समीप पहुँच गया। वह वहां परदेव की सन्निधि में एक मुहूर्त्त मात्र ही ठहरा था किन्तु बहुत से युग व्यतीत होगये थे। वहां से जब फिर वह वापिस आया तो उसने अपनी पुरी को यादवों से घिरी हुई देखा था जो द्वारवती नाम से प्रसिद्ध हुई थी। उसमें बहुत से द्वार थे और बहुत ही सुन्दर थी। भोज और वृष्णि तथा अन्धक जाति वाले यादव क्षत्रियों के द्वारा वह सुरक्षित थी जिनमें वसुदेव प्रमुख थे ॥२६-३२॥ हे द्विजो-त्तमो! वहां पर ही रैवत ने यथा तत्व का ज्ञान प्राप्त करके उसमें सुभद्रा नाम वाली रेवती कन्या को बलदेवजी को दे दिया था और अपनी कन्या का अर्पण कर के फिर वह मेरु पर्वत पर चला गया था और तप में संस्थित हो गया था। बलरामजी भी परम धर्मात्मा थे और उस रेवती नाम वाली अपनी पत्नी के साथ परम सुखी होकर रमण किया करते थे ॥३३-३४॥

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते ।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥३५
मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातेः सन्ततिः कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्वतः ॥३६
न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः ।
ऋतुचक्रं प्रभवति ब्रह्मलोके सदानघाः ।
ककुद्मिनः स्वर्लोकं तु रैवतस्य गतस्य ह ॥३७

हृता पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुशस्थली ।
तस्य भ्रातृशत त्वासीद्धार्म्मिकस्य महात्मनः । ३८
तद्वध्यमान रक्षोभिर्दिशः प्राक्रामदच्युताः ।
विद्रु तस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥३९
अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः ।
तेषां ह्येते मुनिश्रेष्ठाः शर्याता इति विश्रुताः ॥४०
क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिक्षु सर्व्वासु विश्रुताः ।
सर्व्वशः सर्व्वगहन प्रविष्टास्ते महौजसः ।.४१
नाभागरिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः ॥४२

मुनिगण ने कहा—हे महामते ! बहुत से युगों के काल के व्यतीत हो जाने पर भी उस रेवती को तथा उस ककुद्मी रेवत को बुढ़ापा कैसे नहीं हुआ था ॥३५॥ जब वह स्वयं मेरु पर्वत पर तप करने चला गया था तो उस शर्याति राजा की सन्तति आज तक भी इस पृथिवी पर कैसे स्थित हुई थी—इस को हम सब लोग ठीक२ सुनना चाहते हैं ॥३६॥ श्री लोमहर्षणजी ने कहा—हे मुनिगणो ! ब्रह्म लोक का प्रभाव ही ऐसा अद्भुत होता है कि वहां पर न तो वृद्धावस्था होती है और न भूख तथा प्यास ही सताया करती है । ऋतुओं का भी वहां यह कुछ प्रभाव नहीं होता है । ब्रह्म लोक में तो सब सर्वदा अनघ ही रहा करते हैं । जब ककुद्मी रैवत स्वर्लोक में चला गया था तो हे विप्रगण ! उसकी जो कुशस्थली पुरी थी उसको पुण्य जन राक्षसों ने हरण कर लिया था । उस महात्मा परम धार्मिक रैवत के सौ भाई थे राक्षसों के द्वारा वे वध्यमान होकर इधर-उधर अन्य दिशाओं में भाग गये थे । हे विप्रेन्द्रो ! भागे हुए उन सौ भाइयों का वंश बहुत बड़ा था जो जहां-तहां पर स्थित हो गया था हे मुनिगणो ! उन्हीं के ये शर्याति नाम से प्रसिद्ध लोग हैं ॥३७-४०॥ ये क्षत्रिय गुणों से सुसम्पन्न हैं और सभी ओर से सभी वनों में ये महान् ओज वाले प्रविष्ट होगये थे ॥४१॥

नाभागारिष्ट के दो पुत्र जो वैश्य थे ब्राह्मणता को प्राप्त होगये थे। करूष के कारुष क्षत्रिय थे जो युद्ध में बहुत ही दुर्मद थे ॥४२॥

पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां द्विजसत्तमाः ।
शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्त्तिताः ॥४३
वैवस्वतस्य तनया मुनेर्व्वै मुनिसत्तमाः ।
क्षुवतस्तु मनोर्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥४४
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ।
तेषां विकुक्षिर्ज्येष्टस्तु विकुक्षित्वादयोध्यताम् ॥४५
प्राप्तः परमधर्म्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः ॥४६
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः ।
चत्वारिंशदृदशाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ॥४७
शशातिप्रमुखाश्चान्ते रक्षितारो द्विजोत्तमाः ।
इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिवा अष्टकायामथादिशत् ॥४८
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः ।
श्राद्धकर्म्मणि चोद्दिष्टे अकृते श्राद्धकर्म्मणि ॥४९

हे द्विज श्रेष्ठो ! पृषध्र ने अपने ही गुरुदेव की गाय की हिंसा की थी अतएव वह शूद्रत्व को प्राप्त हो गया था। इस प्रकार से ये नौ पुत्रों का वर्णन किया गया है ॥४३॥ हे मुनिसत्तमो! वैवस्वत मनु के ये पुत्र हुए हैं। हे विप्रगण ! क्षुवत मनु का इक्ष्वाकु पुत्र हुआ था ॥४४॥ उस इक्ष्वाकु राजा के बहुत दक्षिणा वाले एक सौ पुत्र हुये थे। उन सब में विकुक्षि नाम वाला पुत्र सब में ज्येष्ठ था। वह विकुक्षित्व होने के कारण अयोध्यता को प्राप्त होगया था ॥४५॥ वह बहुत ही अधिक धर्म का ज्ञाता था और वही अयोध्या का पति प्रभु हुआ था। उस राजा के पाँच सौ पुत्र हुए थे जिन में शकुनि प्रमुख था। ये सब उत्तरापथ के रक्षा करने वाले महान् बलवान् हुए थे। इनमें से अट्ठावन दक्षिण दिशा में रक्षा करने वाले थे। हे द्विजोत्तमो ! शश जिनमें प्रमुख थे और अन्त भी रक्षा करने वाले हुए थे। अष्टका के समय में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि

को यह आदेश दिया था कि श्राद्ध के लिये माँस लाओ। उस महान् बलवान् ने श्राद्ध कर्म के उद्दिष्ट होने पर मृगों का हनन करके शश का भक्षण करके वह शश को खाने वाला शिकार करने को चला गया था और श्राद्ध का कर्म पूर्ण नहीं हुआ था ॥४६-४६॥

भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगया गतः ।
इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः ॥५०
इक्ष्वाकौ संस्थिते विप्रा. शशादस्तु नृपोऽभवत् ।
शशादस्य तु दायाद. ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ॥५१
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेनस. स्मृतः ।
विष्टराश्वः पृथो. पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत ॥५२
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तत्सुतो द्विजाः ।
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्म्मिता ॥५३
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महीपति. ।
कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्म्मिकः ॥५४
य. स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागत ॥५५

महर्षि वसिष्ठ के वचन से राजा इक्ष्वाकु ने उसका परित्याग कर दिया था ॥५०॥ इक्ष्वाकु के संस्थित रहने पर ही हे विप्रगण ! शशाद राजा होगया था। उस शशाद का पुत्र महान् बल वीर्य वाला ककुत्स्थ हुआ था ॥५१॥ इस ककुत्स्थ का पुत्र अनेना हुआ था और अनेना का पुत्र पृथु कहा गया है। उस पृथु के पुत्र का नाम विष्टराश्व था और फिर उस विष्टराश्व से आर्द्र समुत्पन्न हुआ ॥५२॥ आर्द्र का पुत्र युवनाश्व समुत्पन्न हुआ। हे द्विजगण ! इस युवनाश्व के पुत्र का नाम श्राव था। वही श्रावस्तक राजा हुआ जिसने श्रावस्ती पुरी का निर्माण किया ॥५३॥ इस श्रावस्त का दायाद राजा बृहदश्व हुआ। बृहदश्व का पुत्र कुवलाश्व नाम वाला परम धार्मिक राजा हुआ। यह वही राजा था जिसने धुन्धु का वध किया था और धुन्धुमारत्व को प्राप्त हो गया था ॥५४-५५॥

धुन्धोर्वधं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ।
यद्वधात्कुवलाश्वोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः ॥५६
कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
सर्व्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥५७
बभूवुर्धार्म्मिकाः सर्व्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
कुवलाश्वं पिता राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् ॥५८
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह ।
तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९
भवता रक्षणं कार्य्यं तच्च कर्त्तुं त्वमर्हसि ।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥६०
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो बालुकापूर्ण उद्दालक इति स्मृतः ॥६१
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ।
अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्तर्हितो महान् ॥६२
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुरः ।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥६३

मुनिगण ने कहा—हे महान् प्रज्ञा वाले ! हम लोग अब इस धुन्धु के वध को तात्त्विक रूप से अर्थात् ठीक-ठीक श्रवण करना चाहते हैं जिसके वध कर देने पर यह कुवलयाश्व भी धुन्धुमारत्व को प्राप्त होगया था ॥५६॥ श्री लोमहर्षणजी ने कहा—उस कुवलयाश्व के एक सौ पुत्र थे जो उत्तम धनुष धारी थे, ये सभी समस्त विद्याओं में परम कुशल थे—महान् बलशाली थे और शत्रुओं के द्वारा दुरासद भी थे अर्थात् ऐसे थे कि शत्रु इनको जीतने में असमर्थ हो जाते थे ॥५७॥ ये सभी यजन करने वाले—अधिक दक्षिणा देने वाले तथा अत्यधिक धार्मिक थे। बृहदश्व पिता ने कुवलाश्व को राज्यासन पर नियोजित कर दिया था ॥५८॥ अपने पुत्र को सम्पूर्ण राज्य श्री सौंप कर फिर वह राजा वन में तपश्चर्या करने के लिये चला गया था। जब वह राजा वन को जा रहा था उस समय में उत्तंक नाम धारी विप्रर्षि ने गमन करने वाले

उसको धारित किया था ॥५६॥ उत्तंक ने कहा—हे राजन् ! आपको अपने राज्य की रक्षा का धर्म करना चाहिए क्योंकि आप रक्षा करने के योग्य हैं। मैं उद्वेग से रहित होकर तप नहीं कर सकता हूँ ॥६०॥ मेरे आश्रम के समीप में सम मरुधन्वाओं मे वालु का पूर्ण समुद्र है जो उद्दालक कहा गया है ॥६१॥ यह देवो के द्वारा भी अवध्य हैं अर्थात् इसको देवगण भी नहीं मार सकते हैं। यह महान् काया वाला और महान् बलशाली है। वहाँ पर यह भूमि के अन्तर्गत रहता है तथा बालुकाओं मे छिपा रहा करता है ॥६२॥ यह मधु नामक राक्षस का पुत्र है और इस महान् असुर का नाम धुन्धु है। परम दारुण तप मे समास्थित होकर लोको के विनाश करने के लिये ही शयन किया करता है ॥६३॥

संवत्सरस्य पर्य्यन्ते स निश्वासं विमुञ्चति ।
यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥६४
तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धयते महत् ।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥६५
सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम् ।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६६
तं मारय महाकायं लोकना हितकाम्यया ।
लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहते त्वया ॥६७
त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते ।
विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगे नृप ॥६८
यस्त महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम् ।
तस्य त्वं वरदानेन तेजश्चाप्याययिष्यसि ॥६९
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते ।
निर्दग्धुं पृथिवीपाल चिरं युगशतैरपि ॥७०
वीर्य्यं च सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ।
स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ।
कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मै धुन्धुनिबर्हणे ॥७१

वह सम्वत्सर के पर्यन्त में अपना निश्वास छोड़ता है जिस समय में वह निश्वास छोड़ता है उस समय में हे नराधिप ! यह सम्पूर्ण भूमि चलायमान होजाती थी ॥६४॥ उसके निश्वास की वायु से बहुत अधिक रज उड़ा करती है और वह रज सूर्य के मार्ग को रोककर एक सप्ताह तक भूमि का कम्पन कर दिया करती है ॥६५॥ वह मधु विस्फुलिङ्गों से युक्त तथा अंगारों वाला परम दारुण है। हे तात ! इसके कारण से उस अपने आश्रम में मैं स्थित नहीं रह सकता हूँ ॥६६॥ अतएव सभी लोगों के हित की कामना से आप उसको मारिए जो कि महान् शरीर वाला दारुण राक्षस है। आपके द्वारा उसके मारे जाने पर सभी लोक आज स्वस्थ हो जाँयगे ॥६७॥ हे राजन् ! आप ही एक ऐसे हैं जो उसके मार देने की शक्ति रखते हैं। हे नृप ! पूर्व युग में भगवान् विष्णु ने मुझे वरदान दिया था। जो उस महान् बलवान् और रौद्र महासुर को मार डालेगा उसके वरदान से तुम तेज को आप्यायित करोगे ॥६८-६६॥ हे पृथ्वीपाल ! धुन्धु बड़ा महान् तेज वाला है और किसी भी अल्प तेज वाले के द्वारा चिरकाल तक और सैकड़ों युगों में भी निर्दग्ध नही किया जा सकता है ॥७०॥ उसका बल वीर्य बहुत ही अधिक है जिसको देवगण भी नहीं सहन कर सकते हैं। उत्तंक महात्मा के द्वारा वह राजर्षि इस प्रकार से कहा गया था। वह धुन्धु के निबर्हण करने के कार्य में उसने अपने पुत्र कुवलाश्व को उसके सुपुर्द कर दिया था ॥७१॥

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥७२
स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे ।
जगाम पर्वतायैव नृपतिः संशितव्रतः ॥७३
कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह भो द्विजाः ।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निवर्हणे ॥७४
तमाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभुः ।
उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया ॥७५

तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्ष दिवि शब्दो महानभूत् ।
एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥७६
दिव्यंगन्धैश्च माल्यैश्च तं देवाः समवाकिरन् ।
देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुर्द्विजसत्तमा. ॥७७

बृहदश्व ने कहा—हे भगवन् ! मैं तो शस्त्रों का त्याग कर देने वाला होगया हूँ । हे द्विजश्रेष्ठ ! यह मेरा पुत्र धुन्धु के मार देने वाला होगा–इसमें कुछ भी संशय नहीं है । श्री लोमहर्षणजी ने कहा—वह राजर्षि अपने पुत्र को उस धुन्धु के मारने के कार्य के लिये आज्ञा देकर स्वयं तो सफित-प्रत सृपति पर्वत को ही चला गया था ॥७२-७३॥ हे द्विजगणो ! वह कुवलाश्व अपने सो पुत्रों के सहित उत्तंक को साथ में लेकर उस धुन्धु दैत्य के मारने के लिये वहाँ स रवान‍ा होगया था ॥७ ॥ उस समय में प्रभु भगवान् विष्णु उत्तंक के नियोग से लोकों के हित की कामना से तेज के द्वारा उसमें आविष्ट होगये थे ॥७५॥ उस दुर्द्धर्ष के प्रयाण करने पर दिवलोक में महान् शब्द हुआ था कि आज यह श्रीमान् धुन्धुमार अवध्य होगा ॥७६ । देवगण ने दिव्यग-ध और माल्यों से उस पर वृष्टि की थी । हे द्विजसत्तमो ! देव दुन्दुभियाँ उस समय में बजने लग गयी थीं ॥७७॥

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्य्यवान् ।
समुद्रं खानयामास बालुकान्तरमव्ययम् ॥७८
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुकान्तर्हितस्तदा ।
धुन्धुरासादितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥ ७९
मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्त्तयन्निव ।
वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ।८०
सोमस्य मुनिशार्दूला वरोर्म्मिकलिलो महान् ।
तस्य पुत्रशतं दग्ध त्रिभिरूनन्तु रक्षसा ॥८१
ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं त महाबलम् ।
आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनः ॥८२

तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः ।
योगी योगेन वह्निञ्च शमयामास वारिणा ॥८३
निहत्य त महाकायं बलेनोदकराक्षसम् ।
उत्ताङ्कं दर्शयामास कृतकर्म्मा नराधिपः ॥८४

वह श्रेष्ठ वीर्यवान् अपने पुत्रों के साथ वहाँ पर ,जाकर विजय प्राप्त करे । उस अव्यय बालुकान्तर समुद्र को खनन किया था ॥७८॥ उसके पुत्रों ने जब समुद्र का खनन किया तो उन्होंने उस समय में बालुका में छिपे हुए उसको प्राप्त किया था । वह धुन्धु पश्चिम दिशा में आवृत होकर वहाँ पर स्थित प्राप्त होगया था ॥७६॥ उसने क्रोध से मुख में उत्पन्न अग्नि के द्वारा लोकों को उद्वर्तित करते हुए बड़े वेग से उदय काल में समुद्र के समान जल कर स्रवण किया था ॥८०॥ हे मुनि शार्दूलो ! सोम के उदय में श्रेष्ठ ऊर्मियों से कलिल और महान् वह ओगमा था उस राक्षस ने तीन कम उसके सौ पुत्रों को दग्ध कर दिया था ॥८१॥ इसके अनन्तर उस धुन्धु के विनाश करने वाले राजा ने जो बहुत द्युतिमान् था उस महान् बलशाली राक्षस को प्राप्त किया था क्योंकि वह नृप भी महान तेजस्वी था ॥८२॥ उसके वारिमय वेग को पान करके उस नराधिप ने जो योगी था, योग के द्वारा जल से उसकी फैलाई हुई अग्नि को शान्त कर दिया ॥८३॥ कृतवर्मा नराधिप ने अपने बल से उस उदक राक्षस को जो महान् शरीर वाला था मारकर उस उत्तङ्क को दिखा दिया था ॥८४॥

उत्ताङ्कस्य वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम् ॥८५
धर्म्मे रतिश्च सततं स्वर्गे वास तथाक्षयम् ।
पुत्राणा चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥८६
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कनीयांसौ कुमारकौ ॥८७
धौन्धुमारेर्दृढाश्वस्य हर्य्यश्वश्चात्मजः स्मृतः ।
हर्य्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्र धर्म्मरतः सदा ॥८८

सहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारद. ।
अकृशाश्वकृशाश्वो तु सहताश्वसुतौ द्विजा: ॥८६
तस्य हैमवतो कन्या स ता मत्वा दृपद्वती ।
विख्याता त्रिपु लोकेपु पुत्रश्चास्या. प्रसेनजित् ॥ ०
लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरी नाम पतिव्रताम् ।
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत् ॥९१

उस महान् आत्मा वाले राजा को उत्तङ्क ने वरदान दिया था। उसको अक्षय धन दिया था और शत्रुओं के द्वारा अपराजित होने का भी वरदान दिया था ॥८५॥ धर्म मे निरन्तर रति तथा स्वर्ग में अक्षय निवास और जो उस राक्षस के द्वारा पुत्र मार डाले गये थे उनको स्वर्ग में अक्षय लोकों की प्राप्ति का वरदान दिया था ॥८६॥ अब उस राजा के उन सौ पुत्रो मे से केवल तीन ही बचे थे। उन तीनों में दृढाश्व सबसे बड़ा पुत्र था। चन्द्राश्व और कपिलाश्व ये दो छोटे कुमार थे ॥८७॥ धौन्धुमारि का जो दृढाश्व पुत्र था उसका पुत्र हर्यश्व कहा गया है। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ नाम वाला उत्पन्न हुआ था जो सदा क्षत्रियों के धर्म मे रति रखने वाला था ॥८८॥ निकुम्भ का पुत्र सहताश्व हुआ था जो रण करने की विद्या का बहुत बड़ा पण्डित था। हे द्विजो! उस सहताश्व के अकृशाश्व और कृशाश्व दो पुत्र हुए थे ॥८९॥ उसकी हैमवती नाम वाली एक कन्या थी वह उसको दृपद्वती मानता था और इसी नाम से वह तीनो लोकों में विख्यात हुई थी। उसके पुत्र का नाम प्रसेनजित् था ॥९०॥ उस प्रसेनजित् ने गौरी नाम वाली परम पतिव्रता भार्या प्राप्त की थी। वह भर्त्ता के द्वारा अभिशप्त होगई थी और बाहुदा नाम की नदी होगई थी ॥९१॥

तस्य पुत्रो महानासीद् युवनाश्वो नराधिप. ।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥९२
तस्य चैत्ररथी भार्य्या शशविन्दो. सुताभवत् ।
साध्वी विन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥९३

पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य वै ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः ।।६४
पुरुकुत्सञ्च धर्म्मज्ञं मुचुकुन्दञ्च पार्थिवम् ।
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसदस्युर्महीपतिः ।।६५
नर्म्मदायामथोत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः ।
सम्भूतस्य तु दायादस्त्रिधन्वा रिपुमर्द्दनः ।।६६
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः प्रभुः ।
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।।६७
परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्म्मतिः ।
येन भार्या कृतोद्वाहा हृता चैव परस्य ह ।।६८

उस प्रसेनजित का पुत्र युवनाश्व महान् नराधिप हुआ था । उस युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुआ था जो तीनों लोकों का विजय करने वाला बड़ा प्रतापी राजा हुआ है ।।६२।। उसकी भार्या चैत्ररथी शशबिन्दु की पुत्री हुई थी । यह बिन्दुमती नाम वाली भूलोक में रूप लावण्य में अनुपम थी और परम साध्वी थी ।।६३।। यह पतिव्रता थी और दश हजार अपने भाइयों में सबसे बड़ी थी । हे द्विजगण ! मान्धाता ने उस अपनी पत्नी के गर्भ से दो पुत्रों को उत्पन्न किया था ।।६४।। एक परम धर्मज्ञ पुरुकुत्स था और दूसरा मुचुकुन्द राजा था । इस पुरुकुत्स के पुत्र का नाम त्रसदस्यु महीपति था ।।६५।। इस त्रसदस्यु के पुत्र का नाम सम्भूत था जो नर्मदा नाम वाली रानी के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था और इस सम्भूत का सुत त्रिधन्वा था जो शत्रुओं का मर्दन करने वाला हुआ था ।।६६।। उसका पुत्र विद्वान् त्रय्यारुण प्रभु हुआ था । इसके जो कुमार हुआ था वह सत्यव्रत नाम वाला और महान् बलवान् हुआ था ।।६७ । इस सुदुर्मति ने परिग्रहण मन्त्रों का विघ्न किया था जिसने दूसरे की विवाहिता स्त्री का हरण किया था ।।६ ।।

बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसाच्चापलेन च ।
जहार कन्यां कामार्त्तः कस्यचित् पुरवासिनः ।।६६

अधर्मशङ्कुना तेन स स त्य्यारुणोऽत्यजत् ।
अपध्वमेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वित ॥१००
सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तं क्व गच्छामीति वै मुहुः ।
पिता च तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्त्तय ॥१०१
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन ।
इत्युक्त स निराक्रामन्नगराद्वचनात् पितुः ॥१०२
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ।
स तु सत्यव्रतो विप्राः श्वपाकावसथान्तिके ॥१०३
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिताप्यस्य वनं ययौ ।
ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः ॥१०४
समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्मेण वै तदा ।
दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ॥१०५

बचपन से—कामवासना से-साहस से और चंचलता से कामार्त्त होकर किसी पुरवासी की कन्या का उसने हरण किया था ॥९९॥ उस त्य्यारुण ने अधर्मशंकु उसके साथ व्यवहार छोड़कर उसका त्याग कर दिया था और क्रोध से समन्वित होकर बारम्बार उससे 'अपध्वस'—यह कहा था ॥१००॥ उसने त्यक्त पिता से कहा था—मैं कहाँ जाऊँ। तब उसके पिता ने उससे कह दिया था—श्वपाकों के साथ बरताव करो ॥१०१॥ हे कुल को दाग लगाने वाले ! अब तुम जैसे पुत्र के चाहने वाला मैं नहीं हूँ। पिता के इस वचन से वह ऐसा कहे जाने पर नगर से बाहिर निकल कर चला गया था ॥१०२॥ भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने भी उसको निवारित नहीं किया था। हे विप्रो ! वह सत्यव्रत पिता के द्वारा परित्यक्त होकर महान् वीर होते हुए भी श्वपाकों

संन्यस्य सागरास्ते तु चकार विपुलं तपः ।
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥१०६
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ।
तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः ॥१०७
महर्षिपुत्रं धर्म्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत् ॥१०८
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ।
सोऽभवद्गालवो नाम गले बन्धान्महातपाः ।
महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन वीरेण मोक्षितः ॥१०९

वह विश्वामित्र अपनी पत्नियों को वहाँ पर छोड़ कर उग्र तपश्चर्या करने में संलग्न होगये थे। उसकी पत्नी ने मध्यम अपने और सपुत्र को गले में बाँधकर एक सौ गायों में शेष के भरण-पोषण के लिए बेच दिया था। नृप के पुत्र ने उसको बेचने के लिये गले में बँधा हुआ देखकर हे द्विजगण! उस धर्मात्मा ने उस महर्षि के पुत्र को मुक्त करा दिया था। महाबाहु सत्यव्रत ने उसका भरण-पोषण किया था ॥१०६–१०८॥ विश्वामित्र की तुष्टि के लिये और अनुकम्पा करने के लिये उसने उसका भरण किया था। वह गले में बद्ध होने के कारण महान् तपस्वी गालव नाम वाला हुआ था। परम धीमान् महर्षि कौशिक ने उस वीर से उसको मुक्त करा दिया था ॥१०९॥

५—सूर्यवंश वर्णन (२)

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।
विश्वामित्रकलत्रं तु बभार विनये स्थितः ॥१
हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान्
विश्वामित्राश्रमाभ्यासे मांसं वृक्षे बबन्ध च ॥
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन् वनगते नृपे ॥२

अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्त पुरं मुनिः ।
याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्य्यरक्षत ॥४
सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास नित्यशः ॥५
पित्रा हि तं तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं प्रियं सुतम् ।
निवारयामास मुनिर्बहुना कारणेन च ॥६
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ॥७

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—सत्यव्रत ने भक्ति से-कृपा से और प्रतिज्ञा से विनय में स्थित होकर विश्वामित्रजी की कलत्र का भरण किया था ॥१॥ मृगों को-वराहों को-महिषों को और वनचरों को मार कर विश्वामित्र के आश्रम के समीप में मांस को वृक्ष में बांध दिया था ॥२॥ उपांशु व्रत में समास्थित होकर बारह वर्ष की दीक्षा लेकर उस नृप के वन में चले जाने पर पिता की आज्ञा से उसमें ही निवास किया था ॥३॥ अयोध्या-सम्पूर्ण राज्य तथा अन्तःपुर को वसिष्ठ मुनि ने याज्योपाध्याय के संयोग से परिरक्षित किया था ॥४॥ सत्यव्रत बचपन से और भावी अर्थ के बल से वसिष्ठ मुनि में नित्य ही अधिक मन्यु अर्थात् क्रोध को धारण करता था ॥५॥ उस समय में पिता के द्वारा त्यागे हुए उस प्रिय पुत्र को बहुत कारण से मुनि ने निवारण किया था ॥६॥ पाणिग्रहण मन्त्रों की निष्ठा सप्तम पद में होती है ॥७॥

न च सत्यव्रतस्तस्माद्धृतवान् सप्तमे पदे ।
जानन् धर्म्मंवसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भो द्विजाः ।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥८
गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥९
तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मनः ।
तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः ॥१०
तेन त्विदानीं विहिता दीक्षा सा दुर्वहा भुवि ।
कुलस्य निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११

न तु वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥१२
स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्बली ।
अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१३
सर्व्वकामदुघां दोग्ध्रीं स ददर्श नृपात्मजः ।
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥१४

सत्यव्रत ने इस कारण से सप्तम पद में हनन नहीं किया था । वसिष्ठमुनि धर्म्म को जानते हुए हे द्विजगण ! मेरी रक्षा नहीं करते हैं । इसी समय में सत्यव्रत ने मन से वसिष्ठ मुनि के विषय में रोष किया था ॥८॥ गुणों की बुद्धि से भगवान् वसिष्ठ ने वैसा किया था और सत्यव्रत ने उनके उस उपांशु को नहीं समझा था ॥९॥ किन्तु उसमें पिता का जो एक महान् आत्मा वाले थे बहुत ही अपरितोष हुआ था इसी कारण से बारह वर्ष तक महेन्द्र ने वर्षा नहीं की थी ॥१०॥ इसी कारण से इस समय में भूलोक में अत्यन्त दुर्वह उस दीक्षा को किया था । हे विप्रो ! यह की हुई दीक्षा कुल की निष्कृति हो जावेगी ॥११॥ भगवान् वसिष्ठ ने उसको निवारित नहीं किया था क्योंकि मुनि का ऐसा विचार था कि मैं इसके पुत्र का अभिषेक कर दूँगा ॥१२॥ उस बलवान् ने बारह वर्ष तक उस दीक्षा का वहन किया था । मांस के विद्यमान न रहने पर उस नृप के पुत्र ने महात्मा वसिष्ठ की समस्त कामनाओं को देने वाली दोग्ध्री धेनु को देखा था । हे मुनिश्रेष्ठो ! उस धेनु को क्रोध से—मोह से और श्रम के कारण से भूख से अन्वित होकर मार डाला था ॥१३-१४॥

देशधर्म्मगतो राजा जघान मुनिसत्तमाः ।
तन्मांसं स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥१५
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ॥१६
पातयेयमहं क्रूर तव शंकुमसंशयम् ।
यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः ॥१७

पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्ध्रीवधेन च ।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१८
एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः ।
त्रिशंकुरिति होवाच त्रिशकुस्तेन स स्मृत. ॥१९
विश्वामित्रस्य दाराणामनेन भरणं कृतम् ।
तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥२०
छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः ।
सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो वरः ॥२१

देश धर्म मे आने वाले उस राजा ने उस धेनु का हनन कर दिया था और उसके मास को स्वय तथा विश्वामित्र के पुत्रों को खिला दिया था । यह श्रवण करके वसिष्ठ मुनि भी इस पर अत्यन्त कुपित होगये थे ॥१५-१६॥ वसिष्ठजी ने कहा—मैं बिना किसी संशय के निश्चित रूप से तेरे इस शकु को गिरा देता यदि पुनः कृत मे तेरे ये दो शकु न होते ॥१७॥ पिताजी के अपरितोष से और गुरु की दोग्ध्री का वध कर डालने से तथा आप्रोक्षितोप के योग से तेरा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है ॥१८॥ इस प्रकार से उस महान् तपस्वी ने इसके उन तीन शङ्कुओं को देख कर उससे त्रिशकु—इस नाम से कहा था । इस कारण से वह त्रिशंकु ही कहा गया है ॥१९॥ इसने विश्वामित्र की दाराओं का भरण किया है इस कारण से मुनि ने प्रसन्न होकर उस त्रिशकु के लिये वरदान प्रदान किया था ॥२०॥ जब उससे वरदान की याचना करने की आज्ञा दी तो उन नृपात्मज ने यही वरदान माँगा था कि मैं इसी शरीर को लेकर स्वर्गलोक में गमन करूँ । २१॥

अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ।
पित्र्ये राज्येऽभिषिच्याथ याजयामास पार्थिवम् ॥२२
मिषता देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ।
दिवमारोपयामास सशरीरं महातपाः ॥२३
तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कैकेयवंशजा ।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४

स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः।
आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राड़िति ह विश्रुतः ॥२५
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिवः।
हरितो रोहितस्याथ चक्षुर्हारित उच्यते ॥२६
विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चक्ष पुत्रो बभूव ह।
जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृतः ॥२७
रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्म्मार्थकोविदः।
रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान् ॥२८

उस बारह वर्ष के अनावृष्टि के भय के व्यतीत हो जाने पर पिता के राज्य पर अभिषेक करके उस पार्थिव को यजन कराया था ॥२२॥ महा तपस्वी कौशिक ने सब देवताओं के और वशिष्ठ मुनि के देखते हुए उसको शरीर के सहित दिवलोक में आरोपित कर दिया था ॥२३॥ उनकी सत्यरथा नाम वाली कैकेय के वंश में समुत्पन्न पत्नी थी जिसने कल्मष रहित हरिश्चन्द्र नाम वाले कुमार को जन्म दिया था जो राजसूय यज्ञ का आहर्त्ता था और सम्राट्—इस नाम से लोक में विश्रुत हुआ था ॥२४-२५॥ उस सम्राट् हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित नाम वाला राजा हुआ था। रोहित का दायाद हरि तथा जो चक्षुर्हारित कहा जाया करता है ॥२६॥ हे मुनिगणो! उस चक्षु के पुत्र का नाम विजय था। यह सम्पूर्ण पृथ्वी का जीतने वाला था अतएव "विजय"—इस नाम से कहा गया है ॥२७॥ उसका पुत्र रुरुक हुआ था जो कि राजा धर्म और अर्थ का महान् पण्डित था। रुरुक के पुत्र का नाम वृक था। तथा वृक के वीर्य से बाहु नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥२८॥

हैहयास्तालजंघाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम्।
तत्पत्नी गर्भमादाय ऊर्व्वस्याश्रममाविशत् ॥२९
नात्यर्थं धार्म्मिकश्चैव स हि धर्म्मयुगेऽभवत्।
सगरस्तु सुतो बाहोर्यज्ञे सह गरेण वै ॥३०
ऊर्व्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः।
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृपः ॥३१

जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ।
शकाना पह्लवानां च धर्मं निरसदच्युतः ।
क्षत्रियाणा मुनिश्रेष्ठाः पारदानां च धर्मवित् ॥३२
कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः ।
किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ॥३३
धर्मान्कुलोचितान् राजा क्रुद्धो निरसदच्युतः ।
एतन्नः सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥३४

हैहय और तालजंघो ने उस राजा को निरस्त कर दिया था। उसकी पत्नी जो थी वह गर्भ लेकर ऊर्व के आश्रम मे प्रवेश कर गयी थी ॥२६॥ वह उस धर्म के युग मे भी अत्यधिक धार्मिक नहीं हुआ था। बाहु का पुत्र सगर था जो यज्ञ मे गर के साथ समुत्पन्न हुआ था ॥३०॥ ऊर्व के आश्रम को प्राप्त कर वह भार्गव के द्वारा अभिरक्षित हुआ था। उस सगर नृप ने भार्गव से आग्नेय अस्त्र की उपलब्धि की थी ॥३१॥ फिर उस सगर ने तालजघों हैहयों के सहित मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया था। उस धर्म के वेत्ता ने, हे मुनिगणो ! शकों का—पह्लवानों का और पारद क्षत्रियों का धर्म निरस्त कर दिया था ॥३२॥ मुनिगण ने कहा—वह सगर परम अच्युत गर के साथ किस प्रकार से समुत्पन्न हुआ था ? और क्या कारण था कि उस राजा ने क्रुद्ध होकर महान् ओजस्वी शकादि क्षत्रियों को, जो धर्मानुकूल उचित थे निरस्त कर दिया था ? हे महामते ! यह समस्त हाल कृपा करके विस्तार के साथ हमारे सामने वर्णन करने की उदारता करिए ॥३३-३४॥

बाहोर्व्यसनिनः पूर्वं हृतं राज्यमभूत् किल ।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं द्विजोत्तमाः ॥३५
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा ।
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमम् ॥३६
हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी तत्र प्राणानवासृजत् ॥३७

पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वं किलानघाः ॥३८
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वने तामभ्यरोहत ।
ऊर्वस्तां भार्गवो विप्रः कारुण्यात् समवारयत् ॥३९
तस्याश्रमे च गर्भः स गरेणैव सहाच्युतः ।
व्यजायत महाबाहुः सगरो नाम पार्थिवः ॥४०
ऊर्वस्तु जातकर्मादींस्तस्य कृत्वा महात्मनः ।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥४१
आग्नेयं तु महाभागो अमरैरपि दुःसहम् ।
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः ॥४२

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—हे द्विजगणो ! यह बाहु राजा पहिले बहुत ही व्यसन शील था । इसी लिये शकों के साथ हैहय और तालजंघों ने इसका राज्य छीन लिया था ॥३५॥ यवन-पारद-काम्बोज-पह्लव ये भी पाँच गण थे जो हैहयों के लिये अपना पराक्रम दिखाया करते थे ॥३६॥ जब राज्य छीन लिया गया था तो वह बाहु राजा वन में चला गया था । उसकी पत्नी उसके पीछे गयी थी किन्तु वह राज्य के हरण होने के कारण अत्यन्त दुःखित होगया था और वहीं पर उसने प्राणों को त्याग दिया था ॥३७॥ उसकी यादवी पत्नी गर्भवती थी और अपने पति के साथ ही पीछे से गयी थी । हे अनघो ! उसकी सपत्नी ने पहिले ही उसको गर (विष) दे दिया था ॥३८॥ अपने स्वामी के मर जाने पर उसने चिता बनाकर वन में वह भी उस चिता पर सती होने के लिये प्रस्तुत होरही थी । उसी समय में भार्गव ऊर्व ने दया करके उसे सती होने से रोक दिया था ॥३९॥ फिर वह वहीं पर आश्रम में निवास करने लग गई थी । वहीं पर वह अच्युत गर्भ गर के साथ उत्पन्न हुआ महाबाहु राजा सगर था ॥४०॥ ऊर्व मुनि ने ही उसके जात कर्म आदि समस्त संस्कार कराये थे और उस महान् आत्मा वाले को वेद शास्त्र सब पढ़ाकर इसके पश्चात् उसे अस्त्र दिया था ॥४१॥ जो आग्नेय अस्त्र उस सगर राजा को दिया वह इतना उग्र था

कि देवगणभी उसे सहन नहीं कर सकते थे वह सगर उसी अस्त्र के बल से और अपने बल विक्रम से युद्ध मे समन्वित होकर गया था ॥४२॥

हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।
आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमता वरः ॥४३
ततः शकाश्च यवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा ।
पह्नवाश्चैव निःशेषान् कर्त्तुं व्यवसितो नृपः ॥४४
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥४५
वसिष्ठस्त्वथतान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।
सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा ॥४६
सगरः स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ।
धर्मं जघान तेषां वै वेशानन्यांश्चकार ह ॥४७
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥४८
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्नवाः श्मश्रुधारिणः ।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥४९

कीर्त्तिमानों में परम श्रेष्ठ उस सगर राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे कुपित रुद्र पशुओं का हनन किया करते हैं उसी भाँति समस्त हैहयों का हनन कर दिया था और लोकों में परम कीर्त्ति को प्राप्त किया ॥४३॥ इसके अनन्तर उस नृप ने समस्त शक-यवन-काम्बोज-पारद और पह्नवों को निःशेष करने का निश्चय कर लिया था ॥४४॥ महात्मा वीर सगर के द्वारा वध्यमान होकर सबके सब महामनीषी वसिष्ठ ऋषि की शरण में जाकर प्रणिपात करने लगे थे ॥४५॥ महान् द्युति सम्पन्न वसिष्ठ मुनि ने उन सबको शरण में समागत देखकर समय (समझौता) के द्वारा उन सबको अभय दान देकर सगर को मारने से रोक दिया था ॥४६॥ राजा सगर ने अपनी की हुई प्रतिज्ञा और गुरुदेव वसिष्ठ जी के वचनों का श्रवण कर उनका हनन तो नहीं किया किन्तु उनके धर्म को नष्ट कर दिया तथा अन्य वेष वाले उनको कर

दिया था ।।४७।। अर्ध शकों का शिर मुंडवा कर उनको छोड़ दिया था। यवनों का तथा काम्बोजों का पूरा माथा मुंडवा कर छोड़ दिया था। पारद मुक्त केशों वाले और पह्लव श्मश्रुधारी बना दिये थे। स्वाध्याय और वषट्कार से रहित उस महात्मा ने उन सबको कर दिया था ।।४८।।

शका यवनकाम्बोजा. पारदाश्च द्विजोत्तमाः ।
कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वाश्चोलाः सकेरलाः ।।५०
सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्म्मस्तेषां निराकृतः ।
वसिष्ठवचनाद्राज्ञा सगरेण महात्मना ।।५१
स धर्म्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम् ।
अश्वं प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ।।५२
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे ।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ।।५३
स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः ।
आसेदुस्तु तदा तत्र खन्यमाने महार्णवे ।।५४
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् ।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषं तदा ।।५५
तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यता ।
।. सर्व्वे मुनिश्रेष्ठ अन्वारस्त्ववशेषिताः ।।५६

कि देवगणभी उसे सहन नहीं कर सकते थे वह सगर उसी अस्त्र के बल से और अपने बल विक्रम से युद्ध में समन्वित होकर गया था ।।४२।

हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।
आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमतां वरः ।।४३
ततः शकाश्च यवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा ।
पह्लवाश्चैव निःशेषान् कर्त्तुं व्यवसितो नृपः ।।४४
ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ।।४५
वसिष्ठस्त्वथतान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।
सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा ।।४६
सगरः स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ।
धर्मं जघान तेषां वै वेशानन्यांश्चकार ह ।।४७
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।
यवनानां शिरः सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च ।।४८
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवा श्मश्रुधारिणः ।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ।।४९

कीर्त्तिमानों में परम श्रेष्ठ उस सगर राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे कुपित रुद्र पशुओं का हनन किया करते हैं उसी भाँति समस्त हैहयों का हनन कर दिया था और लोकों में परम कीर्त्ति को प्राप्त किया ।।४३।। इसके अनन्तर उस नृप ने समस्त शक-यवन-काम्बोज-पारद और पह्लवों को निःशेष करने का निश्चय कर लिया था ।।४४।। महात्मा वीर सगर के द्वारा वध्यमान होकर सबके सब महामनीषी वसिष्ठ ऋषि की शरण में जाकर प्रणिपात करने लगे थे ।।४५।। महान् द्युति सम्पन्न वसिष्ठ मुनि ने उन सबको शरण में समागत देखकर समय (समझौता) के द्वारा उन सबको अभय दान देकर सगर को मारने से रोक दिया था ।।४६।। राजा सगर ने अपनी की हुई प्रतिज्ञा और गुरुदेव वशिष्ठ जी के वचनों का श्रवण कर उनका हनन तो नहीं किया किन्तु उनके धर्म को नष्ट कर दिया तथा अन्य वेश वाले उनको कर

दिया था ॥४७॥ अर्द्ध शकों का शिर मुंडवा कर उनको छोड़ दिया था। यवनों का तथा काम्बोजों का पूरा माथा मुंडवा कर छोड़ दिया था। पारद युक्त केशों वाले और पह्लव श्मश्रु धारी बना दिये थे। स्वाध्याय और वषट्कार से रहित उस महात्मा ने उन सबको कर दिया था ॥४६॥

शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः ।
कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वाश्चोलाः सकेरलाः ॥५०
सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्म्मस्तेषां निराकृतः ।
वसिष्ठवचनाद्राजा सगरेण महात्मना ॥५१
स धर्म्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम् ।
अश्वं प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥५२
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे ।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥५३
स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः ।
आसेदुस्तु तदा तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥५४
तमादिपुरुषं देव हरिं कृष्णं प्रजापतिम् ।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषं तदा ॥५५
तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यता ।
दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठ ञ्चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥५६

शक-यवन-काम्बोज-पारद-कोणिसर्प-माहिषिक-दर्व्व-चोल-केरल ये हे विप्रो ! क्षत्रिय ही रहे, केवल इनका धर्म निराकृत कर दिया गया था और क्यों कि ये सभी अपने प्राणों की रक्षा के लिये वसिष्ठजी की शरण में चले गये थे अतएव श्रीगुरुदेव के वचनों से महात्मा सगर ने इनको फिर मारा नहीं था केवल इनके धर्म को परिवर्तित कराकर क्षत्रिय ही बना रहने दिया था ॥५०-५१॥ वह सगर धर्म का विजयी राजा हुआ था और उसने इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को जीत कर अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षित होकर उस यज्ञ के अश्व को वाजिमेध के सम्पूर्ण होने के लिये समस्त भूमि पर प्रचारित किया था ॥५२॥ चरण कराने वाले

के वह अश्वमेध का अश्व पूर्व दक्षिण समुद्र में वेला के समीप में अपहृत हुआ भूमि में प्रवेशित कर दिया गया था ॥५३॥ उस समय में उसके पुत्रों के द्वारा उस राजा ने उस देश को खुदवाया था। उस समय में उस महार्णव खनन किये जाने पर वहाँ पर उन सगर के पुत्रों ने देखा था कि वहाँ पर आदिपुरुष प्रजापति कृष्ण हरि देव विष्णु कपिल मुनि के स्वरूप में शयन कर रहे थे ॥५४-५५॥ जब जाग्रत हुए तो उनके चक्षुओं से निकले हुए तेज से हे मुनिगण ! वे सब सगर के पुत्र दग्ध होकर राख के ढेरी हो गये थे केवल चार अवशिष्ट रहे थे ॥५६॥

बर्हिकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्म्मरथो नृपः ।
शूरः पञ्चनदश्चैव तस्य वंशकराः नृपाः ॥५७
प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् ।
अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्ति चाप्यनिवर्तिनीम् ॥५८
पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ।
समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे तं महीपतिम् ॥५९
सागरत्व च लेभे स कर्म्मणा तेन तस्य ह ।
तञ्चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् ॥६०
आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहातपाः ।
पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम् ॥६१
सगरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महाबलाः ।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा. विधिना केन सत्तम ॥६२

बर्हिकेतु-सुकेतु-धर्मरथ नृप-शूर और पञ्चनद ये ही नृप उसके वंश के करने वाले शेष बचे थे ॥५७॥ भगवान् हरि नारायण ने उसको वरदान दिया था कि राजा इक्ष्वाकु का वंश क्षय रहित होगा और कभी निवृत्त न होने वाली कीर्ति लोक में रहेगी ॥५८॥ विभु ने पुत्र समुद्र को तथा अक्षय स्वर्गलोक का निवास प्रदान किया था। समुद्र ने अर्घ्य लेकर उस महीपति की वन्दना की थी ॥५९॥ उसने उसके उस कर्म से सागरत्व को प्राप्त किया और वह तू उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व को समुद्र से प्राप्त करने वाला हुआ था ॥६०॥ उस सुन्दर महान् तप

के करने वाले ने एक सौ अश्वमेध यज्ञों का यजन किया था। उसके साठ हजार पुत्र थे—ऐसा हमने सुना है ॥६१॥ मुनिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम! उस राजा सगर के किस विधि से महान् बलशाली परम वीर और विक्रान्त साठ हजार पुत्र समुत्पन्न हुए थे? ॥६२॥

हे भार्य्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्विषे ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥६३
कनीयसी तु महती पत्नी परमधर्म्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४
ऊर्व्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तद्बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः ।
षष्टि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी ॥६५
एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयिष्यति ।
तत्रैका जगृहे पुत्रान् षष्टिसाहस्रसम्मितान् ॥६६
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह ततो मुनिः ।
राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युतिः ॥६७
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ।
तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ॥६८
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः ॥६९
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः ।
ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथाक्रमम् ॥७०

श्रीलोमहर्षण मुनि ने कहा—उस राजा सगर के दो भार्यायें थीं जो तपश्चर्या के द्वारा किल्विषों को दग्ध कर देने वाली थीं। जो सबसे बड़ी रानी थी वह विदर्भ की पुत्री थी और उसका नाम केशिनी था ॥६३॥ छोटी रानी जो थी वह भी परम धर्म वाली पत्नी थी। वह अरिष्टनेमि की पुत्री थी और भूमण्डल में अपने रूप लावण्य में अनुपम था ॥६४॥ हे द्विजोत्तमो! ऊर्व ने उन दोनों को वरदान प्रदान किया। उसका अब आप लोग श्रवण करो। उन दोनों में एक नितम्बिनी साठ हजार पुत्रों को ग्रहण करे ॥६५॥ और उनमें केवल एक वंश चलाने वाला पुत्र प्राप्त करेगी। जो भी इन दोनों वरों में से

जिसको भी चाहे अपनी इच्छानुसार ग्रहण कर लेवे। उनमें से एक ने तो साठ हजार पुत्रों का प्राप्त करना ही वर प्राप्त कर लिया। और एक ने केवल एक वंशधर पुत्र की प्राप्ति का वरदान प्राप्त किया। तब मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा। वह महती श्रुति वाला पञ्चजन नाम वाला राजा हुआ ॥६६-६७॥ दूसरी पत्नी ने एक बीजों से भरी हुई तुम्बी का प्रसव किया—ऐसा ही सुना जाता है। उसमें तिलों के समान साठ सहस्र गर्भ थे थे ॥६८॥ फिर यह किया गया कि घृत से भरे हुए कलशों में उन गर्भों को डाल दिया गया। राजा ने एक-एक गर्भ के लिये एक-एक धाय पोषण कार्य के लिये दे दी थीं। इसके पश्चात् दश मासों में वे यथा क्रम समुत्थित हो गये थे ॥६९-७०॥

कुमारास्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्द्धना ।
षष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजा. ॥७१
गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि पृथिवीपत. ।
तेषा नारायण तेजः प्रविष्टाना महात्मनाम् ॥७२
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ।
शूर. पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्य्यवान् ॥७३
दिलीपस्तस्य तनय. खट्वाङ्ग इति विश्रुत ।
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् । ७४
त्रयोऽभिसन्धिता लोका बुद्धया सत्येन चानधा. ।
दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः ॥७५
यः स गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः ।
समुद्रमानयच्चैना दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत् ॥७६
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशचिन्तक. ।
भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः ॥७७

वे समस्त कुमार काल के अनुसार महाराज सगर की प्रीति को वर्धित करने वाले हो गये थे। हे द्विजगण ! इस प्रकार से साठ हजार उस राजा के पुत्र हुए थे ॥७१॥ उस राजा के गर्भ दलाबु मध्य से वे सब पुत्र समुत्पन्न हुए थे। वे सब महात्मा नारायण के तेज में प्रविष्ट

हुए थे ॥७२॥ एक जो पञ्चजन नाम वाला पुत्र दूसरी पत्नी के हुआ वह राजा हुआ। उस पञ्चजन का महान् वीर्य वाला शूर अंशुमान् पुत्र हुआ। उसका पुत्र दिलीप था जो खट्वाङ्ग इस नाम से लोक में विश्रुत हुआ था जिसने स्वर्ग से यहाँ आकर एक मुहूर्त मात्र (दो घड़ी का समय) जीवित प्राप्त किया ॥७३-७४॥ इसने हे अनघो! अपनी बुद्धि से और सत्य से तीनों लोकों को अभिसन्धित कर लिया। दिलीप का पुत्र महाराज भगीरथ हुए थे ॥७५॥ जिन प्रभु ने सरिताओं में परम श्रेष्ठ गंगा का अवतारण किया था और इसको समुद्र में ले आये थे तथा दुहितृत्व में कल्पित कर दिया ॥७६॥ इसी कारण से वंश के चिन्तन करने वालों के द्वारा यह भागीरथी गङ्गा कही जाया करती हैं। उन महाराज भगीरथ का पुत्र श्रुत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥७७॥

नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमधार्मिकः।
अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत् ॥७८
अयुताजित्तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्य्यवान्।
अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः ॥७९
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली।
ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्त्तपर्णिर्महायशाः ॥८०
सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत्।
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥८१
ख्यातः कल्माषपादो वै राजा मित्रसहोऽभवत्।
कल्माषपादस्य सुतः सर्व्वकर्म्मेति विश्रुतः ॥८२
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सर्व्वकर्म्मणः।
अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नोतो द्वौ बभूवतुः ॥८३
अनिमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ।
अनमित्रसुतो राजा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत् ॥८४

श्रुत का पुत्र नाभाग हुआ जो परम धर्मात्मा था। नाभाग का पुत्र राजा अम्बरीष हुआ और यह अम्बरीष सिन्धुद्वीप नामक पुत्र के पिता थे ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र बड़ा ही वीर्य वाला अयुताजित्

हुआ। इस अयुताजित् के पुत्र का नाम ऋतुपर्ण था जो महान् यशस्वी हुआ ॥७६॥ यह दिव्य अक्षो (पासों) के हृदय का ज्ञाता था तथा बली बलो और राजा नल का सखा हुआ। इस ऋतुपर्ण का पुत्र बहुत अधिक यश वाला आर्त्तपर्णि हुआ ॥८०॥ इसका पुत्र राजा सुदास समुत्पन्न हुआ जो कि देवराज इन्द्र का सखा था। इस सुदास का सुत सौदास नाम वाला राजा हुआ ॥८१॥ कल्माष पाद के नाम से विख्यात वह राजा मित्रसह हुआ। उस कल्माषपाद का सुत सर्व कर्मा-इस नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८२॥ सर्वकर्मा का आत्मज अनरण्य हुआ। अनरण्य का पुत्र निघ्न नाम वाला उत्पन्न हुआ। उस निघ्न के दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥८३॥ ये दोनो पार्थिवों मे परम श्रेष्ठ अनमित्र और रघु नाम वाले थे। अनमित्र का सुत परम विद्वान् राजा दुलिनिह हुआ ॥८४॥

दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः ।
दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८५
अयोध्याया महाराजो यः पुरासीन्महाबलः ।
अजस्तु राघवो जज्ञे तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८६
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशाः ।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिसंज्ञितः ॥८७
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशाः :
अतिथेस्त्वभवत्पुत्रो निषधो नाम वीर्य्यवान् ॥८८
निषधस्य नल पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु ।
नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥८९
क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान् ।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मज प्रभु ॥९०
अहीनगोस्तु दायाद. सुधन्वा नाम पार्थिवः ।
सुधन्वन. सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥९१

उस दुलिलिह का पुत्र राजा दिलीप उत्पन्न हुआ जो श्रीराम का पितामह (बाबा) था। राजा दिलीप का सुत दीर्घ बाहुओं वाला रघु

उत्पन्न हुआ ॥८५॥ जो अयोध्यापुरी में महान् बलवान् पहिले महाराज हुए थे। महाराज प्रतापी रघु के सुत का नाम अज था और उस अज के वीर्य से महाराज दशरथ की उत्पत्ति हुई ॥८६॥ श्रीराम ने दशरथ से जन्म ग्रहण किया जो परम धर्मात्मा और महान् यशस्वी हुए थे। श्रीराम के पुत्र का नाम कुश हुआ ॥८७॥ श्रीरामचन्द्र के सुत कुश से अतिथि नाम वाले पुत्र की समुत्पत्ति हुई। यह अतिथि बहुत ही धर्मात्मा और बहुत अधिक यश वाले हुए थे। इस अतिथि के वीर्य से निषध नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। यह निषध महान् बल-विक्रम वाला राजा हुआ ॥८८॥ निषध से नल नामक पुत्र ने जन्म लिया और नल का पुत्र नभ हुआ। नभ के पुण्डरीक सुत ने जन्म लिया तथा पुण्डरीक के क्षेमधन्वा सुत उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमधन्वा का पुत्र देवानीक था जो बहुत ही प्रताप वाला था। इस देवानीक से अहीनगु नामक पुत्र ने जन्मग्रहण किया। अहीनगु का दायाद (पुत्र) सुधन्वा नाम वाला राजा हुआ। सुधन्वा के वीर्य से शल नाम धारी पुत्र ने प्रसव प्राप्त किया ॥९०-९१॥

उक्थो नाम स धर्म्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह ।
वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे मुनिसत्तमाः ।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥९३
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः ।
एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥९४
पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ।
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५

उक्थ नाम वाला परम धार्मिक राजा शल का सुत समुत्पन्न हुआ। इसका पुत्र वज्रनाभ और उस महात्मा वज्रनाभ का सुत नल हुआ ॥९२॥ हे मुनिश्रेष्ठो! पुराण में दो ही नल विख्यात हुए हैं। राजा वीरसेन का पुत्र जो इक्ष्वाकु के कुल का उद्वहन करने वाला था ॥९३॥

यहाँ पर प्रधान रूप से उन्हीं नृपों का वर्णन किया गया है जो इक्ष्वाकु के वंश में समुत्पन्न हुए हैं। ये विवस्वान् के वंश में बहुत अधिक तेज वाले नृप हुए हैं ॥६४॥ जो इस विवस्वान् आदित्य की सृष्टि को और प्रजाओं को पुष्टि के देने वाले श्राद्ध देव की सृष्टि को पढ़ता है वह प्रजावान् और विवस्वान् आदित्य के सायुज्य को प्राप्त होता है ॥६५॥

९—सोमोत्पत्ति वर्णन

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषि ।
ब्रह्मणो मानसात्पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥१
अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं हि तत्पुरा ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥२
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य रेतः सोमत्वमीयिवान् ।
नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयन् दिशः ॥३
तं गर्भं विधिनादिष्टो दश देव्यो दधुस्ततः ।
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥४
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः ।
ततस्ताभिः स त्यक्तस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५
पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥६
तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि ।
तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रास्तथान्ये मुनिसत्तमाः ॥७

श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे विप्रो ! प्रजा के सर्ग के करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी के मन से पूर्व में भगवान् अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए थे ॥१॥ जिसने पहिले समय अनुत्तर नाम वाला तप तीन हजार दिव्य वर्ष तक तपा था ऐसा हमने सुना है ॥२॥ उनका रेतस् ऊर्ध्व भाग में आक्रान्त हो गया और वह सोमत्व को प्राप्त हो गया। दशों दिशाओं

को द्योतित करता हुआ उनके नेत्रों से जल का स्रवण हुआ ।।३।। विधि ने उस गर्भ को आज्ञा दी थी और फिर दश देवियाँ दी थी । उनने एकत्रित होकर धारण किया किन्तु वे समर्थ नहीं हुई थीं ।।४।। जब वे दशो दिशाऐं उस गर्भ को धारण करने में समर्थ न हुई थीं तो इसके अनन्तर उन्होने उसका परित्याग कर दिया और वह वसुन्धरा पर गिर गया ।।५।। लोकों के पितामह श्रीब्रह्माजी ने सोम को गिरता हुआ देखा तो उन्होंने लोकों के हित की कामना से उसको एक रथपर समारोपित कर दिया ।।६।। देवगणों ने अत्रि के पुत्र परमात्मा के निपतित हो जाने पर तब ब्रह्माजी के पुत्र तथा अन्यों ने हे मुनिश्रेष्ठो ! स्तवन किया ।।७ ।

तस्य सस्तूयमानस्य तेज. सोमस्य भास्वतः ।
आप्यायनाय लोकाना भावयामास सर्व्वतः ।।८
स तेन रथमुख्येन सागरान्ता वसुन्धराम् ।
त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ।।९
तस्य यच्चरितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत ।
ओषध्यस्ताः समुद्भूता याभिः सन्धार्यते जगत् ।।१०
स लब्धतेजा भगवान् संस्तवैश्च स्वकर्म्मभिः ।
तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दर्शनाय सः ।।११
ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदावरः ।
बीजौषधीनां विप्राणामपां च मुनिसत्तमाः ।।१२
स तत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सौम्यवतांवरः ।
समाजह्रे राजसूय सहस्रशतदक्षिणम् ।।१३
दक्षिणामददात् सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम् ।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भो द्विजाः ।।१४

उस भली भाँति संस्तुत और भासमान सोम का तेज लोकों को आप्यायित करने के लिये सभी ओर भावित हुआ ।।८।। उस सोम ने अपने प्रमुख रथ के द्वारा सागर की समाप्ति पर्य्यन्त सम्पूर्ण वसुन्धरा का अत्यधिक यश वाले ने इक्कीस बार भूमि की प्रदक्षिणा की ।।९।।

उसका जो तेज इस पृथ्वी पर आया और चारो ओर भ्रमण किया तो उससे वे समस्त ओषधियाँ समुत्पन्न हुई थी जिनके द्वारा यह जगत् सधारण किया जाता है ॥१०॥ उस तेज को प्राप्त कर लेने वाले भगवान् ने संस्तवों तथा स्वकर्मों के द्वारा महाभाग उसने पद्मो के दर्शन के लिये तपश्चर्या की थी ॥११॥ हे मुनिगणो ! इसके अनन्तर श्रीब्रह्मा जी ने जो वेदो के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ थे फिर उस सोमदेव को बीजौषधियों का—विप्रो का और जलो का राज्य प्रदान कर दिया ॥१२॥ सौम्यता रखने वालो मे परमोत्तम उस सोम ने उस महान् राज्य को प्राप्त करके सहस्रशत दक्षिणा वाले राजसूय यज्ञ का यजन किया ॥१३॥ उस यज्ञ में हमने ऐसा ही सुना है कि सोम ने तीनों लोकों को दक्षिणा में दे दिया। हे द्विजगणो ! वह दक्षिणा उन्ही ब्रह्मर्षियों मे प्रमुखों और सदस्यों को दी गयी ॥१४॥

हिरण्यगर्भो ब्रह्मात्रिर्भृगुश्च ऋत्विजोऽभवत् ।
सदस्योऽभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्वृतः ॥१५
त सिनीश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिःप्रभा वसुः ।
कीर्त्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ॥१६
प्राप्यावभृथमव्यग्र सर्वदेवर्षिपूजितः ।
विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥१७
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्य्यमृषिसत्कृतम् ।
विबभ्राम मतिस्तातविनयादनयाहृता ॥ ८
बृहस्पतेः स वै भार्य्यामैश्वर्य्यमदमोहितः ।
जहार तरसा सोमो विमत्याङ्गिरसः सुतम् ॥१९
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिर्मुहुः ।
नैव व्यसर्ज्जयत्तारा तस्मा आङ्गिरसे तदा ॥२०
उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसस्तथा ।
रुद्रश्च पार्ष्णि जग्राह गृहीत्वाजगव धनुः ॥२१

उस सोमदेव के द्वारा किये हुए राजसूय यज्ञ में हिरण्य गर्भ ब्रह्मा-अत्रि और भृगु ऋत्विज हुए थे और उसमें सदस्य बहुत-से मुनियों के मण्डल

से युक्त श्रीहरि हुए थे ॥१५॥ उसका सेवन सिनी–कुहू–द्युति पुष्टि-प्रभा-वसु-कीर्ति-धृति-और लक्ष्मी नौ देवियों ने किया ॥१६॥ समस्त देवर्षियों के द्वारा पूजित वह अधिराजेन्द्र अत्युत्तम अवभृथ को प्राप्त कर दश प्रकार से दिशाओं को भासित करता हुआ शोभित हुए थे ॥१७॥ ऋषियों के द्वारा सत्कृत–दुष्प्राप्य उस ऐश्वर्य को प्राप्त करके अविनय से आहृत उसकी मति हे तात ! विभ्रमित हो गई थी ॥१८॥ उस ऐश्वर्य के मद से मोहित होते हुए उसने अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति का अपमान करके सोमदेव ने वेग के साथ बृहस्पति की भार्या का हरण कर लिया ॥१९॥ उस समय में सब देवगणों ने और देवर्षियों ने उस सोम से बारम्बार याचना भी की थी तो भी उस समय में उस सोम ने बृहस्पति को पत्नी तारा को उसके लिये नहीं दिया था ॥२०॥ उशना (शुक्राचार्य) ने उस अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति की पार्ष्णि का ग्रहण किया था अर्थात् बृहस्पति की सहायता की थी तथा रुद्रदेव ने भी अपना अजगव धनुष ग्रहण करके बृहस्पति की सहायता की थी ॥२१॥

तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना ।
उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषा नाशितं यशः ॥२२
तत्र तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम् ।
देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥२३
तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुषिताश्चैव ये द्विजाः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥२४
तदा निवार्य्योशनसं तं वै रुद्रञ्च शङ्करम् ।
ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥२५
तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः ।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्य्यः कथञ्चन ॥२६
इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा चोत्ससर्ज्ज ह ।
जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥२७
ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः ।
सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ॥२८

उस महात्मा ने भी ब्रह्मशिर नाम वाला परमास्त्र को देवों का उद्देश्य करके छोड़ दिया जिससे उसका यश नष्ट हो गया ॥२२॥ वहाँ पर बड़ा युद्ध हुआ था जो तारकामय युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हो गया यह ऐसा भयानक युद्ध हुआ जो देवों और दानवों का लोकों का क्षय करने वाला बहुत बड़ा था ॥२३॥ वहाँ पर जो परम शिष्ट देवगण थे तथा तुषित द्विजगण थे वे सब आदि देव सनातन ब्रह्माजी की शरण में प्राप्त हो गये थे ॥२४॥ उस समय में पितामह ने स्वयं वहाँ उपस्थित होकर उशना को तथा शङ्कर भगवान् रुद्र को निवारित किया और उस तारा बृहस्पति की पत्नी को उनको देदिया ॥२५॥ उस अपनी पत्नी तारा को गर्भिणी देखकर बृहस्पतिजी को बहुत अधिक क्रोध आया और उन्होंने कहा—मेरी योनि में तुमको किसी भी प्रकार से गर्भ नहीं धारण करना चाहिए था ॥२६॥ उसने फिर इषीका स्तम्ब पर आकर अपने उस गर्भ का उत्सर्ग कर दिया। वह उत्पन्न होते ही भगवान् ने अपने वपु को देवों के मध्य में आक्षिप्त किया था ॥२७॥ उस समय में बहुत अधिक संशय को प्राप्त हुए देवों ने उसी समय में सुरोत्तमों ने उस तारा से पूछा था—तू यह सत्य बात हमको बतला दे कि यह गर्भ किसका है सोमदेव का वीर्य से हुआ है अथवा बृहस्पति का है ॥२८॥

पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल ।
तदा तां शप्तुमारब्धा कुमारो दस्युहन्तमः । २९
तं निवार्य्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम् ।
यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ।.३०
उवाच प्राञ्जलिः सा तसोमस्येति पितामहम् ।
तदा तं मूर्ध्निचाघ्राय सोमो राजा सुतंप्रति ॥३१
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः ।
प्रतिकूलश्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुध. ॥३२
उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिकाम् ।
तस्यापत्यं महातेजा बभूवैलः पुरूरवाः ॥३३

उर्व्वश्या जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः।
एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्त्तितं कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३४

वंशमस्य मुनिश्रेष्ठाः कीर्त्यमानं निबोधत।
धन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम्॥
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३५

इस प्रकार से जब वह तारा देवों के द्वारा बहुत पूछी भी गयी तो भी उसने देवों को यह नहीं बताया कि यह गर्भ सोम का था। उस समय में दस्युओं के हनन करने वाले कुमार उसको शाप देने के लिये उद्यत हो गये थे। उसी समय में उनको ब्रह्माजी ने रोक दिया और स्वयं उन्होंने उस तारा से उस संशय के बाबत पूछा था—हे तारा! इस वैषय में जो भी कुछ सत्य बात हो वही तू बतलादे कि यह पुत्र तेरे गर्भ में किसका आया था ॥२९-३०॥ उस समय में वह तारा हाथ जोड़कर पितामह से बोली कि यह गर्भ सोमदेव के वीर्य से ही मेरे उदर में हुआ। उसी समय में राजा सोम ने उस सुत के मस्तक का घ्राण किया ॥३१॥ फिर सोमदेव ने उसका नाम बुध रख दिया क्योंकि वह बालक बहुत बुद्धिमान् था। बुध गगन में प्रतिकूल समुत्थित हुआ करता है ॥३२॥ उस समय में उसने पुत्र और राज पुत्रिका को उत्पन्न किया था। उसकी सन्तति महान् तेजस्वी पुरूरवा ऐल हुआ था ॥३३॥ जिस महात्मा के उर्वशी में सात पुत्र समुत्पन्न हुए थे। यह सोमदेव की उत्पत्ति का वर्णन हमने आपको सुना दिया है जो कीर्त्ति को बढ़ाने वाला है ॥३४॥ हे मुनिगणो! इसके वंश का कीर्त्तन करना परम धन्य—आयु के बढ़ाने वाला—आरोग्यप्रद तथा परम पुण्य प्रदान करने वाला और मन के मनोरथों का पूर्ण करने वाला होता है। इस सोमदेव के जन्म की कथा का श्रवण मात्र करने ही से मनुष्य पापों से छूट जाया करता है ॥३५॥

७—सोमवंशवर्णन

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः ।
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥१
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्दमः ।
आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपतिः ॥२
सत्यवादी पुण्यमतिः सम्यक् संवृतमैथुनः ।
अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमः सदा ॥३
तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ।
उर्व्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥४
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च ।
षट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भो द्विजाः ॥५
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥६
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरमफलद्रुमान् ।
गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे तथोत्तरे ॥७

श्रीलोमहर्षण जी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! बुध का पुत्र पुरूरवा बहुत विद्वान् था—तेजस्वी-दान देने के स्वभाव वाला—यजन करने वाला—विशेष दक्षिणा देने वाला-ब्रह्मवादी-दुर्दम तथा युद्ध में शत्रुओं के द्वारा पराक्रान्त-अग्निहोत्र करने वाला तथा यह महीपति यज्ञों के करने वाला हुआ ॥१-२॥ राजा पुरूरवा सदा सत्य भाषण करने वाला पुण्यमय मति से युक्त—भली-भाँति मैथुन करने वाला था और भूमण्डल में सदा तीनों लोकों में अनुपम यश से युक्त हुआ ॥३॥ परम यशस्विनी उर्वशी ने उस ब्रह्मवादी-परम शान्त स्वभाव वाले—धर्म के ज्ञाता और सत्यवादी नृप पुरूरवा को अपना मान त्याग कर वरण कर लिया था ॥४॥ हे द्विजगण ! उस उर्वशी के साथ उस राजा ने १८७५६५१० वर्ष तक निवास किया। चैत्ररथ अति सुन्दर वन में मन्दाकिनी के तट पर-विशाल अलकापुरी में और परम उत्तम नन्दन वन में उर्वशी के साथ रमण किया। उसने सुन्दर फलों से युक्त द्रुमों वाले उत्तर कुरु

देशों को प्राप्त कर लिया। गन्धमादन पर्वत के प्रान्तों में तथा उत्तर मेरु पर्वत के शिखर पर भी उसने उर्वशी के साथ आनन्द विहार किया था ।।५-७।।

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च ।
उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ।।८
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ।
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ।।९
एवम्प्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तमः ।।१०
ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोत्तमाः ।
गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः ।।११
विश्वायुश्चैव धर्म्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः ।
दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्व्वशीसुताः ।।१२
अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट् ।
श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः ।।१३
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ।
सुहोत्रस्याभयज्जह्नुः केशिन्या गर्भसम्भवः ।।१४

इन उपर्युक्त प्रमुख वनों में जहाँ पर देवगण विहार किया करते हैं अत्यधिक आनन्द के साथ उस राजा ने उस उर्वशी अप्सरा के साथ रमण किया ।।८।। उस पृथिवीपति ने अपनी राजधानी महान् पुण्यतम और बड़े२ महर्षियों के द्वारा अभिष्टुत प्रयाग में बनायी थी ।।९।। राजा ऐल मनुष्यों में परम श्रेष्ठ इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न हुआ ।।१०। श्री महर्षि लोमहर्षणजी ने कहा—उस ऐल के यहाँ देवों के पुत्रों के समान सात सुतों ने जन्म लिया। ये सब गन्धर्व लोक में प्रख्यात थे इनके नाम आयु-धीमान्-अमावसु-विश्वायु धर्मात्मा श्रुतायु-दृढायु और वनायु तथा बह्वायु ये सात उर्वशी से समुत्पन्न पुत्र थे ।।११-१२।। राजाओं का राजा भीम राजा अमावसु का पुत्र हुआ था। तथा उस राजा भीम का दायाद काञ्चनप्रभ नाम वाला उत्पन्न हुआ ।।१३।। उस

काञ्चनप्रभ का पुत्र महान् बल वाला सुहोत्र हुआ था। इस सुहोत्र का आत्मज जह्नु हुआ जो केशिनी के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था ॥१४॥

आजह्ने यो महत् सत्र सर्पमेध महामखम् ।
पतिलोभेन य गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५
नेच्छन. प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सद ।
स तया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥१६
सौहोत्रिरशपदगङ्गा क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमा. ।
एप ते विफल यत्न पिबञ्जम्भ करोम्यहम् ॥१७
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्य. फलमवाप्नुहि ।
जह्नुराजर्षिणा पीता गङ्गा दृष्ट्वा महर्षय ॥१८
उपनिन्युमहाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।
युवनाश्वस्य पुत्री तु कावेरी जह्नुरावहत् ॥१९
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्द्धेन विनिर्गता ।
कावेरी सरिता श्रेष्ठा जह्नोर्भामनिन्दिताम् ॥२०
जह्नुस्तु दयित पुत्र सुनद्य नाम धार्मिकम् ।
कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मज ॥२१

यह ऐसा प्रतापी जह्नु राजा था जिसने महान् सर्पमेध नामक महामख सत्र किया और जिसको गंगा देवी ने अपना पति वरण करने के लोभ से इसके समीप में गमन किया ॥१५॥ इच्छा न रखने वाले उस राजा की सभा को उस समय में गंगा ने प्लावित कर दिया। उस समय में उस गंगा के द्वारा चारों ओर से प्लावित उस अपने यज्ञवाट को देखकर हे द्विजगण ! उस सौहोत्रि राजा ने अत्यन्त कुपित होकर उस समय में गंगा को शाप दे दिया था और कहा था कि यह तेरा यत्न विफल है। मैं तेरे सम्पूर्ण जल का पान किये लेता हूँ। हे गंगे ! तू इस तेरे अभिमान का बहुत ही शीघ्र फल प्राप्त करेगी। जब राजा जह्नु के द्वारा सम्पूर्ण गंगा के जल का पान करते गंगा देखा तो समस्त महर्षियों ने उस महाभागा गंगा को बेटी बना कर जाह्नवी उप-नीत किया। युवनाश्व की पुत्री कावेरी को जह्नु ने ग्रहण किया था

॥१६-१६॥ यह युवनाश्व के शाप से गंगा के अर्ध भाग से विनिर्मल हुई थी समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ कावेरी सरिता जह्नु की अनिन्दित भार्या थी। उस कावेरी में जह्नु ने परम धार्मिक महानंद नामक पुत्र को समुत्पन्न किया और इसके पुत्र का नाम अजक हुआ था ॥२०-२१॥

अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः ।
बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥२२
कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्च्चसः ।
कुशिकः कुशनाभश्च कुशाम्बो मूर्त्तिमांस्तथा ॥२३
वल्लवैः सह संवृद्धो राजा वनचरः सदा ।
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः ॥२४
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ।
पूर्णे वर्षसहस्रे वै ततः शक्रो ह्यपश्यत ॥२५
अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः ।
समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ॥२६
पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्रः सुरसत्तमः ।
स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिकः स्वयम् ॥२७
पौरकुत्स्यभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत ।
गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८

राजा अजक दायाद बलाकाश्व नाम वाला महीपति हुआ था। यह बहुत ही अधिक मृगया करने के स्वभाव वाला था। इसके यहाँ कुश नाम वाले पुत्र ने जन्म धारण किया ॥२२॥ इस कुश के वीर्य से चार देवों के समान वर्चस वाले पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया। उनके नाम कुशिक कुशनाभ-कुशाम्ब और मूर्तिमान ये हुए थे ॥२३॥ बल्लव के साथ संवर्धन पाने वाला राजा सदा वनचर ही रहा। कुशिक ने बड़ा घोर तप किया था कि मैं इन्द्र के समान पुत्र की प्राप्ति करूँ। इसके पश्चात् त्रास से इन्द्र ने उसके समीप आकर स्वयं ही जन्म ग्रहण किया। एक सहस्र वर्षों के पूर्ण होजाने पर फिर इन्द्र ने उसको देखा था। पुत्र के जनन में समर्थ उसने स्वयं ही पुत्र के लिये अपने आपको

कल्पित किया और सुर श्रेष्ठ देवेन्द्र ही स्वयं पुत्र रूप से समुत्पन्न हुआ था। वह राजा गाधि नाम वाला हुआ और वह कौशिक स्वयं ही भगवान् था ॥२४-२७॥ उसकी भार्या पौरुकुत्सा थी। उसमें ही गाधि ने जन्म लिया। उस गाधि राजा की कन्या महाभागा परम शुभ सत्यवती नाम वाली हुई थी ॥२८॥

ता गाधिः काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ।
तस्याः प्रीतः स वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दनः ॥२६
पुत्रार्थं साधयामास चरुं गाधेस्तथैव च ।
उवाचाहूय ता भार्य्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥३०
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा स्वयं शुभे ।
तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः ॥३१
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः ।
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम् ॥३२
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ।
एवमुक्त्वा तु तां भार्य्यामृचीको भृगुनन्दनः ॥३३
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ।
गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् ॥३४
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः ।
चरुद्वयं गृहीत्वा सा ऋषेः सत्यवती तदा ॥३५
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ।
माता तु तस्या दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ॥३६

राजा गाधि ने उस अपनी कन्या को काव्य के पुत्र ऋचीक के लिये समर्पित कर दिया। उसके भर्त्ता भृगुनन्दन भार्गव ने परम प्रसन्न होकर गाधि के पुत्र समुत्पन्न होने के लिये चरु का साधन किया। उस समय में भार्गव ऋचीक ने उस भार्या को बुलाकर कहा—हे शुभे! तुझे और तुम्हारी माता को स्वयं इस चरु का उपयोग करना चाहिए। उसमें क्षत्रियों में परम श्रेष्ठ—दीप्तिमान् पुत्र समुत्पन्न होगा ॥२६-३१॥ यह लोक में क्षत्रियों के द्वारा अजेय और स्वयं क्षत्रियों में परम श्रेष्ठ होगा

तथा बड़े२ वीर क्षत्रियों का सूदन करने वाला होगा। हे कल्याणि! यह चरु जो तुझे दिया जा रहा है वह तुझको भी परम तपस्वी-धृतिमान् शम स्वरूप-द्विजों में श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करेगा। इस प्रकार से कह और अपनी भार्या को भली-भाँति दोनों चरुओं के विषय में समझा कर भृगुनन्दन ऋचीक नित्य ही तपश्चर्या में अभिरत होते हुए वन में प्रवेश कर गये थे। उसी समय में गाधि राजा अपनी पत्नी के सहित ऋचीक मुनि के आश्रम में प्राप्त हो गये थे ॥३२-३४॥ वह नरेश्वर तीर्थ यात्रा के प्रसंग से वहाँ पर अपनी पुत्री को देखने के लिये समागत हो गये थे। उस समय में वह सत्यवती ऋषि के दोनों चरुओं को ग्रहण कर वहाँ उपस्थित हो गई। उसने बड़े ही यत्न पूर्वक चरु को लेकर माताजी को दे दिया। माता ने दैव बलात् उस अपनी पुत्री को अपना चरु दे दिया ॥३५-३६॥

तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसस्थं चकार ह।
अथ सत्यवती सर्वं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥३७
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना।
तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥३८
ततोऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम्।
मातासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ॥३९
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः।
भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः ॥४०
विश्वं हि ब्रह्म तरसा मया तस्मिन् समर्पितम्।
एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत्।
ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥४२

इसके अनन्तर अज्ञान से उसने अपनी माता का चरु आत्म सस्थ कर लिया था। इसके पश्चात् उस समय में समस्त क्षत्रियों के अन्त कर देने वाले गर्भ को सत्यवती ने धारण किया और दीप्त वपु से परम घोर दर्शन वाली हो गई थी। इसके उपरान्त समीप में आकर ऋचीक ऋषि

में योग के द्वारा देखा था। इसके अनन्तर वह द्विजश्रेष्ठ अपनी वरवर्णिनी भार्या से बोले—हे भद्रे ! चरु के व्यत्यास कर देने के कारण से अपनी माता के द्वारा तुमको वञ्चित कर दिया गया है ॥३७-३६॥ तू अब क्रूर कर्मों के करने वाला परम दारुण पुत्र को जन्म देगी और तेरा भाई ब्रह्मभूत परम तपस्वी समुत्पन्न होगा ॥४०॥ मैंने सम्पूर्ण ब्रह्म तप के द्वारा उसमे समर्पित कर दिया। इस प्रकार से जब वह महान् भागवाली अपने स्वामी के द्वारा कही गयी थी तो उस सत्यवती ने अपने पति को प्रसन्न किया कि मेरा पुत्र इस प्रकार का न होवे। आप से ब्राह्मणों में नीच पुत्र नहीं होना चाहिए। जब इस तरह से पत्नी के द्वारा बहुत अधिक प्रार्थना की गयी तो मुनि ने कहा—॥४१-४२॥

नैष सङ्कल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति ।
उग्रकर्म्मा भवेत् पुत्रः पितुर्म्मातुश्च कारणात् ॥४३
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम् ।
इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ॥४४
शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि ।
काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ॥४५
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्त्तुमेतद्द्विजोत्तम ।
ततः प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥४६
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।
त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥४७
ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥४८
भृगोर्जगत्या वंशेऽस्मिञ्जमदग्निरजायत ।
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्म्मपरायणा ॥४९

ऋचिक मुनि ने कहा—हे भद्रे ! मैंने कभी भी मन में ऐसा सङ्कल्प नहीं किया कि ऐसा होवे। पिता और माता के कारण से तेरा पुत्र उग्र कर्मों के करने वाला होवेगा ॥४३॥ फिर सत्यवती ने इस प्रकार से वाक्य को कह कर यह कहा—हे मुनिवर ! लोकों को चाहते हुए

भी आप फिर क्यों पुत्र का सृजन करते हैं। आप मे तो ऐसी सामर्थ्य है कि आप परम सीधा शम स्वरूप पुत्र प्रदान करने के योग्य है। हे प्रभो! हे द्विजात्तम! यदि यह अन्यथा नहीं किया जा सकता है तो यह तो आप कर सकते हैं कि भले ही मेरा और आपका पौत्र इस प्रकार का हो जावे। इसके उपरान्त उस ऋषि ने अपने तप के बल से उस पर प्रसन्नता की थी ॥४४-४६॥ हे वर वर्णिनि! मेरे पुत्र मे अथवा पौत्र मे विशेषता नहीं होगी। तुमने जैसा भी कहा है हे भद्रे! वैसा ही होगा ॥४७॥ इसके अनन्तर उस सत्यवती ने भार्गव पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था। जो तप मे अभिरत था—परम दमन शील था और शम-स्वरूप जमदग्नि नाम वाला हुआ ॥४८॥ जगत् मे भृगु के वंश मे जमदग्नि ने जन्म लिया था। वह सत्यवती परम पुण्यमयी और सत्य तथा धर्म मे परायण हुई थी ॥४९॥

कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः ॥५०
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ।
रेणुक या तु कामल्या तपोविद्यासमन्वितः ॥५१
आर्चीको जनयामासजामदग्न्यं सुदारुणम् ।
सर्व्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५२
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ।
और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्या महायशाः ॥५३
जमदग्निस्तपोवीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदांवरः ।
मध्यमश्च शुनःशेपःशुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥५४
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः ।
जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं ब्रह्मर्षितां गतः ।
विश्वामित्रस्तु धर्म्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥५६

यह कौशिकी नाम से समाख्यात हुई थी तथा यह महान् नदी प्रवृत्त हुई थी। इक्ष्वाकु राजा के वंश मे समुत्पन्न होने वाला एक रेणु नामक

नराधिप हुआ ॥५०॥ उसकी महाभागा कामली रेणुका नाम वाली एक कन्या हुई । उस कामली रेणुका में तपोविद्या से युक्त अर्चीक ने अति दारुण जामदग्न्य को समुत्पन्न किया । वह जामदग्न्य सब विद्याओं के पारगामी तथा धनुर्वेद के परम श्रेष्ठ विद्वान् थे ॥५१-५२॥ इस प्रकार के क्षत्रियों के हनन करने वाले जलती हुई अग्नि के समान प्रदीप्त श्री परशुराम थे । महान् यशस्वी जमदग्नि ने जो ब्रह्म के ज्ञाताओं में बहुत ही श्रेष्ठ थे और ऋचीक ही सत्यवती में तपोवीर्य से जन्म ग्रहण किया था । मध्यम पुत्र शेर और कनिष्ठक पुत्र, पुन्छ हुआ ॥५३-५४॥ कुशिक नन्दन गाधि ने तप-विद्या और शम स्वरूप अथवा दायाद विश्वामित्र पुत्र को समुत्पन्न किया ॥५५॥ जो यह विश्वामित्र ऋषि ब्रह्मर्षि समता को प्राप्त कर ब्रह्मर्षि हो गये थे । यह विश्वामित्र परम धर्मात्मा थे और नाम से यह विश्वरथ कहे जाते हैं ॥५६॥

जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धनः ।
विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ॥५७
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्यतः परम् ।
देवरातः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायना स्मृताः ॥५८
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणुर्जज्ञेऽथ रेणुकः ॥५९
सस्कृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चैव विश्रुतः ॥
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टमः ।
कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुताः ॥६०
तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ।
पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६१
पार्थिवा देवरातश्च शालङ्कायनवाष्कलाः ।
लोहिता यमदूताश्च तथा कारूषकाः स्मृताः ॥६२
पौरवस्य मुनिश्रेष्ठा ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च ।
सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥६३

महर्षि भृगु के प्रसाद से कौशिक से वंश के वर्धन करने वाले ने जन्म ग्रहण किया था और विश्वामित्र के पुत्र देवरात प्रभृति कहे गये

हैं ॥५७॥ ये तीनों लोकों में प्रख्यात हुए थे। इसके आगे उनके नामों का श्रवण करो देवरात और कति नाम वाले थे जिससे कात्यायन कहे गये हैं ॥५८॥ शालावती में हिरण्याक्ष हुआ और इसके अनन्तर रेणु ने रेणुक को जन्म दिया ॥५९॥ संस्कृति और गालव तथा मुद्गल प्रसिद्ध हुआ। मधुच्छन्द-जय और आठवाँ देवला हुआ था। कच्छप और हारित ये सब विश्वामित्र के पुत्र थे ॥६०॥ उन समस्त महान् आत्म वालों के गोत्र कौशिक विख्यात हैं। पाणिन-वभ्रव तथा ध्यान जप्य और देवरात शालिंद्र याल कात्यायन और वाष्कल-लोहित एवं यमदूत तथा कारू-षक कहे गये हैं ॥६१।६२॥ हे मुनिश्रेष्ठो! पौरव के और ब्रह्मर्षि कौशिक के इस कोश में भी सम्बन्ध है जो ब्रह्मक्षत्र का विश्रुत हुआ था ॥६३॥

विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः।
भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥६४
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवत् किल।
हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ॥६५
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः।
देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥६६
देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः।
दृषद्वतीसुतश्चापि वैश्वामित्रस्तथाष्टकः ॥६७
अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया।
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः ॥६८

विश्वामित्र के पुत्र शुनःशेप हुआ जो सब में अग्रज कहा गया है। यह मुनि श्रेष्ठ भार्गव को कौशकत्व को प्राप्त हो गया ॥६४॥ यह हरिदश्व के यज्ञ के पशुत्व में विनियोजित किया गया था ॥६५॥ देवों के द्वारा वह शुनःशेप पुनः विश्वामित्र के लिये दे दिया गया था क्योंकि वह देवों के द्वारा दिया गया था अतएव तब से देवरात हो गया ॥६६॥ देवरात आदि सात विश्वामित्र के सुत थे। दृषद्वती का सुत भी वैश्वामित्र का अष्टक था। इस अष्टक का पुत्र लौहि हुआ था। मैंने यह जह्नु का

गण बतला दिया है। अब इससे आगे महात्मा आयु के वंश को बतलाऊँगा ॥६७-६८॥

८—सोमवंश में आयुवंशवर्णन

आयोः पुत्राश्च वै पञ्च सर्व्वे वीरा महारथाः।
स्वर्भानुतनयायाश्च प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ॥१
नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्म्मा ततः परम्।
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥२
रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै।
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥३
यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे।
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥४
आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति।
ब्रूहि नः सर्व्वभूतेश श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥५
येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः।
योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥६
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः।
यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्म्मस्तत्र जयस्तथा ॥७

श्री लोमहर्षण महामुनि ने कहा—आयु के पाँच पुत्र थे और वे सब वीर एवं महारथ हुए थे। स्वर्भानु की पुत्री के गर्भ से जिसका नाम प्रभा था ये सब नृप समुत्पन्न हुए थे।॥१॥ सबसे प्रथम नहुष समुत्पन्न हुआ, इसके पश्चात् वृद्ध शर्मा हुआ था। रम्भा-रजि और अनेन ये तीनों लोकों में विश्रुत हुए हैं ॥२॥ रजि ने एक सौ पाँच पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था। यह वश "राजेय"—इस नाम से विख्यात हुआ जो इन्द्रदेव को भी भय देने वाला था ॥३॥ जिस समय में परम दारुण देवों और असुरों का युद्ध समुत्पन्न हो गया, उस समय में देव और असुर पितामह श्री ब्रह्माजी से जाकर कहने लगे थे ॥४॥ देवासुरों ने

कहा—हे भगवन्! हम दोनों दलों का युद्ध होने वाला है। कृपा कर, आप हमको यह बतला दीजिए कि इनमें कौन विजेता होगा। हे समस्त प्राणियों के स्वामिन्! यह आप हमको बता दीजिए। हम तात्त्विक रूप से यह श्रवण करना चाहते हैं ॥५॥ परमेष्ठी श्री ब्रह्माजी ने कहा—जिनके लिये परम समर्थ शक्तिशाली रजि आयुध ग्रहण करने वाला होकर युद्ध करेगा उनके ही हाथ मे तीनों लोकों की विजय श्री होगी—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥६॥ जहां पर रजि है वहीं पर धृति है और जहां धृति है वहीं पर श्री होती है तथा धृति और श्री दोनों जहां पर है वहीं पर धर्म तथा जय रहा करती है ॥७॥

ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजिंतदा ।
अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वानास्त नरर्षभम् ॥८
स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत ।
राजा परमतेजस्वी सोमवंशविवर्द्धनः ॥९
ते हृष्टमनसः सर्व्वे रजिं वै देवदानवाः ।
ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्म्मुकम् ॥१०
अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः ।
अर्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥११
यदि दैत्यगणान् सर्व्वान् जित्वा वीर्य्येण वासवः ।
इन्द्रो भवामि धर्म्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ॥१२
देवा प्रथमतो विप्रा प्रतीयुर्हृष्टमानसाः ।
एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव ॥१३
श्रुत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा ।
पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत ॥१४
दानवा दर्पसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह ।
प्रत्यूचुस्त नृपवरं साभिमानमिदं वचः ॥१५

जब इस प्रकार से देवेश्वर के द्वारा सब तथा दानवों से कहा गया था तब वे सब परम प्रसन्न होकर उस समय में रजि के समीप में गये थे। दोनों ही दल उस नरश्रेष्ठ को अपनी २ ओर वरण करना

चाहते थे ।।८।। वह रजि स्वर्भानु का धेवता था और प्रभा के गर्भ से समुत्पन्न हुआ था। यह राजा अत्यधिक तेजस्वी तथा सोम के वश का विवर्धन करने वाला था। वे समस्त देव और दानव रजि को देखकर परम प्रसन्न हुए थे और उन दोनों ने ही उनसे प्रार्थना की थी कि आप हमारी विजय होने के लिये अपने श्रेष्ठ धनुष को ग्रहण कीजिए ।।६-१०।। इसके अनन्तर वह राजा रजि अर्थ के जानने वाला तथा स्वार्थ का उद्देश्य लेकर अपने यश का प्रकाश करते हुए उन दोनो देवों तथा दैत्यो से बोला ।।११।। रजि नृप ने कहा—यदि समस्त दैत्य गणो को अपने बल-विक्रम से युद्ध मे जीत कर धर्म से मैं वासव इन्द्र हो जाऊं तो संग्राम युद्ध करूंगा ।।१२।। हे विप्रो ! देव गण ने प्रथम ही प्रसन्न मन वाले होकर विश्वास कर लिया और कहा था—हे नृप ! इस प्रकार से आपकी कामना पूरी हो जायेगी ।।१३।। उस समय मे राजा रजि ने सुरगणों के वाक्य सुनकर जिस तरह देवगणो से पूछा था वैसे ही असुरगणो से भी पूछा था ।।१४।। दानवगण तो दर्प से भरे हुए थे और अपने स्वार्थ को ही समझ कर बड़े अभिमान के साथ उस श्रेष्ठ राजा से यह वचन बोले थे ।।१५।।

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे ।
अस्मिंस्तु समरे राजंस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम ।।१६
स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यतिचोदितः ।
भविष्यसीन्द्रो जित्वैनं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः ।।१७
जघान दानवान् सर्व्वान् येऽवध्या वज्रपाणिनः ।
स विप्रनष्टां देवानां परामश्रीं श्रियं वशी ।।१८
निहृत्य दानवान् सर्व्वानाजहार रजिः प्रभुः ।
ततो रजिं महावीर्य्यं देवैः सह शतक्रतुः ।।१९
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः ।
इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्व्वेषां नात्र संशयः ।।२०
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्म्मभिः ।
स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया ।।२१

दानवों ने कहा—हम लोगों का तो इन्द्र महाराज प्रह्लाद हैं जिनके लिये हम विजय करते हैं । हे राजाओं में परम श्रेष्ठ ! आप इस संग्राम में स्थित हो जाइए ॥१६॥ वह ऐसा ही होगा—यह कहने लगा था और देवों के द्वारा अत्यधिक प्रेरित किया गया था । देवगण ने उस राजा से कहा था कि आप इसको जीतकर इन्द्र हो जायँगे ॥१७॥ उस यशी और परम श्री राजा रजि ने समस्त दानवों को मार दिया था जो कि हाथ में वज्र धारण करने वाले अवध्य थे, मघवा जो इन्द्र के वध करने के योग्य नहीं थे अर्थात् इन्द्र जिनके हनन करने में असमर्थ थे । देवों की विनष्ट हुई श्री को समस्त दानवों को मार मार स्वयं हरण कर लिया था । इसके अनन्तर उस इन्द्र ने देवों के साथ उस महान् वीर्य वाले रजि से "मैं रजि का पुत्र हूँ" यह कहकर पुनः यह वचन बोला था । हे तात ! आप समस्त देवों के इन्द्र हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१८-२०॥ जिसका आपका मैं इन्द्र पुत्र हूँ—इस ख्याति को कर्मों के द्वारा प्राप्त हो जाऊँगा । वह तो शत्रु का वचन सुनकर उसके द्वारा माया से वञ्चित हो गया था ॥२१॥

तथैवेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ।
तस्मिंस्तु देवैः सदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ ॥२२
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रु राज्यं तत्तनया रजेः ।
पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः ॥२३
समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ।
ते यदा तु स्वसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः ॥२४
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः ।
ततो लेभे स्वमैश्वर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् ॥२५
हत्वा रजिसुतान् सर्व्वान् कामक्रोधपरायणान् ।
य इदं च्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः ।
शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दौर्गत्यमाप्नुयात् ॥२६
रम्भोऽनपत्यस्त्वासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेनसः ।
अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥२७

प्रतिक्षत्रसुतश्चासीत् सञ्जयो नाम विश्रुत. ।
सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मज. ॥२८

उस राजा ने प्रसन्न होते हुए ऐसा ही हो—यह इन्द्र से कहा था। देवों के समान उस राजा के दिवलोक मे प्राप्त होने पर रजि के पुत्रों ने उसके दायाद राज्य का हरण कर लिया था। इसके पाँच सौ पुत्रो ने शतक्रतु (इन्द्र) के उस स्थान को बहुधा त्रिविष्टप स्वर्ग लोक को समाक्रान्त कर लिया था। वे जिस समय मे स्वय महान् सम्मूढ होकर राग मे उन्मत्त और विधर्मी हो गये तथा ब्रह्मद्विट् बन गये तो हत वीर्य तथा पराक्रम से हीन हो गये थे। तब तो इन्द्र ने स्वय ही अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य को तथा उस उत्तम स्थान को उनसे प्राप्त कर लिया था ॥२२-२५॥ फिर उस इन्द्रदेव ने उन सब रजि के पुत्रों का हनन करके नष्ट कर दिया था क्योकि वे सभी काम और क्रोध मे परायण हो गये थे। जो कोई पुरुष इस शतक्रतु के अपने स्थान से च्युत होने एव प्रतिष्ठान की कथा का श्रवण किया करता है अथवा धारण करता है वह कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥२६॥ श्री महा मुनीन्द्र लोमहर्षण जी ने कहा—रम्भ तो सन्तति हीन था अब हम अनेना के वश का वर्णन करेंगे। उस अनेना का पुत्र महान् यश वाला राजा प्रतिक्षत्र हुआ था ॥२७॥ उस प्रतिक्षत्र के यहाँ सञ्जय नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया था जो बहुत ही प्रसिद्ध हुआ था। सञ्जय का सुत जय नाम वाला हुआ था और उस जय का पुत्र विजय हुआ था ॥२८॥

विजयस्य कृति पुत्रस्तस्य हर्य्यत्वन सुत ।
हर्य्यत्वतसुतो राजा सहदेव प्रतापवान् । २९
सहदेवस्य धर्म्मात्मा नदीन इति विश्रुत ।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृति ॥३०
सङ्कृतेरपि धर्म्मात्मा क्षत्रवृद्धो महायशाः ।
अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापर ।.३१
क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः ।
सुनहोत्रस्य दायादास्त्रय. परधार्म्मिकाः ॥३२

काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ॥३३
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।
शलात्मज आर्ष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः ॥३४
काशस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।
धनुस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥३५

विजय का पुत्र कृति और कृति का पुत्र हर्यश्वत हुआ था। हर्यश्वत का पुत्र महान् प्रतापी सहदेव समुत्पन्न हुआ। इस राजा सहदेव का आत्मज परम धार्मिक नदीन नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ था। नदीन का दायाद जयत्सेन और जयत्सेन का संकृति नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२९-३०॥ इस संतति के यहाँ भी महान् यश से सम्पन्न-परम धार्मिक क्षत्र वृद्ध ने जन्म ग्रहण किया था। ये सब अनेनस वर्णित कर दिये गये हैं। उस क्षत्रवृद्ध का पुत्र महा यशस्वी सुनहोत्र हुआ। इस सुनहोत्र के परम धार्मिक तीन पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३१-३२॥ उन तीनों में काश और शल दो तो थे थे तथा तीसरा गृत्समद् प्रभु हुआ था। इस गृत्समद् का पुत्र शुनक नाम वाला हुआ था जिसका शौनक हुआ था। ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र हुए थे। शल का पुत्र आर्ष्टिसेन उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज काश्यप हुआ था ॥३३-३४॥ काश का दायाद काशिप नृप हुआ तथा उसका पुत्र दीर्घतपा उत्पन्न हुआ था। दीर्घतपा के वीर्य से धनु ने जन्म लिया था और फिर इसका सुत परम विद्वान् धन्वन्तरि हुआ था ॥३५॥

तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः ।
पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जन्मनि ॥३६
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।
काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः ॥३७
आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स भिषक्क्रियः ।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥३८

धन्वन्तरेस्तु तनय केतुमानिति विश्रुत ।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथ स्मृत ॥३९
पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदास प्रजेश्वरः ।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥४०
एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी द्विजा, ।
शून्या निवेशयामास क्षमको नाम राक्षस ॥४१
शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ।
शून्या वर्षसहस्र वै भवित्री तु न सशय ॥४२

वृद्ध धीमान् के महान् तप के अन्त मे पुन इस जन्म मे मनुष्यो में धन्वन्तरि देव समुत्पन्न हुए थे ॥३६॥ उनके घर में उस समय मे देव धन्वन्तरि ने जन्म ग्रहण किया था । महाराज काशिराज समस्त रोगो के नाश करने वाले थे ॥३७॥ वहाँ पर भिषक् की क्रिया वाले वह भरद्वाज से आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने वाले हुए थे । इन्होंने उसको आठ भागो मे विभक्त करके शिष्यों को प्रदान किया था ॥३८॥ उन महाराज धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् इस नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसके अनन्तर केतुमान् का पुत्र परम वीर भीमरथ हुआ था ॥३९॥ भीमरथ का पुत्र प्रजेश्वर दिवोदास उत्पन्न हुआ था वह परम धर्मात्मा दिवोदास वाराणसी का स्वामी हुआ था ॥४०॥ इसी अवसर पर हे द्विजगण ! क्षेमक नाम वाले राक्षस ने वाराणसी पुरी को शून्य निवेशित कर दिया ॥४१॥ महान् मतिमान् निकुम्भ के द्वारा वह पुरी शाप वाली हो गई थी क्योंकि वह निकुम्भ महान् आत्मा वाला था । उसने वाराणसी पुरी को यह शाप दिया था कि सहस्र वर्ष पर्यन्त यह एकदम शून्य रहेगी—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥४२॥

तस्या हि शप्तमात्राया दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
विषयान्ते पुरी रम्या गोमत्या संन्यवेशयत् ॥४३
भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् ।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥४४

हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः ।
भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं येन बलीयसा ॥४५
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४६
हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः ।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥४७
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
वैरस्यान्तो महाभागाः क्षत्रियेणात्मीयतेजसा ॥४८
दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दन ।
तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥४९

प्रजेश्वर दिवोदास ने शाप दी हुई उस पुरी में विपयान्त में गोमती में परम सुरम्य पुरी को सन्निवेशित किया था ॥४३॥ पूर्व में यह वाराणसी पुरी भद्रश्रेण्य की थी। इस भद्रश्रेण्य के परमोत्तम धनुर्धारी एक सौ पुत्र थे ॥४४॥ दिवोदास नृप ने उन सबका हनन करके इस पुरी को निवेशित किया था। इस महान् बलवान् नृप ने उस भद्रश्रेण्य से सम्पूर्ण राज्य को छीन लिया था ॥४५॥ इस भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नाम से प्रसिद्ध हुआ। दिवोदास ने उस दुर्दम को बालक है—यह समझकर नहीं मारा था और दया से उसको छोड़ दिया था ॥४६॥ उस राजा ने हैहय के दायाद का हरण कर लिया था। दिवोदास के द्वारा जो अपने पिता के दायाद का हरण कर लिया गया था और बलपूर्वक छीन लिया था फिर इस भद्रश्रेण्य के पुत्र ने दुर्दम ने वापिस छीन लिया था। हे महाभागो! अपने ही तेज के द्वारा इस दुर्दम ने वैर का अन्त कर दिया ॥४७-४८॥ इस राजा दिवोदास के वीर्य से दृषद्वती में महान् वीर प्रतर्दन ने जन्म लिया। उस बालक पुत्र ने पुनः बल का प्रहरण किया था ॥४९॥

प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभर्गौ सुविश्रुतौ ।
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥५०

अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।
अलर्कं प्रति राजर्षि श्लोको गीतः पुरातनैः ॥५१
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
युवा रूपेण सम्पन्न प्रागासीच्च कुलोद्वहः ॥५२
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्नवान् ।
तस्यासीत् सुमहद्राज्य रूपयौवनशालिनः ॥५३
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।
रम्या निवेशयामास पुरी वाराणसी पुनः ॥५४
सन्नतेरपि दायाद सुनीथो नाम धार्मिक ।
सुनीथस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥५५
क्षेमस्य केतुमान् पत्र सुकेतुस्तस्य चात्मजः ।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्म्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६

उस प्रतर्दन के वत्सभर्ग के नाम से प्रसिद्ध दो पुत्र हुए थे । उसके वीर्य से परम पुत्र अलर्क और सन्तति आत्मज हुए थे ॥५०॥ उसका पुत्र अलर्क ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला और सत्य सकर अर्थात् सङ्ग्राम करने वाला हुआ था । उस राजर्षि अलर्क के विषय में पुरातन लोगों ने यह श्लोक गाया था ॥५१॥ वह साठ हजार साठ सौ वर्ष पर्यन्त प्रथम समय में रूप लावण्य से सुसम्पन्न कुल का उद्वहन करने वाला युवा था ॥५२॥ लोपामुद्रा देवी के प्रसाद से उसने परम आयु प्राप्त की थी । रूप और यौवन वाले उसका राज्य भी महान् था ॥५३॥ शाप के अन्त में उन महाबाहु ने क्षेमक राक्षस का हनन करके पुन परम रम्य वाराणसी पुरी को निवेशित किया था ॥५४॥ सनति का पुत्र सुनीथ परम धार्मिक था और इस सुनीथ का पुत्र महान् यश वाला क्षेम नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥५५॥ इन क्षेम का आत्मज केतुमान् हुआ था तथा इनका पुत्र सुकेतु ने जन्म लिया था । सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु नाम से कहा गया था ॥५६॥

धर्म्मकेतोस्तु दायाद सत्यकेतुर्महारथ ।
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥५७

आनर्तस्तु विभो पुत्र सुकुमारश्च तत्सुतः ।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतु. सुधार्मिकः ॥५८
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ।
वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः ॥५९
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गजः ।
एते त्वङ्गिरसः पुत्र जाता वंशेऽथ भार्गव ॥६०
ब्राह्मणा. क्षत्रिया वैश्यास्त्रय. पुत्राः सहस्रशः ।
इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत ॥६१

धर्मकेतु का दायाद महारथी सत्यकेतु हुआ था । सत्यकेतु का पुत्र विभु नामक प्रजेश्वर हुआ था । ॥५७॥ उस विभु के वीर्य से आनर्त पुत्र समुत्पन्न हुआ था, उसका पुत्र सुकुमार उत्पन्न हुआ था । सुकुमार के यहाँ परम धर्मात्मा धृष्ट केतु ने जन्म ग्रहण किया था ॥५८॥ इस धृष्ट केतु का दायाद प्रजेश्वर वेणु होत्र हुआ था और वेणु होत्र का सुत राजा भार्ग हुआ था ॥५९॥ भार्ग से जन्म लेने वाला भार्गभूमि था तथा वत्स का पुत्र वत्सभूमि हुआ था । हे भार्गव ! ये वंश मे अङ्गिरा के पुत्र हुए थे ॥६०॥ ब्राह्मण–क्षत्रिय और वैश्य ये तीनो सहस्रों की संख्या मे पुत्र थे । ये सब काश्यप बतलाये गये हैं । अब नहुष के पुत्रों को समझलो ॥६१॥



६ —ययातिचरित्रवर्णन

उत्पन्ना. पितृकन्याया विरजाया महौजसः ।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजस ॥१
यतिर्ययाति. संयातिरायातिर्यातिरेव च ।
सुयाति षष्ठस्तेषा वै ययाति पार्थिवोऽभवत् ॥२
यवुस्त्वथवन्या गा नाम लेभे परमधार्म्मिकः ।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनि ॥३

तेषां ययाति पञ्चाना विजित्य वसुधामिमाम् ।
देवयानीमुशनसः सुता भार्य्यामिवाप स ॥४
शर्म्मिष्ठामासुरी चैव तनया वृषपर्व्वण ।
यदुञ्च तुर्व्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत ॥५
द्रुह्य चानु च पूरू च शर्म्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी ।
तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथ परमभास्वरम् ॥६
अङ्गद काञ्चन दिव्य दिव्यै परमवाजिभि ।
युक्त मनोजवै शुभ्र येन काय्य समुद्वहन् ॥७

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—पितृ कन्या विरजा में महान् ओज वाले इन्द्र के समान तेज स शुक्र राजा नहुष के छ पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनके नाम ये हैं—यति–ययाति–सयाति–आयाति–याति और छटवाँ सुयाति था ॥२॥ इस परम धार्मिक राजा ने ककुत्स्थ की कन्या के साथ विवाह किया था । जो यति नाम वाला पुत्र था वह तो मोक्ष माग में समास्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि हो गया था ॥३॥ शेष पाचो में इस ययाति ने इस सम्पूर्ण वसुधा को जीत कर उशना की पुत्री देवयानी को अपनी पत्नी बनाया था ॥४॥ तथा वृषपर्वा की पुत्री असुरी शर्म्मिष्ठा को भी अपनी पत्नी बना लिया था । उस देवयानी ने यदु और तुर्वसु नाम वाले पुत्रो को जन्म दिया था ॥५॥ वार्षपर्वणी ने द्रुह्य–अनु और पूरु को जन्म ग्रहण कराया था जिसका नाम शर्म्मिष्ठा था । इन्द्र देव ने परम प्रसन्न होकर उसको एक अधिक भास्वर रथ प्रदान कर दिया था ॥६॥ यह रथ सुवर्ण का परम दिव्य अङ्गद और उत्तम अश्वो से युक्त था जिनका वेग मन के ही समान था और इनका वर्ण परम शुभ्र था । जिसके द्वारा वह समुद्वहन का काय्य किया करता था ॥७॥

स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेणाजयन्महीम् ।
ययातियुँधि दुद्ध षस्तथा देवान् सदानवान् ॥८
स रथ कौरवाणा तु सर्व्वेषाममवत्तदा ।
सवत्त वसुनामस्तु कौरवाज्जनमेजयात् ॥९

कुरो पुत्रस्य राजेन्द्रराज पारिक्षितस्य ह ।
जगाम स रथो नाश शापाद्गर्गस्य धीमत ॥१०
गर्गस्य हि सुत वाल स राजा जनमेजय ।
कालेन हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप स ॥११
स लोहगन्धो राजर्षि परिधावन्नितस्तत ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म्म कर्हिचित् ॥१२
तत स दु खसन्तप्तो नालभत्संविद क्वचित् ।
विप्रेन्द्र शौनक राजा शरण प्रत्यपद्यत ॥१३
याजयामास च ज्ञानी शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजान पावनार्थं द्विजोत्तमा ॥१४

उस राजा ययाति ने उस परम प्रमुख रथ के द्वारा छँ ही रात्रियो में समस्त भूमि को जीत लिया था। राजा ययाति दोनो तथा दानवो के द्वारा बहुत दुर्धर्ष था और युद्ध म उसे कोई भी जीत नही सकता था ऐसा महान् बलवान् था ॥८॥ वह रथ उस समय समस्त कौरवो का हो गया था। कौरव जनमेजय से सवर्त्त वसु नाम वाला उत्पन्न हुआ था। राजेन्द्रो का राजा कुरु के पुत्र पारिक्षित वृहद्रथ परम धीमान् गर्ग के शाप से नाश को प्राप्त हो गया था ॥६ १०॥ उस राजा जानमेजय ने गर्ग के बालक पुत्र को मार दिया था और वह फिर ब्रह्महत्या को प्राप्त हो गया था ॥११॥ वह लोहगन्ध राजर्षि इधर उधर भागता हुआ पुरवासी और देशवासियो के द्वारा त्याग दिया गया था तथा उस महती ब्रह्महत्या के कारण से उसने कही पर भी शान्ति प्राप्त नही की थी ॥१२॥ इसके पश्चात् परम दु ख से सतप्त उस राजा ने कही पर भी सुस्थिरता का लाभ प्राप्त नहीं किया था और विप्रेन्द्र शौनक जी के समीप म पहुच शरण ग्रहण की थी ॥१३॥ उस परम ज्ञानी शौनक ने उस जनमजय से यजन कराया था। हे द्विजोत्तमो ! उस राजा को पावन बनाने के लिये उससे अश्वमेध यज्ञ का यजन कराया था ॥१४॥

स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह ।
स च दिव्यरथो राज्ञो वशाश्चे दिपतेस्तदा ॥१५

दत्त. शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्‌बृहद्रथः ।
बृहद्रथात्क्रमेणैव गतो वार्हद्रथं नृपम् ॥१६
ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥१७
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ।
विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुषस्तदा ॥१८
ययातिर्दिशि पूर्व्वस्यां यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत् ।
मध्ये पूरुं च राजानमभ्यषिञ्चत् स नाहुषः ॥१९
दिशि दक्षिणपूर्व्वस्यां तुर्व्वसुं मतिमान्नृप ।
तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥२०
यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते ।
प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः ॥२१

उसके अपभृत्य को प्राप्त करके उसका वह लोहगन्ध विनष्ट हुआ था और वह दिव्य रथ उस समय में चैदिपति के अधीनता में था ॥१५॥ प्रसन्न होकर इन्द्रदेव ने दिया था और उससे बृहद्रथ ने प्राप्त किया था। क्रम से बृहद्रथ से बार्हद्रथ नृपति को प्राप्त हुआ था ॥१६॥ इसके अनन्तर भीम ने राजा जरासन्ध का हनन करके उस अत्युत्तम रथ को कौरव नन्दन ने प्रीति के साथ भगवान् वासुदेवजी को समर्पित कर दिया था ॥१७॥ उस नहुष के पुत्र राजा ययाति ने सातों द्वीपों वाली सागरों के सहित पृथ्वी को जीतकर अपने पाँचों पुत्रों के लिये पाँच भागों में उसका विभाजन करे दिया था ॥१८॥ राजा ययाति ने पूर्व दिशा में अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियोजित किया था। उस नहुष के पुत्र राजा ययाति ने मध्य देश में पूरु को अभिषिक्त कर दिया था ॥१९॥ मतिमान् नृप ने दक्षिण पूर्व दिशा में तुर्वसु नामक पुत्र को नियोजित कर दिया था। उन सबके द्वारा उस सातों द्वीपों वाली पत्तनों के सहित समस्त पृथ्वी को यथा प्रदेश के अनुसार धर्म पूर्वक पालन किया जाता था। हे मुनिश्रेष्ठो ! अब पहिले उनकी प्रजाओं के विषय में वर्णन करेंगे ॥२०–२१॥

धनुर्यस्य पृषत्काश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः ।
जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥२२
निक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः ।
प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥२३
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत् ।
जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै ॥२४
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् ।
जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२५
अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२६
जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः ।
तस्माज्जरां न तेन राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥२७
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ।
प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥२८
स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम् ॥२९

पाँच श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा समस्त भार ग्रहण कर लेने पर उस राजा ने धनुष को पृषत्कों को न्यस्त कर दिया था। बन्धुओं पर भार को रखकर राजा जरा वाला अर्थात् वृद्ध हो गया था ॥२२॥ शस्त्रों के निक्षिप्त करने वाला वह राजा समस्त पृथ्वी पर विचरण किया करता था। वह अपराजित राजा ययाति परम प्रीति वाला हो गया ॥२३॥ इस प्रकार से समस्त पृथिवी का विभाजन करके राजा ययाति अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु से बोला था—हे पुत्र ! कुछ समय के लिये तुम मेरी वृद्धावस्था को ग्रहण कर लो क्यों कि मुझे कुछ कृत्य अभी करना है अतएव अपना यौवन मुझे देदो ॥२४॥ हे पुत्र ! तुम्हारे इस तरुण रूप को ग्रहण कर मैं इस पृथिवी पर विचरण करूँगा—ऐसी मेरी इच्छा है। इस अपनी वृद्धावस्था को तुमको देदेना चाहता हूँ। यह पिता का वचन सुनकर यदु ने इसका उत्तर दिया ॥२५॥ यदु ने कहा—मैंने भिक्षा

निर्दिष्ट नहीं की है जो कि ब्राह्मण की प्रतिश्रुत कर दी है। हे राजन् ! उसको अपाकृत न करके मैं आपकी इस जरावस्था को ग्रहण नहीं करूंगा ॥२६॥ इस जरा (वृद्धावस्था) मे तो खान-पान सम्बन्धी बहुत से दोष हुआ करते हैं इस कारण से हे राजन् ! मैं आपकी इस वृद्धता को लेने का उत्साह ही नहीं करता हूं ॥२७॥ हे नृप ! आपके तो मुझसे भी अधिक प्यारे बहुत से पुत्र हैं। हे धर्म के ज्ञाता राजन् ! इस जरा को ग्रहण करने के लिये किसी अन्य पुत्र का वरण करिए ॥२८॥ जब उस यदु नामक पुत्र के द्वारा राजा से इस प्रकार से कहा गया था तो वह राजा क्रोध से युक्त होकर बोलने वालों मे श्रेष्ठ राजा ययाति अपने पुत्र की निन्दा करते हुए बोले—॥२९॥

क आश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते ।
मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदहं तव देशिकः ॥३०
एवमुक्तो यदुं विप्रा शशापैन स मन्युमान् ।
अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न संशयः ॥३१
द्रुह्युं च तुर्वसुं चैवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः ।
एवमवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥३२
शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः ।
यथावत् कथितं सर्वं मयास्य द्विजसत्तमाः ॥३३
एवं शप्त्वा सुतान् सर्वाश्चितुरः पूरुपूर्वजान् ।
तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भो द्विजाः ॥३४
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् ।
जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥३५

ययाति ने कहा—हे दुष्ट बुद्धि वाले ! तेरा अन्य कौन-सा आश्रय है अथवा कौन सा धर्म तेरे द्वारा किया जाता है जिससे तू मेरा अनादर कर रहा है क्योंकि मैं तेरा आचार्य हूं। तात्पर्य यह है कि मुझ आचार्य का अनादर करके कोई भी आश्रम और धर्म्म नहीं किया जा सकता है ॥३०॥ हे विप्रगण ! इस तरह से यदु को कह कर उसने उसको शाप दे दिया क्योंकि वह बहुत ही कुपित हो गया था—हे मूढ ! तेरी प्रजा

राज्य हीन होगी—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३१॥ हे सत्तमो ! इसके पश्चात् उस राजा ययाति ने अपने पुत्र द्रुह्यु तुर्व्वसु और अनु से भी इसी तरह से जाकर अपनी जरा लेकर यौवन देने की बात कही और उन सबने भी राजा के वचनों का खण्डन कर दिया अर्थात् किसी ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं किया ॥३२॥ उस अपराजित राजा ययाति ने अत्यधिक क्रोधित होकर उन सबको भी शाप दे दिया । हे द्विज सत्तमो ! इसके विषय में मैंने यथावत् सब कह दिया है ॥३३॥ इस तरह पूरु से पहिले समुत्पन्न हुए अर्थात् बड़े भाइयों को सभी पुत्रों को चारों को राजा ने शाप दे दिया क्योंकि उन चारों ने अपने पिता के वचनों को शिरोधार्य न कर बुरी तरह से ठुकरा दिया था । इसके अनन्तर यही वचन राजा ने अपने सुत पूरु से भी आकर कहा ॥३४॥ वह वचन यही था कि मैं तरुण होकर और तेरे इस तारुण्य के रूप को ग्रहण करके अब समस्त पृथ्वी पर विचरण करना चाहता हूँ और मैं अपनी इस वृद्धता को तुझको देकर ऐसा विहार करूँगा यदि हे पूरो ! तुझे यह मेरी जरा को ग्रहण करना स्वीकार हो ॥३५॥

स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान् ।
ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्य्यचरन् महीम् ॥३६
स मार्गमाण कामानामन्तं नृपतिसत्तमः ।
विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥३७
यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च नराधिपः ।
तदा पूरोः सकाशाद्वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥३८
यत्र गाथा मुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना ।
याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्व्वं ह्यङ्गानि कूर्म्मवत् ॥३९
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥४०
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्व्वमिति कृत्वा न मुह्यति ॥४१

यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम् ।
कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।४२

उस प्रतापवान् पूरु ने अपने पिता ययाति की उस जरा को ग्रहण कर लिया और फिर राजा ययाति भी पूरु के रूप को लेकर पृथ्वी पर परिचरण करने लग गया ।।३६।। सब नृपों मे श्रेष्ठ वह राजा अपनी काम वासनाओं की समाप्ति की खोज करता हुआ वह चैत्ररथ वन में विश्वाची अप्सरा के साथ एव रमण किया करता रहा। जिस समय में काम वासनाओं में और भोगो के उपभोग करने मे वह राजा तृप्त हो गया तो फिर आकर उसने अपने पुत्र पूरु से अपनी वृद्धावस्था को वापिस ले लिया ।।३७–३८।। हे मुनिगणो ! राजा ययाति ने जहां पर यह गाथा गायी थी, जिनके द्वारा कानों को प्रत्याहृत करना चाहिए । और सब लोग जैसे कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ कर अन्दर लेलिया करता है वैसे ही काम वासनाओं को भी सकुचित किया करें। कामों के अधिकाधिक उपभोग करने से काम वासनाऐं कभी भी शान्त नहीं हुआ करती हैं प्रत्युत अधिक बढ़ जाया करती हैं जिस तरह हवि के जलने से अग्नि विशेष प्रदीप्त हो जाती है ।।३९–४०।। इस पृथ्वी में जितने भी व्रीहियव-हिरण्य-पशु और स्त्रियां हैं वे सब एक की भी काम-वासनाओं को पूर्ण करने मे समर्थ नही हैं—यह समझ कर मोह को प्राप्त नही होना चाहिए ।।४१।। जब समस्त प्राणियों मे पाप की भावना नहीं करता है और कर्म-वचन तथा मन से किसी भी तरह से पाप की भावना को त्याग देता है तभी यह प्राणी ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त किया करता है ।।४२।।

यदा तेभ्यो न बिभेति यदा चास्मान्न विभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।४३
या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्य्यति जीर्य्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ।।४४
जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः ।
धनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्य्यति ।।४५

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोड़शीं कलाम् ॥४६
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् ।
कालेन महता चायं चचार विपुलं तपः ॥४७
भृगुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशाः ।
अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४८
तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्व्वा सूर्य्यस्येव गभस्तिभिः ॥४९
यदोस्तु वंशं वक्ष्यामि शृणुध्वं राजसत्कृतम् ।
यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥५०
सुस्थः प्रजावानायुष्मान् कीर्त्तिमांश्च भवेन्नरः ।
ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१

जब उससे यह भयभीत नहीं होता है और इससे भी कोई भय प्राप्त नहीं किया करता है। और जब यह कुछ भी इच्छा नहीं रखता है और न किसी से द्वेष किया करता है तभी ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त हुआ करता है ॥४३॥ जो बुरी बुद्धि वालों के द्वारा परम दुस्त्यज है और जो जराजीर्ण होने पर भी कभी जीर्ण नहीं हुआ करती है तथा जो ऐसा एक महान् भयानक रोग है कि प्राणों के अन्त तक लगा ही रहता है तथा प्राणों का अन्त ही कर दिया करता है उस तृष्णा को त्याग देने वाले ही को सुख मिला करता है। जरा से जीर्ण होने वाले पुरुष के केश भी श्वेत होकर जीर्ण हो जाया करते हैं तथा दांत भी जीर्ण होकर उखड़ जाते हैं किन्तु ये सब तो जीवन के साथी पक कर नष्ट हो जाते हैं मगर धन की आशा और जीवित बने रहने की आशाऐं दोनों ऐसी प्रबल हैं कि जरा जीर्ण हो जाने पर जीर्ण नहीं हुआ करती है ॥४४-४५॥ जो इस लोक में कामों के उपभोग करने में सुख का अनुभव होता है और जो दिव्य स्वर्गादि लोकों के निवास करने का महान् सुख होता है ये सब तृष्णा के क्षय के हो जाने से जो सुख प्राप्त होता है उस सुख का सोलहवाँ भी भाग नहीं होता है ॥४६॥ इस प्रकार से तृष्णा के त्याग

का महत्त्व बतला कर उस राजा ययाति ने स्त्री के सहित वन में प्रवेश कर लिया और बहुत समय पर्यन्त इसने परम दारुण तप किया ॥४७॥ उस महान् यशस्वी राजा ने तपश्चर्या के अन्त में भृगु तुङ्ग में सुगति को प्राप्त किया। अशन का त्याग करके अपने देह का त्याग कर दिया तथा अपनी दारा के साथ ही उसने स्वर्ग को प्राप्त कर लिया ॥४८॥ हे मुनि श्रेष्ठो! उस राजा ययाति के वंश में पाँच राजर्षियों में श्रेष्ठ हुए थे। उन सबने सूर्य देव की किरणों के जाल के ही समान समस्त पृथ्वी को व्याप्त कर लिया ॥४९॥ अब मैं यदु के वंश का वर्णन करूँगा जो राजाओं के द्वारा सत्कार किया गया था। उसका आप लोग श्रवण करो जिसमें वृष्णि कुल के उद्वहन करने वाले भगवान् हरि नारायण ने स्वयं जन्म ग्रहण किया ॥५०॥ इस राजा ययाति के चरित्र का नित्य ही श्रवण किया करता है हे द्विजगणो! वह मनुष्य परम सुस्थ-प्रजा वाला-आयु से युक्त और कीर्त्तिमान् हुआ करता है ॥५१॥

---

१० —पूरुवंशवर्णन

पूरोर्वंशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः।
द्रुह्यस्यानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक पृथक् ॥१
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पूरोर्वंशं महात्मनः।
विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथम वदतो मम ॥२
पूरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः।
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥३
तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा नाम पार्थिवः।
सुधन्वनः सुबाहुश्च रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः ॥४
रौद्राश्वस्य दशार्णेयुः कृकणेयुस्तथैव च।
कक्षेयुस्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ॥५
ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च महाबलः।
धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः ॥६

भद्रा शूद्राच मद्राच शलदामलदा तथा।
खलदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च ॥७

ब्राह्मणो ने कहा—हे सूतजी! हम सब लोग अब राजा पूरु के वंश का वर्णन तात्त्विक रूप से श्रवण करना चाहते हैं तथा द्रुह्यु-अनु-यदु और तुर्वसु के वंश को पृथक्‌ रूप श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥ श्री लोम हर्षण जी ने कहा—हे मुनि शार्दूलो! अब आप लोग महात्मा पूरु के वंश को सुनिए। मैं सब से प्रथम आनुपूर्वी के साथ विस्तार पूर्वक उसका वर्णन कर रहा हूं ॥२॥ राजा पूरु के वीर्य से सुवीर पुत्र ने जन्म लिया और इस सुवीर का सुत मनस्यु हुआ। अभयद नाम वाला राजा मनस्यु का पुत्र हुआ ॥३॥ इस अभयद का दायाद सुधन्वा नाम वाला नृप हुआ। सुधन्वा के पुत्र का नाम सुबाहु था तथा इसका आत्मज रौद्राश्व उत्पन्न हुआ ॥४॥ रौद्राश्व के कई पुत्र समुत्पन्न हुए। उनके नाम ये हैं—दशार्णेयु-कृपणेयु-कक्षेयु स्थण्डिलेयु-सन्नतेयु-ऋचेयु-जलेयु-महाबलवान् स्थलेयुण्धनेयु और वनेयु ये सब पुत्र उत्पन्न हुए थे। तथा दश स्त्रियाँ थीं—भद्रा-शूद्रा-मद्रा-शलदा मलदा-हे विप्रो! खलदा-नलदा और सुरसा ये सब थी ॥५—७॥

तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश।
ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे च तासां भर्ता प्रभाकरः ॥८
भद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्।
स्वर्भानुना हते सूर्य्ये पतमाने दिवो महीम् ॥९
तमोभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्त्तिता।
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त्या वै पतमानो दिवाकरः ॥१०
वचनात्तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम्।
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः ॥११
यज्ञेष्वत्रेर्बलञ्चैव देवैर्यस्य प्रतिष्ठितम्।
स तासु जनयामास पुत्रिकास्वात्मकामजान् ॥१२
दश पुत्रान् महासत्त्वांस्तपस्युग्रे रतांस्तथा।
ते तु गोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगाः ॥१३

स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता किन्त्व निधनवर्जिताः ।
कक्षेयोस्तनयास्त्वासंस्त्रय एव महारथाः ॥१४

इसी प्रकार से गो चपला और स्त्री रत्न कूटा थी । ये कुल सब दश संख्या में थी । अत्रि के वंश में ऋषि सुत समुत्पन्न हुआ । उन सबका भर्त्ता प्रभाकर था ॥८॥ भद्रा नाम वाली पत्नी में परम यशस्वी सोम सुत को जन्म ग्रहण कराया । स्वर्भानु के द्वारा सूर्य देव के हनन किये जाने पर तथा दिवलोक से भूमि पर गिर जाने पर समस्त लोक के अन्धकार से आवृत हो जाने पर जिसने प्रभा को प्रवर्तित किया । जब दिवाकर का पतन हुआ तो गिरते हुए दिवाकर से यह कहा कि तेरा कल्याण होवे ॥९-१०॥ उस विप्रर्षि के वचन के प्रभाव से वह दिवलोक से मही पर नहीं गिरा । जिस महान् तपस्वी ने अत्रि श्रेष्ठ गोत्रों को कर दिया ॥११॥ जिस अत्रि के यज्ञों में देवों के द्वारा बल को प्रतिष्ठित किया गया, उन पुत्रिकाओं में उसने आत्मजों को जन्म ग्रहण कराया ॥१२॥ इस तरह से दश पुत्रों को जन्म दिया जो परम उग्र तपश्चर्या में निरत थे । हे विप्रो ! वेदों के पारगामी ऋषिगण गोत्र करने वाले थे ॥१३॥ वे सब "स्वस्त्यात्रेय" इस नाम से विख्यात हुए किन्तु निधन से वे वर्जित थे । कक्षेयु के तनय बड़े महारथी तीन ही हुए थे ॥१४॥

सभानरश्चाक्षुषश्च परमन्युस्तथैव च ।
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१५
कालानलस्य धर्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः ।
सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१६
जनमेजयो मुनिश्रेष्ठाः पुरञ्जयसुतोऽभवत् ।
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः ॥१७
देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि ।
महामना नाम सुतो महाशालस्य विश्रुतः ॥१८
जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहामनाः ।
महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भो द्विजाः ॥१९

उशीनरञ्च धर्म्मज्ञं तितिक्षुञ्च महाबलम् ।
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ॥२०
नृगा कृमिर्नवा दर्व्वा पञ्चमी च दृषद्वती ।
उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ॥२१

उन तीनो के शुभ नाम सभानर-चाक्षुप और परमन्यु ये थे । सभानर का पुत्र परम विद्वान् कालानल नृप हुआ ॥१५॥ कालानल का सुत धर्म का ज्ञाता सृञ्जय नाम वाला उत्पन्न हुआ । इस सृञ्जय के वीर्य से परम वीर पुरञ्जय नाम वाले राजा ने जन्म प्राप्त किया ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! राजा पुरञ्जय का आत्मज जनमेजय समुत्पन्न हुआ । उस राजर्षि जनमेजय का आत्मज महाशाल हुआ ॥१६-१७॥ महाशाल के पुत्र का नाम महामना था जो देवगणो मे भी ज्ञात था और भूलोक मे अपने यश को प्रतिष्ठापित करने वाला परम विश्रुत हुआ ॥१८॥ सुरगणो के द्वारा वन्दित महामना ने जन्म धारण करके हे द्विजगणो ! अपने वीर्य से दो पुत्रो को जन्म ग्रहण कराया ॥१६॥ उनमे एक का नाम उशी नर था जो बहुत बडा धर्म का ज्ञाता हुआ था और दूसरा तितिक्षु नाम वाला था जो परम महान् बलवान् था । उशीनर की पाँच राजर्षियों के वंश मे समुत्पन्न पत्नियाँ थी । उनके शुभ नाम ये थे=मृगा-कृमिनवा-दर्वा और पाँचवी दृषद्वती थी । उन पाँचो पत्नियो के गर्भो से उस राजा उशीनर के पाँच कुल के उद्वहन करने वाले सत्पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥२०-२१॥

तपसा चैव महता जाता वृद्धस्य चात्मजाः ।
नृगायास्तु नृग. पुत्र. कृम्या कृमिरजायत ॥२२
नवायास्तु नव. पुत्रो दर्व्वाया. सुव्रतोऽभवत् ।
दृषद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिविरौशीनरो नृपः ॥२३
शिवेस्तु शिवयो विप्रा यौधेयास्तु नृगस्य ह ।
नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ॥२४
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठाः शिविपुत्रान्निबोधत ।
शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥२५

वृषदर्भः सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा ।
तेषां जनपदाः स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥२६
वृषदर्भा. सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमा ।
तितिक्षुरभवद्राजा पूर्व्वस्यां दिशि भो द्विजाः ॥२७
उपद्रथो महावीर्य्यः फेनस्तस्य सुतोऽभवत् ।
फेनस्य सुतपा जज्ञे ततः सुतपसो बलिः ॥२८

इसने जब महान् तपस्या की तब वृद्ध होने पर ही ये पुत्र उत्पन्न हुए थे। नृगा पत्नी के गर्भ से नृग नामधारी पुत्र हुआ कृमि से कृमि उत्पन्न हुआ ॥२२॥ नवा के पुत्र का नाम भी नव तथा दर्वा के पुत्र का नाम सुव्रत हुआ। दृषद्वती पत्नी ने शिवि औशीनर समुत्पन्न किये ॥२३॥ हे विप्रगण ! राजा शिवि के पुत्र शिविय और नृग के पुत्र यौधेय कहलाये गये। नव का नवराष्ट्र तथा कृमि की कृमिजा पुरी राजधानी थी ॥२४॥ राजा सुव्रत के अम्बष्ठ हुए। अब राजा शिवि के पुत्रों के विषय मे समझ लो। राजा शिवि के जो शिवय नामधारी चार पुत्र हुए ये लोकों मे परम प्रसिद्ध थे ॥२५॥ वृषदर्भ-सुवीर केकय और मद्रक ये उन चारों के नाम थे। उनके जो जनपद थे वे बहुत विस्तृत और केकय तथा मद्रक नाम वाले थे ॥ ६॥ राजा तितिक्षु की प्रजा वृषदर्भ और सुवीर थी। हे द्विजो ! तितिक्षु पूर्व दिशा मे राजा हुआ। महान् वीर्य उपद्रथ फेन उसका पुत्र हुआ। इस फेन के यहाँ सुतपा ने जन्म लिया और फिर सुतपा से बलि उत्पन्न हुआ ॥२८॥

जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः ।
महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा ॥२९
पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि ।
अङ्गः प्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्मस्तथैव च ॥३०
पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा वालेयं क्षत्रमुच्यते ।
वालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि ॥३१
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन भो द्विजा. ।
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ॥३२

बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ।
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रधानताम् ॥३३

त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्य प्रसवे तथा ।
चतुरो नियतान् वर्णास्त्वञ्च स्थापयितेति च ॥३४

इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्ति परां ययौ ।
कालेन महता विप्राः स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥३५

सुवर्ण का धनुष बाण धारण करने वाला उस बलि ने मानुष योनि में ही जन्म ग्रहण किया राजा बलि ने वंश के चलाने वाले भूलोक में पाँच पुत्रों को जन्म दिया। सबसे प्रथम अङ्ग ने जन्म लिया फिर सुह्म समुत्पन्न हुआ और वङ्ग हुआ इसी प्रकार से पुण्ड्र और कलिङ्ग उत्पन्न हुए। यह बालेय क्षत्र नाम से कहा जाया करता है। भूलोक में बालेय और ब्राह्मण उसके वंश चलाने वाले हुए हैं। हे द्विजगण! ब्रह्माजी ने परम प्रसन्न होकर ही बलि को वरदान दिया। श्री ब्रह्माजी ने यह कहा कि तुम में महायोगित्व होगा और एक कल्प के परिमाण पर्यन्त तुम्हारी आयु होगी ॥३०-३२॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे बले! तुम अप्रतिम होओगे अर्थात् संसार में तुम्हारी समानता रखने वाला अन्य कोई भी नहीं होगा। तुम्हारे हृदय में धर्म के तत्व का सही अर्थ दर्शन होगा—संग्राम में अजेयता होगी तथा धर्म में प्रधानता होगी ॥३३॥ प्रसव में ही यह प्रधानता होगी कि त्रैलोक्य का दर्शन होगा। तुम ऐसे प्रभाव वाले होओगे कि चार नियत वर्णों को स्थापित करोगे ॥३४॥ जब इस प्रकार से परमेष्ठी के द्वारा उस राजा बलि से कहा गया था तो बलि ने परमा शान्ति प्राप्त की और फिर बहुत काल के पश्चात् वह अपने निवास स्थान पर वापिस आ गया ॥३५॥

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा वङ्गाः ससुह्मकाः ।
कालिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य ताः स्मृताः ॥३६

अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः ।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥३७

ऋचेयोस्तनमो राजा मतिनारो महीपतिः ।
मतिनारसुतास्त्वासंस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥५१
वसुरोधः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्मिकः ।
सर्व्वे वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥५२
इला नाम तु यस्यासीत् कन्या वै मुनिसत्तमाः ।
ब्रह्मवादिन्यधिस्त्री सा तसुस्तामभ्यगच्छत ॥५३
तसोः सुतोऽथ राजर्षिर्धर्म्मनेत्रः प्रतापवान् ।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्य्योपदानवी ॥५४
उपदानवी ततः पुत्रांश्चतुरोऽजनयच्छुभान् ।
दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥५५
दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्य्यवान् ।
स सर्व्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥५६

हे मुनिगणो ! रौद्राश्व के तनय का ऋचेय था । हे द्विजगण ! उस राजा के वंश का मैं वर्णन करता हूँ अब आप लोग समाहित होकर श्रवण करिए ॥५०॥ ऋचेय का पुत्र राजा मतिनार हुआ, उसके वीर्य से तीन सुत परम धार्मिक उत्पन्न हुए ॥५१॥ उनके नाम सुरोध प्रतिरथ और सुबाहु थे । ये सब परम धार्मिक वेदों के ज्ञाता और सत्यवादी एक ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले थे ॥५२॥ हे मुनिगण ! जिसकी इला नाम वाली एक कन्या थी वह ब्रह्मवादिनी अधिस्त्री थी । तसु ने उसके साथ विवाह किया था ॥५ ॥ इस तसु का आत्मज बडे ही प्रताप वाला राजर्षि धर्मनेत्र हुआ । यह बड़ा ब्रह्मवादी और पराक्रान्त था तथा इसकी भार्या दानवी थी । उस उप दानवी ने अपने गर्भ से परम शुभ चार पुत्रों को जन्म दिया । उन चारों सुतों के नाम दुष्मन्त-सुष्मन्त प्रवीर और अनघ ये थे ॥५४-५५॥ इसी दुष्यन्त का पुत्र महान् वीर्य वाला भरत नाम वाला हुआ जिसके नाम से इस देश का नाम भारत हुआ है । वह भरत सवदमन था अर्थात् सबके दमन करने वाला हुआ और वह महान तथा दश हजार नागों के समान बल वाला हुआ ॥५६॥

चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः ।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः ॥५७
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः ।
मातृणां तु प्रकोपेण मया तत्कथितं पुरा ॥५८
बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः ।
अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥५९
पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ।
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजात्सुतोऽभवत् ॥६०
ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ ।
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ॥६१
स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै ।
सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च ॥६२
कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ।
काशिकञ्च महासत्त्वं तथा गृत्समतिं नृपम् ॥६३

महात्मा दुष्यन्त के वीर्य से चक्रवर्ती पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। यह भरत शकुन्तला के उदर से समुत्पन्न हुआ जिसके शुभ नाम से भारत नाम पड़ा ॥५७॥ राजा भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर माताओं का प्रकोप हो गया। यह वर्णन हम पहिले ही कर चुके हैं ॥५८॥ आङ्गिरस बृहस्पति का पुत्र विप्र महामुनि था। उस विभु भरद्वाज ने महान् क्रतुओं के द्वारा यजन किया ॥५९॥ पूर्व में उसके पुत्र जन्म के वितथ करने पर इसके पश्चात् वितथ नाम वाला भरद्वाज मुनि का पुत्र हुआ ॥६०॥ इसके अनन्तर वितथ के समुत्पन्न होने पर भरत राजा दिवलोक वासी हो गये। भरद्वाज मुनि ने राज्यासन पर वितथ को अभिषिक्त करके वह फिर वन में चले गये ॥६१॥ उस वितथ ने भी पाँच पुत्रों को जन्म दिया। उनके नाम सुहोत्र-सुहोता-गय-गर्ग और कपिल थे। कपिल बहुत बड़े महात्मा थे। इसके पश्चात् सुहोत्र ने भी दो पुत्रों को उत्पादित किया। महासत्व काशिक तथा गृत्समति नृप ये उन दोनों पुत्रों के शुभ नाम थे ॥६२-६३॥

तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।
काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४
बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः ।
धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥६५
तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः ।
पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६
दिवोदास इति ख्यातः सर्वशत्रुप्रणाशनः ।
दिवोदासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्द्दनः ॥६७
प्रतर्द्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो भार्गव एव च ।
अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् भुवि ॥६८
हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः ।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ।
दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥७०

गृत्समिति के पुत्र ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य थे। काशिक का काशेय दीर्घतपा नाम वाला सुत समुत्पन्न हुआ ॥६४॥ इस दीर्घतपा का दायाद परम विद्वान् धन्वन्तरि उत्पन्न हुआ। इस धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् के नाम से प्रख्यात हुआ ॥६५॥ उस केतुमान् तनय बड़ा विद्वान् भीमरथ कहा गया था। भीमरथ का भी पुत्र वाराणसी का स्वामी हुआ था ॥६६॥ दिवोदास इस नाम से प्रख्यात हुआ। यह समस्त शत्रुओं का विनाश कर देने वाला था। इस राजा दिवोदास का आत्मज परम वीर राजा प्रतर्द्दन नामधारी उत्पन्न हुआ ॥६७॥ राजा प्रतर्द्दन के वत्स तथा भार्गव नाम वाले दो पुत्रों ने जन्म लिया। अलर्क राजपुत्र भूमि पर अच्छी मति वाला राजा था ॥६८॥ इस महीपति ने हैहय के दायाद्य को बलपूर्वक हरण कर लिया और अपने पिता के दायाद्य का भी आहरण कर लिया जो कि दिवोदास के द्वारा बल से हृत किया था ॥६९॥ मैत्रेय के पुत्र महात्मा-दुदम दिवोदास ने 'यह बच्चा है—यह विचार करके दया से इसको छोड़ दिया ॥७०॥

अष्टारथो नाम नृप सुतो भीमरथस्य वै ।
तेन पुत्रेणबालस्य प्रहृत तस्य भो द्विजा. ॥७१
वैरस्यान्त मुनिश्रेष्ठा. क्षत्रियेण विधित्सता ।
अलर्क काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२

षष्टि वर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ॥
युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः ॥७३
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः ।
वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४

रम्या निवेशयामास पुरी वाराणसी नृपः ।
अलर्कस्य तु दायादः क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५
क्षेमकस्य तु पुत्रो वै वर्षकेतुस्ततोऽभवत् ।
वर्षकेतोश्च दायदो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥७६

आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततोऽभवत् ।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः ॥७७

अष्टारथ नाम वाला राजा भीमरथ का पुत्र था । हे द्विजगणो ! उस पुत्र के द्वारा उस बालक का जो भी कुछ प्रहृत था उसको हे मुनिगणो ! और उस क्षत्रिय ने वैर का अन्त कर देने की इच्छा की । काशीराज जो अलर्क था वह ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला और सत्यसङ्गर था ॥७१-७२॥ वह काशिकुलोद्वह साठ सौ साठ हजार वर्ष तक रूप से सुसम्पन्न युवा था ॥७३॥ उसने लोपामुद्रा की कृपा से परम आयु प्राप्त की थी । हे मुनिगणो ! अपनी अवस्था के अन्त में उसने क्षेमक राक्षस का हनन कर दिया ॥७४॥ उस नृप ने वाराणसी पुरी को परम रम्य निवेशित किया । अलर्क का पुत्र क्षेमक नाम वाला पार्थिव हुआ ॥७५॥ क्षेमक के सुत का नाम वर्ष केतु था । इस वर्षकेतु का दायाद विभु नामधारी प्रजेश्वर था ॥७६॥ विभु का पुत्र आनर्त उत्पन्न हुआ । उस से फिर सुकुमार हुआ । इस सुकुमार का सुत महारथ सत्यकेतु ने जन्म ग्रहण किया ॥७७॥

सुतोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्म्मिकः ।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु भार्गवात् ॥७८
एते ह्यङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥७९
आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां द्विजसत्तमाः ।
सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः ॥८०
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्य्यवान् ।
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै यशसान्विता ॥८१
नीली च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गनाः ।
अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान् ॥८२
आजह्रे यो महासत्रं सर्व्वमेधमखं विभुम् ।
पतिलोभेन यं गङ्गा विनीतेव ससार ह ॥८३
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा च तत्सदः ।
तत्सया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥८४

यह पुत्र महान् तेजस्वी राजा परम धार्मिक था वत्स का पुत्र वत्स भूमि और भार्गव से भर्ग भूमि ने जन्म प्राप्त किया ॥७८॥ ये सब अङ्गिरा ऋषि के पुत्र भार्गव वंश में समुत्पन्न हुए थे । हे मुनिगणो ! ये ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र थे ॥७९॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! आजमीढ दूसरा वंश था उसका भी श्रवण कर लो। सुहोत्र का पुत्र बृहत्पुत्र हुआ और बृहत् के तीन आत्मज हुए ॥८०॥ वे तीनों अजमीढ द्विमीढ और वीर्यवान् पुरुमीढ हुए । राजा अजमीढ की तीन पत्नियाँ बहुत यशस्विनी थी ॥८१॥ उनके शुभ नाम नीली केशिनी और वराङ्गना धूमिनी थे । उस राजा अजमीढ की जो पत्नी केशिनी थी उसके गर्भ से परम प्रतापी राजा जह्नु ने जन्म प्राप्त किया ॥८२॥ जिस राजा ने सर्वमेध मख विभु महा-सत्र का आहरण किया और जिसको अपना पति बना लेने के लोभ से गङ्गा ने विनीता के समान सरण किया ॥८३॥ जब उसने इसकी इच्छा नहीं प्रकट की तो उसकी सभा को गङ्गा ने प्लावित कर दिया ।

इस प्रकार से राजा जह्नु ने चारों ओर से यज्ञवाट को स्वयं उस गङ्गा के द्वारा प्लावित होते हुए देखा था ।८४।

जह्नुरप्यब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो विप्रास्तदा नृप ।
एष ते त्रिषु लोकेषु संक्षिप्यापः पिबाम्यहम् ।।८५
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।
ततः पीतां महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गां महर्षयः ।।८६
उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।
युवनाश्वस्य पुत्री तु कावेरी जह्नुरावहत् ।।८७
गङ्गाशापेन देहार्द्धं यस्याः पश्चान्नदीकृतम् ।।
जह्नोस्तु दयितः पुत्रो अजको नाम वीर्यवान् ।
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः ।।८८
बभूव मृगयाशीलः कुशिकस्तस्य चात्मजः ।
पह्नवैः सह संवृद्धो राजा वनचरैः सह ।।८९
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं विभुम् ।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ।।९०
स गाधिरभवद्राजा मघवा कौशिकः स्वयम् ।
विश्वामित्रस्तु गाधेयो विश्वामित्रात्तथाष्टकः ।।९१

उस समय में हे विप्रो ! नृप जह्नु को बड़ा क्रोध होगया और उसने गङ्गा से कहा—इस तुम्हारे सम्पूर्ण जल को संक्षिप्त करके मैं पी लेता हूँ ।।८५।। हे गङ्गे ! यह जो तुमे अपने प्रवाह से प्लावित कर देने का अभिमान हो रहा है उसका फल तू प्राप्त कर ले ।।८६।। उस महा-भागा गङ्गा दुहिता के स्वरूप में उसने ग्रहण किया और तभी से इसका नाम जाह्नवी पड़ गया । उस राजा जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी के साथ विवाह किया ।।८७।। पीछे गंगा के शाप से जिसका आधा देह नदी के रूप में कर दिया गया । उस राजा जह्नु का पुत्र महान् वीर्य वाला अजक हुआ था । इस अजक का पुत्र बलाकाश्व महीपति हुआ ।।८८।। इसका आत्मज कुशिक बहुत अधिक शिकार खेलने के स्वभाव वाला हुआ और वह राजा वनचर पह्नवों के साथ ही सम्विर्धित

हुआ ॥८६॥ उस राजा कुशिक ने बड़ा उग्र तप किया कि मैं इन्द्र के सदृश विभु पुत्र प्राप्त करूँ ॥६०॥ यह इन्द्र स्वयं कौशिक गाधि राजा हुआ। इस गाधि का सुत विश्वामित्र गाधेय हुए तथा विश्वामित्र से अष्टक हुआ ॥६१॥

अष्टकस्य सुतो लौहि प्रोक्तोजह्नुगणो मया।
आजमीढोऽपरो वंश श्रूयतां मुनिसत्तमा ॥६२
अजमीढात्तु नील्या वै सुशान्तिरुदपद्यत।
पुरुजातिः सुशान्तेश्च वाह्याश्च पुरुजातितः ॥६३
वाह्याश्वतनयाः पञ्च स्फीता जनपदावृता।
मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा वृहदिषुस्तथा ॥६४
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः।
पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ॥६५
पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः।
अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ॥६६
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः।
इन्द्रसेना यतो गर्भं ब्रध्नश्च प्रत्यपद्यत ॥६७
आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः।
सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥६८

इस अष्टक का सुत लौहि उत्पन्न हुआ जिसको मैंने जह्नुगण बतलाया था। अब हे मुनिगणो! दूसरा आजमीढ वंश का श्रवण करो ॥६२॥ उस राजा आजमीढ के वीर्य से नीली नामधारिणी पत्नी में सुशान्ति ने जन्म लिया। उस सुशान्ति का सुत पुरुजाति हुआ तथा फिर पुरुजाति के वीर्य से वाह्याश्व ने जन्म प्राप्त किया ॥६३॥ इस वाह्याश्व के पाँच पुत्र हुए जो बहुत विस्तृत जनपदों से समावृत थे। मुद्गल सृञ्जय-राजा वृहदिषु परम विक्रान्त यवीनर तथा पाँचवा कृमिलाश्व हुआ। ये पाँचों सम्पूर्ण देशों की रक्षा करने के लिये परम समर्थ थे—इस प्रकार से ये पाँचों प्रख्यात हुए ॥६४-६५॥ इन पाँचों के पञ्चाल स्फीत जनपदों से समावृत थे। उन विस्तृत देशों की सुरक्षा के लिये पञ्चाल परम

विश्रुत हुए ॥६६॥ राजा मुद्गल का दायाद मौद्गल्य था जो सुमहान् यश वाला हुआ। जिसके वीर्य से इन्द्रसेना ने गर्भ धारण किया और बुध्नश्व नामक पुत्र को प्राप्ति की ॥६७॥ महात्मा सृञ्जय का पुत्र पञ्चजन हुआ और पञ्चजन के सुत का नाम महीपति सोमदत्त ने जन्म लिया था ॥६८॥

सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः ।
सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः ॥६६
अजमीढसुतो जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः ।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्त पुत्रशतं बभौ ॥१००
तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः ।
आजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मानस्तु सोमकाः ॥१०१
महिषी त्वजमीढस्य धूमिना पुत्रगृद्धिनी ।
पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥१०२
सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्य्यसमन्विता ।
ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०३
हुत्वाग्नि विधिवत् सा तु पवित्रा मितभोजना ।
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप मुनिसत्तमाः ॥१०४
धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समीयिवान् ।
ऋक्ष सञ्जनयामास धूम्रवर्ण सुदर्शनम् ॥१०५

इस सोमदत्त का दायाद सहदेव था जो महान् यश से सम्पन्न था। तथा सहदेव का पुत्र सोमक नाम वाला प्रख्यात हुआ ॥६६॥ वंश के क्षीण हो जाने पर अजमीढ़ का पुत्र सोमक समुत्पन्न हुआ। इस सोमक के पुत्र का नाम जन्तु था जिसने एक सौ पुत्र इस भूमण्डल मे शोभित हुए ॥१००॥ उनमे यवीयान् पृषत था जो प्रभु द्रुपद का पिता था। ये सब आजमीढ कहे गये हैं। ये सब महान् आत्माओं वाले सोमक थे ॥१०१॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! अजमीढ की महिषी अर्थात् महाभिषिक्ता रानी पुत्र गृद्धिनी धूमिनी थी जो सत्कुलोत्पन्ना महान् भागवाली पतिव्रता थी ॥१०२॥ वह पुत्र को चाहने वाली देवी ब्रह्मचर्य व्रत से युक्त होकर —

दश हजार वर्ष तक उसने अत्यन्त कठिन तपस्या की ॥१०३॥ वह विधि पूर्वक अग्नि मे हवन करके परम पवित्र रहा करती और परिमित भोजन किया करती थी। हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! वह अग्निहोत्र के कुशाओ पर ही सो गई ॥१०४॥ उस देवी धूमिनी के साथ अजमीढ ने सहवास किया था। तब धूम्रवर्ण वाले सुदर्शन ऋक्ष को उसने जन्म दिया था ॥१०५॥

ऋक्षात् सम्वरणो जज्ञ कुरु. सम्वरणात्तथा ।
यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्र चकार ह ॥१०६
पुण्य च रमणीय च पुण्यकृद्भिर्निपेवितम् ।
तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्नाथ कौरवाः ॥१०७
कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा ।
परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥१०८
परीक्षितस्तु दायादो धार्म्मिको जनमेजयः ।
श्रुतसेनोऽग्रसेनश्च भीमसेनश्च नामत. ॥१०९
एते सर्व्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः ।
जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरथो मतिमास्तथा ॥११०
सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः ।
विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः ॥१११
द्वितीयस्तु भरद्वाजाश्नाम्ना तेनैव विश्रुतः ।
द्वावृक्षी सोमवशेऽस्मिन् द्वावेव च परीक्षितौ ॥ ११२

उस ऋक्ष से सम्वरण ने जन्म प्राप्त किया तथा फिर सम्वरण से कुरु समुत्पन्न हुआ। जिसने प्रयाग से अतिक्रमण करके कुरुक्षेत्र को किया ॥१०६॥ वह कुरुक्षेत्र परम पुण्य स्थल और अधिक रमणीय था जो कि पुण्यात्मा पुरुषो के द्वारा सेवित था। उस कुरु का वश बहुत विशाल था जिसके नाम से कौरव प्रसिद्ध हुए थे ॥१०७॥ उस महाराज कुरु के चार पुत्र हुए। सुधन्वा, सुधनु-महाबाहु परीक्षित और प्रवर अरिमेजय ये उन चारों के शुभ नाम थे ॥१०८॥ राजा परीक्षित का पुत्र परम धार्मिक जनमेजय उत्पन्न हुआ। श्रुतसेन-अग्रसेन और भीम-

सेन इन नामों वाले सभी परम विक्रान्त एवं बलशाली थे। तथा जनमेजय का पुत्र मतिमान् सुरथ समुत्पन्न हुआ था ॥१०९-११०॥ सुरथ के वीर्य से परम विक्रान्त विदूरथ ने पुत्र रूप में जन्म लिया। इस विदूरथ का दायाद महारथी ऋक्ष ही हुआ ॥१११॥ दूसरा भरद्वाज से उसी नाम से विश्रुत हुआ। इस सोम के वंश में दो ऋक्ष हुए हैं और दो ही परीक्षित भी हुए हैं ॥११२॥

भीमसेनाख्यो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयौ।
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥११३
प्रपीपो भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु शान्तनुः।
देवापिर्वाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥११४
शान्तनोस्त्वभवद्भीष्मस्तस्मिन् वंशे द्विजोत्तमाः।
वाह्लिकस्य तु राजर्षेर्वंशं शृणुत भो द्विजाः ॥११५
वाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥११६
उपाध्यायस्तु देवाना देवापिरभवन्मुनिः।
च्यवनपुत्रः कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः ॥११७
शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः।
शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वंशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११८
गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः।
स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवाना पितामहः ॥११९

हे विप्रगण ! भीमसेन तीन हुए हैं और जनमेजय भी दो हुए हैं। द्वितीय ऋक्ष का पुत्र भीमसेन हुआ ॥११३॥ उस भीमसेन के वीर्य से प्रतीप नामक सुत समुत्पन्न हुआ तथा प्रदीप का पुत्र शान्तनु हुआ। देवापि और वाह्लिक ये तीनों ही महारथ थे ॥११४॥ हे द्विजोत्तमो ! उस महाराज शान्तनु का पुत्र भीष्म हुआ और उस वंश में यह उत्पन्न हुए थे। अब हे द्विजो ! आप लोग वाह्लिक के विषय में श्रवण करो ॥११५॥ उस वाह्लिक का दायाद महान् यश वाला सोमदत्त समुत्पन्न हुआ। उस सोमदत्त के वीर्य से भूरि भूरिश्रवा और शल इनने जन्म

लिया। देवो का उपाध्याय देवापि मुनि हुआ। महात्मा च्यवन का पुत्र कृतक इष्ट था ॥११७॥ समस्त कौरवो का परम धुरन्धर शान्तनु राजा हुआ। अब हम राजा शान्तनु के तीनो लोको मे प्रसिद्ध वश का वर्णन करेंगे ॥११८॥ उस प्रभु शान्तनु ने गाङ्ग देवव्रत नाम वाले पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था। वही 'भीष्म' इस नाम से विख्यात हुए थे जो कि समस्त पाण्डवो के पितामह थे ॥११९॥

काली विचित्रवीर्य्यं तु जनयामास भो द्विजा ।
शान्तनोर्दयित पुत्र धर्म्मात्मानमकल्मषम् ॥१२०
कृष्णद्वैपायनाच्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके ।
धृतराष्ट्र च पाण्डु च विदुर चाप्यजीजनत् ॥१२१
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्या पुत्रानुत्पादयच्छतम् ।
तेषा दुर्य्योधन श्रेष्ठ सर्व्वेषामपि स प्रभु ॥१२२
पाण्डोर्धनञ्जय पुत्र सौभद्रस्तस्य चात्मज ।
अभिमन्यो परीक्षित्तु पिता पारीक्षितस्य ह ॥१२३
पारिक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु ।
चन्द्रापीडस्तु नृपति सूर्य्यापीडश्च मोक्षवित् ॥१२४
चन्द्रापीडस्य पुत्राणा शतमुत्तमधन्विनाम् ।
जानमेजयमित्येव क्षात्र भुवि परिश्रुतम् ॥१२५
तेषा ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वारणसाह्वये ।
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिण ॥१२६

हे द्विजगण ! काली ने विचित्र वीर्य को उत्पन्न किया था जो शान्तनु का परम प्रिय धर्मात्मा और कल्मष रहित पुत्र था। कृष्ण द्वैपायन से विचित्रवीर्य के क्षेत्र मे अर्थात् उसकी पत्नी के उदर से धृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर ने जन्म प्राप्त किया था ॥१२० १२१॥ धृतराष्ट्र ने गान्धारी नाम वाली पत्नी के गर्भ से एक सौ पुत्रो को उत्पन्न किया। उन सब मे दुर्योधन श्रेष्ठ था और वह सब का स्वामी बन गया था ॥१२२॥ पाण्डु का आत्मज धनञ्जय था और उसका पुत्र सौभद्र

हुआ । अभिमन्यु से परीक्षित पुत्र उत्पन्न हुआ जो पारीक्षित का पिता था ॥१२३॥ उस पारीक्षित के काशी में दो तनय उत्पन्न हुए । उनमें चन्द्रापीड़ तो नृपति हो गया तथा दूसरा जो सूर्यापीड़ था वह मोक्ष का ज्ञाता था ॥१२४॥ चन्द्रापीड़ के उत्तम धनुर्धारी एक सौ पुत्र हुए थे । यह सब जानमेजय क्षात्र भूलोक में विख्यात हुए ॥१२५॥ उस उन सब पुत्रों में जो ज्येष्ठ था वह वारणस नामक नगर में था और इसका शुभ नाम सत्यकर्ण था । यह महाबाहु और यजन करने वाला तथा बहुत अधिक दक्षिणा देने वाला हुआ ॥१२६॥

सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।
अपुत्रः स तु धर्म्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥१२७
तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।
सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मालिनी ग्राहमालिनी ॥१२८
सम्भूते स च गर्भे च श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ।
अन्वगच्छत् कृत पूर्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥१२९
सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सुचारोर्दुहिता साध्वी वने राजीवलोचना ॥१३०
पथि सा सुषुवे बाला सुकुमारं कुमारकम् ।
तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्वगच्छत ॥१३१
पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा सती ।
कुमारः सुकुमारोऽसौ गिरिपृष्ठे रुरोद ह ॥१३२
दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मनः ।
श्रविष्ठायास्तु पुत्रौ द्वौ पैप्पलादिश्च कौशिकः ॥१३३

इस सत्यकर्ण का जो सुत उत्पन्न हुआ उसका नाम श्वेतकर्ण था तथा यह बहुत प्रताप वाला था । इस धर्मात्मा के कोई भी पुत्र नहीं था अतएव इसने तपोवन में प्रवेश कर लिया था ॥१२७॥ फिर उससे वन में गयी हुई यादवी ने गर्भ धारण किया । यह सुचारु की पुत्री सुभ्रू ग्राहमालिनी थी ॥१२८॥ उस गर्भ के सम्भूत हो जाने पर प्रजेश्वर श्वेत कर्ण पूर्वकृत अच्युत महा प्रस्थान को चला गया ॥१२९॥ उस मालिनी

ने जब अपने प्रिय स्वामी को गमन करते हुए देखा तो वह भी पीछे से चली गयी। वह सुचारु की पुत्री राजीव कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली परम साध्वी थी ॥१३०॥ उस बाला ने मार्ग मे ही परम सुकुमार कुमार को जन्म ग्रहण कराया। उसने उस कुमार को वहीं पर छोड़कर वह राजा के ही पीछे २ चली गयी। यह महाभागा पतिव्रता थी और जैसे पहिले सती द्रौपदी ने अपने स्वामी का अनुसरण किया था वैसा ही इसने भी किया। वह परम सुकुमार कुमार पर्वत के ऊपर पड़ा हुआ रुदन कर रहा था ॥१३१ १३२॥ उस महात्मा के ऊपर दया करके मेघ प्रादुर्भूत हो गये थे। श्रविष्ठा के दो पुत्र थे और पैप्पलादि तथा कौशिक थे ॥१३३॥

दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तौ प्राक्षालयता जले।
निघृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलाया रुधिरप्लुतौ ॥१३४
अजश्याम स पार्श्वाभ्यां धृष्टाभ्यां सुसमाहित ।
अजश्यामौ तु तत्पार्श्वौ देवेन सम्बभूवतु ॥१३५
अथाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ।
स तु रेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्द्धित ॥१३६
रेमकस्य तु भार्य्या तमुद्वहत् पुनकारणात्।
रेमत्या स तु पुत्रोऽभूदब्राह्मणोसचिवौतु नौ ॥१३७
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविन ।
स एष पौरवो वंश पाण्डवाना महात्मनाम् ॥१३८
श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेन ययातिना।
जरासक्रमणे पूर्व तदा प्रीतेन धीमता ॥१३९
अचन्द्रार्कग्रहा भूमिभवेदियमसशयम।
अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन ॥१४०

इन्होने जिस समय मे इस कुमार को देखा तो उसको उन्होने ग्रहण कर लिया। उन्होने उसको जल मे प्रक्षालित किया था। उसके दोनो पार्श्वभाग शिला मे निघृष्ट होकर रुधिर से प्लुत हो गये ॥१३४॥ वह धृष्ट पार्श्वभागो से सुसमाहित होकर अज के समान श्याम हो गया।

देव के द्वारा उसके दोनों पार्श्वभाग अज श्याम हो गये ॥१३५॥ इसके अनन्तर उन दोनों ने उस कुमार का नाम अज पार्श्व कर दिया। फिर वह कुमार रेमकशाला मे द्विजो के द्वारा सम्वर्द्धित किया गया ॥१३६॥ रैमक की भार्या ने पुत्र होने के कारण से उसका उद्वहन किया। वह अज रेमकी का पुत्र होगया और वे दोनों ब्राह्मण सचिव हो गये ॥१३६॥ उनके पुत्र और पौत्र एक साथ तुल्यजीवी थे। यह यही महात्मा पाण्डवों का पौरव वश है ॥१३८॥ इनके विषय में नहुष के पुत्र ययाति ने एक श्लोक का गान किया। उस राजा ययाति ने जो कि परम श्रीमान् एव प्रसन्न होते हुए इस श्लोक का गान जरा (वृद्धावस्था) के सक्रमण के पूर्व मे ही किया था ॥१३९॥ उसने कहा—यह भूमि बिना किसी सशय के बिना चन्द्र सूर्य और ग्रहों वाली हो सकती है किन्तु पौरव वश इतना विशाल है कि यह भूमि पौरवो से रहित कभी भी नही होगी ॥१४०॥

एष वः पौरवो वशो विख्यातः कथितो मया।
तुर्व्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा ॥१४१
तुर्व्वसोऽस्तु सुतो वह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मज ।
गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैशानुरपराजितः ॥१४२
करन्धमस्तु त्रैशानेर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः ।
अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्त. कथितो मया ॥१४३
अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिण ।
दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपतेः ॥१४४
दक्षिणार्थ तु सा दत्ता सवर्त्ताय महात्मने ।
दुष्यन्त पौरव चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥१४५
एव ययातिशापेन जरासक्रमणे तदा ।
पौरव तुर्व्वसोर्वश प्रविवेश द्विजोत्तमा ॥१४६
दुष्यन्तस्य तु दायादः करुरोम. प्रजेश्वर.।
करुरोमादथाह्लीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजा: ॥१४७

यह पौरव वश परम विख्यात है जिसका वर्णन मैंने कर दिया है। अब तुर्वसु-द्रुह्य -अनु और यदु के वश का वर्णन मैं करके आपको श्रव-

कराऊँगा ॥१४१॥ तुर्वसु का पुत्र वह्नि उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज गोभानु हुआ। इस गोभानु का सुत अपराजित राजा त्रैशानु हुआ ॥१४२॥ त्रैशानु का आत्मज करन्धम उत्पन्न हुआ तथा मरुत् इसका पुत्र हुआ। अन्य अविर्यक्षित राजा था जो मरुत् से मैंने बतलाया था ॥१४३॥ यह राजा यजन करने वाला तथा विपुल दक्षिणा देने वाला था किन्तु यह सन्तति से हीन था। उस राजा की एक सम्मता नाम वाली पुत्री थी ॥१४४॥ उस पुत्री का समर्पण महात्मा सम्वर्त के लिये दक्षिणा के रूप में किया। उसने दुष्यन्त और अकल्मष पौरव पुत्र को प्राप्त किया ॥१४५॥ इस प्रकार से उस समय में जरा के सङ्क्रमण में ययाति के शाप से हे द्विजगणो ! पौरव तुर्वसु के वंश में प्रवेश कर गया ॥१४६॥ राजा दुष्यन्त का सुत प्रजश्वर करुरोम हुआ। इस करुरोम से इसके पश्चात् आह्लाद सुत उत्पन्न हुआ और फिर इसके चार आत्मजों ने जन्मग्रहण किया ॥१४७॥

पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिव ।
द्रुह्योश्च तनयो राजन् चक्रसेतुश्च पार्थिव ॥१४८
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते ।
यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ॥१४९
युद्ध सुमहदप्यासीन्मासान् परि चतुर्दश ।
अङ्गारसतोर्दायादो गान्धारो नाम पार्थिव ॥१५०
रयायते यस्य नामना वै गान्धारविषयो महान् ।
गान्धारदेशराश्च व तुरगा वाजिना वरा ॥१५१
अनोस्तु पुत्रो धर्म्मोऽभूद्द्युतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
द्युतादनद्रुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज ॥१५२
प्रचेतस सुचेतास्तु कीर्त्तितास्त्वनवो मया ।
वभूवुस्ते यदो पुत्रा पञ्च देवसुतोपमा ॥१५३
सहस्राद पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा ।
सहस्रादस्य दायादास्त्रय परमधार्म्मिका ॥१५४

उनके नाम पाण्ड्य-केरल-कोल और चोल पार्थिव थे। हे राजन्! द्रुह्यु का तनय बभ्रुसेतु राजा ने जन्म लिया। इस बभ्रुसेतु का पुत्र अङ्गारसेतु हुआ जो मरुतों का पति कहा जाता है। परम कृच्छ्र यौवनाश्व ने संग्राम मे बली को निहत किया ॥१४८-१४९॥ यह महा भीषण युद्ध चौदह मास पर्यन्त हुआ। इस अङ्गार से युक्त सेतु के वीर्य से गान्धार नाम वाले पार्थिव पुत्र ने जन्म लिया ॥१५०॥ जिसके नाम से महान् गान्धार नाम वाला देश विख्यात होता है। इस गान्धार देश मे उत्पन्न होने वाले तुरग अश्वों मे परम श्रेष्ठ हुआ करते हैं ॥१५१॥ अनु के पुत्र का नाम धर्म था और धर्म का सुत द्युत नाम वाला उत्पन्न हुआ। द्युत से अनदुह ने जन्म प्राप्त किया और फिर प्रचेता इसका पुत्र हुआ ॥१५२॥ प्रचेता का सुचेता हुआ। इस तरह से मैंने आप लोगों के समक्ष अनुओं का वर्णन कर दिया है। वे सब पाँच देव सुतों के समान यदु के पुत्र हुए। उन पाँचों के शुभ नाम सहस्राद-पयोद-क्रोष्ठ-नील और आञ्जिक थे। इस सहस्राद के वीर्य से तीन परम धार्मिक पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया ॥१५३-१५४॥

हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयस्तथा।
हैहयस्याभवत् पुत्रोधर्म्मनेत्र इति श्रुतः ॥१५५
धर्म्मनेत्रस्य कार्त्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः।
साहञ्जनी नाम पुरी तेन राज्ञा निवेशिता ॥१५६
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान्।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥१५७
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम नामतः।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥१५८
कृतवीर्य्यः कृतौजाश्च कृतधन्वा तथैव च।
कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्य्यादथार्जुनः ॥१५९
योऽसौ बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत्।
जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा ॥१६०

स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम् ॥१६१

उन तीनों के नाम हैहय-हय और राजा वेणुहय ये थे । हैहय के वीर्य से धर्मनेत्र सुत ने जन्म लिया ॥१५५॥ धर्मनेत्र का सुत कार्त्त हुआ तथा इस कार्त्त का पुत्र साहञ्ज समुत्पन्न हुआ । उस राजा ने अपने ही नाम से साहञ्जनी पुरी को निवेशित किया ॥१५६॥ महिष्मान् का पुत्र भद्रश्रेण्य का दायाददुर्दम नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१५ ॥ दुर्दम का पुत्र धीमान् कनक नाम वाला उत्पन्न हुआ और फिर इस कनक के लोकों में परम प्रसिद्ध चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया ॥१५८॥ उन चारों के परम शुभ नाम कृतवीर्य-कृतौजा कृतधन्वा और चौथा कृताग्नि ये हुए थे । इस कृतवीर्य के वीर्य से अर्जुन समुत्पन्न हुआ ॥१५६॥ जो अर्जुन अपने एक सहस्र बाहुओं के द्वारा सातों द्वीपों का स्वामी हुआ । आदित्य के समान वर्चस् वाले एक ही रथ के द्वारा इसने समस्त पृथ्वी को जीत लिया । ऐसा प्रतापी था ॥१६०॥ उस कार्त्तवीर्य ने दश हजार वर्ष पर्यन्त परम दुश्चर तपस्या करके अत्रि ऋषि से समुत्पन्न दत्त की आराधना की ॥१६१॥

तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः ।
पूर्व्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥१६२
अधर्म्मोऽध्यायमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् ।
उग्रेण पृथिवीं जित्वा धर्म्मेणैवानुरञ्जनम् ॥१६३
सग्रामान् सुबहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः ।
सग्रामे वर्त्तमानस्य वध चाभ्यधिकाद्रणे ॥१६४
तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भो द्विजाः ।
योगाद्योगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥१६५
तेनेयं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
ससागरा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥१६६
तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै ।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमाः ॥१६७

सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठाः सहस्रशतदक्षिणाः ।
सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे काञ्चनवेदयः ॥१६८

दत्त ने परम सन्तुष्ट होकर उसको बहुत अधिक तेज वाले चार वरदान प्रदान किये । सबसे प्रथम उसने अपनी एक सहस्र बाहुओं के हो जाने पर सुमहान् वरदान पाने की प्रार्थना की ॥१६२॥ अधर्म में अधीयमान का वहाँ पर सत्पुरुषों के द्वारा निवारण था । अत्युग्र धर्म के द्वारा ही अनुरञ्जन था ॥१६३॥ उसने बहुत से सग्रामों मे विजय प्राप्त करके और सहस्रों ही शत्रुओं को जीतकर अर्थात् उनका हनन किया । सग्राम मे वर्तमान अधिक बलवान् रिपु का वध कर दिया ॥१६४॥ हे द्विजगणो ! युद्ध करते हुए योगीश्वर के ही समान योग से उसके माया के द्वारा एक सहस्र बाहु प्रादुर्भूत हो जाया करती थी ॥१६५॥ उस सहस्रार्जुन ने यह सातों द्वीपों वाली नगरों के तथा पत्तन और सागरों के सहित समस्त पृथिवी उग्र विधि के द्वारा जीत ली ॥१६६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! ऐसा सुना जाता है कि उस महान् प्रतापी राजा सहस्रार्जुन ने सातों द्वीपों में सात सौ यज्ञ किये ॥१६७॥ ये सभी यज्ञ हे मुनिगणो ! सहस्र शत दक्षिणा वाले थे । इन सभी यज्ञों में सुवर्ण के यूप थे तथा सभी यज्ञों में कञ्चन की ही वेदियाँ निर्मित की गयी थी । ऐसा विशाल वैभव का उपभोग सभी यज्ञों में सहस्रार्जुन ने किया था ॥१६८॥

सर्व्वे देवैर्म्मुनिश्रेष्ठा विमानस्थैरलङ्कृतैः ।
गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिता ॥१६६
यस्य यज्ञे जगौ गाथा गन्धर्व्वो नारदस्तथा ।
बरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विस्मितः ॥१७०
न नूनं कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥१७१
स हि सप्तसु द्वीपेसु वर्मी खड्गी शरासनी ।
रथी द्वीपाननुचरन् योगी सदृश्यते नृभिः ॥१७२
अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः ।
प्रभावेण मया राज्ञः प्रजा धर्म्मेण रक्षतः ॥१७३

स सर्व्वरत्नभाक् सम्राट चक्रवर्ती बभूव ह ।
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपाल: स एव च ॥१७४
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्ज्जुनोऽभवत् ।
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा ॥१७५

ये सभी यज्ञ ऐसे हुए कि हे मुनिगणो ! इनमे विमानों मे बैठकर सब देवगण-गन्धर्व और अप्सराएँ नित्य ही वहाँ पर उपशोभित हुआ करते थे ॥१६६॥ जिस सहस्रार्जुन के यज्ञ में गन्धर्व तथा नारद मुनि गाथा का गान करते । उसकी महिमा से परम विद्वान् वदरीदास का आत्मज अत्यन्त विस्मित होगये थे ॥१७ ॥ देवर्षि नारद जी ने कहा— इस लोक मे कोई भी नृप निश्चय ही इस कार्त्तवीर्य की गति को प्राप्त नही होंगे । इसके ऐसे विशाल यज्ञ महान् दान अत्युग्र तप विक्रम और श्रुत हैं कि इसकी समानता कोई भी प्राप्त नही कर सकेगा ॥१७१॥ वह सहस्रार्जुन साती द्वीपो मे वर्मी-खड्गी और शरासन के धारण करने वाला है । यह रथी द्वीपों मे अनुचरण करता हुआ मनुष्यों के द्वारा योगीराज ही विचरण कर रहा हो ॥१७ ॥ इस राजा मे विशेषता यह है कि इसका द्रव्य कभी भी नाश को प्राप्त नही होता है । इनको न कभी शोक और विभ्रम ही होता है । इसका प्रभाव ही ऐसा है कि यह राजा धर्म के साथ प्रजा की रक्षा किया करता है ॥१७३॥ वह समस्त प्रकार के रत्नो को प्राप्त करने वाला चक्रवर्त्ती सम्राट् हुआ था । वह ही पशुपाल तथा वही क्षेत्रपाल भी था ॥१७४॥ वह ही वृष्टि के द्वारा पर्जन्य हो गया था और योगी होने से अर्जुन हो गया था । वह ही ज्या (धनुष की डोरी) के घात से कठिन त्वचा वाली एक सहस्र बाहुओ से समन्वित था ॥१७५॥

भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव च भास्करः ।
स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्या महाद्युतिः ॥१७६
कर्कोटकसुतान् जित्वा पुर्य्यां तस्या न्यवेशयत् ।
स वै वेग समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः ॥१७७

क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह ।
लुण्ठिता क्रीडता तेन नदी तद्ग्राममालिनी ॥१७८
चलदूर्म्मिसहस्रेण शङ्किताम्येति नर्म्मदा ।
तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ ॥१७९
भयान्निलीना निश्चेष्टा पातालस्था महासुरा ।
चूर्णीकृतमहावीचि चलन्मीनमहातिमिम् ॥१८०
मारुताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षोभसङ्कुलम् ।
प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना ॥१८१
देवासुरसमाक्षिप्तं क्षीरोदमिव मन्दरः ।
मन्दरक्षोभचकिता अमृतोत्पादशङ्किना ॥१८२
सहसोत्पतिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ।
नता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुस्ते महोरगा ॥१८३

वह शरत्काल में भास्कर के समान एक सहस्र किरणों से सुशोभित था। महान् द्युति वाले उस माहिष्मती में मनुष्यों में कर्कोटक के सुत नागों को जीतकर उस पुरी में निवेशित कर दिया था। कमल के सदृश नेत्रों वाले उसने वर्षाकाल में क्रीडा सी करते हुए ही समुद्र के वेग को प्रतिस्रोत भुजाओं से उद्भिन्न कर दिया था। उसने उस ग्राम की मालिनी नदी को क्रीडा करते हुए ही लुण्ठित कर दिया था ॥१७६-१७८॥ उस राजा के सहस्रबाहुओं के महोदधि में क्षिप्यमाण करने पर चलती हुई सहस्र ऊर्मियों (तरङ्गों) से नर्मदा शङ्कित होकर गमन करती है ॥१७९॥ उस समय में पाताल में स्थित महान् असुर गण भी भय से निलीन हो गये थे और चेष्टा से रहित बन गये थे। महान् तरंगों को चूर्ण किये जाने वाले—मीन और महान् तिमियों का चलायमान किये जाने वाला—मारुत से आविद्ध फेनों के समूह वाले तथा आवर्तों (भवरों) के क्षोभ से सङ्कुल समुद्र को उस राजा ने अपनी सहस्रबाहुओं से उस समय में प्रवृत्त कराया था ॥१८०-१८१॥ देवों और असुरों के द्वारा समाक्षिप्त मन्दर क्षीर सागर की तरह मन्दराचल के क्षोभ से चकित तथा अमृत की उत्पत्ति में शंका वाले महोरग सहसा उत्पतित हो गये

थे और भीम उत्तम नृप को देखकर भयभीत हो गये थे। वे सभी महोरग नत होकर निश्चल मस्तक वाले हो गये ॥१८२-१८३॥

सायाह्ने कदलीखण्डाः कम्पिता इव वायुना।
स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः ॥१८४
लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्।
निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥१८५
श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्ज्जुनेन च।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्ज्जुनं ददृशे स्वयम् ॥१८६
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः।
यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥१८७
युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव।
अहो बत मुने वीर्य्यं भार्गवस्य यदच्छिनत् ॥१८८
राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैमं तालवनं यथा।
तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥१८९

सायाह्न के समय मे जिस तरह से वायु के द्वारा कदलखण्ड कम्पित हो जाते हैं वैसे ही ये सब कम्पायमान हो गये थे। उस राजा सहस्रार्जुन ने पाँच शरो से उत्सिक्त धनुष को प्रत्यञ्चाओ से बद्ध करके बड़े भारी बल वाले लंका के राजा रावण को बलपूर्वक मोहित करके और उसे जीतकर वश मे कर लिया था तथा माहिष्मती मे लाकर उसको बाँध दिया था ॥१८४-१८५॥ जिस समय पुलस्त्य मुनि ने यह सुना था कि पौलस्त्य रावण को सहस्रार्जुन ने बाँध लिया है तो पुलस्त्य मुनि स्वयं उस सहस्रार्जुन के समीप मे जाकर उससे मिले थे ॥१८६॥ जब पुलस्त्य महामुनि के द्वारा उससे याचना की गयी तो उस अर्जुन नृप ने उस पौलस्त्य राक्षस को मुक्त कर दिया था। जिस सहस्रार्जुन की एक सहस्र बाहुओ के ज्या तल की ध्वनि होती थी तो वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो युगान्त के समय मे वज्र का स्फोटन करने वाले मेघ की ध्वनि हो। ऐसी भीषण ध्वनि उसके धनुष की डोरी की हुआ करती थी। ओहो! भगवन् मुनि का कितना विशाल बल वीर्य था जिसने उस सह-

सार्जुन के एक सहस्र बाहुओं को हैम तालवन के समान ही काट दिया था। किसी समय में तृषित चित्रभानु ने उससे भिक्षा की याचना की थी ॥१८७-१८९॥

स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः ।
पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्व्वशः ॥१९०
जज्वाल तस्य सर्व्वाणि चित्रभानुर्दिदृक्षया ।
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः ॥१९१
ददाह कार्त्तवीर्य्यस्तु शैलाश्चैव वनानि च ।
सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै ॥१९२
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः ।
य लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥१९३
वशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ।
तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्ज्जुनं विभुः ॥१९४
यस्मान्न वर्ज्जितमिदं वनं ते मम हैहय ।
तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥१९५
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
छित्त्वा बाहुसहस्रन्तेप्रमथ्य तरसा बली ॥१९६

उस वीर ने विभावसु को सात द्वीप भिक्षा में दे दिये और पुर-ग्राम-घोष और सभी विषयों (देशों) को दे दिया ॥१९०॥ देखने की इच्छा से चित्रभानु ने उसके सबों को जला दिया। उस महात्मा पुरुषेन्द्र के प्रभाव से कार्त्तवीर्य ने शैलों को और वनों को दग्ध कर दिया। वरुण आत्मज का सशून्य सुरम्य आश्रम को सहैहय चित्रभानु ने बलवान् से भीत होकर दग्ध कर दिया जिस उत्तम भास्वान् पुत्र को वरुण ने पहिले प्राप्त किया था ॥१९१-१९३॥ वह मुनि वसिष्ठ इस नाम वाला आपव इससे ख्यात थे। वहाँ पर विभु आपव ने क्रोध से उस अर्जुन को शाप दे दिया—हे हैहय ! क्योंकि तुमने मेरे इस वन को वर्जित नहीं किया है इसी कारण तुम्हारे इस दुष्कर कर्म को कृतमन्य हनन कर देगा ॥१९४-१९५॥ जमदग्नि ऋषि का पुत्र महान् बाहुओं वाले महान् प्रतापी राम

(परशुराम) बहुत बली हैं और वह वेग के साथ तेरी-एक सहस्र भुजाओं को प्रमथन करके छेदन करेंगे ॥१९६॥

तपस्वी ब्राह्मणस्त्वा तु हनिष्यति स भार्गव. ।
अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिणः ॥१९७
प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षत. ।
प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः ॥१९८
वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृत पुरा ।
तस्य पुत्रशत त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः ॥१९९
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विन. ।
शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वज. ॥२००
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ।
कार्त्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबला. ॥२०१
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।
तस्य पुत्रशत ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृता. ॥२०२
तेषा कुले मुनिश्रेष्ठा हैहयाना महात्मनाम् ।
वीतिहोत्रा सुव्रताश्चभोजाश्चावन्त्य स्मृता. ॥२०३

वह परम तपस्वी ब्राह्मण भार्गव तेरा हनन करेगा । अमित्र कर्षी जिसकी अनष्ट द्रव्यता हुई थी ॥१९७॥ धर्म से प्रजा की रक्षा करने वाले उस नरेन्द्र के प्रताप से इसके अनन्तर महामुनीन्द्र के शाप से इसकी मृत्यु प्राप्त हुई थी ॥१९८॥ हे विप्रो ! उसने स्वयं ही एक वरदान भी प्राप्त किया । उस महात्मा के एक सौ पुत्र उनमे से पाँच शेष रहे थे ॥१९९॥ ये पाँचो अस्त्रधारी-बली-शूर-धर्मात्मा और यशस्वी थे । शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज, और जयध्वज—इनके ये नाम थे और आवन्त्य महान् नृपति हुआ था । कार्त्तवीर्य के तनय महान् बल वाले वीर्यवान् हुए थे ॥२००-२०१॥ जयध्वज का आत्मज तालजङ्घ उत्पन्न हुआ जो महान् बलवान् था । उसके एक सौ पुत्र हुए जो सबके सब "तालजङ्घ।"—इसी नाम से लोकों मे प्रख्यात हुए ॥२०२॥ हे मुनि-

श्रेष्ठो ! महात्मा हैहयों के कुल में वीतिहोत्र-सुव्रत-भोज और आवन्त्य कहे गये थे ।।२०३।।

तौण्डिकेयाश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च ।
भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्तिताः ।।२०४
वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्म्मिणः ।
वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ।।२०५
मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत् ।
वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ।।२०६
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः ।
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ।।२०७
कार्त्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः ।
एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ।।२०८
कीर्त्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ।
भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान् ।।२०९
श्रुत्वा पञ्च विसर्गांस्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः ।
वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ।।२१०

जिस प्रकार से तालजङ्घ विख्यात हुए वैसे ही तौण्डिकेय-भरत और सुजात भी प्रख्यात हुए । ये सब बहुत थे अतएव उनका वर्णन नहीं किया गया है ।।२०४।। हे विप्रो ! वृष प्रभृति पुण्य कर्म वाले यादव थे । उनमें वृषवंशधर था और इस वृष का पुत्र मधु हुआ । इस मधु के भी सौ पुत्र हुए उसका वंशधर वृषण था । वृषण से समस्त वृष्णि हुए तथा मधु से होने वाले सब माधव कहे गये हैं ।।२०५-२०६।। यदु के नाम से यादव हैहय कहे जाया करते हैं । उसके वित्त का नाश नहीं होता है और जो नष्ट भी हो गया है वह पुनः प्राप्त हो जाया करता है ।।२०७।। जो नित्य प्रति इस कार्त्तवीर्य के जन्म की कथा को कहा करता है उसका धन विनष्ट नहीं होता है और विनष्ट भी प्राप्त हो जाया करता है । हे द्विजोत्तमो ! ये ययाति राजा के पाँच वंश हैं ।।२०८।। इन लोक वीरों का वर्णन किया गया है जो लोकों को धारण करने वाले थे । हे मुनिश्रेष्ठो !

पाँच भूतो के समान स्थावर जंगमो का श्रवण करके धर्मार्थ का परम कोविद राजा पच विसर्ग पाँच आत्मजो का ईश्वर वशी हो जाया करता है ॥२०६-२१०॥

लभेत् पञ्च वराश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ।
आयुः कीर्त्ति तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूमिमेव च ॥२११
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः ।
क्रोष्टोर्व्वंश मुनिश्रेष्ठा. शृणुध्व गदतो मम ॥२१२
यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्म्मिणः ।
क्रोष्टोर्व्वंश हि श्रुत्वैव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१३
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥२१४

यह परम दुर्लभ लोक मे होने वाले पाँच वरो की भी प्राप्ति किया करता है । वे पाँच वरदान उमयु कीर्ति पुत्र-ऐश्वर्य और भूमि ये होते हैं ॥२११॥ हे द्विजगण ! जो पञ्चवर्ग का श्रवण किया करता है तथा धारण करता है उसी को उपर्युक्त पाँच वरदान प्राप्त हुआ करते हैं । अब हम हे मुनिश्रेष्ठो ! क्रोष्टु के वश का वर्णन करते हैं आप लोग मुझसे श्रवण करिये ॥२१२॥ यदु के वश का धारण करने वाला यज्वा और पुण्य कर्मों के करने वाले क्रोष्टु के वश का केवल श्रवण करने भर से ही मनुष्य सब तरह के पापो से मुक्त हो जाया करता है ॥२१३॥ जिसके वश मे समुत्पन्न होने वाले वृष्णि कुल के उद्वहन करने वाले साक्षात् विष्णु श्री हरि थे ॥२१४॥



११—यदुपुत्र क्रोष्टुवंशवर्णन् ।

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्य्ये बभूवतुः ।
गान्धारी जनयामास अनमित्र महाबलम् ॥१

माद्री युधाजितं पुत्र ततोऽन्यं देवमीढुषम् ।
तेषां वशस्त्रिया भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥२
माद्र्याः पुत्रौ तु जज्ञाते श्रुतौवृष्ण्यन्धकावुभें ।
जज्ञाते तनयौ वृष्णे श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥३
श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्म्मात्मा यत्र वर्तते ।
नास्ति व्याधिभय तत्र नावर्षस्तापमेव च ॥४
कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः ।
त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावर्षत् पाकशासन. ॥५
स तत्र चानयामास श्वफल्कं परमार्चितम् ।
श्वफल्कपरिवर्त्तेन ववर्ष हरिवाहनः ॥६
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत ।
गान्दिनी नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः ॥७

महामुनि श्री लोम हर्षण जी ने कहा—इस क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री दो भार्याएँ हुई थी। गान्धारी ने महान् बलवान् को अनमित्र को जन्म दिया ॥१॥ माद्री ने युधाजित पुत्र को तथा अन्य देवमीढुष को जन्म ग्रहण कराया। उनका वंश तीन भागो मे था जो कि इन वृष्णियो के कुल की वृद्धि करने वाला था ॥२॥ माद्री के वृष्णि और अन्धक दो पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था। वृष्णि के भी श्वफल्क और चित्रक इन दो पुत्रो ने जन्म लिया ॥३॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणो! जहाँ पर परम धर्मात्मा श्वफल्क रहता था वहाँ पर किसी भी व्याधि का कोई भय नही होता था और न अनावृष्टि होती थी तथा ताप भी नही हुआ करता था ॥४॥ हे मुनिसत्तमो! किसी समय मे काशिराज के देश मे पूरे तीन वर्ष तक इन्द्र देव ने वर्षा नहीं की थी ॥५॥ वहाँ पर उस राजा ने परमार्चित श्वफल्क बुलवाया था। श्वफल्क के वहाँ पर आगमन से ही हरिवाहन ने वर्षा की थी ॥६॥ श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री को अपनी भार्या बनाया था। वह नित्य प्रति गान्दिनी नाम वाली गौ को विप्र के लिये दान किया करती थी ॥७॥

दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रिय ।
अक्रूर सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिद क्षण ॥८
उपमद्गु स्तथा मद्गुमदुरश्चारिमजय ।
आविक्षितस्तथाक्षेप शत्रुघ्नश्चारिमर्द्दन ॥९
धम्मधृग् यतिधर्म्मा च धर्म्मोक्षान्धकरुस्तथा ।
आवाहप्रतिवाहो च सुन्दरी च वराङ्गना ॥१०
अक्रूरणोग्रसेनाया सुगात्र्या द्विजसत्तमा ।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ ॥११
चिनकस्याभवन् पुत्रा पृथुर्व्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवोऽश्ववाहुश्च स्वपाश्वक गवेषणौ ॥१२
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धम्मभृत्तथा ।
सुबाहुर्व्वहुवाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥१३
असिक्न्या जनयामास शूर वै देवमीढुषम् ।
महिष्या जज्ञिरे शूरा भोज्यायां पुरुषा दश ॥१४

उस रानी ने श्वफल्क के वीय स भूरिदक्षिणा देने वाला दानशील-यजन करन वाला वीर श्रुतवान् और अतिथियो का प्यारा अक्रूर समुत्पन्न किया था ॥८॥ हे द्विजगणो ! उस अक्रूर ने सुदर गानो वाली उग्रसेना पत्नी के गभ से उपमद्गु मद्गु मदुर अरिमेजय अविश्वित आक्षेप शत्रुघ्न अरिमदन धमधृक-यतिधर्मा धर्मोक्ष-अधक आवाह-प्रतिवाह और वरागना सुदरी तथा देवो के समान वचस वाले प्रसेन और उपदेव को जम दिया था ॥९ ११॥ चितक के भी कई एक पुत्र उत्पन्न हुए थे उनके नाम पृथु विपृथु-अश्वग्रीव अश्ववाहु स्वपाश्व क गवेषण अरिष्टनेमि अश्व सुधर्मा धमभृत् सुबाहु और वहूबाहु थे तथा श्रविष्ठा और श्रवण दो स्त्री थी ॥१२ १३॥ असिक्नी में शूरदेवमीढुष को जम ग्रहण कराया था तथा महिषी के गभ से शूरो को जन्म दिया था और भोज्या मे दश पुरुषो को समुत्पन्न किया ॥१४॥

वसुदेवो महाबाहु पूर्व्वमानकदुन्दुभि ।
जज्ञयस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्या प्राणदन् दिवि ॥१५

आनकानां च संह्रादः सुमहानभवद्दिवि ।
पपात पुष्पवर्षश्च शूरस्य जनने महान् ॥१६
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ।
यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥१७
देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः ।
अनाधृष्टिः कनवको वत्सवानथ गृञ्जिमः ॥१८
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः ।
पृथुकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥१९
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ।
श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु शिशुपालोऽभवन्नृप ॥२०
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत्पुरा ।
पृथुकीर्त्यां तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्मणः ॥२१

लोकेऽप्रतिरथो वीर शत्रुतुल्यपराक्रमः ।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥२४
शैनेय. सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः ।
उद्धवो देवभागस्य महाभाग. सुतोऽभवत् ॥२५
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुत्तमम् ।
अश्मक्य प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम् ॥२६
निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं श्रुतदेवा त्वजायत ।
श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैषादिर्य. परिश्रुतः ॥२७
एकलव्यो मुनिश्रेष्ठा निषादैं परिवर्द्धित. ।
वत्सवते त्वपुत्राय वसुदेव प्रतापवान् ।
अद्भिर्ददौ सुत वीर शौरि कौशिकमौरसम् ॥२८

कक्ङाधिपति महान् बलवान् वीर दन्तवक्र उत्पन्न हुआ था तथा पृथा पुत्री कुन्ती ने जन्म लिया था जिसका पाण्डु के साथ विवाह हुआ था ॥२२॥ जिसके गर्भ से धर्म का बच्चा धर्म स्वरूप राजा युधिष्ठिर ने जन्म लिया था। वायुदेव से भीम और इन्द्रदेव से धनञ्जय (अर्जुन) ने जन्म ग्रहण किया था। यह लोक मे अप्रतिरथ वीर था जो इन्द्र के ही समान पराक्रम वाला हुआ था। अनमित्र से जो सबसे छोटा वृष्णि नन्दन था शिनि समुत्पन्न हुआ था। उस शिनि से सत्यक शैनेय और युयुधान सात्यकि उत्पन्न हुआ था। देवभाग का महान् भाग वाला उद्धव सुत समुत्पन्न हुआ था ॥२३-२५॥ उत्तम देवश्रवा को पण्डितो में परम श्रेष्ठ कहा जाता था। अनावृष्टि ने परम यशस्वी अश्मका को पुत्र के रूप मे प्राप्त किया था ॥२६॥ श्रुतदेवा ने ऐसे शत्रुओ के नाशक शत्रुघ्न को जन्म दिया था जिसके समस्त शत्रु ही समाप्त हो गये थे। वे सब श्रुतदेव के आत्मज थे जिसमे नैषादि परम परिश्रुत था ॥२७॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! एक लव्य निषादो के द्वारा परिवर्धित किया गया था। पुत्रहीन वत्सवान को प्रताप वाले वसुदेव ने जलो से वीर सुत दिया था। शौरि ने औरस कौशिक को दिया था ॥२८॥

गण्डूपाय ह्यपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान् ।
चारुदेष्णं सुदेष्णञ्च पञ्चालं कृतलक्षणम् ॥२९
असंग्रामेण यो वीरो नावर्त्तत कदाचन ।
रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् द्विजसत्तमाः ॥३०
वायसानां सहस्राणि यं यान्तुं पृष्ठतोऽन्वयुः ।
चारुनद्योपभोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानिति ॥३१
तन्त्रिजस्तन्त्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तौ ।
वीरश्चाश्वहनुश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ ॥३२
श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३३
अजातशत्रुः शत्रूणा जज्ञे तस्य विनाशनः ।
वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्त्तयिष्याम्यत.परम् ॥३४
वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बहुशाखं महौजसम् ।
धारयन् विपुलं वंश नानर्थैरिह युज्यते ॥३५

अपुत्र अर्थात् पुत्रहीन गण्डूप के लिये विष्वक्सेन ने पुत्रों को दिया था। चारुदेष्ण-सुदेष्ण-पञ्चाल कृत लक्षण उनके नाम थे। पर ऐसा वीर था कि बिना संग्राम के कभी भी आवर्तित नहीं हुआ था। हे द्विजो! महान् बाहुओं वाला रौक्मिणेय कनीयान् सबसे छोटा था। ॥२९-३०॥ गमन करने वाले जिसके पीछे-पीछे सहस्रों वायस (कौए) गमन किया करते थे कि युद्ध में चारुदेष्ण के द्वारा निहतों को चारु नदी से उपभोक्ष करेंगे इसी प्रकार वायस पीछे-पीछे जाया करते थे ॥३१॥ कनवक के तान्त्रिज और तन्त्रिपाल दो सुत समुत्पन्न हुए थे। वीरु और अश्व दनु ये दो गृञ्जिम वीर थे ॥३२॥ श्याम का पुत्र शमीक हुआ था और इस शमीक ने ही राज्य को वहन किया था। उसने जुगुप्समान होते हुए भोजत्व होने से राजसूय को प्राप्त किया था ॥३ ॥ उसका पुत्र शत्रुओं का विनाश करने वाला अजात शत्रु हुआ था। इससे आगे हम वसुदेव के वीर सुतों का कीर्तन करेंगे ॥३४॥ वृष्णि का तीन प्रकार का बहुत सी

शाखाओं वाला महान् ओज से युक्त विपुल वंश को धारण करने वाला था जो यहाँ पर अनर्थों से युक्त नहीं होता है ॥३५॥

या पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्द्दश वराङ्गना ।
पौरवी रोहिणी नाम मदिरादिस्तथापरा ॥३६
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥३७
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।
सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥३८
पौरवी रोहिणी नाम बाल्हिकस्यात्मजाभवत् ।
ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः ॥३९
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं शरण्यं शठमेव च ।
दुर्द्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥४०
चित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नव ।
चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमाः ॥४१
वसुदेवाच्च देवक्या जज्ञे शौरिर्महायशाः ।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥४२

वसुदेव की जो पत्नियाँ थीं वे वराङ्गनाएँ थीं और संख्या में चौदह थीं। उनके नाम पौरवी-रोहिणी मदिरादि वैशाखी-सुनाम्नी भद्रा पाँचवीं थी। सहदेवा शान्तिदेवा-श्रीदेवी देवरक्षिता-वृकदेवी उपदेवी और सातवीं देवकी थी। सुतनु और वडवा ये दोनों परिचारिकायें थीं ॥३६-३८॥ पौरवी रोहिणी नाम वाली जो वसुदेवजी की पत्नी थी वह बाल्हिक की आत्मजा थी। हे मुनिश्रेष्ठ ! यह आनकदुन्दुभि की परम प्रिया ज्येष्ठ पत्नी थी। इसने सबसे बड़ा पुत्र बलराम प्राप्त किया था जो शरण्य था अर्थात् शरण में समागतों की रक्षा करने वाला था। शठ दुर्दम-दमन शुभ्र पिण्डारक उशीनर नामक पुत्र थे ॥३९-४०॥ और चित्रा नाम वाली कुमारी थी। रोहिणी की नौ तनयाएँ थीं। हे मुनिश्रेष्ठो ! यह चित्रा सुभद्रा इस नाम से विख्यात हुई थी ॥४१॥ वसुदेव से देवकी में

देवकी के गर्भ मे महान् यश वाले शौरि ने जन्म ग्रहण किया था। राम से रेवती मे प्रिय पुत्र निशठ ने जन्म धारण किया था ॥४२॥

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥४३
वसुदेवस्य भार्य्यासु महाभागासु सप्तसु ।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा समस्तांस्तान्निबोधत ॥४४
भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ ।
वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ ॥४५
अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ।
कन्या त्रिगर्त्तराजस्य भार्य्या वै शिशिरायणेः ॥४६
जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्देऽथ पौरुषम् ।
कृष्णायससमप्रख्यो वर्षे द्वादशमे तथा ॥४७
मिथ्याभिशप्तो गार्ग्यस्तु मन्युनातिसमीरितः ।
घोषकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे ॥४८
गोपाली चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी ।
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमच्युतम् ॥४९

उस सुभद्रा के गर्भ से पार्थ अर्जुन के वीर्य से रथी अभिमन्यु ने जन्म लिया था। अक्रूर से काशि की कन्या मे सत्यकेतु समुत्पन्न हुआ था ॥४३॥ वसुदेवजी की महान् भाग वाली सात भार्याओ के गर्भोंमे जिन पुत्रो ने जन्म लिया था वे सभी बडे शूर वीर थे। अब आप लोग उनका भी ज्ञान प्राप्त करलो ॥४४॥ भोज और विजय ये दोनो शान्तिदेवा के आत्मज थे। वृकदेव और गद ये दोनो सुत सुनामा के गर्भ से समुत्पन्न हुए थे ॥४५॥ वृक देवी ने महात्मा अगावह का प्रसूत किया था। त्रिगर्त्त राज की जो कन्या थी वह शिशिरायणि की भार्या हुई थी ॥४६॥ इसने पौरुष मे जिज्ञासा की थी और पौरुष को आस्कन्दित नही किया था। तथा बारहवें वर्ष मे कृष्णायस (काले लोहे) के समान प्रख्य हो गई थी ॥४ ॥ क्रोध से अति समीरित होकर गार्ग्य मिथ्याभिशप्त हो गया था। इसने एक घोष की कन्या को लाकर उसके साथ मैथुन का उपक्रम किया

था ॥४८॥ गोप के वेश को धारण करने वाली गोपाली नाम वाली अप्सरा ने उस गार्ग्य के अच्युत दुघर गर्भ को धारण किया था ॥४६॥

मानुष्या गर्गभार्य्याया नियोगाच्छूलपाणिनः ।
स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः ॥५०
वृत्तपूर्वार्द्धकायस्तु सिंहसहननो युवा ।
अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः ॥५१
यवनस्य मुनिश्रेष्ठा स कालयवनोऽभवत् ।
आयुध्यमानो नृपतिः पर्य्यपृच्छद्‌द्विजोत्तमम् ॥५२
वृष्ण्यन्धककुल तस्य नारदोऽकथयद्विभुः ।
अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा ॥५३
दूत सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ।
ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्ण पुरस्कृत्य महामतिम् ॥५४
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा ।
कृत्वा विनिश्चय सर्व्वे पलायनमरोचयन् ॥५५
विहाय मथुरा रम्या मानयन्तः पिनाकिनम् ।
कुशस्थली द्वारवती निवेशयितुमीप्सवः ॥५६
इति कृष्णस्य जन्मेद यः शुचिर्नियतेन्द्रियः ।
पर्व्वसु श्रावयेद्विद्वानन्नृणः स सुखी भवेत् ॥५७

मानुषी जो गर्ग की भार्या थी उसमे शूलपाणि के नियोग से वह महान् बलवान् राजा कालयवन नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया था ॥५०॥ अर्ध काया जिसकी वृत्त पूर्व थी और सिंह के समान सहनन वाला वह युवा शिशु उस पुत्रहीन राजा के अन्तःपुर मे वृद्धि को प्राप्त हो रहा था ॥५१॥ हे मुनिगण ! वह कालयवन यवन का हुआ था। आयुध्यमान नृपति ने द्विजोत्तम से पूछा था ॥५२॥ विभु श्री नारदजी ने उसका वृष्ण्यन्धक कुल कहा था। उस समय में एक-अक्षौहिणी सेना के द्वारा मथुरापुरी पर अभियान किया था ॥५३॥ उसने वृष्ण्यन्धकों के निवशन अर्थात् निवास स्थान पर एक दूत को प्रेषित किया था। इसके अनन्तर समस्त वृष्ण्यन्धक लोग उस समय मे यवन के भय से महान्

मतिमान भगवान् श्री कृष्ण को आगे करके एकत्रित हुए थे और सब परस्पर में मन्त्रणा करने में तत्पर हो गये थे। सब लोगों ने विशेष रूप से यही निश्चय किया था और वहाँ से कहीं अन्यत्र भाग जाना ही बचने के लिये पसन्द किया था ॥५५॥ उस परम रमणीक मधुरापुरी को त्याग कर पिनाका की मानता करते हुए कुशस्थली द्वारवती (द्वारकापुरी) के अन्दर आकर निवेशित होने की इच्छा वाले हो गये थे ॥५६॥ जो पुरुष पवित्र होकर इस भगवान् कृष्ण के जन्म की कथा को नियन्द्रिय होते हुए पर्वों के समय में श्रवण करता है वह विद्वान् ऋण से मुक्त और परम सुख सम्पन्न हो जाया करता है ॥५७॥

१२—वृष्णिवंशवर्णन ।

क्रोष्टारथाभवत् पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः ।
वार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहाकृतां वरम् ॥१
स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा उपद्गुर्वदतां वरः ।
महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥२
ततः प्रसूतिमिच्छन् वै उपद्गुः सोऽग्र्यमात्मजम् ।
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्म्मभिरन्वितः ॥३
आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ।
शशबिन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥४
पृथुश्रवाः पृथुयशा राजासीच्छाशबिन्दवः ।
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमन्तरम् ॥५
अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् ।
उपतो यज्ञमखिलं स्वधर्म्मे च कृतादरः ॥६
शिनेयुरभवत् पुत्र उपतः शत्रुतापनः ।
मरतस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृपः ॥७

महामुनीन्द्र श्री लोमहर्षणजी ने कहा—इसके अनन्तर क्रोष्टु का पुत्र यशस्वी वृजिनीवान् उत्पन्न हुआ था। स्वाहाकृता स्वाहि को वार्जिनी कह

वर की इच्छा करते थे ॥१॥ बोलने वालों में परम श्रेष्ठ स्वादि का पुत्र रुषद्गु राजा हुआ था जिसने बहुत अधिक दक्षिणा से युक्त अनेक प्रकार के महान् क्रतुओं के द्वारा यजन किया था ॥२॥ इसके उपरान्त उस रुषद्गु ने सन्तति की इच्छा करते हुए अत्युत्तम आत्मज चित्ररथ को जन्म दिया था। उस चैत्ररथ का पुत्र कर्मों से संयुत चैत्ररथि वीर समुत्पन्न हुआ था जो यजन करने वाला था तथा बहुत अधिक दक्षिणा देने वाला हुआ था। इसके आगे राजर्षियों में अनुष्ठित शशबिन्दु हुआ था ॥३-४॥ अधिक यश वाला पृथु श्रवा शाशबिन्दव राजा था। जो पुराणों के ज्ञाता हैं वे अन्तर पार्थश्रव को कहा करते हैं ॥५॥ अन्तर का सुत सुयश हुआ था तथा इस सुयश का सुत उषत उत्पन्न हुआ था जिसने पूर्ण यज्ञ किया था और अपने धर्म में अत्यधिक आदर करने वाला हुआ था ॥६॥ उस उपत का तनय शिनेयु नाम वाला हुआ था जो अपने शत्रुओं को ताप देने वाला था। इसका आत्मज मरुत राजर्षि हुआ था जो कि नृप था॥७॥

मरुतोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम्।
चचार विपुलं धर्म्ममम्मर्षात् प्रेत्यमार्गपि ॥८
स सत् प्रसूतिमिच्छन् वै सुतं कम्बलबर्हिष.।
बभूव रुक्मकवच. शतप्रसवतः सुत.॥९

निहत्य रुक्मकवच. शतं कवचिना रणे।
धन्विना निशितैर्वाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥१०॥
जज्ञे च रुक्मकवचात् परावित्परवीरहा।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्य्या पराजिता.॥११

रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघ. पालितो हरिः।
पालितं च हरिं चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥१२
रुक्मेषुरभद्राजा पृथुरुक्मस्य संश्रयात्।
ताभ्यां प्रव्राजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥१३

इस मरुत ने अपना ज्येष्ठ पुत्र कम्बलबर्हिष नाम वाला प्राप्त किया था। उसने प्रेत्यभाग होते हुए भी अमर्ष से बहुत अधिक धर्म का समा-

वरण किया था ॥८॥ उसने कम्बल बर्हिष के सुत सत्प्रसूति की इच्छा की थी सब सत्प्रसव ने रुक्म कवच हुआ था ॥६॥ इस रुक्म कवच ने रणक्षेत्र में सौ कवचियों का निहनन करके धन्वियों के निशित बाणों के द्वारा उत्तम श्री की प्राप्ति की थी ॥१०॥ रुक्म कवच से शत्रुओं के वीरों का हनन करने वाले परजित ने जन्म प्राप्त किया था। महान् वीर्य वाले परजित के पाँच पुत्रों ने जन्म धारण किया था ॥११॥ उनके शुभ नाम रुक्मेषु-पृथु रुक्म-ज्यामघ-पालित और हरि थे। पिता ने पालित और हरि को विदेहों के लिये दे दिया था ॥१२॥ पृथुरुक्म के सभ्रम से रुक्मेषु राजा हो गया था। उन दोनों के द्वारा प्रव्राजित राजा ज्यामघ आश्रम में निवास किया करता था ॥१३॥

प्रशान्तश्च तदा राजा ब्राह्मणैश्चावबोधितः।
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥१४
नर्म्मदाकूलमेकाकीमेखलां मृत्तिकावतीम्।
ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः ॥१५
ज्यामघस्याभवद्भार्य्या शैव्या बलवती सती।
अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्या भार्य्यामविन्दत ॥१६
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः।
भार्य्यामुवाच सन्त्रस्तः स्नुषेति स जनेश्वरः ॥१७
एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्देवी कस्य देव स्नुषेति वै।
अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥१८
यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्य्योपपादिता ॥१९
उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैव्या परिणता सती ॥२०
राजपुत्र्यातु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकैशिकौ।
पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥२१

उस समय में राजा प्रशान्त था और ब्राह्मणों के द्वारा समझा दिया गया था। वह ध्वजी रथी अपना धनुष ग्रहण करके अन्य देश को चला गया था ॥१४॥ उस एकाकी ने नर्मदाकुल मेखला मृत्तिकावती और

ऋक्षवन्त गिरि को जीत कर फिर वह शुक्तिमती मे निवास करता था ॥१५॥ उस ज्यामघ की भार्या बलवती सती शैव्या थी वह राजा पुत्रहीन भी था तो भी उसने दूसरी कोई भार्या नही बनाई थी ॥१६॥ उसको युद्ध मे विजय हुई थी और वही पर उसने एक कन्या को प्राप्त किया था। वह धनेश्वर करते हुए अपनी भार्या से बोला था—यह स्नुषा है ॥१७॥ यह राजा का वचन श्रवण करके उस देवी ने कहा—हे देव ! यह किसकी स्नुषा है। यह श्रवण करके राजाओ म श्रेष्ठ ज्यामघ ने कहा ॥१८॥ राजा बोला—जो तेरा पुत्र समुत्पन्न होगा उसकी यह भार्या उपपादित की गयी है ॥१९॥ महर्षि लोमहर्षणजी ने कहा—उस कन्या की उग्रतपश्चर्या से उस सुभगा सती परिणता शैव्या ने विदर्भ पुत्र को प्रसूत किया था ॥२०॥ पीछे विदर्भ ने उस राजपुत्री स्नुषा मे रण-विद्या मे विशारद शूरवीर और परम विद्वान क्रथ और कैशिक को जन्म ग्रहण कराया था ॥२१॥

भीमो विदर्भस्य सुत कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
कुन्तेर्धृष्ट सुतो जज्ञे रणधृष्ट प्रतापवान् ॥२२
धृष्टस्य जज्ञिरे शूराश्च परमधार्मिका ।
आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च स ॥२३
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते ।
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथ स्मृत ॥२४
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ।
तस्य चासीद्दशरथ शकुनिस्तस्य चात्मज ॥२५
तस्मात्करम्भ कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृप ।
देवक्षत्रोऽभवत्तस्य वृद्धक्षत्रो महायशा ॥२६
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दन ।
मधूना वशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि ॥२७
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुरुद्वान्पुरुषोत्तम ।
ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्य्या मधोस्तस्या व्यजायत ॥२८

सत्वात् सर्व्वगुणोपेत. सात्वतो कीर्तिवर्द्धन. ।
इमा विसृष्टि विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मन. ।
युज्यते परमप्रीत्या प्रजावांश्च भवेत् सदा ॥२६

राजा भीम विदर्भ का पुत्र था और उसका आत्मज कुन्ति हुआ था। कुन्ति का सुत धृष्ट उत्पन्न हुआ जो रण में धृष्ट और प्रतापवान् था ॥२२॥ इस धृष्ट के वीर्य से तीन पुत्रों ने जन्म धारण किया था जो शूर और परमधार्मिक हुए थे। उनके शुभ नाम आवन्त दशार्ह और बलीविपहर थे थे ॥२३॥ दशार्ह का पुत्र व्योमा उत्पन्न हुआ था तथा व्योमा का सुत जीमूत कहा जाता है। जीमूत से यहाँ विकृति नाम वाला पुत्र प्रसूत हुआ था और उसका सुत भीमरथ कहा गया है ॥२४॥ इसके अनन्तर इस भीमरथ के नवरथ पुत्र ने जन्म लिया था। उसका आत्मज दशरथ हुआ था और इस दशरथ के वीर्य से शकुनि तनय ने जन्म लिया था ॥२५॥ उससे करम्भ प्रसूत हुआ तथा करम्भ से कारम्भि देवरात पुत्र हुआ था। उसके सुत देवक्षत्र हुआ था। उस देवक्षत्र का पुत्र महान् यशस्वी-देवगर्भ के समान वृद्धशर्म समुत्पन्न हुआ था। मधुर वाणी वाला मधु मधुओं का वंशधर राजा हुआ था ॥२६-२७॥ इसके अनन्तर उस मधु से वैदर्भी के गर्भ से उत्तम पुरुष पुरुद्वान् प्रसूत हुआ था। उस मधु की भार्या ऐक्ष्वाकी हुई थी। मधु की उस पत्नी से सत्वगुणों से युक्त और सात्वतों की कीर्ति की वृद्धि करने वाला सत्वान् समुत्पन्न हुआ था। महान् आत्मा वाले ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य परम प्रीति से युक्त होता है और सदा प्रजा वाला हुआ करता है ॥२८-२९॥

सत्वत. सत्वसम्पन्नान् कौशल्या सुषुवे सुतान् ।
भागिन भजमान च दिव्य देवावृध नृपम् ॥३०
अन्धक च महाबाहु वृष्णि च यदुनन्दनम् ।
तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह कीर्तिता. ॥३१
भजमानस्य सृञ्जयी बाह्यकापोपबाह्यका ।
आस्ता भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरेबहव सुता. ॥३२

क्रिमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरञ्जयः ।
एते बाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥३३
अयुताजित् सहस्राजिच्छता जिच्च दासकः ।
उपबाह्यकसृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ॥३४
यज्वा देववृधो राजा चचार विपुलं तपः ।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितम् ॥३५

महर्षि श्री लोमहर्षण जी ने कहा—उस सत्वत ने कौशल्या के गर्भ से सत्व से सुसम्पन्न पुत्रों को प्रसूत किया था। उनके शुभ नाम भागी-भजमान दिव्य-देवा वृध नृप-अन्धक-महाबाहु-वृष्णि और यदुनन्दन थे। उनके विशेष सर्ग चार थे जिनका कि यहाँ पर मैंने विस्तार के साथ वर्णन कर दिया है ॥३०-३१॥ भजमान के सृञ्जय से बाह्यक और उप-बाह्यक हुए थे। तथा आयतप हुआ था और इनसे बहुत से पुत्रों ने जन्म धारण किया था ॥३२॥ क्रिमि-क्रमण धृष्ट-शूर-पुरञ्जय ये सब बाह्यक सृञ्जय में भजमान के वीर्य से समुत्पन्न हुए थे ॥३ ॥ अयुताजित्-सहस्राजित्-शताजित्-दासक ये सब उपबाह्यक सृञ्जयी में भजमान की सन्तति समुत्पन्न हुई थी ॥३४॥ राजा देववृध यजन करने वाला था जिसने बहुत तप किया था। उसके तपस्या का यही निश्चित उद्देश्य था कि मेरे समस्त सद्गुणों से सुसम्पन्न सुत समुत्पन्न होवे ॥३५॥

संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशाया जलं स्पृशन् ।
सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥३६
चिन्तयाभिपरीता सा न जगामैव निश्चयम् ।
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्या सा निम्नगोत्तमा ॥३७
नाध्यगच्छत्तु तां नारीं यस्यामेवं विधः सुतः ।
भवेत्तस्माद् स्वयं गत्वा भवाम्यस्य सहानुगा ॥३८
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः ।
वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः ॥३९
तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः ।
अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा ॥४०

पुत्रं सर्व्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधं द्विजाः ।
अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥४१
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः ।
यथैवाग्रे तथा दूरात्पश्यामस्तावदन्तिकात् ॥४२

तप से संयुज्यमान-पर्णाशा को जल का उपस्पर्शन करते हुए और सर्वदा उपस्पर्शन करने वाले उसका प्रिय आपगा ने किया था ॥३६॥ चिन्ता से अभिपरीता उसने कोई निश्चय नहीं किया था । नरपति के कल्याण होने से उसकी वह उत्तमा निम्नगा नारी उसका अधिगमन न करे जिससे इस प्रकार का पुत्र होवे इससे मैं स्वयं ही आकर इसकी सहानुगामिनी हो जाऊँ ॥३७-३८॥ इसके अनन्तर वह स्वयं कुमारी होकर परम सुन्दर शरीर को धारण करती हुई उसने उस राजा का वरण किया था और वह प्रभु भी उसी को चाहता था ॥३९॥ उसमें उस नृपति ने जो अत्यन्त उदार बुद्धि वाला था एक परम तेजस्वी गर्भ धारण कर दिया था । इसके उपरान्त दशवें मास में उस सरिद्वरा ने प्रसव किया था ॥४०॥ हे द्विजगण ! उससे समस्त सद्गुणों से युक्त बभ्रु देवा वृध-पुत्र समुत्पन्न हुआ था । इस वंश में पुराणों के ज्ञाता लोग यह परिश्रुत-गान किया करते हैं और महात्मा देव वृध के सद्गुणों का कीर्तन किया करते हैं कि जिस प्रकार से इसके आगे वैसे ही दूर से एवं समीप से भी हम इसको देखा करते हैं ॥४१-४२॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥४३
एतेऽमृतत्वं प्राप्ता वै बभ्रोर्देवावृधादपि ।
यज्वा दानपतिर्धीमान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥४४
तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये मार्त्तिकावताः ।
अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥४५
कुकुरं भजमानं च ससकं बलबर्हिषम् ।
कुकुरस्य सुतो वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥४६

कपोतरोमा तस्याथ तित्तिरिस्तनयोऽभवत् ।
जज्ञे पुनर्व्वसुस्तस्मादभिजिच्च पुनर्व्वसो ॥४७
तथा व पुत्रमिथुन बभुवाभिजित किल ।
आहुक श्चाहुकश्चैव ख्यातौ ख्यातिमत्ता वरौ ॥४८
इमा चोदाहरन्त्यत्र गाथा प्रति तमाहुकम् ।
श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमोमहान् ॥४६

बभ्रु मनुष्यो मे परम श्रेष्ठ है और देवावृध देवो के ही समान है सात हजार छयासठ पुरुष बभ्रु देवा वृध से अमृतत्व को प्राप्त हो गये हैं। यह यजन करने वाला दानपति धीमान् सुदृढ आयुधो वाला और शरण मे समागतो की सुरक्षा करने वाला था । इसका अन्ववाय (वंश) सुमहान था जो कि मार्त्तिकावत भोज थे । काश्य की पुत्री ने अन्धक के वीर्य से चार पुत्रो की प्राप्ति की थी ॥४३ ४५॥ उनके शुभ नाम कुकुर भजमान-ससक और बलमाहिप थे । कुकुर का पुत्र वृष्टि और वृष्टि का आत्मज कपोतरोमा हुआ था तथा इसका सुत तित्तिरि नाम वाले ने जन्म धारण किया था । फिर इससे पुनवसु ने जन्म लिया था और पुनवसु के वीर्य से अभिजित् समुत्पन्न हुआ था ॥४६ ४७॥ उस अभिजित का एक युग्म पुत्रो का हुआ था । वे दोनो परम प्रसिद्धि प्राप्त करने वालो मे आहुक-श्चाहुक इन नामो से ही प्रख्यात हुए थे ॥४८॥ यहा पर उस आहुक के प्रति इस गाथा को उदाहृत करते है कि वह श्वेत परिवार से महान् किशोर प्रतिमा वाला था ॥४६॥

अशीतिवर्म्मणा युक्त आहुक प्रथम व्रजेत् ।
नापुत्रवान्नाशतदो नासहस्रशतायुष ॥५०
नाशुद्धकर्म्मा नायज्वा या भोजमभितो व्रजेत् ।
पूर्व्वस्या दिशि नागाना भोजस्य प्रययु किल ॥५१
सोमात्सङ्गानुकर्षाणा ध्वजिना सवरूथिनाम् ।
रथाना मेघघोषाणा सहस्राणि दशैव तु ॥५२
रौप्यकाञ्चनकक्षाणा सहस्राण्येकविंशति ।
तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्या तथा दिशि ॥५३

आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति ज्याकिङ्किणीकिन· ।
आहुः किं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसार ददुरन्धकाः ॥५४
आहुकस्य तु काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु· ।
देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः ॥५५
देववानुपदेवश्च सदेवो देवरक्षितः ॥५६

अस्सी वर्म्म से युक्त आहुक ही सबसे प्रथम गमन करे । अपुत्रवान्-अशतद असहस्र-शतायुष-अशुद्धकर्मा अयज्वा कोई भी इनमे से नही है जो भोज के समक्ष मे गमन करे । पूर्व दिशा मे भोज के नागो के प्रति गमन किया था ॥५०-५१॥ सोम से सङ्गानुकर्षी वे-ध्वजियो के-सवरूथियो के और मेघो के समान घोष करने वाले रथो की सख्या दश सहस्र थी ॥५२॥ रौप्य काञ्चन कक्षो की सख्या इक्कीस सहस्र थी । उतने ही सहस्र उत्तर दिशा मे थे ॥५३॥ आभूमिपाल भोज ज्याकिङ्किणीकिन थे । और आहु तथा अवन्तियो के लिये अन्धको ने अपनी स्वसा (बहिन) देदी थी ॥५४॥ इस आहुक के काश्या मे दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे । देवक के देवो के समान चार पुत्रो ने जन्म लिया था । उनके शुभ नाम-देववान्-उपदेव-सदेव और देवरक्षित थे ॥५५-५६॥

कुमार्य्यं. सप्त चास्याथ वसुदेवाय ता ददौ ।
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ॥५७
वृकदेव्युपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी ।
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषा कसस्तु पूर्वज. ॥५८
न्यग्रोधश्च सुनामा च तथा कड्क सुभूपण ।
राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥५९
तेषा स्वसारः पञ्चासन् कसा कसवती तथा ।
सुतनू राष्टपाली च कड्का चैव वराङ्गना ॥६०
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यात कुकुरोद्भव. ।
कुकुराणामिम वश धारयन्नमितौजसाम् ॥६१
आत्मनो विपुल वश प्रजावानाप्नुयान्नरः ॥६२

इसके सात कन्याएँ भी उत्पन्न हुई थी। उसने उन सातो कुमारियों को वसुदेवजी को समर्पित कर दिया था। उन कुमारियों के नाम देवकी शान्तिदवा सुदेवा-देवरक्षिता वृकदेवी-उपदवी और सातवी सुनाम्नी थी। राजा उग्रसेन के नौ सुत हुए थे उन सबम कस सबसे बड़ा था। ५७-५८॥ उनके नाम न्यग्रोध सुनाम-कङ्कु-सुभूपण राष्ट्रपाल-सुतनु-अनावृष्टि और पुष्टिमान थे थे ॥५६॥ उनकी बहिनें भी पाँच थीं कसा-कसवती सुतनु राष्ट्रपाली और वर अङ्गो वाली कङ्का थे उनके नाम थे ॥६०॥ राजा उग्रसेन सन्तति के सहित बतला दिया गया है जो कि कुकुरोद्भव था। ये कुकुर अपरिमित ओज वाले थे। इनके वश की धारणा करने वाला मनुष्य अनन्त प्रजा वाले विपुल वश को प्राप्त किया करता है ॥६१ ६२॥

— ✻ —

१३—सत्राजित उपाख्यान वर्णन

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथ ।
राजाधिदेव शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥१
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तरा ।
दत्तातिदत्तो बलिनो शोणाश्व श्वेतवाहन ॥२
शमी च दण्डशर्म्मा च दन्तशत्रुश्च शत्रुजित् ।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतु ॥३
शमिपुत्र प्रतिक्षत्र प्रतिक्षत्रस्य चात्मज ।
स्वयम्भोज स्वयम्भोजाद्हृदिक सम्बभूव ह ॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमा ।
कृतवर्म्माग्रजस्तेषा शतधन्वा तु मध्यम ॥५
देवान्तश्च नरान्तश्च भिषग्वैतरणश्च य ।
सुदान्तश्चाधिदान्तश्च निशाठय कामदम्भक ॥६

देवस्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलवर्हिषः ।
असमौजाः सुतस्तस्य नासमोजाश्च तावुभौ ॥७

श्री लोमहर्षण जी ने कहा—भजमान का पुत्र रथियों मे परम प्रमुख विदूरथ समुत्पन्न हुआ था। राजाधिदेव शूर इस विदूरथ के वीर्य से समुत्पन्न हुआ था ॥१॥ इस राजाधिदेव के बहुत बलवीर्य वाले सुतों ने जन्म लिया था। परम बलवान् दत्त-अनिदत्त-शोणाश्व-श्वेत वाहन शमी-दण्ड शर्मा दन्तशत्रु-शत्रुजित् ये पुत्रों के नाम है तथा श्रवणा एवं श्रविष्ठा ये दो बहिनें समुत्पन्न हुई थी ॥२-३॥ शमी के पुत्र का नाम प्रतिक्षत्र था और प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयम्भोज हुआ था। इस स्वयम्भोज के वीर्य ने हृदिक सुत ने जन्म लिया था ॥४॥ हृदिक के सभी पुत्रों के बल पराक्रम बहुत ही भीषण था ऐसे ही सब सुत समुत्पन्न हुए थे। उन सब मे कृतवर्मा ज्येष्ठ पुत्र था तथा शतधन्वा मध्यम था ॥५॥ अन्य पुत्रों के नाम देवान्त-नरान्त-भिषक्-वैतरण-सुदान्त-अतिदान्त-निकाश्य और कामदम्भक थे ॥६॥ उस कम्बलवर्हि का पुत्र परम विद्वान् देव हुआ था। उसके पुत्र का नाम असमौजा था। वे दोनों असम ओज वाले थे ॥७॥

अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमोजसे ।
सुदंष्ट्रश्च सुचारुश्च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्य्ये बभूवतुः ।
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥९
माद्री युधाजित पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् ।
अनमित्रममित्राणा जेतारमपराजितम् ॥१०
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः ।
प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ ॥११
प्रसेनो द्वारवत्या तु निवसन् ये महामणिम् ।
दिव्य स्यमन्तक नाम स सूर्य्यादुपलब्धवान् ॥१२
तस्य सत्राजितः सूर्य्यः यथा प्राणसमोऽभवत् ।
स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिना वरः ॥१३

तोयकूलमप प्रष्टुमुपस्थातु ययौ रविम् ।
तस्योपतिष्ठत सूर्य्यं विवस्वानग्रत स्थित ॥१४

यह असमोजा पुत्रहीन था इसको पुत्र दिये गये थे । इन पुत्रो के नाम सुदष्ट्र सुचारु और कृष्ण थे—ये सब अन्धक कहे गये हैं ॥८॥ गान्धारी और माद्री ये दोनो क्रोष्टु की भार्याएँ थी । गान्धारी ने महान् बलवान् अनमित्र को उत्पन्न किया था ॥६॥ माद्री ने युधाजित नाम वाले पुत्र को जन्म दिया था और इसके पश्चात् अनमित्र के मित्रो को जीतने वाला अपराजित देवमीढ्रुष पुत्र को उत्पन्न किया था ॥१०॥ अनमित्र का सुत निघ्न उत्पन्न हुआ था । इस निघ्न के वीर्य से दो पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था इनके नाम प्रसेन और सत्राजित् थे । ये दोनो ही शत्रुओ की सेना को जीतने वाले हुए थे ॥११॥ यह प्रसेन द्वारवती मे निवास किया करता था और इसने परम दिव्य महामणि स्यमन्तक को सूर्य देव से प्राप्त किया था ॥१२॥ उस सत्राजित् का सूर्य प्राण के समान ही था । वह किसी समय मे रथियो मे परम श्रेष्ठ रथ के द्वारा निशा-काल के समाप्त होने पर तोय के कूल को जल का स्पर्श करने को उप-स्थान करने के लिये सूर्य देव के समीप मे गया था । जब वह सूर्य देव का उपस्थान कर रहा था उस समय मे विवस्वान् उसके आगे स्थित हो गये थे ॥१३ १४॥

विस्पष्टमूर्त्तिभगवास्तेजोमण्डलवान् विभु ।
अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रत ॥१५
यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषा पते ।
तेजोमण्डलिन देव तथैव पुरत स्थितम् ॥१६
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्त सख्येनोपगतस्य वै ।
एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्न स्यमन्तकम् ॥१७
स्वकण्ठादवमुच्याथ एकान्ते न्यस्तवान् विभु ।
ततो विग्रहवन्त त ददर्श नृपतिस्तदा ॥१८
प्रीतिमानथ त दृष्ट्वा मुहूर्त्तं कृतवान् कथाम् ।
तमभिप्रस्थित भूया विवस्वन्त स सत्राजित् ॥१६

लोकान् भासयसे सर्व्वान् येन त्वं सततं प्रभो ।
तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि ॥२०
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा ।
स तमाबध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः ॥२१

वह भुवन भास्वर विभु भगवान् विस्पष्टमूर्त्ति वाले थे और तेजो मण्डल से युक्त थे । इसके अनन्तर उस राजा ने अपने आगे स्थित विवस्वान् प्रभु से कहा था—हे ज्योतियों के स्वामिन् ! मैं जिस प्रकार आपको सदा ही व्योम में देखा करता हूँ वैसे तेजो मण्डल वाले इस आपको इस समय में भी अपने आगे स्थित हुए को भी देख रहा हूँ ॥१५-१६॥ सख्यभाव से समुपगत आप से मुझ में क्या विशेषता है ? यह श्रवण करके भगवान् सूर्यदेव ने मणियों में सर्वोत्तम स्यमन्तक मणि को अपने कण्ठ से उतार कर विभु ने एकान्त में विन्यस्त कर दिया था । उस समय में फिर राजा ने विग्रहवान् उनका दर्शन किया था ॥१७-१८॥ परम प्रीति वाले उसने उनका दर्शन करके मुहूर्त भर तक कथा की थी । उस सत्राजित् ने अभिप्रस्थान करने वाले विवस्वान् देव से फिर निवेदन किया था—हे प्रभो ! जिसके द्वारा आप समस्त लोकों को सदा भासित किया करते हैं हे भगवन् ! उस मणि रत्न को आप मुझे प्रदान कर देने के योग्य होते हैं ॥१९-२०॥ उसी समय भगवान् भास्कर ने उसको स्यमन्तक मणि प्रदान कर दी थी । उस मणि को कण्ठ में पहिन कर फिर राजा ने द्वारवती नगरी में प्रवेश किया था ॥२१॥

तं जना पर्य्यधावन्त सूर्य्योऽयं गच्छतीति ह ।
स्वां पुरीं विसिष्माय राजा त्वन्तःपुरं तथा ॥२२
तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम् ॥२३
स मणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।
कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत् ॥२४
लिप्सां चक्रे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके ।
गोविन्दो न च तं लेभे भक्तोऽपि न जहार सः ॥२५

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ।
स्यमन्तककृते सिंहाद्वध प्राप वनेचरात् ॥२६
अथ सिंह प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः ।
निहत्य मणिरत्न तदादाय प्राविशद्गुहाम् ॥२७
ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्ण प्रसेनवधकारणात् ।
प्रार्थना ता मरोर्बुद्ध्वा सर्व्वे एव शशङ्किरे ॥२८

जिस समय मे वह अपनी नगरी के मध्य से जा रहा था तो लोगो ने उसको देखकर यही समझा था कि यह सूर्यदेव ही गमन कर रहे हैं तथा लोग उसके इधर-उधर चारो ओर से दौड पडे थे। उस राजा ने अपनी सब नगरी को विस्मित कर दिया और वहाँ पर भी सबको परम विस्मय मे डाल दिया था। उस परम दिव्य मणिरत्न स्यमन्तक को राजा ने अपने भाई प्रसेनजित को प्रेम से दे दिया था वह सत्राजित् के द्वारा दी हुई मणि स्यमन्तक वृष्णि और अन्धको के घर मे नित्य ही सुवर्ण का स्यन्दन किया करती थी और उस स्यमन्तक मणि का यह प्रभाव था कि पर्जन्य सदा ठीक समय पर वर्षा किया करता था तथा कभी भी किसी व्याधि का वहाँ पर भय नही था ॥२२-२४॥ उस मणि-रत्न स्यमन्तक मे जो कि प्रसेनजित् के पास था गोविन्द ने अपनी इच्छा की थी किन्तु उसे वे प्राप्त न कर सके थे और भक्त ने भी उसे नही दिया था ॥२५॥ किसी समय मे वह प्रसेनजित् उस स्यमन्तक मणि से भूषित होकर मृगया (शिकार के लिये चला गया था। उस स्यमन्तक के लिये एक वनेचर सिंह से वध को प्राप्त हो गया था ॥२६॥ इसके अनन्तर प्रसेनजित् को मार कर सिंह जब स्यमन्तक लेकर दौड रहा था तो महान् बलवान् ऋक्षराज जामवन्त ने उस सिंह को पकड कर मार डाला था और उस मणिरत्न को लेकर वह जाम्बवान् अपनी गुफा प्रवेश कर गया था ॥२७॥ इसके अनन्तर समस्त वृष्णि-अन्धक गण प्रसेन के वध का कारण श्रीकृष्ण के विषय मे शङ्का करने लग गये थे क्योंकि उन्होंने उस मणि के प्राप्त करने की पहिले प्रार्थना की थी ॥२८॥

स शङ्क्यमानो धर्म्मात्मा अकारी तस्य कर्म्मणः ।
आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ ।।२६
यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ ।
प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ।।३०
ऋक्षवन्त गिरिवर विन्ध्यं च गिरिमुत्तम् ।
अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ।।३१
साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम् ।
अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ।।३२
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदैर्ऋक्षस्तु सूचितः ।
पदैस्तैरन्वियायाथ गुहामृक्षस्य माधवः ।।३३
स हि ऋक्षबिले वाणी शुश्राव प्रमदेरिताम् ।
धात्र्या कुमारमादाय सुत जाम्ववतो द्विजाः ।।
क्रीड़यन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम् ।।३४

यह भगवान् श्रीकृष्ण पर इस प्रकार से शङ्कित किये गये थे जिन्होंने उस कर्म को बिल्कुल नहीं किया था तब उन्होंने उसी समय में यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उस मणि को कहीं से भी खोज कर ला दूँगा और फिर वे धर्मात्मा वन मे चले गये थे ।।२६।। जहाँ पर प्रसेनजित् ने मृगया की थी या मृगया के लिये विचरण किया था वहाँ पर प्रसेनजित् के चरणों के चिह्नों को आप्तकारी पुरुषों के द्वारा ग्रहण करके वे आगे बढ़ते गये थे और उस उत्तम ऋक्षराज से युक्त विन्ध्य पर्वत को खोजते हुए पूर्णतया परिश्रान्त महामना श्रीकृष्ण ने देखा था ।।३०-३१।। उन्होंने वहाँ पर अश्व के सहित मरे हुए प्रसेन को तो देखा था किन्तु उस स्यमन्तक मणि को नहीं प्राप्त किया था। इसके पश्चात् मृत प्रसेन के शरीर के समीप मे ही रीछ के द्वारा हनन किये हुए सिंह को भी देखा था क्योंकि चरणों के चिह्नों से वह रीछ सूचित हो रहा था। फिर माधव प्रभु उस रीछ के चरण चिह्नों के पीछे२ चलकर उस रीछ की गुफा पर पहुँच गये थे ।।३ -३३।। भगवान् श्रीकृष्ण ने उस रीछ के बिल मे-किसी प्रमदा के द्वारा कही हुई वाणी का श्रवण किया था। हे द्विज०

मण ! यह वाणी एक धात्री (धाय) के द्वारा कही गयी थी जो कि जाम्बवान् के सुत को लेकर उसी मणि के द्वारा खिला रही थी और मत रोओ यह उससे कह रही थी ॥३४॥

सिंह प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हत ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥३५
व्यक्तिस्तस्य शब्दस्य तूर्णमेव बिलं ययौ ।
प्रविश्य तत्र भगवास्तदृक्षबिलमञ्जसा ॥३६
स्थापयित्वा बिलद्वारे यदूँल्लाङ्गलिना सह ।
शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्तं ददर्श स ॥३७
युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ।
बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥३८
प्रविष्टेऽथ बिले कृष्णे बलदेवपुरःसरा. ।
पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥३९
वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ।
लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥४०
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।
अनुनीयर्क्षराजं तु निर्ययौ च ततो बिलात् ॥४१
उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः ।
एवं स मणिमाहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः ॥४२

धात्री ने कहा—सिंह ने तो प्रसेन का वध कर दिया था और उस सिंह को जाम्बवान् ने मार डाला है । अब हे कुमार ! मत रुदन करो । यह स्यमन्तक मणि अब तो तेरी ही है ॥३५॥ उसके शब्दों के स्पष्टतया अभिव्यक्त हो जाने से श्रीकृष्ण तुरन्त ही रीछ की गुफा में अन्दर चले गये थे । शीघ्र भगवान् ने उस रीछ के बिल को प्रवेश कर प्राप्त कर लिया था । इसके पूर्व उनने उस गुफा के द्वार पर लाङ्गली (श्री बलराम) के साथ यादवों को स्थापित करके छोड़ गये थे । शार्ङ्ग धनुष के धारी श्रीकृष्ण ने बिल के अन्दर स्थित जाम्बवान् रीछ को देखा था ॥३६-३७॥ उस बिल में भगवान् वासुदेव जी ने उस रीछों के राजा जाम्बवान् के

साथ युद्ध किया था। श्री गोविन्द ने इक्कीस दिन तक बाहुओं से ही युद्ध किया था ॥३८॥ श्री बलदेव जिनमे प्रमुख थे वे सब गुफा के द्वार पर स्थित यादव गण श्रीकृष्ण के बिल मे प्रविष्ट हो जाने पर वापिस द्वारकापुरी मे लौटकर आ गये थे और उन्होने यह कह दिया था श्रीकृष्ण तो निहत हो गये हैं ॥ ३९॥ उधर भगवान् वासुदेव ने भी महाबली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की सम्मत जाम्बवती कन्या को प्राप्त कर लिया था ॥४०॥ अपनी विशुद्धि के लिये उस स्यमन्तक मणि को भी ग्रहण कर लिया था और रीछों के राजा का अनुनय करके फिर उस बिल से निकलकर आ गये थे ॥४१॥ फिर विनयी पुरोगामियो के साथ श्रीकृष्ण द्वारकापुरी मे आकर प्राप्त हो गये थे। इस तरह भगवान् अच्युत ने उस मणि का आहरण करके अपने ऊपर लगे कलङ्क का परिशोधन किया था ॥४२॥

ददौ सत्राजिते त वै सर्व्वसात्वतससदि ।
एव मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥४३
आत्मा विशोधितः पापाद्वि नर्जित्य स्यमन्तकम् ।
सत्राजितो दश त्वासन् भार्य्यास्तासा शत सुता. ॥४४
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषाभङ्गकारस्तु पूर्व्वजः ।
वीरो वातपतिश्चैव वसुमेधस्तथैव च ॥४५
कुमार्य्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमा. ।
सत्यभामोत्तमा तासा व्रतिनी च दृढव्रता ॥४६
तथा प्रस्वापिनी चैव भार्य्या कृष्णाय ता ददौ ।
सभार्य्यो भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमो ॥४७
जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ।
माद्र्या पुत्रोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥४८
जज्ञाते तनयौ वृष्णे श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ।
श्वफल्क. काशिराजस्य सुता भार्य्यामविन्दत ॥४९

समस्त सात्त्वतो की सभा मे उस स्यमन्तक मणि को श्रीकृष्ण ने सत्राजित् को दे दिया था। इस प्रकार से अमित्रघाती और मिथ्या ही

कलङ्क लगाये गये श्रीकृष्ण ने स्यमन्त को जीतकर अपनी आत्मा को विशोधित किया था। इस सत्राजित् के दश भार्याएँ थी और उन सबसे सौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥४३-४४॥ उन सब में तीन ख्याति प्राप्त कर लेने वाले हुए थे और भृङ्गकार उन सब में ज्येष्ठ था। दूसरे वीर वातपति और वसुमेध थे ॥४५॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके तीन कुमारियाँ भी उत्पन्न हुई थी जो दिशाओं में परम प्रसिद्ध थी। उनमें भी सत्यभामा अत्युत्तम-व्रतिनी और दृढव्रत वाली थी ॥४६॥ तथा प्रस्वापिनी थी। ये सब श्रीकृष्ण के लिये भार्याओं के रूप में समर्पित कर दी थी। सभार्य भङ्गकारि और नावेय ये दोनों नरों में उत्तम तथा गुणों से सुसम्पन्न समुत्पन्न हुए थे जो रूप की सम्पत्ति के कारण परम प्रसिद्ध थे। माद्री का पुत्र वृष्णि पुत्र युधाजित् ने जन्म ग्रहण किया था ॥४७-४८॥ वृष्णि के वीर्य से श्वफल्क और चित्रक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। श्वफल्क ने काशिराज की सुता को अपनी भार्या बनाया था ॥४९॥

गान्दिनी नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता।
तस्या जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिथिप्रियः ॥५०
अक्रूरोऽथ महाभागो यज्वा विपुलदक्षिणः।
उपमद्गुस्तथा मद्गुर्मृदरश्चारिमर्दनः ॥५१
आरिक्षेपस्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमेजयः।
धर्मभृच्चापि धर्मा च गृध्रभोजान्धकस्तथा ॥५२
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥५३
विश्रुताश्वस्य महिषी कन्या चास्य वसुन्धरा ॥५४
रूपयौवनसम्पन्ना सर्वसत्त्वमनोहरा।
अक्रूरेणोग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलनन्दनौ ॥५५
वसुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ।
चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ॥५६

उसका नाम गान्दिनी था और उसका पिता सदा गौओं का दान दिया करता था उस भार्या के गर्भ से महाबाहु-अतिथियों पर प्यार करने वाला श्रुतवान् समुत्पन्न हुआ था ॥५०॥ महान् भाग वाला और विपुल

दक्षिणा देने वाले अक्रूर ने जन्म ग्रहण किया था। उपमद्गु-मद्गु-मुदर-अरिमर्दन अरिक्षेप-उपेक्ष-शत्रुहा-अरिमेजय-धर्मभृत्-धर्मा-गृध्रभोजान्धक-आवाह-प्रतिवाह और वराङ्गना सुन्दरी ने जन्म लिया था ॥५१-५३॥ विश्रुताश्व की महिषी और इसकी कन्या वसुन्धरा थी ॥५४॥ यह रूप एवं यौवन से युक्त तथा समस्त प्राणियों में मनोहर थी। अक्रूर ने उग्रसेना भार्या में कुल के नन्दित करने वाले देवों के समान वर्चस् वाले दो पुत्रों को समुत्पन्न किया था। चित्रक के पृथु और विपृथु पुत्र हुए थे ॥५५-५६॥

अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ।
अरिष्टनेमिश्च सुता धर्म्मो धर्म्मभृदेव च ॥५७
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ।
इमा मिथ्याभिशस्ति यः कृष्णस्य समुदाहृतम् ॥५८
वेद मिथ्याभिशापास्त न स्पृशन्ति कदाचिन ॥५९

अश्वग्रीव-अश्वबाहु-सुपार्श्वक-गवेषण-अरिष्टनेमि सुता-धर्मभृत् और धर्म सुबाहु-बहुबाहु तथा श्रविष्ठा और श्रवणो दो स्त्रियाँ समुत्पन्न हुए थे। इस मिथ्या अभिशस्ति को जो कोई मनुष्य श्रीकृष्ण के विषय में कही गयी थी जानता है उस पुरुष को कभी भी मिथ्याभिशाप स्पर्श नहीं किया करते हैं ॥५७-५९॥

—※—

१४—स्यमन्तक उपाख्यान वर्णन

यस्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
ददावहारयद्बभ्रुर्भोजेन शतधन्वना ॥१
सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्।
अक्रोऽन्तरमन्विष्यन्मणि चैव स्यमन्तकम् ॥२

सत्राजित ततो हत्वा शतधन्वा महाबल ।
रात्रौ त मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥३
अक्रूरस्तु तदा विप्रा रत्नमादाय चोत्तमम् ।
समय कारयाञ्चके नावेद्योऽह त्वयेत्युत ॥४
वयमभ्युत्प्रपत्स्याम कृष्णेन त्वा प्रधर्षितम् ।
ममाद्य द्वारका सर्व्वा वसे तिष्ठत्यसशयम् ॥५
हते पितरि दु खार्त्ता सत्यभामा मनस्विनी ।
प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम् ॥६
सत्यभामा तु तद्वृत्त भोजस्य शतधन्वन ।
भर्त्तुं निवेद्य दुखार्त्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्त्तयत् ॥७

श्री लोमहर्षणजी ने कहा—श्री कृष्णभगवान् ने जो स्यमन्तक मणिरत्न सत्राजित् को दी थी उसको बभ्रु भोज शतधन्वा ने आहृत कर लिया था ॥१॥ अक्रूर अन्तर का अन्वेषण करते हुए सदा अनिन्दित सत्यभामा की और स्यमन्तक मणि की प्रार्थना किया करते थे ॥२॥ इसके उपरान्त महाबली शतधन्वा ने सत्राजित् का हनन करके रात्रि मे ही उस मणि स्यमन्तक को लाकर अक्रूर को देदी थी। और यह समझौता करा लिया था कि आप मेरा नाम किसी को भी न बतायें ॥३–४॥ हम इस बात को अभ्युत्पन्न करेंगे कि कृष्ण के द्वारा आपको प्रधर्षित किया गया है। आज सम्पूर्ण द्वारका निश्चय ही मेरे वश मे स्थित है ॥५॥ मनस्विनी सत्यभामा अपने पिता के मृत हो जाने पर बहुत ही दु ख आर्त्त हो गयी थी। वह सत्यभामा रथ मे समारूढ होकर वारणावत नगर को चली गयी थी ॥६॥ सत्यभामा ने उस भोज शतधन्वा के वृत्त को भर्त्ता से निवेदन करके अत्यन्त दु खार्त्त होकर पास मे स्थिति होती हुई अपने नेत्रों से अश्रुपात कर रही थी ॥७॥

पाण्डवाना च दग्धाना हरि कृत्वोदकक्रियाम् ।
कुल्यार्थे चापि पाण्डूना न्ययोजयत सात्यकिम् ॥८
ततस्त्वरितमागम्य द्वारका मधुसूदन ।
पूर्व्वज हलिन श्रीमानिद वचनमब्रवीत् ॥९

हृतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना ।
स्यमन्तकस्तु मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महारथम् ।
स्यमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति ॥११
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः ।
शतधन्वा ततोऽक्रूरं सर्व्वतोदिशमैक्षत ॥१२
संरब्धौ तावुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनौ ।
शक्तोऽपि शापाद्धार्दिक्यमक्रूरो नान्वपद्यत ॥१३
अपयाने ततो बुद्धि भोजश्चक्रे भयार्दितः ।
योजनानां शतं साग्रं हृदया प्रत्यपद्यतः ॥१४

श्री हरि ने दग्ध हुए पाण्डवों की उदक क्रिया करके पाण्डुओं के कुल्यार्थ में सात्यकि को नियोजित कर दिया था ।।८।। इसके अनन्तर श्रीमधुसूदन शीघ्र ही द्वारकापुरी में समागत हो गये थे और श्रीमाद् श्रीकृष्ण ने अपने बड़े भाई हलधारी बलदेवजी से यह वचन कहा था ।।६।। श्रीकृष्ण ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मार डाला था और शतधन्वा ने सत्राजित् का हनन कर दिया है । हे प्रभो ! अब वह स्यमन्तक मणि मेरे पास आनी चाहिए क्योंकि मैं ही उस मणि का स्वामी हूँ ।।१०।। अतएव हे महबाहो ! अति शीघ्र आप रथ पर समारूढ़ हो जाइये और उस महारथी भोज का हनन करके उस स्यमन्तक को ला.ए । वह स्यमन्तक मणि तभी हमारी हो जायगी ।।११।। श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—इसके अनन्तर भोज और श्रीकृष्ण का महान् घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया था । इसके पश्चात् शतधन्वा ने सभी दिशाओं में अक्रूर को देखा था ।।१२।। वहाँ पर भोज और जनार्दन इन दोनों को संरब्ध देखकर शक्त होते हुए भी अक्रूर ने शाप से अपने हृदय की बात नहीं कही थी ।।१३।। इसके पश्चात् भय से भीत होकर भोज ने वहाँ से अपयान करने का विचार किया था और उसको हृदया ने डेढ़ सौ योजन दूर पहुंचा दिया था ।।१४।।

विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी ।
भोजस्य वडवा विप्रा ययौ कृष्णमयोधयत् ॥१५
क्षीणा जवेन हृदयामध्वन शतयोजने ।
दृष्ट्वा रथस्य स्वा वृद्धि शतधन्वानमर्दयत् ॥१६
ततस्तस्या हतायास्तु श्रमात् खेदाच्च भो द्विजा. ।
समुत्पेतुरथ प्राणा कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥१७
तिष्ठेह त्व महाबाहो दृष्टदोषा हता मया ।
पद्भ्या गत्वा हरिष्यामि मणिरत्न स्यमन्तकम् ॥१८
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युत ।
मिथिलामभितो विप्रा जघान परमास्त्रवित् ॥१९
स्यमन्तक च नापश्यद्धत्वा भोज महाबलम् ।
निवृत्त चाब्रवीत् कृष्ण मणि देहीति लाङ्गली ॥२०
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वित ।
धिक्शब्दपूर्व्वमसकृत् प्रत्युवाच जनार्द्दनम् ॥२१

हृदया भोज की एक घोडी थी । हे विप्रो ! वह हृदया एक सौ योजन तक गमन करने वाली प्रसिद्ध थी। वह दूर चला गया और उसने श्रीकृष्ण से युद्ध किया था ॥१५॥ जब सौ योजन मार्ग के चलने से वह हृदया घोडी वेग से क्षीण हो गयी थी। ऐसी उसको क्षीण देखकर और अपने रथ की वृद्धि को देखकर श्रीकृष्ण ने शतधन्वा को अर्दित किया था ॥१६॥ हे द्विजो ! श्रम और खेद से निहित उसके प्राण आकाश में उत्पतित हो गये थे। तब श्रीकृष्ण बलदेवजी से कहने लगे ॥१७॥ हे महाबाहुओ वाले ! आप यहाँ पर ही ठहरिये। दोष के देखे जाने वाली यह वडवा मैंने मार डाली है। अब पैरों से चलकर ही मैं उस मणि रत्न स्यमन्तक का हरण कर लूँगा ॥१८॥ इसके अनन्तर परम अस्त्रों के ज्ञाता अच्युत ने विप्रगण हे ! पैरों से ही चलकर मिथिला के समीप में उस शतधन्वा का हनन कर दिया था ॥१९॥ उस महान् बलवान भोज को मार कर भी उसके पास उस स्यमन्तक मणि को नहीं देखा था। जब श्रीकृष्ण उस मार कर वापिस लौटे तो

बलरामजी ने श्रीकृष्ण से कहा था—उस स्यमन्तक मणि को हमको देदो ॥२०॥ श्रीकृष्ण ने बलदेवजी को यही उत्तर दिया था कि वह मणि तो उसके पास नहीं मिली है। तब तो बलदेवजी बहुत क्रोधित हो गये थे और वे बारम्बार धिक्कार है ऐसे शब्द श्री कृष्ण से उन्होने कह दे ॥२१॥

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ।
कृत्यन मे द्वारकाया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥२२
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्दनः ।
सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥२३
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमता वरः ।
नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निरर्गलान् ॥२४
दीक्षामय स कवच रक्षार्थं प्रविवेश ह ।
स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः ॥२५
अथ रत्नानि धान्यानि धनानि विविधानि च ।
षष्टिं वर्षाणि धर्म्मात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६
अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।
बह्वन्नदक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिन ॥२७
अथ दुर्य्योधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः ।
गदाशिक्षा ततो दिव्या बलदेवादवाप्तवान् ॥२८

मैं भाई होने के कारण से ही इस बात को सहन कर रहा हूँ, अच्छा तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो अब यहाँ से जाता हूँ। मुझे अब द्वारकापुरी से, तुमसे और वृष्णियो से कुछ कार्य नही है ॥२२॥ इसके अनन्तर अरियो के मर्दन करने वाले बलरामजी ने मिथिला मे प्रवेश किया था और वहाँ पर सम्पूर्ण अभीष्ट उपहारो के द्वारा मिथिल ने उनका अभिपूजन किया था ॥२३॥ इसी बीच मे मतिमानो मे परमश्रेष्ठ बभ्रु ने समस्त अनेक रूपो वाले निरर्गल क्रतुओ को किया था ॥२४॥ उस परम प्राज्ञ महायशस्वी गान्दी पुत्र ने स्यमन्तक लिये दीक्षामय कवच मे रक्षार्थ प्रवेश किया था ॥२५॥ इसके अनन्तर अन्य रत्नों को और

अनेक धनों को साठ वर्ष पर्यन्त उस धर्मात्मा ने यज्ञों में ही नियोजित किया था ॥२ ॥ उस महात्मा के वे यज्ञ अक्रूर यज्ञ हैं ऐसे ही विख्यात हुए थे। वे सभी यज्ञ बहुत अन्न और दक्षिणा वाले थे तथा सब कामनाओं के प्रदान करने वाले भी थे ॥२७॥ इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने मिथिला में जाकर परम दिव्य गदा चलाने की शिक्षा श्रीबलदेवजी से ग्रहण की थी ॥२८॥

सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥२६
अक्रूरश्चान्धकैः सार्द्धमायातः पुरुषर्षभ ।
हत्वा सत्राजितं सुप्तं सहबन्धुं महाबलं ॥३०
ज्ञातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितवांस्तदा ।
अपयाते तदाक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः ॥३१
अनावृष्ट्यो तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम् ।
ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥३२
पुनर्द्वारवती प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ ततः ।
प्रववर्ष सहस्राक्षः कक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३
कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम् ।
अक्रूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमाः ॥३४
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् ।
सभामध्यगतं प्राह तमक्रूरं जनार्दनः ॥३५

इसके पश्चात् वृष्णि और अन्धक महारथियों के द्वारा तथा महात्मा श्रीकृष्ण के द्वारा भली भाँति प्रसन्न करके श्रीबलराम को पुनः द्वारकापुरी में ले आया गया था ॥२९॥ पुरुषों में श्रेष्ठ अक्रूर अन्धकों के साथ आये थे और महा महान् बलवान सोते हुए सहबन्धु सत्राजित् को हनन करके ही समागत हुए थे। उस समय में ज्ञाति के भेद के भय से श्रीकृष्ण ने उसकी उपेक्षा करदी थी। उस अक्रूर के उस समय में अपयात हो जाने पर पाक शासन (इन्द्र देव) ने वर्षा नहीं की थी ॥३०-३१॥ उस समय में अनावृष्टि हुई और सम्पूर्ण राष्ट्र बहुधा कृश हो गया था।

तब तो कुकुरान्धको ने अक्रूर को प्रसन्न किया था ॥३२॥ उस दानपति के पुन द्वारका मे प्राप्त होने पर इन्द्रदेव ने वर्षा की थी और उस समय मे जल निधि से कक्ष मे वर्षा हुई थी ॥३ ॥ हे मुनि सत्तमो ! उस बुद्धिमान अक्रूर ने प्रीति के लिये शील से सम्मत अपनी बहिन को वासुदेव के लिये समर्पित की थी ॥३४॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्ण ने योग के द्वारा बभ्रु के पास रहने वाली मणि का ज्ञान प्राप्त करके सभा के मध्य मे स्थित होकर जनार्दन ने उस अक्रूर से कहा था ॥३५॥

यत्तद्रत्न मणिवर तव हस्तगत विभो।
तत्प्रयच्छ च मानार्ह मयि मानार्य्यक कृथा ॥३६
षष्टिवर्षगते काले यो रोषोऽभून्ममानघ।
स सरुढोऽसकृत् प्राप्तस्तत कालात्ययो महान् ॥३७
स तत कृष्णवचनात् सर्व्वसात्वतससदि।
प्रददौ त मणि बभ्रुरक्लेशेन महामति ॥३८
ततस्तमार्जवात् प्राप्त बभ्रोर्हस्तादरिन्दम।
ददौ हृष्टमना कृष्णस्त मणि बभ्रवे पुन ॥३९
स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्त मणिरत्न स्यमन्तकम्।
आवध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजाशु मानिव ॥४०

श्रीकृष्ण भगवान ने कहा—हे प्रभो ! जो मणियो मे परम श्रेष्ठ रत्नवर है वह तुम्हारे हस्तगत है। हे मनाह ! उसको आप दे दीजिए और मेरे प्रति अनाथ कृत्य मत करिए ॥ ६॥ हे अनघ ! साठ वर्ष के काल के व्यतीत होने पर जो रोष मुझे हुआ था वह बारम्बार सरुढ हो गया है और सबसे बहुत काल का अत्यय हो चुका है ॥३७॥ इसके पश्चात् समस्त सात्वतो की सभा मे श्रीकृष्ण के इस वचनो से महान मतिमान बभ्रु ने बिना ही किसी क्लेश के उस मणि को दे दिया था ॥३८॥ इसके अनन्तर अरियो के दमन करने वाले श्रीकृष्ण ने सरलता के साथ उस बभ्रु के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को श्रीकृष्ण ने परम प्रसन्न मन वाले होकर पुन बभ्रु को प्रदान कर दी थी। उस

गान्दिनी पुत्र ने श्रीकृष्ण के हाथ से सम्प्राप्त हुई उस मणि स्यमन्तक को बाँधकर वह अंशुमान की तरह सुशोभित हो गया था ॥३९-४०॥

१५—भूर्भुव स्वरादिलोकवर्णन

कथित भवता सर्व्वमस्माकं सकलं तथा ।
भुवर्लोकादिकांल्लोकान् श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१
तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा ।
समाचक्ष्व महाभाग यथावल्लोमहर्षण ॥२
रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते ।
ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥३
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला ।
नभस्तावत्प्रमाणं हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥४
भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं विप्रास्तु मण्डलम् ।
लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डलं शशिनः स्थितम् ॥५
पूर्व्वे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते ॥६
द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।
तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः ॥७

मुनिगण ने कहा—हे श्री लोमहर्षण जी ! आपने हमारे सामने सभी कुछ सम्पूर्ण वर्णित करके बता दिया है। अब हम लोग भुवर्लोकादिक समस्त लोकों को श्रवण करने की इच्छा रखते हैं। उसी भाँति ग्रहों का संस्थान तथा उनके प्रमाण जो भी जिस भाँति हैं हे महाभाग ! आप इस समय में ठीक २ वर्णन कीजिए ॥१-२॥ श्री लोमहर्षण जी ने कहा—सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से जितना भाग अवभासित हुआ करता है जिसमें समुद्र पर्वत और नदियाँ भी हैं उतनी ही

यह पृथिवी कही गयी है ॥३॥ विस्तार के परिमण्डल वाली जितने प्रमाण से युक्त यह पृथिवी है नभ भी उतने प्रमाण से संयुत विस्तार परिमडल वाला होता है ॥४॥ हे विप्रगण ! भूमि के एक लक्ष योजन मे सौर मण्डल है। उस दिवाकर से भी लक्ष योजन मे चन्द्र का मडल स्थित होता है ॥५॥ निशाकर से एक सौ सहस्र योजनो के पूर्व मे ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित हुआ करता है ॥६॥ हे विप्रो ! इस नक्षत्र मण्डल से दो लक्ष योजन उत्तर मे बुध है। इस बुध के उतने ही प्रमाण भाग मे शुक्र स्थित रहा करता है ॥७॥

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः ।
लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥८
सौरिर्बृहस्पतेरूर्द्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः ।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तमाः ॥९
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्द्ध्वं व्यवस्थितः ।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ॥१०
त्रैलोक्यमेतत् कथितं सक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।
इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥११
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।
एकयोजनकोटी तु महर्लोको विधीयते ॥१२
द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः ।
सनन्दनाद्याः कथिता विप्राश्चामलचेतसः ॥१३
चतुर्गुणोत्तरं चोर्द्ध्वं जनलोकात्तपः स्मृतम् ।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता देहविवर्ज्जिताः ॥१४

अङ्गारक (मङ्गल) भी उतने ही प्रमाण की शुक्र की दूरी पर व्यवस्थित रहा करता है। भौम से दो लाख योजन की दूरी पर देवो के पुरोहित (बृहस्पति) स्थित रहा करते हैं ॥८॥ सौरि अर्थात् सूर्यदेव के पुत्र शनि बृहस्पति से भी ऊपर दो लाख योजन की दूरी पर अवस्थित रहा करता है। हे द्विजोत्तमो ! सप्तर्षियो का मण्डल उस शनि से एक लक्ष योजन के फासले पर रहा करता है। जो ऋषियो के एक सौ सहस्र

यह सम्पूर्ण अण्डकटाह के द्वारा तिरछा ऊपर नीचे जिस प्रकार से कपित्थ का बीज होता है उसी भाँति सब ओर से समावृत्त होता है ॥२२॥ हे द्विजगण ! यह दशोत्तर पय से आण्ड आवृत्त होता है। यह अम्बु परिवार वाला होता है और वह्नि से वेष्टित हुआ करता है ॥२३॥ वह वह्नि वायु से आवृत्त होता है तथा हे द्विजगण ! वह वायु नभ से समावृत है। हे मुनिगण ! वह नभ भी महत् से आवृत होता है अर्थात् महत् तत्त्व उसके सब ओर परिवेष्टित होकर रहता है ॥२४॥ इन समस्त दशोत्तर हे विप्रो ! ये सात हैं उन सबको और महत्तत्त्व को समावृत करके प्रधान समवस्थित रहा करता है ॥२५॥ यह अनन्त है और उसकी कोई सख्या भी नही है। क्योंकि वह प्रमाण से भी अनन्त और असख्यात है। यह सम्पूर्ण का हेतुभूत है हे द्विजो ! वह परा प्रकृति है। जिनका अन्त होता है उन अन्तों के सहस्रो और सहस्रो अयुत होते हैं ॥२६ २७॥ इस तरह रहने वाले यहाँ सकडो करोडो के भी करोड हैं। जिस तरह से काष्ठ म अग्नि और तिलो म तैल रहा करता है ठीक उसी भाति यहाँ पर पुमान् रहते हैं ॥२८॥

प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदन ।
प्रधनञ्च पुमाश्चैव सर्वभूतानुभूतया ॥२९
विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा धृतौ संश्रयधर्म्मिणौ ।
तयो सैव पृथग्भाव कारण संश्रयस्य च ॥३०
क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमा ।
यथा शैत्य जले वातो बिभर्त्ति कणिकागतम् ॥३१
जगच्छक्तिस्तथा विष्णो प्रधानपुरुषात्मकम् ।
यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसयुत ॥३२
आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि वै तत ।
प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमा ॥३३
तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजा ।
एवमव्याकृताद् पूर्व्वं जायन्ते महदादय ॥३४

विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्ति सुरादयः ।
तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणां परमे सुताः ॥३५

यह प्रधान मे अवस्थित-व्यापक और चेतनात्म निवेदन वाला है। यह प्रधन और पुमान् समस्त भूतो के द्वारा अनुभव की गयी भगवान् विष्णु की शक्ति से हे द्विजश्रेष्ठो ! सश्रय धर्मवाले धारण किये गये हैं। उन दोनो के पृथग्भाव मे वही सश्रय का कारण होती है ॥२९-३०॥ हे द्विजगण ! और सर्ग के समय मे क्षोभ का कारण भूत होती है। जिस तरह से जल मे शीतलता होती है और वात कणिका जल को धारण किया करता है ठीक उसी प्रकार से भगवान् विष्णु की प्रधान और पुरुष के स्वरूप वाली इस जगत् की शक्ति हुआ करती है। जिस प्रकार से वृक्ष मूल-शाखा आदि से सयुत हुआ करता है ॥३१-३२॥ यह वृक्ष आदि मे होने वाले बीज से ही उत्पन्न हुआ करता है और इसके पश्चात् इसमे आगे बड़ा हो जाने पर वैसे ही अन्य बीज भी हो जाया करते हैं और फिर उन्ही बीजो से आगे चलकर दूसरे अन्य द्रुम भी समुत्पन्न हो जाया करते हैं ॥३३॥ हे द्विजो ! और वेरी उसी लक्षण वाले द्रव्य के कारण के अनुगत होते हैं। इसी भाँति अव्याकृत से पूर्व मे महदादि समुत्पन्न हुआ करते हैं ॥३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष इनमे अन्तिम होता है उनसे ही सब सुर आदि समुत्पन्न हुआ करते हैं फिर उनके पुत्र उत्पन्न होते हैं और उन पुत्रो के भी परम पुत्र-पौत्रादि हुआ करते हैं ॥३५॥

बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः ।
भूताना भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥३६
सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः ।
तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः ॥३७
व्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा ।
काण्डकोपास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः ॥३८
तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः ।
प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमाः ॥३९

तथा कर्म्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनव स्थिता ।
विष्णुशक्ति समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै ॥४०
स च विष्णु पर ब्रह्म यत सर्व्वमिद जगत् ।
जगच्च यो यत्र चेद यस्मिन्विलयमेष्यति ॥४१
तद्ब्रह्म परम धाम सदसत् परम पदम् ।
यस्य सर्व्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम् ॥४२
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च स ।
तस्मिन्नेव लय सर्व्वं याति तत्र च तिष्ठति ॥४३
कर्त्ता क्रियाणा स च इज्यते क्रतु,
स एव तत् कर्म्मफल्च यस्य यत् ।
युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो-
हरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति तत् ॥४४

जिस प्रकार से बीज से जब वृक्ष का प्ररोह होता है तो उस का अपचय नहीं होता है उस प्रकार से भूतों के भूतों का सर्ग होने से अपचय नहीं हुआ करता है ॥३६॥ जिस प्रकार से सन्निधान से तरु के प्रकाश कालादि कारण होते हैं ठीक उसी भाँति विश्व के अपरिणाम के होने से भगवान् श्री हरि कारण होते हैं ॥३७॥ जिस तरह स ब्रीहि के बीज में उसका मूल नाल पत्र-अङ्कुर-काण्ड कोष पुष्प-क्षीर आदि होते हैं उसी भाँति तण्डुल होता है ॥३८॥ तुष और कण होते हुए अपने आपका आविर्भाव किया करते हैं । हे मुनिगण ! जिस समय बीज को सम्पूर्ण प्ररोह होने की सामग्री प्राप्त होती है तभी ऐसा होता है अर्थात् दान धर्म सभी का प्रादुर्भाव हो जाया करता है ॥३९॥ उसी प्रकार से अनेक कर्मों में देवादि तनु स्थित होते हैं । जिस समय वे भगवान् विष्णु की शक्ति उनको प्राप्त हो जाती है तभी व प्ररोह को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥४०॥ वे भगवान् श्री विष्णु ही परब्रह्म हैं जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् हुआ करता है । और यह जगत् और सम्पूर्ण विश्व जिनमें आकर विलय को प्राप्त हो जाया करता है । तात्पर्य यह है कि उन्हीं भगवान् विष्णु से इस जगत् की उत्पत्ति होती है और उसी में इसका

विलय भी हो जाया करता है ॥४१॥ वही ब्रह्म परम धाम है और सत् तथा असत् परम पद होता है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिसके अभेद से ही विद्यमान होता है ॥४२॥ यह ही मूल प्रकृति है और वही व्यक्त रूप वाला यह जगत् है। इसी में यह सम्पूर्ण लय को प्राप्त हो जाया करता है तथा उसी में स्थित रहा करता है। तात्पर्य यह है कि यह सम्पूर्ण जगत् उसी परमब्रह्म भगवान् विष्णु का ही स्वरूप है ॥४३॥ समस्त क्रियाओं का वही कर्त्ता है—और वही क्रतु स्वरूप है जिसका यजन किया जाया करता है—वही उस कर्म का फल होता है जिससे ये सब युगादि हुआ करते हैं। श्री हरि भगवान् से व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है यह सभी कुछ उसी का स्वरूप होता है ॥४४॥

—:※:—

१६—ध्रुवसंस्थिति निरूपण।

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृतिः प्रभोः ॥१
दिवि रूप हरेर्यन्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः।
तैप भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान्।
भ्रमन्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२
सूर्य्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैःसह।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥३
शिशुमाराकृति प्रोक्तं यद्रूप ज्योतिषा दिवि।
नारायणः पर धाम तस्याधारः स्वयं हृदि ॥४
उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम्।
स ताराशिशुमारस्य ध्रुवः पुच्छे व्यवस्थितः ॥५
आधारः शिशुमारस्य सर्व्वाध्यक्षो जनार्द्दनः।
ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुर्व्यवस्थितः ॥६

तदाधारं जगच्चेद सदेवासुरमानुषम् ।
येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम् ॥७

श्रीलोम हर्षण जी ने कहा—उन्हीं प्रभु भगवान की यह तारामय शिशुमार आकृति है ॥१॥ दिवलोक में यह उसी श्री हरि का रूप होता है और उसके पुच्छ में ध्रुव की स्थिति है। वही स्वयं भ्रमण करता हुआ चन्द्र तथा आदित्य आदि समस्त ग्रहों को भ्रमण कराया करता है। भ्रमण करते हुए उसी के पीछे चन्द्र की भाँति ये सब नक्षत्र गमन किया करते हैं ॥२॥ सूर्य-चन्द्र-तारागण सब ग्रहों के साथ वाता-मीक मय बन्धों के द्वारा ध्रुव में बद्ध होते हैं ॥३॥ दिविलोक में ज्योतियों का जो स्वरूप है वह शिशुमार की आकृति कहा गया है। भगवान् नारायण परम धाम है और उसका आधार स्वयं हृदय में होता है ॥४॥ राजा उत्तानपाद का जो पुत्र ध्रुव था उसने उसी प्रजापति की आराधना की थी और वह ध्रुवतारा शिशुमार के पुच्छ में व्यवस्थित रहता है ॥५॥ इस शिशुमार का आधार सबका स्वामी भगवान जनार्दन होते हैं। यह शिशुमार ध्रुव का तथा उस ध्रुव में भानु व्यवस्थित होता है ॥६॥ उसका आधार यह जगत है जिसमें देव-असुर और मानव सभी विद्यमान हैं। हे विप्रगण ! जिस विधान से इन सबकी स्थिति होती उसका अब आप लोग सब मुझसे श्रवण करिए ॥७॥

विवस्वानष्टभिर्मासैर्ग्रस्त्यापो रसात्मिकाः ।
वर्षत्येषु ततश्चान्नमन्नादमखिलं जगत् ॥८
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम् ।
सोमं पुष्यत्यथेन्दुश्च वायुनाडीमयैर्दिवि ॥९
जलैर्विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु ।
न भ्रस्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् यतः ॥१०
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।
संस्कारं कालजनितं विप्राश्चासाद्य निर्म्मलाः ॥११

सरित्समुद्रा भौमास्तु यथापः प्राणिसम्भवाः ।
चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता द्विजाः ॥१२
आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गभस्तिमान् ।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ॥१३
तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तम ।
न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥१४

यह विवस्वान् (सूर्य) आठ मासों में जो रसात्मक जल है उसका ग्रहण किया करता है फिर वही इन पर जल की वृष्टि द्वारा अन्न की वर्षा किया करता है और उसी अन्न से यह सम्पूर्ण जगत् निर्मित हुआ करता है ॥८॥ विवस्वान् अपनी परम तीक्ष्ण किरणों के द्वारा जगत् के जल को ग्रहण करा लिया करता है। यह सोम को पुष्ट किया करता है और यह इन्दुवायुनाडी मय दिवलोक में रहता है ॥९॥ धूम-अग्नि और अनिल मूर्ति वाले मेघों से जलों के द्वारा विक्षिप्यमाण किया जाता है जिस कारण से उनसे अभ्र जलों को नहीं गिराया करते हैं ॥१०॥ इनमें वर्त्तमान रहने वाले जल जब वायु के द्वारा समुदीरित होते हैं तभी नीचे गिरा करते हैं। हे विप्रगणो ! कालजनित संस्कार को प्राप्त करके ये निर्मल हो जाते हैं ॥११॥ हे द्विजगणो ! भगवान् सविता चार प्रकार के जलों का आदान किया करते हैं—सरिता-समुद्र-भूमि पर होने वाले और प्राणियों से समुत्पन्न जल हैं ॥१२॥ गभस्तिमान् (सूर्य) उसी भाँति आकाश गङ्गा के जल का आहरण करके उस अनभ्रगत को ही तुरन्त अपनी रश्मियों के द्वारा पृथ्वी पर क्षिप्त कर दिया करते हैं ॥१३॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके भली-भाँति स्पर्श होने से जिसके पापों का कीच धुल गया है वह मनुष्य फिर मरने में कभी भी गमन नहीं किया करता है क्योंकि वह परम दिव्य स्नान बताया जाता है ॥१४॥

दृष्टसूर्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः ।
आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ॥१५
कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेष्वम्बु यद्दिवः ।
दृष्ट्वार्कं पतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोज्झितम् ॥१६

युग्मर्क्षेषु तु यत्तोयं पतत्यर्कोद्धृतं दिवः ।
तत्सूर्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते ॥१७
उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापहरं द्विजाः ।
आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं द्विजोत्तमाः ॥१८
यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः ।
पुष्णात्योषधयः सर्व्वा जीवनायामृतं हि तत् ॥१९
तेन वृद्धिं परां नीतः सकलश्चौषधीगणः ।
साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते ॥
तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः
कुर्व्वतेऽहरहर्श्चैव देवानाप्याययन्ति ते ॥२१

जिसने सूर्य का दर्शन न प्राप्त किया है वह जल बिना ही मेघों के देवलोक से गिरा करता है। वह आकाश गङ्गा का जल है जो रवि की किरणों के द्वारा प्रक्षिप्त हुआ करता है ॥१५॥ कृत्तिका आदि नक्षत्रों में विषमों में जो जलदिव से अर्क को देखकर पतित होता है उसको दिग्गजों के द्वारा उद्धृत गाङ्गजल ही समझना चाहिए ॥१६॥ युग्म नक्षत्रों में जो जल दिवलोक से सूर्य के द्वारा उद्धृत नीचे गिरा करता है वह सूर्य की किरणों के द्वारा तुरन्त ही ग्रहण कर निरस्त हो जाया करता है ॥१७॥ हे द्विजो ! यह दोनों प्रकार का जल मनुष्यों के लिये परम पुण्यमय होता है। और पापों का हरण करने वाला हुआ करता है। हे द्विजो ! आकाश गङ्गा का जो जल होता है वह परम दिव्य स्नान बताया गया है। इस जल का बहुत बड़ा महत्व है ॥१८॥ हे द्विजगण ! जो मेघों के द्वारा जल छोड़ा जाया करता है वह प्राणियों की सब ओषधियों का पोषण किया करता है और वह जीवन के लिये अमृत हुआ करता है ॥१९॥ इससे सम्पूर्ण ओषधियों का समुदाय परमाधिक वृद्धि को प्राप्त हो गया था तथा प्रजाजनों का फल पाकान्त साधक हो जाता है ॥२०॥ उससे शास्त्रों के चक्षुओं वाले अर्थात् शास्त्रों के द्वारा अपना कर्त्तव्य मार्ग निर्णय करने वाले मनुष्य आये दिन यथा गदित

यज्ञों को किया करते हैं और वे देवों को आप्यायित करते रहते हैं ॥२१॥

एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्वकाः
सर्व्वदेवनिकायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥२२
वृष्ट्या धृतमिदं सर्व्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥२
आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः ।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मकः ॥
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः ।
विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥२५
एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् ।
भूसमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२६

इस प्रकार से यज्ञ-वेद-द्विज जिनमें प्रमुख हैं ऐसे वर्ण तथा सब देवों के निकाय और पशुभूतगण वृष्टि के ही द्वारा यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत धारण किया गया है । हे मुनिश्रेष्ठो ! वह वृष्टि भी सविता के ही निष्पादित की जाया करती है ॥२२॥२३॥ हे मुनिवरोत्तमो ! उस वृष्टि के कर्त्ता सविता का आधारभूत ध्रुव है । उस ध्रुव का आधार यह शिशुमारचक्र होता है और वह शिशुमार भगवान् नारायण का आश्रित है ॥२४॥ उस शिशुमार के हृदय में नारायण संस्थित रहा करते हैं । वे भगवान नारायण समस्त भूतों के विशेष भरण करने वाले आदिभूत एवं सनातन हैं ॥२५॥ इस प्रकार से हे मुनिगणो ! मैंने भूमि और समुद्र आदि से युक्त यह पूर्ण ब्रह्माण्ड वर्णित कर दिया है अब आप लोग यह बताओ कि अन्य क्या मुझसे श्रवण करना चाहते हैं ? ॥२६॥

—:×:—

१७—सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णन ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ श्रोतुं नो वर्त्तते मनः ॥१
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं,
वाचां तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि,
स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥३
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ।
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः ।
दुष्टाशयं दम्भरुचिं पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥५
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः ।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥६
तस्माच्छृणुध्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च ।
संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि कानि वै ॥७

मुनिगण ने कहा—हे धर्म के ज्ञाता ! इस भूमण्डल में जो भी तीर्थ तथा परम पुण्यमय स्थल हैं उनका अब आप वर्णन करने के योग्य हैं क्योंकि हमारा मन उनके श्रवण करने का बहुत इच्छुक है ॥१॥ श्री लोमहर्षण मुनि ने कहा—सभी तीर्थ फल देने वाले होते हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है किन्तु जिस मनुष्य के हाथ-पैर और मन सुसंयत हुआ करते हैं तथा जिसमें विद्या-तप और कीर्ति विद्यमान होते हैं वही मनुष्य तीर्थों के फल का उपभोग किया करता है । तीर्थों के फल पाने के लिये सुसंयत होने की परमावश्यकता है ॥२॥ पुरुष का विशुद्ध मन ही एक महान तीर्थ है । मनुष्य की वाणी का निग्रह और सब

इन्द्रियों का निग्रह रखना ये भी मानव के शरीर में ही रहने वाले तीर्थ होते हैं तथा ये स्वर्ग के मार्ग को बतला देने वाले होते हैं ॥३॥ अन्दर शरीर मे रहने वाला चित्त ही यदि दुष्ट है अर्थात् अनेक दोषो से युक्त है तो वह तीर्थों के स्नान करने से कभी भी शुद्ध नही हुआ करता है । जिस तरह से सैंकड़ो बार जल से धोया हुआ भी सुरा का पात्र अशुचि ही रहा करता है और कभी भी शुद्ध एव पवित्र नही हो सकता है वैसे ही दोष युक्त मन वाला मनुष्य तीर्थों के स्नान से कभी पवित्र नही होता है ॥४॥ जिस पुरुष की दूषित भावनाएँ होती है जो दण्ड मे रुचि रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ अविजित होती हैं उस मनुष्य को तीर्थ-दान-व्रत और आश्रम कभी भी विशुद्ध नही कर सकते हैं । अपनी इन्द्रियो को वश मे करके मनुष्य जहा २ पर भी निवास किया करता है वहाँ २ पर ही कुरुक्षेत्र प्रयाग और पुष्कर हो जाया करता है। शुद्धि के लिये अपनी इन्द्रियो का हनन करना परमावश्यक होता है ॥५-६॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! इसलिये क्योंकि आप लोग तीर्थो के शुभ नाम जानना चाहते हैं मैं तीर्थों तथा पुण्य स्थलो को सक्षेप के साथ बतलाऊँगा । आप लोग श्रवण करिये जो भी इस पृथिवी पर विद्यमान हैं ॥७॥

विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ।
प्रथम पुष्कर तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ॥८
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्य द्विजोत्तमाः ।
धेनुक चम्पकारण्य सैन्धवारण्यमेव च ॥६
पुण्यञ्च मगधारण्य दण्डकारण्यमेव च ।
गया प्रभास श्रीतीर्थं दिव्य कनखल तथा ॥१०
भृगुतुङ्ग हिरण्याक्ष भीमारण्य कुशस्थलीम् ।
लोहाकुल सकेदार मन्दरारण्यमेव च ॥११
महाबल कोटितीर्थं सर्व्वपापहर तथा ।
रूपतीर्थं शूकरव चक्रतीर्थं महाफलम् ॥१२

योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साह्रोटक तथा ।
तीर्थं कोकामुख पुण्य बदरीशैलमेव च ॥१३
सोमतीर्थं तुङ्गकूट तीर्थं स्कन्दाश्रम तथा ।
कोटितीर्थश्चाग्निपद तीर्थं पञ्चशिख तथा ॥१४

यदि कोई भी विस्तार के साथ तीर्थों के और शुद्ध आयतनों को बतलाने का प्रयत्न करे तो सैकड़ो वर्षों मे भी उनको नही बतला सकता है । सर्व प्रथम पुष्कर तीर्थ है—तथा नैमिषारण्य है ॥८॥ हे द्विजोत्तम ! प्रयागराज को बतलाता हूँ । धर्म्मारण्य तीर्थ है । धेनुक चम्पकारण्य है तथा सैन्धवारण्य तीर्थ है ॥९॥ परम पुण्यमय मे तीर्थ मगधारण्य और दण्डकारण्य तीर्थ हैं । गया प्रभास श्रीतीर्थ तथा दिव्य कनखल तीर्थ हैं ॥१०॥ भृगुतुङ्ग हिरण्याक्ष भीमारण्य कुशस्थली-लोहाकुल सकेदार- और मन्दरारण्य तीर्थ हैं ॥ १॥ महाबल कोटितीर्थ तथा सर्वपापहर तीर्थ हैं । रूपतीर्थ शूकरव और महा फलचक्र तीर्थ हैं ॥१२॥ योगतीर्थ-सोम तीर्थ तथा साह्रोटक तीर्थ है परम पुण्य कोकमुख तथा बदरीशैल तीर्थ हैं ॥१३॥ सोमतीर्थ-तुङ्गकूट तथा स्कन्दाश्रमतीर्थ हैं । कोटितीर्थ-अग्निपदतीर्थ और पञ्चशिख तीर्थ है है१४॥

धर्म्मोद्भव कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम् ।
गङ्गाद्वार पञ्चकूट मध्यकेसरमेव च ॥१५
चक्रप्रभ मतङ्गञ्च कुशदत्तञ्च विश्रुतम् ।
दष्ट्राकुण्ड विष्णुतीर्थं सार्व्वकामिकमेव च ॥१६
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभ तथा ।
ब्रह्मकुण्ड वह्निकुण्ड तीर्थं सत्यपद तथा ॥१७
चतुःस्रोतश्चतुःशृङ्ग शैल द्वादशधारकम् ।
मानस स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्ड तथार्व्वशो ॥१८
लोकपाल मनुवर सोमाह्व शैलमेव च ।
सदाप्रभ मेरुकुण्ड तीर्थं सोमाभिषेचनम् ॥१९
महास्रोत कोटरक पञ्चधार त्रिधारकम् ।
सप्तधारैकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम् ॥२०

शालग्राम चक्रतीर्थ कोटिद्रु मगनुत्तमम् ।
विल्वप्रभ देवह्लद तीर्थं विष्णुह्लद तथा ॥२१

धर्मोद्भव-कोटितीर्थ और बाघ प्रमोचन नाम वाला एक तीर्थ है। गङ्गाद्वार-पञ्चकूट और मध्य केशार तीर्थ है ॥१५॥ चक्रप्रभ-मतङ्ग-कुशवत्त परम विश्रुत तीर्थ होता है। दध्राकुण्ड विष्णुतीर्थ और सार्वकामिक तीर्थ है ॥१६॥ मत्स्यतिल तीर्थ है और बदरी सुप्रभ तीर्थ है। ब्रह्मकुण्ड वह्निकुण्ड तथा सत्यपद तीर्थ है ॥१७॥ चतु स्रोत-चतुश्शृङ्ग तथा द्वादश और धारक तीर्थ है। मानसा-स्थूलश्रृङ्ग-स्थूलदण्ड और उर्वशी तीर्थ है ॥१८॥ लोकपाल-मनुवर-सोमाह्लशैल-सदाप्रभ-मेरुकुण्ड और सोमाभिषेन तीर्थ है ॥१९॥ महास्रोत-कोटरक-पञ्चधार त्रिधारस सप्तधार एकधार और अमर कण्टका तीर्थ हैं ॥२०॥ शालग्राम-चक्रतीर्थ सर्वोत्तम कोटिद्रुगु-विल्व प्रभ तथा विष्णुह्लद नाम वाले तीर्थ हैं ॥२१॥

शङ्खप्रभ देवकुण्ड तीर्थ वज्रायुध तथा ।
अग्निप्रपञ्च पुन्नाग देवप्रभमनुत्तमम् ॥२२
विद्याधर सगान्धर्व्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो ह्लदम् ।
सातीर्थ लोकपालाख्य मणिपूरगिरि तथा ॥२३
तीर्थं पञ्चह्लदञ्चैव पुण्य पिण्डारक तथा ।
मलय गोप्रभावञ्च गोवर वटमूलकम् ॥२४
स्नानदण्ड प्रयागञ्च गुह्य विष्णुपद तथा ।
कन्याश्रम वायुकुण्ड जम्बूमार्ग तथोत्तमम् ॥२५
गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतन शुचि ।
कोटितीर्थं भद्रवट महाकालवन तथा ॥२६
नर्म्मदातीर्थमपर तीर्थवज्र तथार्बुदम् ।
पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठ तीर्थं च पृथुसङ्गमम् ॥२७
तीर्थं दौर्व्वासिक नाम तथा पिञ्जरक शुभम् ।
ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्ग वसुतीर्थं कुमारिकम् ॥२८

शङ्खप्रभ-देवकुण्ड वज्रायुध-अग्निप्रभ पुन्नाग-सर्वोत्तम देवप्रभ-विद्याधर सगान्धर्व श्री तीर्थ ब्रह्मह्लद-सप्तीर्थ-लोकपालाख्य-मणिपूरागिरि-पञ्चह्लद

तीर्थ तथा पुण्य और पिण्डारक तीर्थ हैं। मलय-गोप्रभाव-गोवर-वटमूलक स्नानदण्ड-प्रयाग-गुह्य तथा विष्णुपद-कन्याश्रम वायुकुण्ड तथा सर्वोत्तम जम्बूमार्ग तीर्थ हैं ॥२२-२५॥ गभस्ति तीर्थ-ययातिपतन शुचि-कोटितीर्थ भद्रवट तथा महाकालवन तीर्थ हैं ॥२६॥ ऊपर नर्मदा तीर्थ-तीर्थवज्र-अर्बुद-पिङ्गतीर्थ सवासिष्ठ और पृथु सङ्गमतीर्थ हैं ॥२७॥ दौर्वासिक नामक एक तीर्थ है तथा शुभ पिञ्जरक तीर्थ है। ऋषितीर्थ-ब्रह्मतुङ्ग-वसु तीर्थ और कुमारिक तीर्थ हैं ॥२८॥

शक्रतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च ।
पैतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम् ॥२९
मणिमत्तञ्च कामाख्यं कृष्णतीर्थं कुशाविलम् ।
यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुकम् ॥३०
पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम् ।
दीर्घसत्रं हयपदं तीर्थं चानशनं तथा ॥३१
गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्म्मदोद्भेदमेव च ।
वस्त्रापदं दारुवलं छायारोहणमेव च ॥३२
सिद्धेश्वरं मित्रवलं कालिकाश्रममेव च ।
वटावटं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम् ॥३३
द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजयं कामदं तथा ।
रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्रायनामितम् ॥३४
स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम् ।
सततं पृथिवीसर्व्वं पारिप्लवपृथूदकौ ॥३५

शक्रतीर्थ-पञ्चनद रेणुकातीर्थ-पैतामह-विमल तथा उत्तम रुद्रपाद-मणिमत्त-कामाख्य-कृष्णतीर्थ-कुशाविल यजन-याजन तथा ब्रह्मवालुक तीर्थ हैं ॥२९-३०॥ पुष्पन्यास-पुण्डरीक-मणिपूर-दीर्घसत्र-हयपद तीर्थ और अनशन नाम वाला तीर्थ है ॥३१॥ गङ्गोद्भेद-शिवोद्भेद-नर्मदोद्भेद-वस्त्रापद- दारुवल-छायारोहण -सिद्धेश्वर-मित्रवल- कालिकाश्रम-वटावट-भद्रवट-कौशाम्बी और दिवाकर ये सभी तीर्थ हैं ॥३२-३३॥ द्वीप-सारस्वत-विजय-कामद रुद्रकोटि-सुमनस और सद्रायनामित नामक तीर्थ हैं ॥३४॥

स्यमन्त पञ्चकतीर्थ-ब्रह्मतीर्थ-सुदर्शन-सतत पृथिवी सर्व्व तथा परिप्लव एवं पृथूदक तीर्थ हैं ॥३५॥

दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्पिजं विषयान्तिकम् ।
कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीह्लदम् ॥३६
पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवाट तथोत्तमम् ।
बदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च ॥३७
लोकद्वारं पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च ।
सूर्य्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च ॥३८
तीर्थश्च यक्षराजस्य ब्रह्मावर्त्तं सुतीर्थकम् ।
कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवन तथा ॥३९
स्नानलोमापहश्चैव माससंसरकं तथा ।
दशाश्वमेध केदारं ब्रह्मोदुम्बरमेव च ॥४०
सप्तर्पिकुण्डञ्च तथा तीर्थं देव्याः सुजम्बुकम् ।
ईहास्पदं कोटिकूटं किन्दान किञ्जपं तथा ॥४१
कारण्डवं चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमथापरम् ।
पाणिखातं मिश्रकञ्च मधुवटमनोजवौ ॥४२

दशाश्वमेधिक तीर्थ, सर्पिज-विषयान्तिक कोटितीर्थ, पञ्चनद-यक्षिणीह्लद-पुण्डरीक-सोमतीर्थ उत्तम मुञ्जवाट-बदरीवन-रत्नमूलक-लोकद्वार-पञ्चतीर्थ-कपिलातीर्थ सूर्यतीर्थ-शङ्खिनी और गवा भवन तीर्थ हैं ॥३६-३८॥ यक्षराज का तीर्थ-ब्रह्मावर्त्त-सुतीर्थ-कामेश्वर-मातृतीर्थ-शीतवन-स्नानलोमापह-माससंसरक-दशाश्वमेध-केदार-ब्रह्मादुम्बर तीर्थ हैं ॥३९-४०॥ सप्तर्पिकुण्ड नाम वाला तीर्थ तथा देवी का सुजम्बुकतीर्थ-ईहास्पद तीर्थ-कोटिकूट-किन्दान-किञ्जप तीर्थ हैं ॥४१॥ कारण्डव-अवेध्य तथा अपर त्रिविष्टप तीर्थ-पाणिखात-मिश्रक-मधुवट तथा मनोजव तीर्थ हैं ॥४२॥

कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम् ।
दिव्यञ्च नृगधूमाख्यं तीर्थं विष्णुपद तथा ॥४३

अमराणां ह्रदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम् ।
श्रीकुब्जं शालितीर्थञ्च नैमिशेयञ्च विश्रुतम् ॥४४
ब्रह्मस्थान सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च ।
ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै कारुपावनम् ॥४५
सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती ।
ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम् ॥४६
त्रिशूलधारं माहेन्द्र देवस्थान कृतालयम् ।
शाकम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलि ह्रदम् ॥४७
क्षीरस्रवं विरूपाक्षं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् ।
ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्व्वतमेव च ॥४८
कुजाम्रकं भद्रवटं वसिष्ठपदमेव च ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं कालिकाश्रममेव च ॥४९

कौशिकी-देवतीर्थ-ऋणमोचन तीर्थ-विम्य-नृग धूमाख्य तीर्थ-विष्णुपद तीर्थ है ॥४३॥ अमरों का अर्थात् देवों का पुण्य ह्रद-तथा अपर कोटि तीर्थ-श्रीकुब्ज-शालितीर्थ और परम प्रसिद्ध नैमिषेय तीर्थ है ॥४४॥ ब्रह्मस्थान-सोमतीर्थ-कन्या तीर्थ-ब्रह्मतीर्थ मनस्तीर्थ-कारुपावन तीर्थ-सौगन्धिक वन नाम वाला मणि तीर्थ, सरस्वती-ईशान तीर्थ प्रवर एवं पावन पाञ्चयाज्ञिक तीर्थ हैं ॥४५-४६॥ त्रिशूल धार-माहेन्द्र-देवस्थान-कृतालय-शाकम्भरी-देव तीर्थ-सुवर्णाक्ष-कलि-ह्रद-क्षीरस्रव-विरूपाक्ष-भृगु तीर्थ-कुशोद्भव-ब्रह्म तीर्थ-ब्रह्मयोनि-नीलपर्वत तीर्थ हैं ॥४७-४८॥ कुजाम्रक भद्रवट-वसिष्ठपद-स्वर्गद्वार-प्रजाद्वार और कालिकाश्रम तीर्थ हैं ॥४९॥

रुद्रावर्त्तं सुगन्धाश्वं कपिलावनमेव च ।
भद्रकर्णह्रदञ्चैव शङ्कुकर्णह्रदं तथा ॥५०
सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थमौशनसं तथा ।
कपालमोचनञ्चैव अघकीर्णञ्च काम्यकम् ॥५१
चतुःसामुद्रिकञ्चैव शतिकञ्च सहस्रिकम् ।
रेणुकं पञ्चवटकं विमोचनमथौजसम् ॥५२

स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वारं कुशध्वजम् ।
विश्वेश्वरं माणवकं कूप नारायणाश्रयम् ॥५३
गङ्गाह्रद वटञ्चैव वदरीपाटन तथा ।
इन्द्रमार्गमेकरात्रं क्षीरकावासमेव च ॥५४
सोमतीर्थं दधीचस्य श्रुततीर्थञ्च भो द्विजाः ।
कोटितीर्थं स्थलीञ्चैव भद्रकालीह्रद तथा ॥५५
अरुन्धतीवनञ्चैव ब्रह्मावर्त्तं तथोत्तमम् ।
अश्ववेदी कुब्जावनं यमुनाप्रभव तथा ॥५६

रुद्रावर्त-सुगन्धाश्व-कपिलावन-भद्रकर्णह्रद-शङ्कुकर्णह्रद-सप्त सारस्वत तीर्थ-औशनस-कपाल मोचन अवकीर्ण-काम्यक तीर्थ हैं ॥५०-५१॥ चतुः सामुद्रिक तीर्थ-शतिक-साहस्रिक-रेणुक-पञ्चवटक-विमोचन-ओजस तीर्थ है ॥५२॥ स्थाणु तीर्थ-कुरोस्तीर्थ-स्वर्गद्वार-कुशध्वज विश्वेश्वर-माणवक-कूप नारायणाश्रय तीर्थ है ॥५३॥ गङ्गाह्रद-वट वदरीपादन इन्द्रमार्ग-एकरात्र और क्षीरकावास तीर्थ है ॥५४॥ सोमतीर्थ-दधीच-श्रुततीर्थ—हे द्विजगण ! कोटितीर्थ-स्थली तथा भद्रकाली ह्रद तीर्थ है ॥५५॥ अरुन्धती वन-ब्रह्मावर्त्त उत्तम तीर्थ अश्ववेदी-कुब्जावन तथा यमुनाप्रभ तीर्थ है ॥५६॥

वीर प्रमोक्ष सिन्धूत्थगृपिकुल्या सकृत्तिकम् ।
उर्वीसिक्रमणञ्चैव मायाविद्योद्भव तथा ॥५७
महाश्रमो वैतसिकारूप सुन्दरिकाश्रमम् ।
बाहुतीर्थं चारुनदी विमलाशोकमेव च ॥५८
तीर्थं पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमत ।
सोमतीर्थं सितोदञ्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा ॥५९
सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थं मशोकवनमेव च ।
अरुणास्पदं कामदञ्च कृमतीर्थं सवालुकम् ॥६०
पिशाचमोचनञ्चैव सुभद्राह्रदमेव च ।
कुण्ड विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च ॥६१

ज्येष्ठस्थानह्लदञ्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा।
जैगीषव्यगुहा चैव हरिकेशवन तथा ॥६२
अजामुखसरश्चैव घण्टाकर्णह्लद तथा।
पुण्डरीकह्लदञ्चैव वापी कर्कोटकस्य च ॥६३

वीर प्रमोक्ष-सिन्धूत्थ-ऋषिकुल्या- सकृत्तिक उर्वी सक्रमण मायाविद्योद्भव, महाश्रम वैतासिकारूप सुन्दरिकाश्रम-बाहु तीर्थ-चारुनदी तथा विमलाशोक तीर्थ है ॥५७ ५८॥ पञ्चनद तीर्थ धीमान् मार्कण्डेय का तीर्थ-सोमतीर्थ-सितोद तथा मत्स्योदरी तीर्थ है ॥५६॥ सूर्यप्रभ-सूर्यतीर्थ अशोक वन-अरुणास्पद-कामद-शुक्रतीर्थ-सालुक तीर्थ है ॥६०॥ पिशाच मोचन-सुभद्रह्लद-कुण्ड-विमलदण्ड तीर्थ-चण्डेश्वर का तीर्थ है ॥६१॥ ज्येष्ठस्थान ह्लद पुण्य ब्रह्मसर जैगीषव्य गुहा तथा हरिकेश वन तीर्थ है ॥६२॥ अजामुखसर-घण्टाकर्णह्लद-पुण्डरीकह्लद वापी कर्कोटक तीर्थ हैं ॥६३॥

सुवर्णास्योदपानश्च श्वेततीर्थं ह्लद तथा।
कुण्ड घर्घरिकायाश्च श्यामाकूपश्च चन्द्रिका ॥६४
श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकह्लद तथा।
कूप सिन्धूद्भवश्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा ॥६५
रुद्रावास तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम्।
भक्तह्लद क्षीरसर प्रेताधार कुमारकम् ॥६६
ब्रह्मावर्त्त कुशावर्त्त दधिकर्णोदपानकम्।
शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा महानदी ॥६७
दिव्य ब्रह्मसर पुण्य गयाशीर्षाक्षय वटम्।
दक्षिण चोत्तरश्चैव गोमय रूपशीतिकम् ॥६८
कपिलाह्लद गृध्रवट सावित्रीह्लदमेव च।
प्रभासन सीतवन योनिद्वारश्च धेनुकम् ॥६९
धन्यक कोकिलाख्यञ्च मतङ्गह्लदमेव च।
पतृकूप रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम् ॥७०

गुवर्णास्योद्यान-श्वेततीर्थह्रद, घर्घरिका का कुण्ड-श्यामाकूप-चन्द्रिका-श्मशानस्तम्भ कूप—तथा विनायक ह्रद—सिन्धूद्भव कूप-पुण्य ब्रह्मसर तीर्थ हैं ॥६४-६५॥ रुद्रावास-नागतीर्थ पुलोमक-भक्तह्रद-क्षीरसर-प्रेताधार-कुमारक ब्रह्मावर्त-कुशावर्त दधिकर्णोदपानक-शृङ्गतीर्थ-महातीर्थ-तीर्थश्रेष्ठा-महानदी ये सब भी तीर्थ हैं ॥६६-६७॥ दिव्य ब्रह्मसर-पुण्य गयाशीर्षाक्षय वट-दक्षिण और उत्तर-गोमय-रूपशीतिक तीर्थ हैं ॥६८॥ कपिलाह्रद-गृध्रवट-सावित्रीह्रद-प्रभासन सीतवन-योनिद्वार धेनुक धन्यक-गोरिलाख्य मतङ्गह्रद पतृकूप-रुद्रतीर्थ-शक्रतीर्थ और सुमालिन तीर्थ हैं ॥६९-७०॥

ब्रह्मस्थान सप्तकुण्ड मणिरत्नह्रद तथा ।
कौशिक्य भरत चैव तीर्थ ज्येष्ठालिका तथा ॥७१
वरवेश्वर कल्पसरः कन्यासवेद्यमेव च ।
निश्चीवाप्रभवश्चैव वसिष्ठाश्रममेव च ॥७२
देवकूटच कूप च वसिष्ठाश्रममेव च ।
वीराश्रम ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३
कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिखरमेव च ।
शुन कुण्डोऽथ तीर्थश्च नन्दितीर्थं तथैव च ॥७४
कुमारवास श्रीवासमौर्वीशीतीर्थमेव च ।
कुम्भकर्णह्रदञ्चैव कौशिकीह्रदमेव च ॥७५
धर्मतीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालक तथा ।
सन्ध्यातीर्थं धामतीर्थं कपिल लोहितार्णवम् ॥७६
शोणोद्भव वंशगुल्ममृषभ कलतीर्थकम् ।
पुण्यावतीह्रद तीर्थं तीर्थं बदरिकाश्रमम् ॥७७

ब्रह्मस्थान-सप्तकुण्ड-मणिरत्नह्रद-कौशिक्य-भरत तीर्थ-ज्येष्ठालिका-वरवेश्वर-कल्पसर-कन्या सवेद्य निश्चीवाप्रभव वसिष्ठाश्रम—ये सभी तीर्थ हैं। वीराश्रम-देवकूट-कूप ब्रह्मसर—ब्रह्मवीरा वकापिली—कुमारधारा—श्रीधारा-गौरीशिखर-शुन कुण्डतीर्थ तथा नन्दी तीर्थ हैं ॥७१-७४॥ कुमारवास, श्रीवास, औवींशी तीर्थ, कुम्भकर्णह्रद, कौशिकीह्रद धर्मतीर्थ, कामतीर्थ,

उद्दालक तीर्थ, सन्ध्या तीर्थ, कार तोय, कपिल, लौहितार्णव तीर्थ हैं ॥७५-७६॥ शोणोद्भव, वशगुल्म, ऋषभ, कलतीर्थ, पुण्यावतीह्रद तीर्थ और बदरिकाश्रम तीर्थ हैं ॥७७॥

रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च ।
मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥७८
रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत् ।
सानुगर्त्तं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा ॥७९
इपुतीर्थं वार्षभञ्च कावेरीह्रदमेव च ।
कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥८०
बदरीह्रदमन्यच्च मध्यस्थानं विकर्णकम् ।
जातीह्रदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च ॥८१
सर्व्वदेवव्रतञ्चैव कन्याश्रमह्रदं तथा ।
तथान्यद्वालखिल्यानां सपूर्व्वाणां तथापरम् ॥८२
तथान्यच्च महर्षीणामखण्डितह्रदं तथा ।
तीर्थेष्वेतेषु विधिवत् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥८३
स्नानं करोति यो मर्त्यः सोपवासो जितेन्द्रियः ।
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य च क्रमात् ॥८४
अभ्यर्च्च्य देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम् ।
पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजाः ॥८५
प्राप्नोति हयमेधस्य नरो नास्त्यत्र संशयः ।
यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥८६

बहुत से तीर्थ हैं जिनमें प्रमुख तीर्थ रामतीर्थ, पितृवन, विरजातीर्थ, मार्कण्डेय वनतीर्थ, कृष्णतीर्थ, वट, रोहणी कूप, प्रवर, इन्द्रद्युम्नसर, सानुगर्त्त, समाहेन्द्र श्रीतीर्थ तथा श्रीनद तीर्थ हैं ॥७८-७९॥ इपुतीर्थ, वार्षभ, कावेरीह्रद, कन्यातीर्थ, गोकर्ण, गायत्री स्थान, अन्य बदरीह्रद, मध्य स्थान, विकर्णक, जातीह्रद, देवकूप, कुशप्रवण, सर्वदेवव्रत, कन्याश्रमह्रद, बालखिल्यों का अन्यह्रद तथा अपर सपूर्वों का ह्रद तीर्थ

है ॥८०-८२॥ अन्य महर्षियों का अखण्डित ह्रद तीर्थ होता है । ये बहुत से जो तीर्थों के नाम बताये गये हैं इस समस्त तीर्थों में भली भाँति श्रद्धा से युक्त होकर विधि के साथ जो कोई स्नान किया करता है और उपवास के साथ तथा अपनी सब इन्द्रियों को जीतकर जो स्नान करता है और देवों को, ऋषियों को एवं मनुष्यों को और पितृगणों को क्रम से भली भाँति तृप्त करके वहाँ तीर्थं पर ही देवगण की अर्चना करे और तीन रात्रि तक वहीं पर अपनी स्थिति करनी चाहिए । हे द्विजगणो ! इन प्रत्येक तीर्थं का पृथक् २ फल हुआ करता है ॥८३-८५॥ मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो पुरुष इसको नित्य सुनता है जो कि उत्तम तीर्थों का माहात्म्य बताया गया है इसका पाठ करे या श्रवण करावे वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥८६॥

१८—स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादवर्णन

पृथिव्यामुत्तमा भूमिं धर्म्मकामार्थमोक्षदाम् ।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतांवर ॥१

इमं प्रश्नं मम गुरुः पप्रच्छुर्मुनयः पुरा ।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः ॥२

स्वाश्रमे सुमहापुण्ये नानापुष्पोपशोभिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥३

पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धवखादिरैः ॥४

पाटलाशोकवकुलैः करवीरैः सचम्पकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः ॥५

कुरुक्षेत्रे समासीनं व्यासं मतिमतां वरम् ।
महाभारतकर्त्तारं सर्व्वशास्त्रविशारदम् ॥६
अध्यात्मनिष्ठं सर्व्वज्ञं सर्व्वभूतहिते रतम् ।
पुराणागमवक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७
पराशरसुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
द्रष्टुमभ्याययुः प्रीत्या मुनयः संशितव्रताः ॥८

मुनिगण ने कहा—हे मुनिवर ! आपतो बोलने वालो मे परमश्रेष्ठ हैं। अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि इस पृथ्वी मे सबसे उत्तम भूमि कौनसी है जो धर्म अर्थ-काम और मोक्ष इन चारो के देने वाली हो और इन समस्त तीर्थों में जो अभी आपने बहुत से बतलाए हैं। सर्वोत्तम तीर्थ कौनसा है ॥१॥ श्री लोमहर्षणजी ने कहा—हे मुनिगणो ! पहले समय मे जो इस समय मुझसे आपने पूछा है इसी प्रश्न को मुनिगण ने मेरे गुरुजी से पूछा था। हे द्विजोत्तमो ! जो आप मुझसे पूछते हो उसे मैं आपको बतलाता हूं ॥२॥ सुमहान् पुण्यमय अपने आश्रम मे गुरुदेव विराजमान थे। यह आश्रम अनेक पुष्पो से उपशोभित था और नाना प्रकार के वृक्षो तथा लताओ से घिरा हुआ था। इस आश्रम मे बहुत प्रकार के पशुगण रहा करते थे ॥३॥ पुन्नाग-कर्णिकार-सरल देवदारु शाल-तालतमाल-पनस-अर्वखदिर - पाटल-अशोक-बकुल - करवीर-चम्पक- ये वृक्ष तथा अन्य भी बहुत तरह के वृक्षो से एवं अनेक पुष्पो से यह आश्रम शोभायमान था। यह आश्रम कुरुक्षेत्र मे था वहाँ पर मतिमानो मे श्रेष्ठ महा भारत महान् ग्रन्थ के रचयिता-समस्त शास्त्रो के महामनीषी -अध्यात्मनिष्ठ सर्वज्ञ और सब प्राणियो के हित करने मे रति रखने वाले पुराणो एवं आगमो के वक्ता वेदो और वेदो के अङ्गो के पारगामी पराशर मुनि के पुत्र-परम शान्त मूर्ति तथा पद्म के तुल्य सुन्दर एवं आयत नेत्रो वाले व्यासजी उस अपने आश्रम मे जिस समय मे विद्यमान थे उसी समय मे संशित व्रत वाले मुनिगण प्रीति से व्यासदेवजी के दर्शन करने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे ॥४-८॥

कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽथ वाल्मिकिः ॥६
विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽथ आसुरिः ।
सुमन्तुर्भार्गवो नाम कण्वो मेधातिथिर्गुरु ॥१०
माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा ।
मौद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥११
सम्वर्त्तः कौशिको रैभ्यो मैत्रेयो हरितस्तथा ।
शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्वासा लोकशस्तथा ॥१२
नारदः पर्व्वतश्चैव वैशम्पायनगालवौ ।
भास्करिः पूरणः सूतः पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥१३
उलूकः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः ।
सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥१४

जो मुनिगण व्यासजी से मिलने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे उनमे कश्यप-जमदग्नि-भरद्वाज-गौतम-वसिष्ठ-जैमिनि-धौम्य-मार्कण्डेय-वाल्मीकि विश्वामित्र शतानन्द-वात्स्य-गार्ग्य-आसुरि-सुमन्तु-भार्गव-कण्व—मेधातिथि और गुरु थे ॥६—१०॥ माण्डव्य-च्यवन-धूम्र-असित-देवल-मौद्गल्य तृणयज्ञ-पिप्पलाद-अकृतव्रण- सम्वर्तक-कौशिक-रैभ्य मैत्रेय-हरित—शाण्डिल्य-विभाण्ड-दुर्वासा-लोमश थे ॥११-१२॥ नारद-पर्वत-वैशम्पायन-—गालव-भास्करि-पूरण-सूत-पुलस्त्य-कपिल-उलूक-पुलह-वायु-देवस्थान-—चतुर्भुज-सनत्कुमार-पैल-कृष्णानुभौतिक थे ॥१३-१४॥

एतैर्म्मुनिवरैश्चान्यैर्वृतः सत्यवतीसुतः ।
रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१५
तानागतान्मुनीन् सर्व्वान् पूजयामास वेदवित् ।
तेऽपि त प्रतिपूज्यैव कथा चक्रुः परस्परम् ॥१६
कथान्ते ते मुनिश्रेष्ठाः कृष्ण सत्यवतीसुतम् ।
पप्रच्छुः संशय सर्व्वे तपोवननिवासिनः ॥१७
मुने वेदाश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम् ।
भूत भव्य भविष्यञ्च सर्व्वं जानासि वाङ्मयम् ॥१८

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे ।
रागग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसम्प्लवे ॥१९
इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोर्मिशतसङ्कुले ।
मोहपङ्काविले दुर्गे लोभगम्भीरदुस्तरे ॥२०
निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम् ।
पृच्छामस्त्वां महाभाग ब्रूहि नो मुनिसत्तम ? ॥२१

इन उपर्युक्त सब मुनिगण और इनके अतिरिक्त अन्य भी मुनिवरों से सत्यवती के सुत व्यासजी समावृत थे । और वे श्रीमान् मुनीन्द्र श्री व्यासजी उन समस्त मुनिगणों के मध्य में नक्षत्रों से समावृत चन्द्र की समान सुशोभित होरहे थे ॥१५॥ उन वेदों के विद्वान् व्यासदेवजी ने उन समस्त समागत हुए मुनिगणों की पूजा की थी और उन सबने भी व्यासजी की प्रति पूजा करके वे सब परस्पर में कथा-वार्ता कर रहे थे ॥१६॥ कथा के समाप्त हो जाने पर उन सबने जो मुनियों मे परम श्रेष्ठ थे सत्यवती के सुत श्री कृष्ण द्वैपायनजी से तपोवन मे निवास करने वालों ने अपने मन के संशय के विषय मे पूछा था—मुनिगण ने कहा—हे मुनिवर ! आप तो सब वेदों को, शास्त्रों को, पुराणों को, आगमन को, भारत को तथा भूत भव्य और भविष्य सम्पूर्ण वाङ्मय को भली भाँति जानते हैं ॥१७–१८॥ यह भवसागर अर्थात् संसार रूपी समुद्र निःसार है और इसमे बहुत से दुःख भरे हुए हैं । यह राग रूपी ग्राहों से समाकुल है तथा परम भयानक एवं विषय रूपी जल से सप्लव वाला है ॥१९॥ इन्द्रियाँ ही इस संसार सागर म महान् आवर्त्त हैं उन भँवरों से यह कलिल है और सैंकडों ही भाँति की लहरें इसमे दिखाई दे रही हैं जिनसे यह घिरा हुआ है–इसमे मोह रूपी कीच भरा हुआ और लोभ की गम्भीरता से महान् दुस्तर है ऐसे इस दुर्ग मे निमग्न हुए बिना किसी सहारे के अचेतन यह जगत् हो रहा है । हे मुनि श्रेष्ठ ! हम आपसे पूछना चाहते हैं । आप कृपा कर हमको बतलाइये ॥२०–२१॥

श्रेयः किमत्र संसारे भैरवे लोमहर्षणे ।
उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्त्तुमर्हसि ॥२२

दुर्लभं परमं क्षेत्रं कर्त्तुमर्हसि मोक्षदम् ।
पृथिव्यां कर्म्मभूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२३
कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म्म भूमौ यथोदितम् ।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्म्मतः ॥२४
मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति पुरुषः सुधीः ।
तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥२५
श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
व्यासः प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥२६

इस महान् भीरव एवं लोम हर्षण संसार में क्या कल्याण का मार्ग हो सकता है ? आप अपने उपदेश को देकर उसके द्वारा सब लोकों का उद्धार करने के योग्य होते हैं ॥२२॥ आप परम दुर्लभ मोक्ष प्रदान करने वाले क्षेत्र को बताने के योग्य हैं। हम सब लोग इस पृथिवी में कर्मभूमि का श्रवण करना चाहते हैं ॥२३॥ इस भूमि में मनुष्य यथोचित कर्म्म को करके भली-भाँति परम सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है तथा विकर्म्म करके नरकों को प्राप्त करता है ॥२४॥ सुधी पुरुष मोक्ष के क्षेत्र में मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है। इस कारण से हे महाप्राज्ञ द्विजोत्तम ! आपसे जो पूछा गया है वही बताने की कृपा करिए ॥२५॥ उन भावित आत्मा वाले मुनिगणों के इस वचन का श्रवण करके भूत-भव्य और भविष्य के पूर्ण ज्ञाता श्री व्यासदेवजी भगवान ने कहा था ॥२६॥

शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ ।
यः संवादोऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह ॥२७
मेरुपृष्ठे तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥२८
नानापक्षिरुते रम्ये नानाप्रस्रवणाकुले ।
नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते ॥२९
नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते ।
नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते ॥३०

तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम् ।
जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम् ॥३१

देवदानवगन्धर्व्वयक्षविद्याधरोरगैः ।
मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमन्यैर्दिवालयैः ॥३२

श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे मुनिगणो ! यदि आप सब लोग मुझसे ऐसा पूछ रहे हैं तो अब आप सब सुनिए—मैं आप लोगों को बतलाता हूँ । पुराने समय मे पहिले श्री ब्रह्मा के साथ ऋषियों का जो सम्वाद हुआ था ॥२७॥ नाना भांति के रत्नो से भूषित परम विस्तीर्ण-अनेक द्रुमों-लताओं से सङ्कीर्ण और नाना भांति के पुष्पो से युक्त मेरु पर्वत के ऊपर ही यह सम्वाद हुआ था ॥२८॥ इस मेरुगिरि का पृष्ठ भाग ऐसा था जहाँ पर बहुत प्रकार के पक्षियो की ध्वनि हो रही थी और यह अनेक वस्तुओ के समुत्पन्न होने से पूर्णतया घिरा हुआ परम सुन्दर था । बहुत से जीव इसमे निवास किया करते थे तथा अनेक अद्भुत आश्चर्य जनक पदार्थों से यह युक्त था ॥२९॥ इस मेरु पर्वत पर अनेक वर्ण वाली शिलाऐं थी और बहुत सी धातुओ से वह परिपूर्ण था । वहाँ पर अनेक मुनिगण रहा करते थे और बहुत से आश्रम बने हुए थे ॥३०॥ उस पर्वत पर इस सम्पूर्ण जगत के स्वामी, जगत के निर्माता, जगत के पति, जगत् के वन्दनीय, जगत् के आधार और ईश्वर, चतुर्मुख ब्रह्माजी विराजमान थे ॥३१॥ उन ब्रह्माजी के चारो ओर देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, उरग बैठे हुए थे । उस समय मे मुनि, सिद्ध, अप्सराऐं और दिवलोक वासी अन्य लोगो से वे घिरे हुए थे ॥३२॥

केचित् स्तुवन्ति तं देवं केचिद्गायन्ति चाग्रतः ।
केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥३३

एवं प्रमुदिते काले सर्व्वभूतसमागमे ।
नानाकुसुमगन्धाढ्ये दक्षिणानिलसेविते ॥३४
भृग्वाद्यास्तं तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् ।
इममर्थं मुनिवराः पप्रच्छुः पितरं द्विजाः ॥३५

भगवन्श्रोतुमिच्छामः कर्म्मभूमि महीतले ।
वक्तुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥ ६
तेषा वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः ।
पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्न तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः ॥३७

कुछ लोग तो उनकी स्तुति कर रहे थे और उनमे से कुछ लोग उन देव के आगे गान कर रहे थे । कुछ विविध वाद्यो का वादन कर रहे थे तथा दूसरे कुछ लोग नृत्य कर रहे थे ॥३३॥ वह समय इस प्रकार से बहुत ही प्रमोद से युक्त था और सभी प्राणियो का वहाँ पर समागम हो गया था । बहुत तरह के पुष्पो की गन्ध वहाँ पर भरी हुई थी तथा दक्षिण की वायु चल रही थी ॥३४॥ भृगु आदि ऋषि प्रवरो ने हे द्विजगणो ! उस समय मे उन देव पितामह को प्रणाम करके फिर देव से इस अर्थ के विषय मे पूछा था ॥३५॥ ऋषिगण ने कहा था—हे भगवन् ! इस महीतल मे हम लोग कर्म्मभूमि का श्रवण करना चाहते हैं । हे देवेश्वर ! आप परम दुर्लभ जो मोक्ष का क्षेत्र हो उसे भी बतलाने के योग्य हैं ॥३६॥ श्री व्यासजी ने कहा—उन सब मुनियो के वचन को सुन कर सुरेश्वर ब्रह्माजी ने कहा—जैसा कि उन सब मुनिश्रेष्ठो ने उनसे पूछा था उसी के विषय मे उन्होने कहा ॥३७॥



१८—भारतवर्षवर्णन ।

शृणुध्व मुनयः सर्व्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
पुराण वेदसम्बद्ध भुक्तिमुक्तिप्रद शुभम् ॥१
पृथिव्या भारत वर्षं कर्म्मभूमिरुदाहृता ।
कर्म्मणः फलभूमिश्च स्वर्गंच नरक तथा ॥२
तस्मिन् वर्षे नरः पाप कृत्वा धर्म्मंच भो द्विजाः ।
अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥३

ब्राह्मणाद्याः स्वक कर्म्म कृत्वा सम्यक्सुसयता. ।
प्राप्नुवन्ति परा सिद्धि तस्मिन्वर्षे न सशयः ॥४
धर्म्मञ्चार्थञ्च काम च मोक्षञ्च द्विजसत्तमाः ।
प्राप्नोति पुरुषः सर्व्वं तस्मिन् वर्षे सुसयतः ॥५
इन्द्राद्याश्च सुरा सर्व्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः ।
कृत्वा सुशोभन कर्म्म देवत्व प्रतिपेदिरे ॥६
अन्येऽपि लेभिरे मोक्ष पुरुषाः सयतेन्द्रियाः ।
तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिगण ! अब आप समाहित मन वाले होकर सुनिए । मैं इस समय मे आप सबको वेदो से सम्बद्ध और भुक्ति तथा मुक्ति दोनो के प्रदान करने वाले परम शुभ पुराण को बतलाता हूँ ॥१॥ इस पृथिवी पर भारत वर्ष को ही कर्म्मों के करने की भूमि बताया गया है । यह कर्मों के करने की भूमि है और फल प्राप्त करने की भी भूमि है तथा स्वर्ग एव नरको के प्राप्त करने की भी यही भूमि है ॥२॥ हे द्विजगणो ! उस भारत वर्ष मे मनुष्य पाप कर्म करके तथा धर्म का कर्म करके अवश्य ही फल प्राप्त किया करता है चाहे वह कोई शुभ कर्म करे तो उसका अच्छा फल उसे अवश्य मिलता है और चाहे वह अशुभ कर्म करे तो उसका भी वह फल प्राप्त किया करता है ॥३॥ ब्राह्मण आदि लोग यहाँ पर भली भाँति सुसयत होकर अपना शास्त्र-विहित कर्म करके परम सिद्धि को प्राप्त किया करते हैं—इसमे तनिक भी सशय नही है ॥४॥ हे द्विजसत्तमो ! उस भारत वर्ष मे पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी की प्राप्ति सुसयत होकर किया करता है ॥५॥ हे द्विजोत्तमो ! इन्द्र आदि सभी देवगण इस भारत वर्ष मे परम शोभन कर्म करके ही देवपद का प्राप्त हो गये हैं ॥६॥ सयत इन्द्रिय वाले अन्य पुरुषो ने भी मोक्ष की प्राप्ति की थी । उस भारत वर्ष मे जो बुध हैं-शान्त हैं-वीत राग और बिना मात्सर्य वाले हैं वे सब स्वर्गचारी हो गये हैं ॥७॥

ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन गतज्वरा. ।
तेऽपि कृत्वा शत कर्म्म तस्मिन् वर्षे दिव गताः ॥८
निवास भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः ।
स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्यामः कदा वयम् ॥९
यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म्म नान्यत्र पुण्यदम् ।
पापाय वा सुरश्रेष्ठ वर्ज्जयित्वा च भारतम् ॥१०
ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यम तच्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्याना भूमौ कर्म्म विधीयते ॥११
तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन्नस्माक भारत वद ।
यदि तेऽस्ति दयास्मासु यथावस्थिरेव च ॥१२
तस्माद्वर्षमिद नाथ ये वास्मिन् वर्षपर्व्वता. ।
भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्व्वानशेषतः ॥१३

जो लोग भी इस समय स्वर्ग मे स्थित हैं और विमान के द्वारा गतज्वर होकर गमन किया करते हैं वे भी सब उसी भारत वर्ष मे सैकड़ो शुभ कर्मों को करके ही दिवलोक मे प्राप्त हुए हैं ॥८॥ सदा सुरगण भी इस भारत वर्ष मे निवास करने की अभिलाषा किया करते हैं क्योकि सुरत्व पद भी शुभ कर्मों के फलो के अनुसार अवधि युक्त होता है । पुण्य के क्षीण हो जाने पर अर्थात् उसका फल भोग लेने पर वे सभी पुन इस कर्म भूमि मे जाकर शुभ कर्म करना चाहा करते हैं । वे यही सोचा करते हैं कि स्वर्ग और अपवर्ग के फल प्रदान करने वाले भारत वर्ष मे हम कब पहुच कर शुभ कर्मों के करने का अवसर देखेंगे ॥९॥ मुनियों ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! आपने जो यह बतलाया कि भारत वर्ष के अतिरिक्त अन्यत्र कोई भी पुण्य-फल देने वाला कर्म नही हो सकता है अथवा पाप कर्म भी यहीं पर लोगो से बन पड़ता है जिसका बुरा फल नरकादि का गमन वे प्राप्त करते है । शुभाशुभ कर्म की भूमि भारतवर्ष को छोड़कर अन्य नही है ॥१०॥ यहीं से स्वर्ग मोक्ष तथा मध्यम फल प्राप्त किया जाता है । इसके अतिरिक्त मनुष्यो की कर्म करने की भूमि अन्य कोई भी नही है ॥११॥ हे ब्रह्मन् ! जब ऐसा ही

अटल नियम है तो आप इस विषय मे अर्थात् भारत वर्ष के सम्बन्ध मे हम लोगो को विस्तार पूर्वक बतलाइये। यदि आपकी हम सब लोगों पर कृपा है तो यथा स्थिति वर्णन कीजिए ॥१२॥ इस कारण से हे नाथ ! इस भारत वर्ष मे जो भी वर्ष पर्वत हैं और उस भारत वर्ष के जो भी भेद हैं उन सबका पूर्ण रूप से आप वर्णन करके बताइये ॥१३॥

शृणुध्व भारत वर्ष नवभेदेन भो द्विजा. ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परस्परम् ॥१४
इन्द्रद्वीप· कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्या गान्धर्व्वो वारुणस्तथा ॥१५
अयन्तु नवमस्तेषा द्वीपः सागरसवृत· ।
योजनाना सहस्र वै द्वीपोऽय दक्षिणोत्तर ॥१६
पूर्व्वे किराता यस्यासन् पश्चिमे यवनास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ते स्थिता द्विजा. ॥१७
इज्यायुद्धवणिज्याद्यै: कर्म्मभि कृतपावना. ।
तेषा सव्यवहारश्च त्रिभि. कर्म्मभिरिष्यते ॥१८
स्वर्गापवर्गहेतोश्च पुण्य पापश्च वै तथा ।
महेन्द्रो मलय सह्य. शुक्तिमानृक्षपर्व्वत ॥१९
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचला. ।
तेषा सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगा. ॥२०
विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानव. ।
कोलाहल: स वैभ्राजो मन्दरो दर्दुराचल ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा था—हे द्विजगणो ! इस भारत वर्ष के विषय मे आप श्रवण कीजिए—यह नौ भेदो वाला है। वे नौ भेद रूप हैं तथा समुद्रान्तरित है—ऐसा जान लेना चाहिए ॥१४॥ इन्द्रद्वीप, कशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व तथा वारुण द्वीप हैं। यह उन नौ मे नवमद्वीप है जो सागर से सवृत्त (घिरा हुआ) है। यह द्वीप दक्षिण उत्तर दिशा मे रहने वाला एक सहस्र योजन वाला है ॥१५-१६॥ इसके पूर्व दिग्भाग मे किरात लोग निवास किया करते हैं तथ

इसके पश्चिम मे यवन लोग रहते हैं। हे द्विजगण! इसके मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र निवास किया करते हैं ॥१७॥ ये चारों वर्णों वाले लोग क्रम से इज्यायुद्ध और वाणिज्य आदि कर्मों से पावन होते हैं और उनका सव्यवहार भी तीनों प्रकार के कर्मों से अभीष्ट हुआ करता है ॥१८॥ यही कर्म स्वर्ग तथा अपवर्ग (मोक्ष) का हेतु होता है और कर्मों के द्वारा ही यहाँ पर पुण्य एवं पाप हुआ करता है। महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष पर्वत हैं ॥१९॥ विन्ध्य पारियात्र–ये सात यहाँ पर कुल पर्वत कहे जाते हैं। इन सात कुल पर्वतों के समीप में ही स्थित अन्य भी हजारों पर्वत हैं ॥२०॥ ये सब विस्तार वाले और ऊँचाई वाले परम रम्य, विपुल तथा विचित्र शिखरों वाले हैं। कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुराचल पर्वत हैं ॥२१॥

वातन्धयो वैद्युतश्च मैनाक सुरसस्तथा।
तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोधनः पाण्डराचल ॥२२
पुष्पगिरिर्वैजयन्ती रैवतोऽर्बुद एव च।
ऋष्यमूकः स गोमन्थ कृतशैलः कृताचल. ॥२३
श्रीपार्व्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्व्वता.।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाद्याश्चैव भागश.॥२४
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यध्व, द्विजोत्तमा.।
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥२५
यमुना शतद्रुर्विपाशा वितस्तैरावती कुहू.।
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥२६
विपाशा देविका चक्षुर्निष्ठीवा गण्डकी तथा।
कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृता. ॥२७
देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च।
वेण्या तु चन्दना चैव सदानीरा मही तथा ॥२८

वातन्धय, वैद्युत, मैनाक, सुरस, तुङ्ग प्रस्थ, नाग गिरि, गोवर्धन, पाण्डराचल, पुष्पगिरि, वैजयन्ती, रैवत, अर्बुद, (आबू) ऋष्यमूक, गोमन्थ, कृतशैल, कृताचल, श्री पार्वत, चकोर ये तथा अन्य भी सैकड़ों

पर्वत भारत वर्ष में विद्यमान हैं। उन सबसे मिले हुए जनपद भी है जहाँ भागो में म्लेच्छ आदि लोग निवास किया करते हैं ॥२२-२४॥ उन के द्वारा बहुत सी श्रेष्ठ नदियों का पान किया जाता है। हे द्विजोत्तमो! उनका भी ज्ञान आप लोग प्राप्त कर लेवे। वे सरिताएँ—गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, हैं ॥२५॥ यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितस्ति, इरावती, कुहू, गोमती, धूतपापा, बहुदा, दृषद्वती, विपाशा, देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी—ये सभी सरिताएँ हिमालय के पादों से निकली हुई हैं ॥२६-२७॥ देव स्मृति, देववती, वातघ्नी, सिन्धु, वेण्या नन्दना सदा-नीरा तथा मही नदियाँ हैं ॥२८॥

चर्म्मण्वती वृषी चैव विदिशा वेदवत्यपि।
सिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्रानुगा स्मृता ॥२६
शोणा महानदी चैव नर्म्मदा सुरसा क्रिया।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥३०
चित्रोत्पला वेत्रवपी करमोदा पिशाचिका।
तथान्यातिलघुश्रोणी विपापा शैवला नदी ॥३१
सधेरुजा शुक्तिमती शकुनी त्रिदिवा क्रमु।
ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी ॥३२
सिप्रा पयोष्णी निर्व्विन्ध्या तापी चैव सरिद्वरा।
वेणा वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥३३
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्त शिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्य पुण्यजला शुभा ॥३४
गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणा तथापगा।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी ॥३५

चर्मण्वती, वृषी, विदिशा, वेदवती, सिप्रा, अवन्ती, पारियात्रानुगा, शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा नदियाँ हैं ॥२६-३॥ चित्रोत्पला, वेत्रवपी, करमोदा, पिशाचिका, अति-लघु श्रोणी, विपापा, शैवला नदी, सधेरुजा, शुक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा, क्रमु, ऋक्षपाद, प्रसूता और वेगवाहिनी नदी हैं ॥ १-३२॥ सिप्रा,

पयोष्णी, निर्विन्ध्या, सरिद्वारा तापी, वेण्य, वैतरणी, सिनी वाली, कुमुद्वती, जोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिला, विन्ध्यपाद प्रसूता ये नदियाँ हैं जो परम शुभ और पुण्य जल वाली हैं ॥३३-३४॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा वेणा, आपगा हैं, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा अन्यापाप नाशिनी नदी है ॥३५॥

सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिता वराः ।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुण्यजा प्रत्यलावती ॥३६
मलयाद्रिसमुद्भूताः पुण्याः शीतजलास्त्विमाः ।
पितृसोमर्षिकुल्या च वञ्जुला त्रिदिवा च या ॥३७
लाङ्गुलिनी वशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
सुविकाला कुमारी च मनुगा मन्दगामिनी ॥३८
क्षयापलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।
सर्व्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वा गङ्गा. समुद्रगाः ॥३९
विश्वस्य मातरः सर्व्वाः सर्व्वाः पापहराः स्मृताः ।
अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥४०
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः ।
मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला काशिकोशलाः ॥४१
अन्धकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशाऽमी प्रकीर्तिताः ॥४२

ये सब सरिताएँ सह्याचल के पादों से निकलने वाली तथा परम श्रेष्ठ हैं । कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुण्यजा, प्रत्यलावती ये सब नदियाँ शीतल जल वाली-पुण्यमयी और मलयागिरि से समुत्पन्न होने वाली हैं। पितृसोमर्षिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा, लाङ्गुलिनी, वशकरा ये सब सरिताएँ महेन्द्र पर्वत से उद्भव प्राप्त करने वाली हैं। सुविकाला, कुमारी, मनुगा और मन्दगामिनी नदी हैं ॥३६-३८॥ क्षमाय लासिनी ये सब नदियाँ शुक्तिम पर्वत से उद्भुत होने वाली हैं। सभी सरस्वती नदियाँ पुण्यमयी हैं और सब गङ्गाएँ समुद्र गामिनी हैं ॥३९॥ ये सभी विश्व की माताएँ हैं तथा सब पापों के हरण करने वाली हैं ऐसा कह

गया है। हे द्विजोत्तमो! उन उपयुक्त नदियो के अतिरिक्त सहस्रा क्षुद्र नदिया बनाई गयी हैं ॥४०॥ कुछ सरिताएँ तो ऐसी हैं जो वर्षा के समय म ही बहन करने वाली होती हैं और कुछ सदा काल म वहन वाली हैं। मत्स्या, मुकुटकुल्या कुन्तला, काशि कोशला, अन्धुका कलिङ्गा और शमकातृको के साथ मध्यदेश के जो जनपद हैं प्राय ये वहा पर कही गयी हैं ॥४१ ४२॥

सह्यस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नाया स प्रदेशो मनोरम ॥४३
गोवर्द्धनपुर रम्य भार्गवस्य महात्मन।
वाहीका वाटधानाश्च सुतीरा कालतोयदा ॥४
अपरास्ताश्च शूद्राश्च वाह्लिकाश्च सकेरला।
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रका ॥४५
शतद्रुहा कलिङ्गश्च पारदा हारमूषिका।
माठराश्चैव कनका कैकेया दम्भमालिका ॥४६
क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च।
काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा बर्बराश्च सलौकिका ॥४७
वीराश्चैव तुषाराश्च पह्लवाधायता नरा।
आत्रेयाश्च भरद्वाजा पुष्कलाश्च दशेरका ॥४८
लम्पका शुन शोकाश्च कुलिका जाङ्गल सह।
औषध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातय ॥४९

सह्य अद्रि के उत्तर भाग म जहा पर गोदावरी नदी है वह प्रदेश इस सम्पूर्ण पृथ्वी मे परम मनोरम है ॥४३॥ महात्मा भार्गव का गोवर्द्धनपुर बहुत ही रम्य है। वाही का, वाटधामा, सुतीरा कालतोयदा और अपरके शूद्र हैं। और सकेरल, वाह्लिका गान्धारा यवना, सिन्धु सौवीर, मद्रक, शतद्रुहा, कलिङ्ग, पारद हारभूषिक मठार कैकेय कनक, दम्भमालिक ये क्षत्रियोपम देश हैं। तथा वैश्य एव शूद्रकुल हैं। हे विप्रेन्द्रो! काम्बोज बर्बर, सलौकिक, वीर, तुषार और नर पह्लवाधायन हैं। आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक लम्पक, शुनशोक,

कुलिक जाङ्गलों के सहित, औषध्य, चलचन्द्र, ये किरातों की जातियाँ हैं ॥४४-४६॥

तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीराः करुणास्तथा ।
शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च ॥५०
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान्निबोधत ।
अन्धा वामङ्कुरावाश्च वल्लकाश्च मखान्तकाः ॥५१
तथापरेऽङ्गा वङ्गाश्च मलदा मालवर्त्तिकाः ।
भद्रतुङ्गाः प्रतिजया भार्य्याङ्गाश्चापमर्द्दकाः ॥५२
प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥५३
तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।
पूर्णाश्च केरलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च ॥५४
ऋषिका मुषिकाश्चैव कुमारा रामठाः शकाः ।
महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः ॥५५
आभीराः सह वैशिक्या अटव्या सरवाश्च ये ।
पुलिन्दाश्चैव मौलेया वैदर्भा दन्तकैः सह ॥५६

तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, करुण, शूलिक, कुहक, मागध ये सब देश उदीच्य हैं अर्थात् उत्तर दिशा में होने वाले हैं। अब जो देश प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में हैं उनको भी समझलो—अन्ध, वामङ्कुराक, वल्लक, मखान्तक तथा अङ्ग, वङ्ग, मलद, मालवर्त्तिक, भद्रतुङ्ग, प्रतिजय, भार्याङ्ग, अपमर्द्दक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगधक और नन्द ये प्राच्यजन पद हैं ॥५०-५३॥ तथा दूसरे जनपद दक्षिणा पथगामी हैं। पूर्ण, केरल, गोलाङ्गूल, ऋषिक, मुषिक, कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्ग, वैशिकों के सहित आभीर, अटव्य, सरव, पुलिन्द, मौलेय और दन्तकों के सहित वैदर्भ ये सब दक्षिण दिशा के भाग में जनपद हैं ॥५४-५६॥

पोलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धना: ।
कौलिका: कुन्तलाश्चैव दम्भका नीलकालका" ॥५७
दक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान्निबोधत ।
शूर्पारका कालिधना लोलास्तालकटै सह ॥५८
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्व विन्ध्यवासिन. ।
मलजा कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकै सह ॥५९
उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजा किष्किन्ध्यकै सह ।
तोपला. कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥६०
तुम्बुरास्तु चराश्चैव यवना पवनै सह ।
अभया रुण्डिकेराश्च चर्च्चरा होत्रधर्त्तय" ॥६१
एते जनपदा सर्व्वे तत्र विन्ध्यनिवासिन ।
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्व्वताश्रयिणश्च ये ॥६२
नीहारास्तुपमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणा खसा ।
कर्णप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्घा सकुन्तका" ॥६३
चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरै सह ।
कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधि ॥६४

पौलिक, मौलिक, अश्मक, भोजवर्द्धन, कौलिक, कुन्तल, दम्भक, नीलकालक ये सब दक्षिणात्य देश हैं। अब अपरान्तों को समझ लो। शूर्पारक, कालिधन, तालकटों के सहित लोल—ये सब अपरान्त देश हैं। अब विन्ध्य वासियों का श्रवण कीजिए। मलज, कर्कश, मेलक, चोलक, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्किन्ध्यक, तोपल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर, चर, यवन, पवन, अभय, रुण्डिकेर, चर्चर, होत्रधर्त्ति—ये सब जनपद वहाँ पर विन्ध्य के निवास करने वाले हैं। अब यहाँ से आगे जो पर्वतों का आश्रय करने वाले हैं उन देशों को बतलाते है ॥५७-६२॥ नीहार, तुपमार्ग, कुरव, तङ्गण, खस, कर्णप्रावरण, ऊर्ण, दर्घ, सकुन्तक, चित्रमार्ग, मालव, किरात, तोमर, महा परकृत त्रेता आदि चतुर्युग कृत विधि है ॥६३-६४॥

एव तु भारत वर्ष नवसस्थानसस्थितम् ।
दक्षिणे परतो यस्य पूर्व्वे चैव महोदधिः ॥६५
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः ।
तदेतद्भारत वर्ष सर्व्वबीज द्विजोत्तमा ॥६६
ब्रह्मत्वममरेशत्व देवत्व मरुता तथा ।
मृगयक्षाप्सरोयोनि तद्वत् सर्पसरीसृपा ॥६७
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभैः ।
प्रयान्ति कर्म्मभूर्विप्रा नान्या लोकेषु विद्यते ॥६८
देवानामपि भो विप्राः सदैवेष मनोरथः ।
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युता क्षितौ ॥६९
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्य सुरासुरैः ।
तत्कर्म्मनिगडग्रस्तैस्तत्कर्म्मक्षपणोन्मुखैः ॥७०

इस प्रकार से यह भारत वर्ष नौ सस्थानों मे सस्थित है जिसके परे दक्षिण मे और पूर्व मे महोदधि है ॥६५॥ इस भारत वर्ष के उत्तर मे हिमालय पर्वत है और धनुष के गुण के समान है । हे द्विजोत्तमो ! वह यह भारत वर्ष सर्वबीज है ॥६६॥ यहाँ पर ब्रह्मत्व है, अमरेशत्व, देवत्व तथा मरुत हैं । मृगयक्ष और अप्सराओं की योनि है और उसी भाँति सर्प और सृप हैं ॥६७॥ हे विप्रगण ! यहाँ पर सब स्थावरो का शुभाशुभ कर्मों के द्वारा इस कर्मभू को प्रयाण करते हैं । ऐसी कर्म भूमि लोको मे अन्य कोई भी नही है ॥६८॥ हे विप्रो ! देवताओ का भी सर्वदा यही मनोरथ रहा करता है कि हम लोग भी इस देवत्व से मनुष्यत्व को क्षिति मे उलटा प्राप्त करें ॥६९॥ मनुष्य यहाँ कर्म-क्षेत्र मे जो कुछ किया करता है उस कर्म को सुर एव असुर कोई भी नही कर सकता है । ये सुरासुर सब अपने कर्मों के निगड (बन्धन) से ग्रस्त हैं और उस कर्म के क्षपण करने के लिये उन्मुख हुआ करते हैं ॥७०॥

न भारतसम वर्ष पृथिव्यामस्ति भो द्विजा ।
यत्र विप्रादयो वर्णा. प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥७१

धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमा ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ।।७२
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम् ।
सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा ।।७३
तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा ।
देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ।।७४
यत्र देवा सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् ।
नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ।।७५
अहिंसादिफलं सम्यक्फलं सर्व्वाभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ।।७६
यत् फलं वनवासेन सन्न्यासेन च यत्फलम् ।
इष्टापूर्त्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्म्मणाम् ।।७७

हे द्विजगणो ! इस भारत वर्ष के समान इस पृथिवी में कोई भी वर्ष नहीं है जहाँ पर विप्र आदि सब वर्णों वाले मनुष्य अपने अभिवाञ्छित मनोरथों की प्राप्ति किया करते हैं ।।७१।। जो श्रेष्ठ मनुष्य इस भारत वर्ष में समुत्पन्न होते हैं वे परम धन्य अर्थात् महान् भाग्यशाली हैं। ये लोग यहाँ पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन पुरुषार्थों का महान् फल

भी फल प्राप्त होता है तथा इष्टापूर्त फल होता है और अन्य शुभ कामों का जो फल होता है वह सभी यहाँ पर प्राप्त हो जाया करता है ॥७६-७७॥

प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः ।
कः शक्नोति गुणान् वक्तु भारतस्याखिलान्द्विजाः ॥७८
एवं सम्यङ्मया प्रोक्तं भारत वर्षमुत्तम् ।
सर्व्वपापहरं पुण्यं धन्यं बुद्धिविवर्द्धनम् ॥७९
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा नियतेन्द्रियः ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८०

हे द्विजोत्तमो ! यह भारत वर्ष ही एक स्थल है जिसमें सभी पुण्य फल प्राप्त किये जाया करते हैं और वे अन्य यहीं पर भी नहीं प्राप्त होते हैं। हे द्विजो ! इस भारत के समस्त गुणों को कहने में कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् किसी मे भी ऐसी शक्ति नहीं है जो भारत वर्ष के सब गुणों का वर्णन कर सके ॥७८॥ इस प्रकार से मैंने यह बतला दिया है यह भारत वर्ष बहुत ही उत्तम है। यह समस्त पापों के हरण करने वाला पुण्य, धन्य और बुद्धि का विशेष वर्धन करने वाला है ॥७९॥ इस भारत वर्ष की महिमा का जो कोई श्रवण करता है या इसका पाठ करता है और नियत इन्द्रियों वाला रहता है वह सब पापों से विमुक्त होकर सीधा विष्णुलोक को चला जाया करता है ॥८०॥

—※—

२०—कोणादित्यमाहात्म्यवर्णन ।

समास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः ।
ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१
समुद्रादुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम् ।
देशोऽसौ पुण्यशीलानां गुणैः सर्व्वैरलङ्कृतः ॥२

तत्र देशेप्रसूता ये ब्राह्मणा सयतेन्द्रिया ।
तप स्वाध्यायनिरता वन्द्या पूज्याश्च ते सदा ॥३
श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे चाचार्य्यकर्म्मणि ।
प्रशस्ता सर्व्वकार्य्येषु तत्रदेशोद्भवा द्विजा ॥४
षट्कर्म्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगा ।
इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदा ॥५
सर्व्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो वीतमत्सरा ।
अग्निहोत्ररता केचित् केचित् स्मार्त्ताग्नितत्परा ॥६
पुत्रदारधनैर्युक्ता दातार सत्यवादिन ।
निवसन्त्युत्कले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहाँ पर भारत वर्ष मे दक्षिण सागर मे सस्थित "औण्ड्र देश"—इस नाम से विख्यात है जो कि स्वर्ग और मोक्ष दोनो के प्रदान करने वाला है ॥१॥ समुद्र से उत्तर मे उतना भाग जितना कि विरजमडल है वह सब गुणो से अलङ्कृत पुण्य शीलो का देश है ॥२॥ उस देश म जो सयत इन्द्रियो वाले ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं वे तपस्या और स्वाध्याय मे निरत रहने वाले हैं और वे सदा ही वन्दना करने के योग्य तथा सदा पूज्य हैं। उस देश मे समुत्पन्न होने वाले विप्र श्राद्ध-दान विवाह-यज्ञ तथा आचार्य के कर्म म और सब ही कार्यों मे प्रशस्त होते हैं ॥३-४॥ वहाँ पर वेदो के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण षट्कर्मों मे निरत रहने वाले हैं तथा वे इतिहास के ज्ञाता और पुराणो के अर्थ के जानने वाले हैं ॥५॥ ये ब्राह्मण सभी शास्त्रो के अर्थों मे कुशल हैं—यजन करने वाले हैं तथा मात्सर्य दोष से रहित होते हैं। इनम कुछ तो अग्निहोत्र करने मे रति रखते हैं और कुछ स्मार्त (स्मृतियो द्वारा उपदिष्ट) अग्नि मे तत्पर रहा करते हैं ॥६॥ वहाँ पर निवास करने वाले ब्राह्मण पुत्र-धन और दारा से युक्त होते हैं—दान देने वाले और सत्यवादी होते हैं जो लोग इस पुण्यमय और यज्ञोत्सवो से भूषित इस उत्कल देश म निवास किया करते हैं ॥७॥

इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसयताः ।
स्वधर्म्मनिरताः शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्म्मिकाः ॥८
कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे व्यवस्थितः ।
य दृष्ट्वा भास्कर मर्त्यः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥९
श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्र सूर्य्यस्य साम्प्रतम् ।
तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः ॥१०
लवणस्योदधेस्तीरे पवित्रे सुमनोहरे ।
सर्व्वत्र वालुकाकीर्णे देशे सर्व्वगुणान्विते ॥११
चम्पकाशोकबकुलैः करवीरैः सपाटलैः ।
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च वकुलैर्नागकेसरैः ॥१२
तगरैर्धवबाणैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः ।
मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथान्यैर्मल्लिकादिभिः ॥१३
केतकीवनखण्डैश्च सर्व्वतः कुसुमोज्ज्वलैः ।
कादम्बैर्लकुचैः शालैः पनसैर्देवदारुभिः ॥१४

विप्रों से अतिरिक्त अन्य भी तीनों वर्ण क्षत्रिय आदि सुसयत होते हैं और ये सभी अपने २ धर्मों मे निरत रहने वाले शान्त और धार्मिक वहाँ पर रहा करते है ॥८॥ उस देश मे व्यवस्थित "कोणादित्य"- इस नाम से विख्यात भगवान् सूर्यदेव हैं जिन भुवनभास्कर का दर्शन करके मनुष्य सभी प्रकार के पापो से विमुक्त हो जाया करता है ॥९॥ मुनिगण ने कहा—हे सुरो मे परम श्रेष्ठ ! जिस भाग मे वह दिवाकर भगवान् विराजमान हैं और इस समय मे जो सूर्य का क्षेत्र उस देश मे विद्यमान है उसके विषय मे हम लोग श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं । कृपा करके हे भगवन् ! अब आप उसका वर्णन कीजिए ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस देश मे जो खारी समुद्र है, उसके उत्तर दिशा के भाग मे परम पवित्र सुमनोहर और सभी गुणो से सयुत एक भाग है जो सर्वत्र बालुका से घिरा हुआ है तथा चम्पक, अशोक, बकुल, करवीर, पाटल, पुन्नाग, कर्णिकार, नागकेसर, तगर, धवबाण, अतिमुक्त, कुब्जक, मालती, कुन्द तथा अन्य मल्लिका आदि से और केतकी के वनखण्डो से एव सभी

ऋतुओ के पुष्पो से युक्त उज्ज्वल, कदम्ब, लकुच, शाल, पनस और देवदारु के वृक्षो से घिरा हुआ है ।।११-१४।।

सरलैर्मुचुकुन्दैश्च चन्दनैश्च सितेतरैः ।
अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आम्रैराम्रातकैस्तथा ।।१५
तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्व्वतः समलङ्कृतम् ।।१६
क्षेत्र तत्र रवे पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम् ।
समस्ताद्योजन साग्र भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।।१७
आस्ते तत्र स्वय देव सहस्रांशुर्दिवाकर ।
कोणादित्य इति ख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रद ।।१८
माघे मासि सिते पक्षे सप्तम्या सयतेन्द्रिय ।
कृतोपवासो यत्रैत्य स्नात्वा तु मकरालये ।।१९
कृतशौचो विशुद्धात्मा स्मरन् देव दिवाकरम् ।
सागरे विधिवत् स्नात्वा शर्व्वर्य्यन्ते समाहित ।।२०
देवानृषीन्मनुष्याश्च पितृन सन्तर्प्य च द्विजा ।
उत्तीर्य्य वाससी धौते परिधाय सुनिर्म्मले । २१

वहाँ पर साल मुचुकुन्द के वृक्ष हैं तथा वह स्थल चन्दन, सितेतर चन्दन, अश्वत्थ एव अनेक प्रकार के वृक्ष—सप्तपर्ण, आम्र, आम्रातक, ताल, पूगफल, नारियल, कपित्थक आदि नाना प्रकार के द्रुमो से समलङ्कृत है ।।१५-१६।। वहाँ पर ही जगत् मे प्रख्यात रविदेव का परम पुण्यतम क्षेत्र विद्यमान है । वह चारो ओर डेढ योजन विस्तार वाला क्षेत्र है जो भोग और मोक्ष दोनो के प्रदान करने वाला है ।।१७।। वहाँ पर स्वय देव सहस्रांशु दिवाकर साक्षात् विराजमान रहते हैं । जिनका शुभ नाम "कोणादित्य" यह प्रसिद्ध है और जो भुक्ति मुक्ति के प्रदाता हैं ।। १८।। माघ मास के शुक्ल पक्ष म सप्तमी तिथि के दिन मे मनुष्य सयत इन्द्रिय वाला होकर उपवास करके यहाँ आवे और मकरालय में स्नान करे ।। १९।। शौच करके विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे और रात्रि के अन्त म समाहित होकर सागर मे विधि

के साथ स्नान करे ॥२०॥ हे द्विजगणो ! फिर उस मनुष्य को वहाँ पर देव ऋषि तथा मनुष्यों का भली भाँति तर्पण करना चाहिए। फिर पहिले पहिने हुए वस्त्रों को उतार कर निर्मल धुले हुए दूसरे शुद्ध वस्त्र धारण कर लेने चाहिए ॥२१॥

आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदधेः।
उपविश्योदये काले प्राङ्मुखः सवितुस्तदा ॥२२
विलिख्य पद्मं मेधावी रक्तचन्दनवारिणा।
अष्टपत्रं केसराढ्यं वर्त्तुलं चोर्द्ध्वकर्णिकम् ॥२३
तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसंयुतम्।
रक्तपुष्पं सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने ॥२४
ताम्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटैः कृत्वा तिलादिकम्।
पिधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत् ॥२५
करन्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गहृदयादिभिः।
आत्मानं भास्करं ध्यात्वा सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥२६
मध्ये चाग्निदले धीमान्नैर्ऋते श्वसने दले।
कामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत् ॥२७
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।
सम्पूज्य पद्ममावाह्य गगनात्तत्र भास्करम् ॥२८

इसके अनन्तर आचमन करे और प्रयत होकर उस समुद्र के तट पर उपविष्ट हो जावे। उस उदय के समय मे उस समय मे सूर्य देव की ओर पूर्व दिशा मे मुख करके स्थित हो जाना चाहिए ॥२२॥ वहाँ पर मेधावी भक्त को चाहिए कि रक्त चन्दन को घिसकर उससे एक पद्म का विलेखन करे। यह पद्म अष्टदल वाला केसरो से युक्त-वर्तुल और ऊर्ध्वकर्णिका वाला पद्म बनाना चाहिए ॥२३॥ तिल-तण्डुल-रक्त चन्दन से युक्त तोय-रक्त पुष्प-दर्भ इनको एक ताम्र के पात्र मे प्रक्षिप्त करना चाहिए ॥२४॥ यदि ताम्र का पात्र न हो तो आक के पत्तों के दोनो से तिल आदिक पदार्थों को उनमे रक्खे और हे मुनिगणो ! पात्र के द्वारा पात्र को विन्यस्त करना चाहिए ॥२५॥ उदय आदि अङ्गो से करन्यास तथा

अङ्गन्यास करे और आत्मा को भास्कर का ध्यान करके भली भाँति श्रद्धा से समन्वित होना चाहिए। २६॥ धीमान् को मध्य अग्निदल मे नैऋ त ईशान दल मे और कामारि गोचर मे तथा पुन मध्य मे पूजन करना चाहिए ॥२७॥ प्रभूत विमल सार आराधना कर , परम सुख का सम्पूजन करके वहाँ पर गगन से भगवान् भास्कर का आवाहन करना चाहिए ॥२८॥

कर्णिकोपरि सस्थाप्य ततो मुद्रा प्रदर्शयेत् ।
कृत्वा स्नानादिक सर्व्व ध्यात्वा त सुसमाहित । २६
सितपद्मोपरि रवि तेजोविश्वे व्यवस्थितम् ।
पिङ्गाक्ष द्विभुज रक्त पद्मपत्रारुणाम्बरम् ॥३०
सर्व्वलक्षणसयुक्त सर्व्वाभरणभूषितम् ।
सुरूप वरद शान्त प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१
उद्यन्त भास्कर दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम् ।
ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्या धरणी गत ॥३२
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यत ।
त्र्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्य्यायार्घ्य निवेदयत् ॥ ३
अदीक्षितस्तु सर्व्वं नाम्नवार्घ्य प्रयच्छति ।
श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यत ॥३४
अग्निनिरृ तिवाय्वीशमध्यपूर्व्वादिदिक्षु च ।
हृच्छिरश्च शिखावमनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५

उस लिखित पद्म की कर्णिका पर सस्थापित करके इसके उपरान्त मुद्रा को प्रदर्शित करे। स्नानादिक सब क्रिया करके सुसमाहित होकर उनका ध्यान करे ॥२६॥ तेजो विश्व सित पद्म के ऊपर मे व्यवस्थित रवि का ध्यान करना चाहिए। पिङ्गल वर्ण के नेत्रो वाले, दो भुजाओ से युक्त रक्त वर्ण वाले, पद्म दल के समान अरुण अम्बर से सयुत, श्री रविदेव सब सुलक्षणो से समन्वित है और समस्त आभरणो से सुशोभित हैं। सुन्दर रूप वाले—वरदान प्रदान करने वाले—परम शान्तस्वरूप से युक्त और प्रभामण्डल से मण्डित हैं ॥३० ३१॥ घने सिन्दूर के सदृश

उगते हुए सूर्य्यदेव का दर्शन करे। इसके अनन्तर उस पात्र को लेकर जानुओं से पृथ्वी पर स्थित होकर उस पात्र को शिर पर रख करके चित्त को एकाग्र करे और मौनी रहे इसके अनन्तर त्र्यक्षर मन्त्र से सूर्य्यदेव के लिये अर्घ्य देवे ।।३२-३३।। जो अदीक्षित होवे तो उसके नाम से ही अर्घ्य देता है। क्योंकि श्रद्धा के द्वारा भाव से युक्त मनुष्य से ही रविदेव भक्ति से ग्रहण करने के योग्य है ।।३४।। अग्नि, निर्ऋति, वायु, ईशान, मध्यपूर्वादि दिशाओं में हृदय, शिर, शिखा, वर्म, नेत्र और अस्त्र का पूजन करना चाहिए ।।३५।।

दत्तार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च ।
जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रां बद्ध्वा विसर्जयेत् ।।३६
ये वार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्य्याय नियतेन्द्रियाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च संयताः ।।३७
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना ।
ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ।।३८
त्रैलोक्यदीपकं देवं भास्करं गगनेरतम् ।
ये संश्रयन्ति मनुजास्ते स्युः सुखस्य भाजनम् ।।३९
यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय यथोदितम् ।
तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम् ।।४०
तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने ।
आदित्याय शुचिर्भूत्वा पुष्पैर्गन्धैर्मनोरमैः ।।४१
एवं ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्यां सुसमाहितः ।
आदित्याय शुचिः स्नातः स लभेदीप्सितं फलम् ।।४२

अर्घ्य देकर गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य सब समर्पित करके तथा जप-स्तवन और नमस्कार करके और मुद्रा बाँध कर विसर्जन करे ।।३६।। जो लोग नियत इन्द्रिय वाले भगवान् सूर्य्य को अर्घ्य दिया करते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संयत होकर सर्वदा भक्ति की भावना से तथा विशुद्ध अन्तरात्मा से सूर्यदेव को अर्घ्य देते हैं वे अभिमत पदार्थों का उपयोग करके परम गति को प्राप्त हुआ करते हैं ।।३७-३८।। त्रिलोकी

के दीपक देव भास्कर को जो गगनरत रहते है जो लोग इनका आश्रय ग्रहण करते हैं। वे मनुष्य सदा सुख के पात्र हुआ करते हैं ॥३९॥ जिस समय तक भगवान् भास्कर देव के लिये जैसा बताया गया है वैसा अर्घ्य नहीं दिया जाता है तब तक भगवान विष्णु देव अथवा शङ्कर एवं सुरेश्वर का पूजन नहीं करना चाहिए ॥४०॥ अतएव प्रबल प्रयत्न से समास्थित होकर आये दिन सूर्य देव को अर्घ्य देना ही चाहिए। भगवान आदित्य के लिये मनोरम और सुगन्धित पुष्पों के साथ पवित्र होकर अर्घ्य देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार से सप्तमी तिथि के दिन परम समाहित होकर स्नान करके और पवित्र होकर भगवान आदित्य के लिये जो मनुष्य अर्घ्य दिया करता है वह अपना अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है ॥४२॥

रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम् ।
विद्यां प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥४३
य य काममभिध्यायन् सूर्य्यायार्घ्यं प्रयच्छति ।
तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरुष सुधी ॥४४
स्नात्वा व सागरे दत्वा सूर्य्यायार्घ्यं प्रणाम्य च ।
नरो वा यदि वा नारी सर्व्वकामफल लभेत् ॥४५
तत सूर्य्यालय गच्छेत् पुष्पमादाय वाग्यत ।
प्रविश्य पूजयेद्भानु कृत्वा तु त्रि प्रदक्षिणम् ॥४६
पूजयेत् परया भक्त्या कोणार्कं मुनिसत्तमा ।
गन्धै पुष्पैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैरपि ॥४७
दण्डवत् प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथा स्तव ।
एव सम्पूज्य त देव सहस्रांशु जगत्पतिम् ॥४८
दशानामश्वमेधाना फल प्राप्नोति मानव ।
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तो युवा दिव्यवपुर्नर ॥४९

भगवान आदित्य देव को अर्घ्य देने स रोग स युक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हो जाया करता है और धन की प्राप्ति की इच्छा रखता है उसको धन प्राप्त हो जाया करता है। विद्या क चाहने वाला विद्या प्राप्त

योग को प्राप्त करके फिर वह मोक्ष को प्राप्त किया करता है। हे मुनि श्रेष्ठो! इस प्रकार से मैंने आप सब लोगों के सामने यह परम दुर्लभ क्षेत्र का वर्णन कर दिया है जो कोणार्क उदधि के तट पर भुक्ति और मुक्ति दोनों के फलों को प्रदान करने वाला है ॥६४॥



२१—सूर्यपूजाप्रकरण

श्रुतोऽस्माभि सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम् ।
भास्करस्य पर क्षेत्र भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१
न तृप्तिमधिगच्छाम शृण्वन्त सुखदा कथाम् ।
तव वक्त्रोद्भवा पुण्यामादित्यस्याघनाशिनाम् ॥२
अत पर सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतावर ।
देवपूजाफल यत्र यत्र दानफल प्रभो ॥३
प्रणिपाते नमस्कारे तथा च व प्रदक्षिणे ।
दीपधूपप्रदाने च समाञ्जनविधौ च यत् ॥४
उपवासे च यत् पुण्य यत् पुण्य नक्तभोजने ।
अर्घ्यश्च कीदृश प्रोक्त कुत्र वा सप्रदीयते ॥५
कथञ्च क्रियते भक्ति कथ देव प्रसीदति ।
एतत् सर्व्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६

मुनिगण ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! आपने जो भास्कर देव का परमो त्तम क्षेत्र का वर्णन किया है जो कि भोगों और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला है हम लोगों ने श्रवण कर लिया है ॥१॥ किन्तु ऐसी सुख देने वाली कथा को सुनते हुए भी हम लोग तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं जो कि आपके मुखारविन्द के द्वारा कही गयी है और परम पुण्यमयी तथा आदित्य देव की कथा अघों का विनाश करने वाली है ॥२॥ हे सुरों में परमश्रेष्ठ! इससे भी आगे जो देव की पूजा का फल है और जो जो दान देने का पुण्य फल होता है उस भी आप वर्णित कीजिए।

आप तो वक्ताओं में परमाधिक श्रेष्ठ वक्ता हैं ।।३।। सूर्य देव के प्रणिपात करने में नमस्कार में तथा उनकी परिक्रमा करने में धूप दीप समर्पित करने में और वहाँ पर समार्जन करने में उपवास में तथा रात्रि के भोजन में जो भी पुण्य होता है उसे बतलाइये । अर्घ्य किस प्रकार का होता है और वह कहाँ पर दिया जाता है । भगवान् सूर्यदेव की भक्ति किस तरह से की जाती है तथा देव किस प्रकार से परम प्रसन्न हुआ करते हैं ? हे गुरुश्रेष्ठ ! यह सभी हम लोग श्रवण करना चाहते हैं ।।४-६।।

अर्घ्यं पूजादिकं सर्व्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः ।
भक्तिं श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ।।७
मनसा भावना भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कीर्त्यते ।
ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्वं सुसमाहिताः ।।८
तत्कथां श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान् पूजयीत वा ।
अग्निशुश्रूषकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ।।९
तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा ।
तत्कर्म्मकृद्भवेद् यस्तु वै भक्तः सनातनः ।।१०
देवार्थे क्रियमाणानि यः कर्म्माण्यनुमन्यते ।
कीर्त्तनाद्वापरो विप्रा. स वै भक्ततरो नरः ।।११
नाभ्यसूयेत तद्भक्तान् ननिन्द्यान्यदेवताम् ।
आदित्यव्रतचारी च स वै भक्तनरो नरः ।।१२
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जिघ्रन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भक्तनरो नरः ।।१३
एवंविधा त्विय भक्तिः सदा कार्य्या विजानता ।
भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा ।।१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! अर्घ्य और अर्चना आदि सब सदा सूर्य की श्रद्धा और समाधि मेरे द्वारा कही जा रही है उसको अब आप सभी भाँति समझ लीजिए ।।७।। मन द्वारा जो भावना की जाती है वही अभीष्ट भक्ति होती है और यही श्रद्धा कही जाया करती है । जो ध्यान किया जाता है वही समाधि है—ऐसा कहा गया है । अब आप

लोग पूर्णतया सावधान होकर श्रवण कीजिए ॥८॥ उनकी कथा को जो भक्तों को श्रवण कराता है तथा उन भक्तों का अर्चन किया करता है एव अग्निदेव की जो शुश्रूषा किया करता है वही परम सनातन भक्त होता है ॥६॥ जो अपने इष्टदेव में ही अपना चित्त लगाये रहता है—अह निश उन्ही मे मन को रमाता है—जो देव की पूजा में रति रखता है और सदा इष्टदेव के कर्मों म करने मे सलग्न रहता है वही सनातन भक्त कहा जाया करता है ॥१०॥ देव के लिये किये हुए कर्मों को जो अनुमोदित किया करता है हे विप्रगण ! जो उन कर्मों का ही कीर्तन करता है वह मनुष्य ही अधिक भक्त हुआ करता है ॥११॥ इष्टदेव के भक्तों की कभी भी अभ्यसूया न करे तथा किसी भी अन्य देवता की निन्दा नही करनी चाहिए। जो ऐसा भक्त आदित्यदेव के व्रत का समाचरण करने वाला हो वह मनुष्य अधिक भक्त होता है ॥१२॥ जो गमन करता हुआ स्थित रहकर शयन करते हुए सूँघते हुए और उन्मेष एव निमेष करते हुए भी नित्य ही भगवान् भास्कर देव का स्मरण किया करता है वह विशेष भक्त मनुष्य हुआ करता है ॥१३॥ इस प्रकार की यह भक्ति होती है और इस भक्ति को ज्ञानवान् पुरुष के द्वारा सदा ही करनी चाहिए। ऐसी भक्ति से समाधि से तथा मानसिक सब स ही सूर्य देव की उपासना करनी चाहिए ॥१४॥

क्रियते नियमा यस्तु दान विप्राय दीयते ।
प्रतिगृह्णन्ति त देवा मनुष्या पितरस्तथा ॥१५
पत्र पुष्प फल तोय यद्भक्त्या समुपाहृतम् ।
प्रतिगृह्णन्ति तद्देवो नास्तिकान् वर्जयन्ति च ॥१६
भावशुद्धि प्रयोक्तव्या नियमाचारसयुता ।
भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्व सफल भवेत् ॥१७
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वत ।
उपवासेन भक्त्या वै सर्व्वपापै प्रमुच्यते ॥१८
प्रणिधाय शिरो भूम्या नमस्कार करोति य ।
तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ॥१९

भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्य्यात् प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥२०
सूर्य्यं मनसि यः कृत्वा कुर्य्याद्व्योमप्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्व्वे देवा भवन्ति हि ॥२१

जो यह सब नियम का पालन किया जाता है और जो विप्र के लिये दान दिया जाया करता है उसको देवगण-पितृगण और मनुष्य सभी ग्रहण किया करते हैं ॥१५॥ जो हार्दिक भक्ति के साथ पत्र-पुष्प-फल और जल भी समर्पित किये जाते हैं उसको देव ग्रहण किया करते है किन्तु जो नास्तिक होते है अर्थात् देवो की सत्ता को ही नही मानते हैं उनको वर्जित कर दिया करते है ॥१६॥ नियमों तथा आचारो से समन्वित जो हार्दिक भाव की शुद्धि है उसी का प्रयोग करना चाहिए भावशुद्धि के द्वारा जिस कर्म को भी किया जाता है वह सभी सफल हुआ करता है। सबमे मुख्य हृदय की भावना की शुद्धि ही होती है ॥१७॥ भगवान् विवस्वान् की पूजा-स्तुति-जय उपहार और उपवास के द्वारा जो कि भक्ति की भावना से किये जाते हैं मनुष्य सभी पापो से विमुक्त हो जाया करता है ॥१८॥ जो अपने मस्तक को भूमि मे टेक कर सूर्य देव को नमस्कार करता है वह उसी क्षण मे समस्त पापो से छुटकारा पा जाया करता है—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥१९॥ जो भक्ति से युक्त मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है उसने मानो सातों द्वीपों वाली सम्पूर्ण वसुन्धरा की ही परिक्रमा करली है अर्थात् उसे समस्त भूमि की प्रदक्षिणा का पुण्य-फल प्राप्त हो जाया करता है ॥२०॥ मन मे सूर्य देव का ध्यान करके जो व्योम मे प्रदक्षिणा किया करता है उसने सभी देवताओ की प्रदक्षिणा करने का फल प्राप्त कर लिया है ॥२१॥

एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्या योऽर्च्चयते रविम् ।
नियमव्रतचारो च भवेद्भक्तिसमन्वितः ॥२२
सप्तम्या वा महाभागाः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२३

सप्तम्यामथवा षष्ठ्या स याति परमां गतिम् ।
कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रिय ॥२४
सर्व्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ।
पद्मप्रभेण यानेन सूर्य्यलोकं स गच्छति ॥२५
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः ।
सर्व्वशुक्लोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२६
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सूर्य्यलोकं स गच्छति ।
अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं पिबेत् ॥२७
क्रमवृद्ध्या चतुर्व्विंशमेकैकं क्षपयेत् पुनः ।
द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥२८

एक बार ही आहार करके जो मनुष्य षष्ठी तिथि में रवि देव की अर्चना किया करता है तथा नियमों में समास्थित होकर ब्रह्मचर्य धारण करता है एवं भक्तिभाव से युक्त होता है अथवा सप्तमी तिथि में ऐसा करता है हे महाभागो ! वह मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है। जो एक अहोरात्र के उपवास को करके भास्कर देव की पूजा किया करता है। षष्ठी या सप्तमी किसी भी तिथि में करे तो वह मनुष्य परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है। मास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि में जितेन्द्रिय होकर जो उपवास करता है और सब रत्नों के उपहार के द्वारा सूर्य देव का अर्चन किया करता है वह पद्म के समान प्रभा वाले यान के द्वारा अन्त में सीधा सूर्यलोक में गमन किया करता है ॥२३-२५॥ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में मनुष्य उपवास परायण होकर सम्पूर्ण शुक्ल वर्ण के उपहारों से जो भगवान् भास्कर देव का पूजन करता है वह सब पापों से विमुक्त होकर सूर्यलोक को गमन किया करता है। अर्क सम्पुट से संयुक्त उदक का प्रसृत पान करे तथा क्रम वृद्धि से चौबीस को एक एक करके पुनः क्षीण करता जावे। इस प्रकार से दो वर्षों में समाप्त नियम वाला होता है ॥२६-२८॥

सर्व्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी ।
शुक्लपक्षस्य सप्तम्या यदादित्यदिनं भवेत् ॥२९
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् ।
स्नानं दानं तपो होमं उपवासस्तथैव च ॥३०
सर्व्वं विजयसप्तम्या महापातकनाशनम् ।
ये चादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्व्वन्ति मानवाः ॥३१
यजन्ति च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम् ।
येषां धर्म्याः क्रियाः सर्व्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम् ॥३२
न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ।
श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा ॥३३
उपलेपनकर्त्ता तु चिन्तितं लभते फलम् ।
चित्रभानुं विचित्रैस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३४
पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितांल्लभेत् ।
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः ॥३५
आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स हीयते ।
दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते ॥३६

यह अर्क सप्तमी सब कामनाओं को प्रदान करने वाली होती है और परम प्रशस्त मानी गयी है। शुक्ल पक्ष की सप्तमी में जब आदित्य का दिन होवे ॥२९॥ वह विजया नाम वाली सप्तमी कही जाती है। उसमें दिये हुए दान का महान् फल हुआ करता है। चाहे उस दिन में स्नान किया जावे कुछ भी शुभ एवं सत्कर्म किया जावे सब विजय सप्तमी में महान् पातकों का नाश करने वाला होता है। जो मनुष्य आदित्य के दिन में प्राप्त होने पर श्राद्ध किया करते हैं और महाश्वेत का यजन किया करते हैं वे जो भी कुछ चाहते हैं उसे ही प्राप्त कर लिया करते हैं। जिनकी समस्त क्रियाऐं धर्म युक्त होती हैं और सदा भगवान् भास्कर देव का उद्देश्य ग्रहण करके ही की जाया करती हैं उनके कुल में कोई भी दरिद्र अथवा व्याधिग्रस्त समुत्पन्न नहीं हुआ करता है। श्वेत-रक्त अथवा पीत मृत्तिका से जो उपलेपन करने वाला होता है वह

चिन्तित फल को प्राप्त किया करता है। जो चित्रभानु का विचित्र, सुगन्ध से युक्त कुसुमों के द्वारा उपवास करके पूजन किया करता है वह अपनी अभीप्सित कामनाओं की प्राप्ति किया करता है। घृत से दीपक को जलाकर अथवा तिल तैल से दीपक जलाकर जो भगवान् आदित्य देव की नित्य अर्चना किया करता है वह कभी भी चक्षु से क्षीण नहीं होता है। दीपदाता मनुष्य नित्य ही ज्ञान दीप से दीप्त रहता है ॥३०-३६॥

तिला. पवित्र तैल वा तिलगोदानमुत्तमम् ।
अग्निकार्य्ये च दीपे च महापातकनाशनम् ॥३७
दीप ददाति यो नित्य देवतायनेषु च ।
चतुष्पथेषु रथ्यासु रूपवान् सुभगो भवेत् ॥ ८
हर्विभि. प्रथम. कल्पो द्वितीयश्चौषधीरसैः ।
वसामेदोस्थिनिर्य्यासैर्न तु देय कथञ्चन ॥३६
भवेदूर्ध्वगतिर्द्दीपो न कदाचिदधोगति. ।
दाता दीप्यति चाप्येव न तिर्य्यग्गतिमाप्नुयात् ॥४०
ज्वलमान सदा दीप न हरेन्नापि नाशयेत् ।
दीपहर्त्ता नरो बन्ध नाश क्रोध तमो व्रजेत् ॥४१
दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ।
य समालभते नित्य कुङ्कुमागुरुचन्दनै ॥४२

तिल परम पवित्र हैं अथवा तिलों या तैल और तिलों का गोदान भी परमोत्तम होता है। अग्नि कार्य में और दीप में यह महापातकों का विनाश करने वाला होता है ॥३७॥ जो पुरुष नित्य प्रति देवों के आयतनों में दीपक जलाया करता है—चतुष्पथों (चौराहों) में—रथ्याओं में (गलियों में) दीपक जलाता है वह परम रूप वाला और सुभग हुआ करता है ॥३८॥ हविषों से प्रथम कल्प है और दूसरा कल्प ओषधियों के रसों से होता है। वसा-मेद-अस्थि और निर्यासों से कभी भी नहीं देना चाहिए ॥३९॥ दीप हमेशा ऊर्ध्व गति वाला ही होना चाहिए। इस प्रकार से दीपों का दाता दीप्त होता है और कभी भी तिर्यग् गति

को प्राप्त नहीं किया करता है ॥४०॥ जलते हुए दीपक को सदा हरण न करे और न उसका नाश ही करे। दीपक का हरण करने वाला पुरुष बन्धन-नाश-क्रोध और तम को प्राप्त किया करता है ॥४१॥ दीपों का दान करने वाला पुरुष स्वर्ग लोक में दीप माला के ही समान राजित होता है। जो मनुष्य नित्य ही कुंकुम-अगुरु और चन्दन के द्वारा समालेपन किया करता है वह धनी होता है ॥४२॥

सम्पद्यते नरः प्रेत्य धनेन यशसा श्रिया ।
रक्तचन्दनसमिश्रैः रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः ॥४३
उदयेऽर्घ्यं सदा दत्त्वा सिद्धिं संवत्सराल्लभेत् ।
उदयात् परिवर्त्तेत यावदस्तमने स्थितः ॥४४
जपन्नभिमुखः किञ्चिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा ।
आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम् ॥४५
अर्घ्येण सहितञ्चैव सर्व्वं साङ्गं प्रदीपयेत् ।
उदये श्रद्धया युक्तः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥४६
सुवर्णधेन्वनड्डुह्यसुधावस्त्रसमुतम् ।
अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुगं फलम् ॥४७
अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च ।
प्रतिमायां तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥४८
नापसव्यं न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदा ।
सघृतं गुग्गुलं वापि रवेर्भक्तिसमन्वितः ॥४९

ऐसा पुरुष प्राणान्त होने पर धन एवं यश से और श्री से सम्पन्न हुआ करता है। जो मनुष्य पवित्र होकर रक्त चन्दन से संयुत रक्त वर्ण के पुष्पों से सदा उदय काल में अर्घ्य दिया करता है वह पुरुष एक वर्ष में सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। जो उदय काल से आरम्भ करके जब तक अस्तकाल हो, स्थित रहता है और सूर्य के अभिमुख होकर किसी मन्त्र का जाप या किसी स्तोत्र का पाठ किया करता [redacted]। यह परमोत्तम आदित्य व्रत है जो महापातकों का नाश करने वाला होता है ॥४३-४५॥ अर्घ्य के सहित सब साङ्ग प्रदान करना चाहिए। उदय काल में

श्रद्धा से युक्त होकर एसा करने से सभी पापो से छुटकारा पा जाया करता है ॥४६॥ सुवर्ण धेनु-अनड्वान् वसुधा और वस्त्र से युक्त अर्घ्य के देने वाला पुरुष सात जन्मानुग फल को प्राप्त करता है ॥४७॥ अग्नि मे, जल मे, अन्तरिक्ष मे तथा पवित्र भूमि म, प्रतिमा मे और पिण्डी में प्रयत्न पूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥४८॥ अर्घ्य कभी भी दाहिनी तथा बाँयी ओर न देवे ओर सदा ही अभिमुख होकर ही अर्घ्य देना चाहिए। घृत के साथ गुग्गल को भी देवे और भक्ति से युक्त होकर ही सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए ॥४९॥

तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ।
श्रीवास चतुरस्रञ्च देवदारु तथैव च ॥५०
कर्पूरागुरुधूपानि दत्वा वै स्वर्गगामिन ।
अयने तूत्तरे सूर्य्यमथवा दक्षिणायने । ५१
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापै प्रमुच्यते ।
विषुवेपूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च ॥५२
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापै प्रमुच्यते ।
एव वेलासु सर्व्वासु सर्व्वकालञ्च मानव ॥५३
भक्त्या पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके महीयते ।
कृसरै पायसै पूपै फलमूलघृतोदनै ॥५४
बलि कृत्वा तु सूर्य्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुया
घृतेन तपण कृत्वा सर्व्वसिद्धो भवेन्नर ॥५५
क्षीरेण तपण कृत्वा मनस्तापैर्न युज्यते ।
दध्ना तु तर्पण कृत्वा कार्य्यसिद्धि लभेन्नर ॥५६

भगवान् सूर्यदेव को अर्घ्य देने वाला मनुष्य उसी क्षण में तुरत सभी पापो से मुक्त हो जाया करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है। श्री वास-चतुरस्र देवदारु कर्पूर-अगुरु धूप देकर मनुष्य स्वर्गगामी हो जाया करते हैं। उत्तरायन मे अथवा दक्षिणायन मे सूर्यदेव का पूजन करके विशेष रूप से मनुष्य समस्त पापो से छुटकारा प्राप्त कर लिया करता है। विषु वेषु-उपराग (ग्रहण) में और षडशीति मुखो मे विशेष

रूप से पूजन करके मानव सभी पापो से प्रयुक्त हो जाता है । इस प्रकार से सब वेलाओ मे और सर्वकाल मे मनुष्य भक्ति की भावना से जो भी सूर्य का अर्चन करता है वह सूर्यलोक मे पहुँच कर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । कृसर-पायस-पूआ-फल-मूल घृत और ओदन आदि के द्वारा सूर्यदेव के लिये बलि देकर मनुष्य सभी मनोरथो की प्राप्ति किया करता है । घृत के द्वारा तर्पण करके मनुष्य सर्वसिद्ध हो जाता है ॥५०-५५॥ क्षीर के द्वारा तर्पण करके मनुष्य मानसिक तापो से कभी युक्त नही होता है । दधि से सूर्यदेव का तर्पण करके मनुष्य कार्य की सिद्धि का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥५६॥

स्नानार्थमाहरेद् यस्तु जल भानोः समाहितः ।
तीर्थेषु शुचितापन्नः स याति परमा गतिम् ॥५७
छत्र ध्वज वितान वा पताका चामराणि च ।
श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥५८
यद्यद्द्रव्य नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति ।
तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्करः ॥५९
मानस वाचिक वापि कायज यच्च दुष्कृतम् ।
सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन तदशेष व्यपोहति ॥६०
एकाहेनापि यद्भानो. पूजाया प्राप्यते फलम् ।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रै र्न तत् क्रतुशतैरपि ॥६१

जो पुरुष सावधान होकर भानुदेव के स्नान के लिये जल का आहरण किया करता है वह तीर्थों मे शुचिता को प्राप्त होने वाला परम गति को प्राप्त किया करता है ॥५७॥ छत्र-ध्वजा-वितान पताका-चमर इन वस्तुओ को परमाधिक श्रद्धा से जो भानुदेव को समर्पित करता है वह अपनी अभीष्ट गति को प्राप्त कर लिया करता है ॥५८॥ मनुष्य जिस-जिस द्रव्य को भक्तिभाव के साथ आदित्य देव के लिये अर्पित करता है उस उस वस्तु को शतगुना एव सहस्र गुना भगवान् भास्कर उत्पादन कर दिया करते हैं ॥५९॥ मानस-वाचिक और कायज जो भी कुछ दुष्कृत होता है वह सभी सूर्यदेव के प्रसाद से पूर्णतया विनष्ट हो

जाया करता है ॥९०॥ एकाह भानुदेव की पूजा का जो पुण्य फल प्राप्त किया जाता है वह यथोक्त दक्षिणा वाले विप्रो के द्वारा सैकड़ो क्रतुओ से भी प्राप्त नही किया जा सकता है ॥९ ॥

–※–

२२ — आदित्यमाहात्म्यवर्णन (१)

अहो देवस्य माहात्म्य श्रुतमेव जगत्पते ।
भास्करस्य सुरश्रेष्ठ वदतस्तेपु दुर्लभम् ॥१
भूय प्रब्रूहि देवेश यत् पृच्छामो जगत्पते ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् पर कौतूहल हि न ॥२
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुक ।
य इच्छेन्मोक्षमास्थ तु देवता का यजेत स ॥३
कुतो ह्यस्याक्षय स्वर्ग कुतो नि श्रेयस परम् ।
स्वर्गतश्चैव कि कुर्य्याद्येन च च्यवते पुन ॥४
देवाना चात्र को देव पितॄणाञ्चैव क पिता ।
यस्मात् परतर नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥५
कुत सृष्टमिद विश्व सर्व्व स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥६
उद्यन्तेवैप कुरुते जगद्वितिमिर करै ।
नात परतरो देव कश्चिदन्यो द्विजोत्तमा ॥७

मुनिगण ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! जगत् के पति भास्कर देव का माहात्म्य हम लोगो ने आप के मुख से श्रवण किया है जोकि बहुत ही दुर्लभ है । हे जगत् के स्वामिन् ! हे देवेश ! आपसे हम लोग पुन कुछ पूछना चाहते हैं । आप कृपा कर वह बतलाइये । हे ब्रह्मन् ! हमको इस बात के जानने के लिये हृदय मे बडा कौतूहल हो रहा है ॥१ २॥

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी इनमे जो मोक्ष चाहता है वह किस देव का यजन करे ?॥३॥ इस प्राणी का अक्षय स्वर्ग कैसे होता है और परमनिश्रेय्यस कैसे हुआ करता है। यदि यह स्वर्ग मे भी पुण्यो के प्रभाव से पहुच जावे तो वहाँ पर भी उसे क्या करना चाहिये जिससे पुन उसका च्यवन वहाँ से न होवे ॥४॥ यहाँ पर देवो का भी देव कौन है और पितृगणो का भी पिता कौन है ? हे सुरेश्वर ! हमको उसे बतलाइये जिससे कोई बडा नही है ॥५॥ यह सम्पूर्ण जगत् जिसमे जड और चेतन सभी है कैसे सृजन किया गया है और जिस समय मे महाप्रलय होता है तो वह सम्पूर्ण विश्व किसमे चला जाया करता है— यह सब हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे द्विजोत्तमो ! यह भगवान् भास्कर उदय होते ही इस समस्त जगत् को अन्धकार से रहित कर दिया करता है ? इससे बडा अन्य कोई भी देवता नही है अर्थात् यह सूर्य्य देव ही परात्पर देव हैं ॥७॥

अनादिनिधनो ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।
तापयत्येष त्रीँल्लोकान् भवन्रश्मिभिरुल्बणः ॥८
सर्व्वदेवमयो ह्येष तपता तपनो वरः ।
सर्व्वस्य जगतो नाथः सर्व्वसाक्षी जगत्पतिः ॥९

सक्षिपत्येष भूतानि तथा विसृजते पुन. ।
एष भाति तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥१०
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावनः ।
न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ॥११

पितृणा च पिता ह्येष देवताना हि देवता ।
ध्रुवस्थान स्मृत ह्येतद्यस्मान्न च्यवते पुन ॥१२
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते ।
प्रलये च तमभ्येति भास्कर दीप्ततेजसम् ॥१३

योगिनश्चाप्यसख्यातास्त्यक्त्वा गृहकलेवरम् ।
वायुर्भूत्वा विशन्त्यस्मिस्तेजोराशौ दिवाकरे ॥१४

तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि न कार्य्या शुभमिच्छता ।
यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०
अतो भवद्भिः सततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः ।
स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः ॥२१

इस देव की सहस्रों रश्मियाँ होती हैं। जैसे पक्षीगण द्रुम की शाखाओं में आश्रय लेकर वास किया करते हैं वैसे ही मुनिगण देवों के सहित-ससिद्ध-जनक आदि गृहस्थ-योग के धर्म वाले राजा लोग ब्रह्मवादी बाल खिल्यादि ऋषिगण-वानप्रस्थ-व्यास व्यासादि सन्यासी वे सभी योग में समास्थित होकर सूर्य्यमण्डल में प्रविष्ट हुआ करते हैं और आश्रय लेते हैं ॥१५-१७॥ व्यास देवजी के पुत्र श्रीमान् शुकदेव योग धर्म को प्राप्त करके आदित्य की किरणों में पहुच कर अपुनर्भाव को प्राप्त हो गये हैं ॥१८॥ ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि देवगण केवल शब्द से ही कहे जाने वाले हैं और श्रुति ही इनका मुख है अर्थात् इनकी वाणी श्रुति को ही कहा जाता है। यह सूर्य्य देव तो प्रत्यक्ष पर देव हैं जोकि अन्धकार का विनाश करने वाले हैं ॥१९॥ इसलिये जो कोई अपना शुभ चाहता है उसको सूर्य को छोड़कर अन्य किसी भी देवता में भक्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे सब अन्य विष्णु आदि देवगण दृष्टि में अगम्य होते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं दिया करते हैं। इसलिये आप सब को निरन्तर भगवान् रविदेव का अभ्यर्चन करना चाहिए। वह रविदेव इस सम्पूर्ण जगत् के माता-पिता और गुरु हैं ॥२०-२१॥

अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः ।
मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमाः ॥२२
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च ।
सृष्ट्वा ससागरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दशः ॥२३
लोकाना स हितार्थाय स्थितचन्द्रसरित्तट ।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्व्वान्सृष्ट्वा च विविधा प्रजाः ॥२४
ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तश्च पुनः स्वयम् ।
कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपपद्यते ॥२५

इन्द्र धाताथ पर्जन्यस्त्वष्टा पूषार्य्यमा भग ।
विवस्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च ।।२६
आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्य्येण परमात्मना ।
कृत्स्न जगदिद व्याप्त मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमा ।।२७।।
तस्य या प्रथमा मूर्त्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता ।
स्थिता सा देवराजत्वे देवाना रिपुनाशिनी ।।२८

हे द्विजोत्तमो ! यह सूर्यदेव अनाथ हैं—लोकों के नाथ हैं—रश्मिमाली तथा जगत् के पति हैं। क्योंकि यह मित्रत्व मे स्थित हैं और तप किया करते है ।।२२।। ब्रह्माजी भी आदि-अन्त से रहित नित्य और अक्षय हैं वे सागर और द्वीपो के सहित इन चौदह लोकों की सृष्टि करके वही लोको के हित के लिये सरित्तट पर चन्द्र होकर स्थित हो गये हैं। समस्त प्रजा पतियों का और अनेक प्रकार की प्रजाओ का सृजन करके इसके अनन्तर पुन वह स्वय ही अव्यक्त शात सहस्रांशु होकर अपने आपके स्वरूप को बारह रूपो मे करके आदित्य के रूप मे उत्पन्न हुआ करते हैं ।।२३-२५।। वे बारह नाम ये हैं—इन्द्र धाता पर्जन्य त्वष्टा पूषा-अर्यमा भग विवस्वान् विष्णु अंश वरुण मित्र इन द्वादश नामो से परमात्मा सूर्य के द्वारा बारह मूर्तियो से हे द्विजोत्तमो ! यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है ।।२६ २७।। उस आदित्य देव की जो सब मूर्ति है वही इन्द्र सज्ञा वाली है और वह देवो के राजा के पद पर स्थित है जो देवों के शत्रुओ का विनाश करने वाली है ।।२८।।

द्वितीया तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना धातेति कीर्त्तिता ।
स्थिता प्रजापतित्वेन विविधाः सृजते प्रजा ।।२९
तृतीयार्कस्य या मूर्त्ति पर्जन्य इति विश्रुता ।
मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभि ।।३०
चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता ।
स्थिता वनस्पतौ सा तु ओषधीषु च सर्वत ।।३१
पञ्चमी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता ।
अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजा पुष्णाति नित्यश ।।३२

मूर्त्तिः षष्ठी रवेर्या व अर्य्यमा इति विश्रुता ।
वायोः ससरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥३३
भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता ।
भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥३४
मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता ।
अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥३५

दूसरी जो आदित्य देव की मूर्त्ति है वह धाता इस शुभ नाम से कही गयी है जोकि प्रजापति के पद पर स्थित होती है और विविध भाँति की प्रजाओं का सृजन किया करती है ॥२९॥ इन अर्कदेव की जो तीसरी मूर्त्ति है वह "पर्जन्य"—इस शुभ नाम से प्रख्यात है। वही मूर्त्ति मेघों मे भी स्थित है जो किरणों के द्वारा जल की वर्षा किया करती है ॥३०॥ चौथी जो सूर्य की मूर्त्ति है वह "त्वष्टा"—इस नाम से विश्रुत है। यह मूर्त्ति समस्त वनस्पतियों मे और ओषधियों मे स्थित है और सभी ओर व्याप्त रहती है ॥३१॥ पाँचवी इसकी मूर्त्ति "पूषा"—इस नाम से प्रसिद्ध है और यह मूर्त्ति अन्न मे व्यवस्थित रहा करती है जो नित्य ही समस्त प्रजा का पोषण किया करती है ॥३२॥ छठवी जो सूर्यदेव की मूर्त्ति है वह "अर्यमा"—इस शुभ नाम से विख्यात है। वह वायु के संसरण करने वाली है और देवो मे ही समाश्रित रहा करती है ॥३३॥ भानुदेव की जो सातवी मूर्त्ति है वह "भग"—इस नाम से विश्रुत है। वह भूतों मे और सब देहियों मे देहो मे अवस्थित रहा करती है ॥३४॥ आठवीं जो उसकी मूर्त्ति है वह विवस्वान् इस नाम से प्रख्यात है और वह अग्नि मे प्रतिष्ठित रहा करती है जोकि शरीर धारियों मे अन्न का पाचन किया करती है ॥३५।

नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामतः ।
प्रादुर्भवति सा नित्य देवानामरिसूदनी ॥३६
दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता ।
वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः ॥३७

मूर्त्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना वरुणसञ्ज्ञिता ।
जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यश. ॥३८
मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रत्ति सञ्ज्ञिता ।
लोकाना सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्तटे ॥३६
वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषां ।
अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरर्नानाविधैस्तु सः ॥४०
एवं सा जगता मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा ।
तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्र परं स्मृतम् ॥४१
आभिर्द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना ।
कृत्स्न जगदिदं व्याप्त मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥४२

नवमी जो सूर्यदेव की मूर्ति है वह विष्णु के नाम से प्रसिद्ध है । वह देवों के अरियो का विनाश करने वाली नित्य ही प्रादुर्भूत हुआ करती है ॥३६॥ दशमी मूर्ति 'अंशुमान्' नाम से विश्रुत है । वह वायु मे प्रतिष्ठित रहा करती है और समस्त प्रजा को आह्लादित किया करती है ॥३७॥ भानुदेव की ग्यारहवी मूर्ति वरुण सज्ञा वाली होती है । वह जलो मे ही अवस्थित रहा करती है और नित्य ही प्रजा को पोषित किया करती है ॥३८॥ बारहवी भानुदेव की मूर्ति "मित्र" इस सज्ञा वाली होती है वह लोकों के हित सम्पादन करने के लिये चन्द्र सरित् के तट पर स्थित रहती है ॥३६॥ मैत्रचक्षु से स्थित होकर वायु का भक्षण करने वाली तपस्या किया करती है । वह अनेक वरदानो के द्वारा अपने भक्तों पर सदा अनुग्रह किया करती है ॥४०॥ इस प्रकार से सब लोको के हित के लिये पहिले बारह मूर्तियो मे वह देव स्थित हुए हैं । इनमे जो मित्ररूप से स्थित है अतएव वह परम मित्र अर्थात् हित सम्पादक कहे गये है ॥४१॥ हे द्विजो ! इन उपर्युक्त बारह नामो से परमात्मा सविता ने अपनी मूर्तियो के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है ॥४२॥

तस्माद्ध्येयो नमस्यश्च द्वादशस्यासु मूर्त्तिपु ।
भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्य तद्गतेनान्तरात्मना ॥४३

इत्येवं द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानवः ।
नित्य श्रुत्वा पठित्वा च सूर्य्यलोके महीयते ॥४४
यदि तावदय सूर्य्यश्चादिदेवः सनातनः ।
ततः कस्मात्तपस्तेपे वरेप्सुः प्राकृतो यथा ॥४५
एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि पर गुह्य विभावसोः ।
पृष्ट मित्रेण यत् पूर्व्व नारदाय महात्मने ॥४६
प्राङ्मयोक्तास्तु युष्मभ्य रवेर्द्वादश मूर्त्तयः ।
मित्रश्च वरुणश्चोभौ तासा तपसि सस्थितौ ॥४७
अब्भक्षो वरुणस्तासा तस्थौ पश्चिमसागरे ।
मित्रो मित्रवने चास्मिन् वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥४८
अथ मेरुगिरेः शृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात् ।
नारदस्तु महायोगी सर्व्वालोकाश्चरन् वशी ॥४९

इस कारण से इन द्वादश मूर्त्तियो मे स्थित सूर्यदेव ध्यान करने के योग्य और नमस्कार करने के योग्य होते है । जो भक्तिमान् हैं उनको तद्गत अन्तरात्मा के द्वारा नित्य ही सूर्यदेव की उपासना करनी चाहिए ॥४३॥ इस प्रकार से मनुष्य को इन द्वादश आदित्यो को नित्य ही नमस्कार करना चाहिए । नित्य इनका श्रवण या पठन करके मनुष्य अन्त मे सूर्य्यलोक मे पहुचकर प्रतिष्ठित होता है ॥४४॥ मुनिगण ने कहा—हे भगवन् । यदि यह सूर्य्यदेव सबसे आदिदेव हैं और सनातन हैं तो फिर यह एक वरदान की इच्छा वाले प्राकृत मनुष्य की तरह तपस्या क्यो किया करते है ? ॥४५॥ यह हम विभावसु का परम गोपनीय हाल बतलायेंगे । यही बात पहिले महात्मा नारदजी के लिये मित्र ने पूछी थी ॥४६॥ मैंने पहिले आपको रविदेव की द्वादश मूर्त्तियाँ बतलाई थी । उनमे से मित्र और वरुण ये दोनो तपश्चर्या मे सस्थित हैं ॥४७॥ उन मूर्तियो मे से जल का भक्षण करने वाला वरुण पश्चिम सागर मे स्थित हो गया है । उस समय मे वायु का भक्षण करने वाला मित्र इस मित्र-वन मे रहता था ॥४८॥ इसके अनन्तर मेरु शृङ्ग से गन्धमादन से

प्रच्युत महायोगी नारद वशी समस्त लोको मे विचरण करते हुए यहाँ पर आगये थे ।।४६।।

आजगामाथ तत्रैव यत्र मित्रोऽचरत्तप ।
त दृष्ट्वा तु तपस्यन्त यस्य कौतूहल ह्यभूत् ।।५०
योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्त सनातन ।
धृतमेकात्मक येन त्रैलोक्य सुमहात्मना ।।५१
य पिता सर्व्वदेवाना पराणामपि य पर ।
अयजद्दवता कास्तु पितॄन् वा कानसौ यजेत् ।।५२
इति सञ्चिन्त्य मनसा त देव नारदोऽब्रवीत् ।
वेदेषु स पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे ।
त्वमज शाश्वता धाता त्वं निधानमनुत्तमम् ।।५३
भूत भव्य भवश्चैव त्वयि सर्व्व प्रतिष्ठितम् ।
चत्वारश्चाश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि ।।५४
यजन्ति त्वामहरहस्त्वा मूर्त्तित्व समाश्रितम् ।
पिता माता च सर्व्वस्य दैवत त्व हि शाश्वतम् ।।५५
यजसे पितर क त्व देव वापि न विद्महे ।।५६

यह योगी नारदजी वही पर समागत हुए थे जहाँ पर मित्र तपश्चर्या कर रहा था। उसको इस प्रकार से तप करते हुए देखकर इनके हृदय ने बड़ा भारी कौतूहल हो गया था ।।५०।। जो क्षय रहित है—जो अव्यय और व्यक्ताव्यक्त सनातन है और जिस सुमहात्मा एक ने इस एकात्मक त्रैलोक्य को धारण कर रक्खा है ।।५१।। जो समस्त देवा का पिता है और जो परो से भी पर है वह किन देवो का यजन करता है तथा किन पितरो का यजन किया करता है। देवर्षि ने अपने मन मे इस तरह से चिन्तन करके उन देव से कहा था—श्री नारदजी ने कहा—वह जो वेदो म और साङ्गोपाङ्ग पुराणो में गान किया जाता है वह आप अज-शाश्वत-धाता और उत्तम निधान है ।।५२ ५३।। भूतभव्य और भवत् सभी कुछ आप म प्रतिष्ठित है। हे देव ! चारो आश्रम जो गृहस्थ आदि होते हैं वे सभी मूर्तित्व को प्राप्त होने वाले आपका ही रातदिन यजन किया

करते हैं। आप सभी के माता-पिता और शाश्वत देवता हैं। फिर आप किस पितर का यजन किया करते हैं अथवा किस देव का अभ्यर्चन करते हैं यह हम नहीं जान पाये है ॥५४-५६॥

अवाच्यमेतद्वक्तव्य पर गुह्यं सनातनम् ।
त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७
यत्तत् सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचल ध्रुवम् ।
इन्द्रियेरिन्द्रियार्थैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्ज्जितम् ॥५८
स ह्यन्तरात्मा भूताना क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते ।
निर्गुणाद्व्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५६
हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः ।
महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०
सांख्यश्च कथ्यते योगे नामभिर्बहुधात्मकः ।
स च त्रिरूपो विश्वात्मा शर्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥६१
धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना ।
अशरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्म्मभिः ।
ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥६३

मित्र ने कहा—यद्यपि यह बात कहने के योग्य नहीं है क्योंकि यह विषय परमाधिक गोपनीय है और सनातन है तथापि हे ब्रह्मन् ! आप परम भक्तिमान् हैं इसी कारण से मैं इस विषय को आपके सामने ठीक २ कहूँगा ॥५७॥ जो अत्यन्त सूक्ष्म है—अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है तथा जो इन्द्रियो, इन्द्रियार्थों और सब भूतो से विवर्जित हैं वह भूतो का अन्तरात्मा क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है। यह त्रिगुण से व्यतिरिक्त पुरुष ही कल्पित है। यह हिरण्यगर्भ भगवान् है और यह ही बुद्धि यह कहा गया है। यही योगो में महान् और प्रधान कहा जाया करता है। ॥५८-६०॥ बहुधात्मक अर्थात् अनेकों स्वरूपों वाला यह नामो से योग मे सांख्य कहा जाता है। और वह तीन रूपों वाला विश्वात्मा शर्व तथा अक्षर यह कहा गया है ॥६१॥ यह एकात्मक त्रैलोक्य उस आत्मा के

द्वारा धारण किया गया है। यह बिना शरीर वाला सब शरीरों में निवास किया करता है ॥६२॥ शरीरों मे निवास करता हुआ भी वह कर्मों से लिप्त नहीं हुआ करता है। यह मेरा अन्तरात्मा तथा आपका अन्तरात्मा है और जो अन्य देशों में संस्थित है ॥६३॥

सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित् ।
सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥६४
सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्व्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥६५
विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः ।
एकश्चरति वै क्षेत्रे स्वैरचारी यथासुखम् ॥६६
क्षेत्राणीह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम् ।
तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥६७
अव्यक्ते च पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते ।
विश्व बहुविधं ज्ञेयं स च सर्व्वत्र उच्यते ॥६८
तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ।
तस्यैकस्य महत्वं हि स चैकः पुरुषः स्मृतः ॥६९
महापुरुषशब्दं हि बिभर्त्त्येकः सनातनः ।
स तु विधिक्रियायत्तः सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०

यह सबका साक्षिभूत है और कहीं पर भी किसी के द्वारा ग्रहण करने के योग्य नहीं है। यह सगुण, निर्गुण, विश्व तथा ज्ञान के ही द्वारा गम्य अर्थात् जानने के योग्य होता है ऐसा कहा गया है ॥६४॥ यह सभी ओर हाथों तथा चरणों वाला है और सभी ओर नेत्र एवं मुख वाला तथा शिर वाला है। लोक सर्वत्र श्रुतिमान् है और सबको आवृत करके स्थित रहता है ॥६५॥ यह विश्व के मूर्द्धा वाला, विश्व की भुजाओं वाला और विश्व की पदअक्षि (नेत्र) और नासिका वाला है। यह एक ही क्षेत्र मे चरण किया करता है तथा सुख पूर्वक स्वच्छन्द सञ्चरण करने वाला है ॥६६॥ ये सब शरीर ही इसके क्षेत्र है और उनमे ही सुख पूर्वक यह निवास किया करता है। वह योगात्मा उनको जानता है।

अतएव ये शरीर क्षेत्र कहे जाते हैं ॥६७॥ यह अव्यक्त पुर में शयन किया करता है। इसीसे वह पुरुष कहा जाया करता है। यह विश्व बहुत प्रकार का जानना चाहिए और वह सर्वत्र कहा जाता है ॥६८॥ इसी कारण से उसके बहुत रूप होने से वह विश्वरूप कहा गया है। उस एक का ही महत्त्व है और वह एक ही पुरुष कहा गया है। वह एक सनातन ही महापुरुष शब्द को धारण किया करता है। वह विधि और क्रिया के अधीन है तथा आत्मा से ही आत्मा का सृजन किया करता है ॥६९-७०॥

शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा।
कोटिशश्च करोत्येष प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१
आकाशात् पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा।
भूमे रसविशेषेण तथा गुणरसात्तु स ॥७२
एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा।
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न संशयः ॥७३
स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम्।
सञ्ज्ञा तथा मुने सोऽयं ब्रह्मादिषु तथाप्नुयात् ॥७४
यथा दीपसहस्राणि दीप एक. प्रसूयते।
तथा रूपसहस्राणि स एक. सम्प्रसूयते ॥७५
यदा स बुध्यत्यात्मानं तदा भवति केवलः।
एकत्वप्रलये चास्य बहुत्वञ्च प्रवर्त्तते ॥७६
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्।
अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्व्वगश्च स उच्यते ॥७७

सौ प्रकार से—सहस्र प्रकार से तथा शत सहस्र प्रकार से और करोड़ प्रकार से यह आत्मा से ही आत्मा को प्रत्यक्ष किया करता है ॥७१॥ आकाश से गिरा हुआ जल जिस प्रकार से भिन्न स्वाद वाला हो जाया करता है और भूमि के रस विशेष से ही ऐसा होता है वैसे ही गुणों के रस से वह हो जाया करता है ॥७२॥ जिस तरह से वायु एक ही होता है किन्तु देहों में पाँच प्रकार का प्राण—अपानादि भेदों वाला हो जाता है

उसी भाँति उसका भी एकत्व और पृथक्त्व होता है। उसका सशय नही है ॥७३॥ जिस तरह से स्थानान्तरो की विशेषता से परासंज्ञा को प्राप्त किया करता है। हे मुनिवर ! यह भी ब्रह्म आदि सज्ञाओ की प्राप्ति किया करता है ॥७४॥ जिस तरह से एक ही दीपक सहस्रो दीप को जला कर प्रसूत कर दिया करता है उसी प्रकार से यह ही सहस्रो रूपो को सम्प्रसूत किया करता है ॥७५॥ जब वह आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है उसी समय मे वह केवल होता है। इसके एकत्व के प्रलय हो जाने पर ही बहुत्व की प्रवृत्ति हो जाया करती है ॥७६॥ इस जगत् मे स्थावर जङ्गम भूत नित्य नही है और वह अक्षय अप्रमेय और सर्वत्र गमन करने वाला कहा जाता है ॥७७॥

तस्माद्व्यक्तमुत्पन्न निगुण द्विजसत्तमा ।
अव्यक्तमावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८
ता योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मक ।
लोके च पूज्यते योऽसौ दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि ॥७९
नास्ति तस्मात् परो ह्यन्य पिता देवोऽपि वा द्विजा ।
आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्त पूजयाम्यहम् ॥८०
स्वर्गेष्वपि हि ये केचित नमस्यन्ति देहिन ।
तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफला गतिम् ॥८१
त देवा स्वाश्रमस्थाश्च नानामूर्तिसमाश्रिता ।
भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्य गतिश्चैषा ददाति स ॥८२
स हि सर्व्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते ।
एव मत्वा यथाज्ञान पूजयामि दिवाकरम् ॥८३
ये च तद्भाविता लोक एकत्वे समाश्रिता ॥
एतदप्यधिक तेषा यदेक प्रविशन्त्युत ॥८४

हे द्विजोत्तमो ! उससे ही तीन गुणो वाला अव्यक्त समुत्पन्न होता है। अव्यक्त और व्यक्त भाव मे स्थित जो है वह प्रकृति कही जाया करती है ॥७८॥ ब्रह्म की योनि उसको ही समझना चाहिए। यह वह सद् और असत् स्वरूप वाला है। वही यह लोक मे दैव तथा पित्र्य कर्म

मे पूजा जाया करता है ॥७८॥ हे द्विजो ! उससे पर अन्य कोई भी नहीं है। यही पिता तथा देव एव परात्पर है। वह आत्मा के द्वारा ही जानने के योग्य है; इसी कारण से मैं उसका अभ्यर्चन किया करता हूँ ॥८०॥ स्वर्गों मे भी जो कोई देहधारी हैं वे उसको नमन किया करते हैं। हे देवर्षे ! इसी से उसके द्वारा उद्दिष्ट फल वाली गति को वे गमन किया करते है ॥८१॥ उसको देवगण—अपने आश्रमो मे स्थित रहने वाले तथा नाना मूर्त्तियो मे समाश्रित आप की पूजा भक्ति से किया करते हैं और वह इन सबको सद्गति प्रदान किया करता है ॥८२॥ वह सबमे रहने वाला भी है और निर्गुण ही कहा जाया करता है। इस प्रकार से जानकर ज्ञान के अनुसार दिवाकर का पूजन किया करता है ॥८३॥ जो लोक मे एक तत्त्व मे समाश्रित उसकी भावना से भावित है। उनका यह भी अधिक है कि वे एक मे प्रवेश किया करते है ॥८४॥

इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्त्तितः।
अस्मद्भक्तुमापि देवर्षि त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८५
सुरैर्व्वा मुनिभिर्व्वापि पुराणैर्व्वरद स्मृतम्।
सर्व्वे च परमात्मन पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८६
एवमेतत् पुराख्यात नारदाय तु भानुना।
मयापि च समाख्याता कथा भानोर्द्विजोत्तमा. ८७
इदमाख्यानमाख्येय मयाख्यात द्विजोत्तमा.।
न ह्यनादित्यभक्ताय इद देय कदाचन ॥८८
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्य यश्चैव शृणुयान्नरः।
स सहस्रार्चिष देव प्रविशेन्नात्र सशय ॥८९
मुच्येतार्त्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादित. कथाम्।
जिज्ञासुर्लभते ज्ञान गतिमिष्टा तथैव च ॥९०
क्षणेन लभतेऽध्वानमिद यः पठते मुने।
यो य कामयते काम स त प्राप्नोत्यसशयम् ॥९१
तस्माद्भवद्भि. सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः।
स च धाता विधाता च सर्व्वस्य जगतः प्रभुः॥ ९२

हे नारद ! यह परम गोपनीय समुद्देश है जो अब आपको मैंने बतला दिया है। हे देवर्षे ! हमारी भक्ति से भी आपने बहुत उत्तम किया है ॥८५॥ सुरों के द्वारा-मुनियों के द्वारा और पुराणों के द्वारा यह वरद कहा गया है। सब परमात्मा दिवाकर का पूजन किया करता हैं ॥८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह पुराने समय में भानुदेव ने देवर्षि नारदजी को कहा था और द्विजगणो ! मैंने भी भानुदेव की कथा का वर्णन किया है ॥८७॥ हे द्विजगणो ! यह जो आख्यान मैंने आप को बतलाया है इसका कभी भूल कर भी जो आदित्यदेव का भक्त न हो उसे नहीं देना चाहिए ॥८८॥ इस उत्तम आदित्याख्यान की बहुत बड़ी महिमा है जो इसको नित्य-प्रति श्रवण कराया करता है और जो नित्य-प्रति श्रवण किया करता है वह मनुष्य सहस्रांशुदेव में प्रवेश किया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥८९॥ इस कथा को आदि से जो मनुष्य श्रवण किया करता है वह यदि आर्त्त होता है तो उसकी रोग से मुक्ति हो जाया करती है। यदि वह ज्ञान के प्राप्त करने का इच्छुक होता है तो वह उस ज्ञान को प्राप्त किया करता है तथा वह अभीष्ट गति को भी प्राप्त कर लेता है ॥९०॥ हे मुने ! जो इस आख्यान का पाठ किया करता है वह एक क्षण मात्र में ही मार्ग को लब्ध कर लेता है। निष्कर्ष यही है कि इसका पढ़ने वाला पुरुष जो भी जिस कामना को किया करता है वह उसको निश्चय प्राप्त कर लिया करता है ॥९१॥ इसलिये आप लोगों को निरन्तर भगवान् रविदेव का स्मरण करना चाहिए। यह प्रभु इस सम्पूर्ण जगत् का धाता तथा विधाता है ॥९२॥

—※—

२३—आदित्यमाहात्म्यवर्णन (२)

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं मुनिसत्तमाः ।
भवत्यस्माज्जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषम् ।।१
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम् ।
महाद्युतिमतार्श्चैव तेजोऽयं सार्व्वलौकिकम् ।।२
सर्व्वात्मा सर्व्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः ।
सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ।।३
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।४
सूर्य्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते ।
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।।५
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम् ।
तत्र गच्छन्ति निर्व्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ।।६
क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः ।
मासाः सम्वत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ।।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! यह समस्त त्रैलोक्य आदित्य देव के ही मूल वाला है । इसी से यह सम्पूर्ण देव-असुर और मनुष्यों से युक्त जगत् समुत्पन्न हुआ करता है ।।१।। रुद्रदेव-उपेन्द्र-महेन्द्र विप्रेन्द्र तथा देवों का और महती द्युति वालों का यही सार्वलौकिक तेज होता है ।।२।। यह सबकी आत्मा है—सब लोकों का ईश है—देवों का भी देव और प्रजापति है । यह सूर्यदेव ही तीनों लोकों का मूल एवं परम दैवत है । ।।३।। अग्नि में अर्पित की हुई आहुति भली भाँति आदित्य देव को पहुँचा करती है । इस आदित्य देव से ही वर्षा हुआ करती है और वृष्टि से अन्न की समुत्पत्ति हुआ करती है तथा उस अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है ।।४।। इन सूर्यदेव से ही समस्त पदार्थों का उद्भव हुआ करता है तथा अन्त उन्हीं में सबका लय भी हो जाता है । पहिले भाव और अभाव ये दोनों

जो लोको के हैं वे आदित्य देव से ही निःसृत हुए थे अर्थात् लोको की उत्पत्ति और विनाश दोनो में कारण आदित्य ही है अन्य नही हैं ॥५॥ यही ध्यान करने वालो का ध्यान है और यही मोक्ष प्राप्त करने वालो का मोक्ष है। यही पर लोग निर्वाण को आया करते हैं और इन्ही देव से पुन पुन जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥६॥ क्षण मुहूर्त दिवस रात्रि पक्ष नित्यही-मास सम्वत्सर ऋतुएं और युग ये सभी आदित्य देव से ही हुआ करते है ॥७॥

अथादित्यादृते ह्येषा कालसख्या न विद्यते ।
कालादृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया ॥८
ऋतूनामविभागश्च तत्त पुष्पफल कुत ।
कुतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणोषधिगण कुत ॥९
अभावो व्यवहाराणा जन्तूना दिवि चेह च ।
जगत्प्रभावादिशते भास्कराद्वारितस्करात् ॥१०
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति ।
नावृष्ट्या परिधि धत्ते वारिणा दीप्यते रवि ॥११
वसन्ते कपिल सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभ ।
श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डु शरदि भास्कर ॥१२
हेमन्ते ताम्रवर्णाभ शिशिरे लोहितो रवि ।
इति वर्णा समाख्याता सूर्यस्य ऋतुसम्भवा ॥१३॥
ऋतुस्वभाववर्णैश्च सूर्य क्षेमसुभिक्षकृत् ।
अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमा ॥१४

बिना आदित्य देव के इन उक्त समयो की सख्या ही नही हो सकती है। काल की सख्या और अवसर के बिना न कोई नियम ही होता है और न अग्नि मे विहरण क्रिया ही होती है ॥८॥ जब ऋतुओ का ही कोई विभाग नही होगा तो पुष्प और फल भी कैसे समुत्पन्न होगे। ऋतु-विभाग न होने पर शस्य की निष्पत्ति भी सम्भव नही हो सकती है और तृण तथा औषधियो की भी उत्पत्ति भी नही हो सकती है ॥९॥ काल-विभाग के अभाव मे समस्त व्यवहारों का भी जो कि जीवो का इस

लोक मे तथा दिवलोक मे होते हैं अभाव हो जायगा। तस्करो के वारण करने वाले भास्वर देव से यह जगत् प्रभाव से प्रवेश किया करता है ॥१०॥ वृष्टि के न होने से सूर्य नही तपता है और अवृष्टि से परिशुष्क भी नही होता है। अवृष्टि से परिधि को धारण नही किया करता है। जल से ही रविदेव दीप्त हुआ करते हैं ॥११॥ वसन्त ऋतु मे सूर्य कपिल वर्ण वाले होते हैं—ग्रीष्म काल मे सुवर्ण के सदृश वर्ण वाले हुआ करते हैं। वर्षा ऋतु मे श्वेत वर्ण से युक्त तथा शरत्काल मे भास्वर पाण्डु वर्ण वाले हुआ करते हैं ॥१२॥ हेमन्त ऋतु मे ताम्रवर्ण की आभा वाले होते हैं और शिशिर मे रवि लोहित वर्ण वाले हुआ करते हैं। ये वर्ण सूर्यदेव के भिन्न २ ऋतुओं मे हुआ करते है ॥१३॥ ऋतुओ के स्वभाव के अनुसार जो वर्ण होते हैं उन्ही के द्वारा सूर्यदेव क्षेम और सुभिक्ष के करने वाले हुआ करते हैं। इसके अनन्तर हे द्विजगण ! आदित्य के सामान्य नामो को बतलाया जाता है ॥१४॥

द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः ।
आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः ॥१५
मार्त्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः ।
रविर्द्वादशभिस्तेषा ज्ञेयः सामान्यनामभिः ॥१६
विष्णुर्धाता भग. पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्य्यमा ।
विवस्वानंशुमास्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः स्मृतः ॥१७
इत्येते द्वादशादित्या पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः ।
उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासद्वादशभि. क्रमात् । १८
विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्य्यमा तथा ।
विवस्वान् ज्येष्ठमासे तु आषाढे चांशुमान् स्मृत. ॥१९
पर्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रोष्ठसंज्ञके ।
इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्त्तिके ॥२०
मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकर. ।
माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥२१

ये द्वादश ही नाम हैं किन्तु उनको पृथक् २ पूर्णतया कहते हैं— आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर—इन द्वादश नामों से रवि देव का ज्ञान किया जाता है जो कि सूर्य के सामान्य नाम हैं ॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य ये भी अन्य द्वादश सूर्यदेव के नाम हैं जिनसे सूर्य को कहा गया है ॥१७॥ ये द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित किये गये हैं। ये सदा क्रम से बारह नामों से बारह मासों में उदित हुआ करते हैं ॥१८॥ चैत्र मास में विष्णु तपा करते हैं वैशाख में अर्यमा नामधारी सूर्य तपते हैं। ज्येष्ठ मास में विवस्वान् और आषाढ मास में अंशुमान् ताप दिया करते हैं ॥१९॥ श्रावण मास में पर्जन्य और भाद्रपद में वरुण नाम वाले सूर्य तपा करते हैं। आश्विन मास में इन्द्र तथा कार्तिक में धाता नामक सूर्य तपते हैं ॥२०॥ मार्गशीर्ष में मित्र-पौष मास में पूषा दिवाकर तपते है। माघ मास में जो सूर्य ताप दिया करते हैं वह भग नाम वाले होते हैं और फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य लोकों को ताप दिया करते हैं ॥२१॥

शतैर्द्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दीप्यते सदा ।
दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्य्यमा ॥२२
द्वि सप्तकैर्विवस्वांस्तु अंशुमान् पञ्चभिस्त्रिभि ।
विवस्वानिव पर्जन्यो वरुणश्चार्य्यमा तथा ॥२३
मित्रद्भगवांस्त्वाष्टा सहस्रेण शतेन च ।
इन्द्रस्तु द्विगुणं षड्भिर्धातैकादशभि शतै ॥२४
सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभि शतै ।
उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्द्धन्ते रश्मयस्तथा ॥२५
दक्षिणोपक्रमे भूयो ह्रसन्त सूर्य्यरश्मय ।
एष रश्मिसहस्रन्तु सूर्य्यलोकादनुग्रहम् ॥२६
एव नाम्ना चतुर्विंशदेक एषा प्रकीर्त्तित ।
विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकीर्त्तितम् ॥२७॥

विष्णु नामधारी सूर्यदेव सदा बारह सौ किरणों के द्वारा ताप दिया करते हैं। एक हजार तीन सौ रश्मियों से अर्यमा दीप्त हुआ करते हैं ।।२२।। विवस्वान् चौदह सौ रश्मियों के द्वारा ताप देते हैं और अंशुमान् पन्द्रह सौ किरणों के द्वारा तपा करते हैं। विवस्वान् की ही भाँति पर्जन्य-वरुण-अर्यमा तपा करते हैं। मित्र की ही भाँति त्वष्टा शत सहस्र किरणों से दीप्त होते हैं और धाता ग्यारह सौ किरणों के द्वारा ताप दिया करते हैं ।।२०-२४।। मित्र नाम वाले सूर्यदेव एक सहस्र रश्मियों के द्वारा तथा पूषा नौ सौ किरणों से दीप्त हुआ करते हैं। उत्तर उपक्रम में सूर्य की रश्मियाँ बढ़ा करती हैं ।।२५।। फिर दक्षिणोपक्रम में अर्थात् दक्षिणायन में सूर्य की किरणें ह्रास को प्राप्त हुआ करती हैं। इस प्रकार से सहस्र रश्मियाँ सूर्यलोक से अनुग्रह किया करती हैं ।।२६।। इस रीति से यह एक ही सूर्यदेव चौबीस नामों के द्वारा कहे गये हैं। विस्तार से फिर इनके एक सहस्र नाम भी कहे गये हैं जो कि अन्य हैं ।।२७।।

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्यर्कं प्रजापते ।
तेषां भवति किं पुण्यं गतिश्च परमेश्वर ।।२८
शृणुध्वं मुनिशार्दूला: सारभूतं सनातनम् ।
अलं नामसहस्रेण पठस्वेव स्तवं शुभम् ।।२९
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च ।
तानि वः कीर्त्तयिष्यामि शृणुध्वं भास्करस्य वै ।।३०
विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः ।
लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः ।।३१
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा ।
तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ।।३२
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्व्वदेवनमस्कृतः ।
एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः ।।३३
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः ।
स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।३४

य एतेन द्विजश्रेष्ठा द्विसन्ध्येऽस्तमनोदये ।
स्तौति सूर्य्यं शुचिर्भूत्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥३५

मुनिगण ने कहा—हे प्रजापते ! जो लोग सूर्य के एक सहस्र नामों के द्वारा उनका स्तवन किया करते हैं हे परमेश्वर ! उन स्तोताओं का क्या पुण्य फल हुआ करता है और उनकी क्या गति होती है ? ॥२८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! अब आप लोग सनातन सारभूत का श्रवण कीजिए । इस प्रकार के शुभ स्तव का पाठ करते हुए ही परम कल्याण होता है फिर एक सहस्र नामों के द्वारा स्तवन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥२९॥ जो शुभ नाम परम गोपनीय हैं और पवित्र हैं उन भास्कर भगवान् के नाम हैं उनका ही मैं आप लोगों के सामने वर्णन करता हूँ । आप लोग उनका श्रवण करिए ॥३०॥ ये परम शुभ नाम ये हैं—विकर्त्तन, विवस्वान्, मार्त्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक, प्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्त्ता, हर्त्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, और सप्ताश्व वाहन ॥३१ ३२॥ गभस्ति हस्त, ब्रह्मा, सर्वदेवनमस्कृत—यह इक्कीस नामों का स्तव है जो रविदेव को सदा इष्ट होता है ॥३३॥ यह स्तव शरीर में आरोग्य को प्रदान करने वाला और धन वृद्धि तथा यश को देने वाला है । इसको स्तव राज तीनों लोकों में कहा जाता है और यह इसी नाम से प्रसिद्ध भी है ॥३४॥ हे श्रेष्ठ द्विजगणो ! इस स्तव के द्वारा दोनों सन्ध्याओं के समय में अर्थात् उदय काल और अस्त का वेला में पवित्र होकर सूर्यदेव की स्तुति किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ॥३५॥

मानसं वाचिकं वापि देहजं कर्म्मजं तथा ।
एकजप्येन तत्सर्व्वं नश्यत्यस्य मन्निधौ ॥३६
एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च ।
धूपमन्त्रार्घ्यमन्त्रश्च बलिमन्त्रस्तथैव च ॥३७
अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे ।
पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्व्वपापहरः शुभः ॥३८

तस्माद्यूय प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजाः ।
स्तुवीध्व वरदं देव सर्व्वकामफलप्रदम् ॥३६

चाहे कैसा भी पाप हो मानस हो, वाचिक हो, देहज हो या कर्मज हो इस स्तव के एक ही बार जाप करने से जो कि सूर्य की सन्निधि में स्थित होकर किया जावे तो वे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३६॥ एक बार इसका जप-होम-सन्ध्योपासन-धूप मन्त्र-अर्घ्य मन्त्र तथा बलि मन्त्र अन्न के प्रदान में, स्नान, प्रणिपात करने में और परिक्रमा करने में पूजित किया हुआ यह महामन्त्र परम शुभ होता है और सब पापों का हरण करने वाला है ॥३७-३८॥ हे द्विजगणो ! इस कारण से आप लोग प्रयत्न के साथ इस स्तव के द्वारा समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाले वरद सूर्यदेव की स्तुति किया करो ॥३६॥

२४—पञ्चतीर्थविधिवर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजा ।
यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च ॥१
मार्कण्डेयह्रदं गत्वानरश्चोदङ्मुखः शुचिः ।
निमज्जेत्तत्र वारांस्त्रीनिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२
संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम् ।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥३
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ।
स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥४
नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषीन् ।
तिलोदकेन मतिमान्पितॄश्चान्यांश्च तर्पयेत् ॥५
स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततोगच्छेच्छिवालयम् ।
प्रविश्य देवतागारं कृत्वा त त्रिः प्रदक्षिणम् ॥६
मूलमन्त्रेण मार्कण्डेयस्य चेश्वरम् ।
अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! इससे आगे हम अब पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन करते हैं—जो फल स्नान-दान और देवता के दर्शन से होता है वह सब बताया जाता है ॥१॥ मार्कण्डेय ह्रद मे जाकर मनुष्य को पवित्र होकर उत्तर की ओर मुख वाला होकर उस ह्रद मे निमज्जन करना चाहिए और तीन बार इस अधोवर्णित मन्त्र का उच्चारण करे ॥२॥ हे त्रिपुरासुर के नाशक ! हे भग के नेत्रों का हनन करने वाले ! इस संसार रूप सागर मे मन पापों से ग्रसित और ज्ञान से शून्य मेरी रक्षा करो। आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है ॥३॥ भगवान् शान्त स्वरूप और सब पापों के हरण करने वाले शिव के लिये मेरा नमस्कार है। हे देवेश्वर ! मैं यहा स्नान करता हूँ—मेरा पातक नष्ट हो जावें ॥४॥ नाभिमात्र जल मे स्नान करके विधि के साथ मतिमान् पुरुष को तिलोदक के द्वारा देवता ऋषि और अन्य पितृगणों का तर्पण करना चाहिए ॥५॥ स्नान करके तथा आचमन करके फिर शिवालय मे गमन करना चाहिए। उस देवता के स्थान मे प्रवेश करके वहाँ पर उनकी तीन प्रदक्षिणा करे ॥६॥ मार्कण्डेय के ईश्वर का मूल मन्त्र से भलीभाँति पूजन करे और हे विप्रगण ! अघोर मन्त्र के द्वारा प्रणाम करके शिव को प्रसन्न करना चाहिए ॥७॥

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण ।
त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते ॥८
मार्कण्डेयह्रदे त्वेवं स्नात्वा दृष्ट्वा च शङ्करम् ।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥९
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१०
इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः ।
शाङ्करं योगमासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥११
कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम् ॥१२

ओं नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे ।
महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते ॥१३
अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतन वट ।
न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥१४

हे त्रिलोचन ! हे शशि के भूषण वाले ! आपको नमस्कार है–आपकी सेवा मे प्रणाम है ! हे विरूपाक्ष ! हे महादेव ! आप मेरी रक्षा कीजिए। आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥८॥ इस प्रकार से मार्कण्डेय ह्रद मे स्नान करके तथा भगवान् शङ्कर का दर्शन करके मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञो के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया करता है ॥६॥ वह मानव सब पापो से निर्मुक्त होकर सीधा शिवलोक मे गमन किया करता है। वहाँ पर परम श्रेष्ठ भोगो का उपभोग जब तक समस्त भूतो का सम्प्लव होता है किया करता है ॥१०॥ फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर इस लोक मे जन्म ग्रहण करके वह बहुश्रुत विप्र होता है और यहाँ पर शाङ्कर योग को प्राप्त करके फिर मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥११॥ इसके उपरान्त कल्प वृक्ष के समीप मे जावे और उसकी तीन बार परिक्रमा करे। फिर परा भक्ति से निम्न कथित मन्त्र के द्वारा उस वट का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥१२॥ महा प्रलय के करने वाले व्यक्त रूपधारी महद्रस से उपविष्ट न्यग्रोध के लिये नमस्कार है ॥१ ॥ आप तो सदा कल्प मे भी अमर हैं। हे वट ! आप तो श्री हरि का आयतन हैं। हे न्यग्रोध ! आप मेरे पाप का हरण करो। हे कल्पवृक्ष ! आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥१४॥

भक्त्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पवटं नरः ।
सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वच इवोरगः ॥१५
छाया तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः ।
ब्रह्महत्या नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा ॥१६
दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसभूतं ब्रह्मतेजोमयं परम् ।
न्यग्रोधाकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः ॥१७

राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम् ।
तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥१८
वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥१९
दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ।
संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमां गतिम् ॥२०
प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
संकर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्यप्रसादयेत् ॥२१

भक्ति-भाव से प्रदक्षिणा करके तथा कल्प वट को नमस्कार करके मनुष्य सहसा पाप से छुटकारा पा जाया करता है जैसे जीर्ण त्वचा वाला सर्प अपनी केंचुली को तुरन्त ही छोड़ दिया करता है ॥१५॥ हे द्विजो ! उस कल्पवृक्ष की छाया में स्थित होकर मनुष्य ब्रह्म हत्या के पाप से भी मुक्त हो जाया करता है फिर छोटे मोटे अन्य पापों की तो बात ही क्या है ॥१६॥ हे द्विजो ! श्रीकृष्ण के अङ्ग से समुत्पन्न ब्रह्म तेज से परिपूर्ण न्यग्रोध की आकृति वाले परम विष्णु को प्रणाम करके मनुष्य राजसूय और अश्व इन दोनों यज्ञों के करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है और उससे भी अधिक फल प्राप्त कर लेता है। अपने वंश का उद्धार करके वह अन्त में विष्णु लोक को गमन कर जाता है ॥१७-१८॥ भगवान् श्रीकृष्ण के आगे स्थित रहने वाले वैनतेय (गरुड) को प्रणाम करके सब पापों से छुटकारा पाकर फिर विष्णु के पुर को गमन करता है ॥१९॥ वट और वैनतेय का दर्शन करके जो पुरुषोत्तम प्रभु सङ्कर्षण तथा सुभद्रा का दर्शन किया करता है वह परम गति को प्राप्त होजाता है ॥२०॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर में प्रवेश करके उनकी तीन प्रदक्षिणा करे फिर संकर्षण प्रभु को उनके मन्त्र के द्वारा भक्ति से अर्चना करके उनको प्रसन्न करना चाहिए ॥२१॥

नमस्ते हलधृग्राम नमस्ते मुशलायुध ।
नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल ॥२२

नमस्ते वलिना श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर।
प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मा कृष्णपूर्वज ॥२३
एव प्रसाद्य चानन्तमजेय त्रिदशार्चितम्।
कैलासशिखराकार चन्द्रात्कान्ततराननम् ॥२४
नीलवस्त्रधर देव फणाविकटमस्तकम्।
महाबल हलधर कुण्डलैकविभूषितम् ॥२५
रौहिणेय नरो भक्त्या लभेदभिमत फलम्
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोक स गच्छति ॥२६
आभूतसम्प्लव यावद्भुक्त्वा तत्र सुखं नरः।
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिना कुले ॥२७
ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारग।
ज्ञान तत्र समासाद्य मुक्ति प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२८

सङ्कर्षण भगवान् का मन्त्र यह है—हे बलधारियो मे परम श्रेष्ठ ! हे हल के धारण करने वाले ! हे राम ! हे मुसल का आयुध रखने वाले ! हे रेवती के स्वामिन् ! हे भक्तो पर कृपा करने वाले ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है और पुन नमस्कार है। हे धरणी को धारण करने वाले ! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे प्रलम्ब के दमन करने वाले ! हे कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता ! आपको मेरा नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिए ॥२२-२३॥ उन अनन्तर-अजेय-देवो के द्वारा पूजित कैलास के शिखर के आकार वाले और चन्द्र से भी अधिक सुन्दर मुख वाले—नीले वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले—फन के समान विकट मस्तक वाले—महान् बलधारी—कुण्डलो से भूषित—रौहिणेय भगवान् हलधर को इस प्रकार से-भक्तिभाव से प्रसन्न करके मनुष्य अपना अभिमत फल प्राप्त किया करता है और सब पापो से विमुक्त होकर अन्त मे वह विष्णुलोक मे गमन किया करता है ॥२४-२६॥ महा प्रलय के समय तक वहाँ पर वह मनुष्य सुखोपभोग करता है। फिर पुण्यो का क्षय होने पर यहाँ पर योगियो के कुल मे जो बहुत ही श्रेष्ठ होता है उसमे जन्म लेता है और परम श्रेष्ठ सब शास्त्रो का पारगामी ब्राह्मण होता है। उस जन्म में

परम ज्ञान की प्राप्ति करके वह परम दुर्लभ गति प्राप्त कर लेता है ॥२७-२८॥

एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षणः ।
द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ॥२९
द्विषट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम् ।
पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥३०
न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोपमाः ।
यां गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः ॥३१
तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम् ।
सपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥३२
जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन ।
जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन ॥३३
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर ।
जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद ॥३४
जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन ।
जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ॥३५

इस प्रकार से हलधर का अर्चन करके फिर विचक्षण पुरुष को द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्र से सुसमाहित होकर कृष्ण का पूजन करना चाहिए ॥२९॥ जो द्वादशाक्षर मन्त्र से भक्तिभाव के साथ पुरुषोत्तम प्रभु का पूजन किया करते हैं वे धीर पुरुष निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त किया करते है ॥३०॥ जिस परमोत्तम गति को द्वादशाक्षर मन्त्र में परायण भक्त लोग प्राप्त किया करते हैं हे विप्रो ! उस गति को सुरगण-योगीजन और महान् से भी महान् लोग भी प्राप्त नहीं किया करते हैं ॥३१॥ अतएव उसी द्वादशाक्षर मन्त्र के द्वारा जगत् के गुरु श्री कृष्ण का गन्ध-पुष्पादि से भली भाँति पूजन करके तथा प्रणिपात करके उनको प्रसन्न करना चाहिए ॥३२॥ फिर अधो लिखित पद्यों द्वारा प्रार्थना करे—हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! आपकी जय हो । हे सब अघों का विनाश करने वाले ! आपकी जय हो । हे चाणूर और केशी के

हनन करने वाले ! हे कंस के मारने वाले ! आपकी जय हो ॥३३॥ हे पद्म-पलाश के समान नेत्रों वाले ! हे चक्र तथा गदा के धारण करने वाले ! आपकी जय हो। हे नीलमेघ के सदृश वर्ण वाले ! आपतो सभी को सुख प्रदान करने वाले हैं, आपकी सदा जय हो। हे जगत् के पूज्य ! आपही इस संसार के विनाश करने वाले हैं और आप सबकी इच्छाओं के फल प्रदान करने वाले महा पुरुष हैं। हे लोकों के स्वामिन् ! हे नाथ ! आपकी सर्वदा जय हो ॥३४-३५॥

संसारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले ।
क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसप्लवे ॥३६
नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे ।
निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥३७
एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भक्तवत्सलम् ।
सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥३८
पीनांसं द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
महोरस्कं महाबाहुं पीतवस्त्रं शुभाननम् ॥३९
शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदभूषणम् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥४०
दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च ।
अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति वै द्विजा ॥४१
यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रकीर्तितम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४२

हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! यह संसार रूपी सागर परम घोर और सारशून्य है तथा अनेक दुःख ही इसमें फेना के समान भरे हुए हैं। यह संसार सागर क्रोध रूपी ग्राहों से परिपूर्ण है—महान् रौद्ररूप वाला और विषयों के जल से भरा पूरा है। अनेक रोगों की तरङ्गों से कलित और मोहरूपी भँवरों से परम दुस्तर है। ऐसे इस संसाररूपी सागर में मैं निमग्न हो रहा हूँ। हे पुरुषोत्तम ! आप मेरी रक्षा कीजिए ॥३६-३७॥ इस तरह से देवेश्वर भगवान् वरदान देने वाले श्री कृष्ण को प्रसन्न करे

जो कि अपने भक्तों पर परम कृपा करने वाले हैं—सब पापों के हरने वाले और सब मनोरथों के फल प्रदान करने वाले हैं ॥३८॥ परिपुष्ट स्कन्धों वाले, दो भुजाओं से युक्त, पद्मपत्रों के समान आयत नेत्रों वाले, महान् वक्षस्थल वाले, बड़ी भुजाओं से संयुत, पीतवर्ण के वस्त्र धारी, परम शुभ मुख वाले, शङ्ख-चक्र-गदा आयुधों को हाथों में धारण करने वाले, मुकुट एवं अङ्गदों से भूपित, व वनमाला धारी तथा सभी सुलक्षणों से युक्त श्री कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य दण्ड की भाँति भूमि में पड़कर उनको जो मनुष्य प्रणाम किया करता है हे द्विजगण ! वह सहस्रों अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त किया करता है ॥३६-४१॥ जो पुण्य फल सभी तीर्थों में जाकर स्नान तथा दान करने से प्राप्त होना बताया गया है उस सम्पूर्ण पुण्य फल को मनुष्य केवल श्री कृष्ण का दर्शन कर तथा उनको प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४२॥

यत्फल सर्वरत्नाद्यै रिष्टे बहुसुवर्णके ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४३
यत्फल सर्ववेदेषु सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
तत्फल समवाप्नोति नरः कृष्ण प्रणम्य च ॥४४
यत्फल सर्वदानेन यमेन नियमेन च ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४५
तपोभिर्विविधैरुग्रैर्यत्फल समुदाहृतम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४६
यत्फल ब्रह्मचर्येण सम्यक्चीर्णेन तत्कृतम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४७
यत्फल च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिन ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४८
यत्फल वनवासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥४९

जो पुण्यफल समस्त रत्नादि से युक्त बहुत से सुवर्ण के दान करने पर मिला करता है उसी फल को मनुष्य श्री कृष्ण भगवान् का दर्शन

प्राप्त करके तथा प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४३॥ जो फल समस्त वेदों में बताया गया है और जो सभी यज्ञों के यजन करने से प्राप्त हुआ करता है उसी फल को मनुष्य श्री कृष्ण को प्रणिपात करके ही प्राप्त कर लिया करता है ॥४४॥ जो पुण्य फल सब प्रकार के दानों के करने से, यमों और नियमों के परिपालन से प्राप्त होता है वह सभी फल श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम करके भक्त मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥४५॥ जो फल अनेक प्रकार के तपों के द्वारा प्राप्त होना बतलाया गया है मनुष्य उसी सम्पूर्ण फल को श्री कृष्ण का दर्शन करके और उसको भक्तिभाव से प्रणाम करके ही प्राप्त कर लिया करता है। ॥४६॥ जो फल भली भाँति ब्रह्मचर्य व्रत के परिपालन से होता है उसको केवल श्री कृष्ण भगवान् का दर्शन करके तथा दण्डवत्-प्रणाम करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥४७॥ शास्त्र में बताये हुए आचार के अनुसार रहने वाला गृहस्थाश्रमी को जो फल मिला करता है उसी फल को श्री कृष्ण के दर्शन और उनको प्रणाम करने से मनुष्य पा लिया करता है। ४८॥ वानप्रस्थाश्रमी को जो फल वन में ही नियम करने से मिलता है उसको मनुष्य श्री कृष्ण भगवान् का दर्शन तथा प्रणाम करके प्राप्त कर लिया करता है। श्री कृष्ण के दर्शन और प्रणाम करने का महान् उत्तम फल होता है ॥४९॥

संन्यासेन यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम् ।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥५०
किं चात्र बहुनोक्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः ।
दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥५१
पापैर्विमुक्तः शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवैः ।
श्रिया परमया युक्तः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥५२
सर्वकामसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा ।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥५३
तत्र कल्पशतं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।
गन्धर्वाप्सरसैः सार्धं यथा विष्णुरनुर्भुजः ॥५४

च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो विप्राणा प्रवरे कुले ।
सर्वज्ञ सर्ववेदी च जायते गतमत्सर ॥५५
स्वधर्मनिरत. शान्तो दाता भूतहिते रत ।
आसाद्य वैष्णव ज्ञान ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥५६

यथा विधि सन्यास ग्रहण करने से जो फल बताया गया है उसी फल को भक्त मनुष्य श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणाम से प्राप्त कर लिया करता है उसे सन्यास की आवश्यकता ही नही हुआ करती है। ॥५०॥ हे द्विजगणो ! भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन तथा प्रणिपात करने के महात्म्य का अत्यधिक वर्णन करने की क्या आवश्यकता है। ससार मे रहकर परम दुर्लभ जो मोक्ष है उसको भी श्री कृष्ण का भक्त भक्ति के द्वारा उनका दर्शन कर तथा उनको प्रणाम करके आसानी से ही प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ श्री कृष्ण का भक्त मनुष्य करोडो कल्पो मे सचित किये हुए पापो से विमुक्त होकर विशुद्ध आत्मा होकर परमाधिक श्री से समन्वित हो जाता है तथा सभी सद्गुणो से भी समुदित हो जाया करता है ॥५२॥ सब कामो से समृद्ध तथा सुवर्चस वाले विमान के द्वारा अपने तीन कुलो का उद्धार करके सीधा विष्णुपुर को गमन किया करता है ॥५३॥ वहा पर सौ कल्प पर्यन्त परम सुन्दर भोगो का उपभोग करके चार भुजाओ वाले विष्णु के समान स्वरूप वाला गन्धर्वों तथा अप्सराओ के साथ आनन्द लाभ लिया करता है ॥५४॥ वहा से जब च्युत होता है तो यहाँ पर वह किसी विप्रो के परम श्रेष्ठ कुल मे जन्म ग्रहण करता है और वह सर्वज्ञ, सर्ववेदी तथा मात्सर्य से रहित होता है ॥५५॥ वह यहाँ पर अपने धर्म मे निरत रहने वाला, परमशान्त, दानशील, प्राणियो के हित मे रति रखने वाला होता है। यहाँ पर वैष्णव ज्ञान का लाभ प्राप्त कर फिर मोक्ष को प्राप्त किया करता है। इस तरह से श्री कृष्ण के भक्त को भुक्ति और मुक्ति दोनो ही प्राप्त हो जाती हैं ॥५६॥

ततः सपूज्य मन्त्रेण सुभद्रा भक्तवत्सलाम् ।
प्रसादयेत्ततो विप्रा प्रणिपत्य कृताञ्जलि ॥५७

नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे ।
त्राहि मा पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥५८
एव प्रसाद्य ताँ देवी जगद्धात्री जगद्धिताम् ।
बलदेवस्य भगिनी सुभद्रा वरदा शिवाम् ॥५६
कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुर व्रजेत् ।
आभूतसम्प्लव यावत्क्रीडित्वा तत्र देववत् ॥६०
इह मानुषता प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् ।
प्राप्य योग हरेस्तत्र मोक्ष च लभते ध्रुवम् ॥६१

इसके उपरान्त मन्त्र के द्वारा भक्तो पर प्यार करने वाली सुभद्रा का अर्चन करके हे विप्रो ! प्रणिपात करके कृताञ्जलि होकर सुभद्रादेवी को प्रसन्न करना चाहिए ॥५७॥ हे सर्वत्र गमन करने वाली देवि ! आपको नमस्कार है। हे शुभ और सौख्य का प्रदान करने वाली ! आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है। हे पद्म दल के समान सुन्दर नेत्रो वाली ! हे कात्यायनि ! आप मेरा परित्राण करिए तथा मेरा आपकी सेवा में प्रणाम है ॥५८॥ इस प्रकार से जगत् की धात्री तथा जगत् के हित करने वाली श्री बलदेवजी की भगिनी वरदा एव शिवा सुभद्राजी को प्रसन्न करके अन्त मे वह मनुष्य इच्छानुकूल गमन करने वाले विमान के द्वारा विष्णुपुर का गमन किया करता है। वहाँ पर देवो के सामने महा प्रलय होने के समय तक आनन्द का उपभोग करके पुन पुण्यो का उपभोगो द्वारा क्षय हो जाने पर यहाँ मनुष्य जन्म प्राप्त करता है तथा वेदज्ञ ब्राह्मण होता है। वहाँ हरि का योग प्राप्त करके निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥५६ ६१॥

— ॐ —

२५—नर्रासहमाहात्म्यवर्णन

एव दृष्ट्वा बल कृष्ण सुभद्रा प्रणिपत्य च ।
धर्म चार्थं च काम मोक्ष च लभते ध्रुवम् ॥१

निष्क्रम्य देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
प्रणम्याऽऽयतन पश्चाद्व्रजेत्तत्र समाहितः ॥२
इन्द्रनीलमयो विष्णुर्यत्राऽऽस्ते वालुकावृत ।
अन्तर्धानगत नत्वा ततो विष्णुपुर व्रजेत् ॥३
सर्वदेवमयो योऽसौ हतवानसुरोत्तमम् ।
स आस्ते तत्र भो विप्रा. सिंहार्धकृतविग्रहः ॥४
भक्त्या दृष्ट्वा तु त देव प्रणम्य नरकेसरीम् ।
मुच्यते पातकैर्मर्त्य. समस्तैर्नात्र सशयः ॥५
नरसिंहस्य ये भक्ता भवन्ति भुवि मानवाः ।
न तेषा दुष्कृत किंचित्फल स्याद्यद्यदीप्सितम् ॥६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरसिंह समाश्रयेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा फल यस्मात्प्रयच्छति ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से बलराम-श्रीकृष्ण और सुभद्रा को प्रणाम करके मनुष्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष को निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ देवमन्दिर से निकल कर मनुष्य कृत-कृत्य होजाता है । फिर उस देवायतन को प्रणाम करके सावधान होकर गमन करना चाहिए ॥२॥ जहाँ पर इन्द्रनीलमय भगवान् विष्णु वालुका से समावृत्त हैं उन अन्तर्धान को प्राप्त हुए विष्णु को नमन करके मनुष्य विष्णुपुर को गमन करता है ॥३॥ हे विप्रो ! सर्वदेवो से परिपूर्ण जिसने असुरो उत्तम का हनन किया था वही आधे सिंह का शरीर धारण करने वाले भगवान् नृसिंह वहाँ पर विद्यमान हैं ॥४॥ भक्तिभाव से उन देव का दर्शन करके और नरकेसरी भगवान् को प्रणाम करे । मनुष्य उसी समय मे सब पातको से मुक्त हो जाता है।इसमे लेश मात्र भी सशय नही है ॥५॥ उस भूमण्ल मे जो मानव भगवान् नरसिंह के भक्त होते हैं उनको कोई भी दुष्कृत शेष नहीं रहा करता है और जो भी अभीप्सित फल होता है वह प्राप्त होजाया करता है ॥६॥ इस लिये सब प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा भगवान् नरसिंह देव का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए

जिनसे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का फल प्राप्त हो जाया करता ॥७॥

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं भुवि दुर्लभम् ।
यथा कथयसे देव तेन नो विस्मयो महान् ॥८
प्रभावं तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥९
यथा प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः ।
भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते ॥१०
प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यत्र सिद्धयः ।
ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह ॥११
शृणुध्वं तस्य भो विप्राः प्रभावं गदतो मम ।
अजितस्याप्रमेयस्य भुक्तिमुक्तिप्रदस्य च ॥१२
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समस्तास्तस्य भो द्विजाः ।
सिंहार्धकृतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समासतः ॥१३
याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते देवमानुषाः ।
प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिध्यन्ति नात्र संशयः ॥१४

मुनिगण ने कहा—हे देव ! इस भूमण्डल में परम दुर्लभ और सुख देने वाला भगवान् नरसिंह का माहात्म्य है जैसाकि आप वर्णन कर रहे हैं । इससे हमको महान् विस्मय हो रहा है ॥८॥ हे जगत् के स्वामिन् ! उन देव का प्रभाव हम लोग विस्तार पूर्वक श्रवण करने की अभिलाषा करते हैं । आप कृपया हमको बतलाइये । हमारे मन में इसका बड़ा भारी कौतूहल होरहा है ॥९॥ जिस विधि से यह महान् बलवान् देव नरसिंह प्रसन्न हो जावें उसी विधान को आप भक्तों के उपकार के लिये बतलाइये । हे देव ! आपकी सेवा में हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥१०॥ नरसिंह भगवान् के प्रसाद से यहाँ पर जो सिद्धियाँ होती हैं उन सबको भी आप बतलाइये । हमारे ऊपर प्रसन्नता कीजिए हे पितामह ! आप परम कृपालु हैं ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे विप्रगणो ! अब मैं बतलाता हूँ आप कृपा करके उन देव नरसिंह का जो प्रभाव होता है

उसका श्रवण करिए । वह देव अजित हैं।अप्रेय हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं ॥१२॥ हे द्विजो ! कौन ऐसा शक्तिशाली पुरुष है जो उनके समस्त गुण-गणों का वर्णन कर सके । अर्थात् ऐसी शक्ति वाला कोई भी नहीं है । अतएव आधे सिंह का शरीर धारण करने वाले उन नरसिंह देव के गुणों को हम अतीव संक्षेप में बतलाते हैं ॥१३॥ देव और मानव जो भी कोई सिद्धियाँ के विषय में यहाँ पर श्रवण किया करते हैं अर्थात् जितनी भी कुल सिद्धियाँ हैं उन नरसिंहदेव के प्रसाद से वे सभी सिद्ध होजाया करती हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१४॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले दिक्ष तोये पुरे नगे ।
प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यव्याहता गतिः ॥१५
असाध्य तस्य देवस्य नास्त्यत्र सचराचरे ।
नरसिंहस्य भो विप्रा सदा भक्तानुकम्पिनः ॥१६
विधान तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम् ।
येन प्रसीदेद्वयासौ सिंहार्धकृतविग्रहः ॥१७
शृणुध्व मुनिशार्दूला. कल्पराज सनातनम् ।
नरसिंहस्य तत्त्व च यन्न ज्ञात सुरासुरै. ॥१८
शाकयावकमूलैस्तु फलपिण्या कसक्तुकै ।
पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा वर्तयेत्साधकोत्तमः ॥१९
कौशकौपीनवासाश्च ध्यानयुक्तो जितेन्द्रिय. ।
अरण्ये विजने देशे पर्वते सिन्धुसगमे ॥२०
ऊपरे सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा ।
प्रतिष्ठाप्य स्वय वाऽपि पूजा कृत्वा विधानतः ॥२१

उन नरसिंह देव के प्रसाद से स्वर्ग में, मर्त्यलोक में, पाताल में, सभी दिशा-विदिशाओं में, जल में, पुर में, पर्वत में, मनुष्य की गति अव्याहत होजाया करती है अर्थात् वह सभी जगह गमन कर लिया करता है और उसकी कहीं पर भी रुकावट नहीं हुआ करती है ॥१५॥ इस चराचर में उन देव को कुछ भी असाध्य नहीं है । भगवान् नरसिंह

हे विप्रो ! सर्वदा अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले हैं ॥१६॥ भक्तों का उपकार करने वाले उन देव का विधान मैं बतलाऊँगा जिसके द्वारा आधे सिंह का विग्रह धारण करने वाले नरसिंह प्रभु अति प्रसन्न होजाया करते हैं ॥१७॥ हे मुनिशार्दूलो ! आप लोग सनातन कल्प राज का श्रवण कीजिए। वह नरसिंह प्रभु का तत्त्व है जिसको कि सुरों तथा असुरों में किसी ने भी जाना है ॥१८॥ शाक यावक-मूल फल-पिण्याक-सत्तुआ और यव के भक्षण के द्वारा हे विप्रेन्द्रो ! उत्तम साधना करने वाले को वर्त्तन करना चाहिए ॥१६॥ कोश और कौपीन का वस्त्र धारण करे-सदा ध्यान में युक्त रहे और इन्द्रियों को जीतकर रक्खे। चाहे अरण्य में या किसी वियावान देश में-पर्वत पर या दो सरिताओं के सङ्गम के स्थल में-ऊपर में अथवा किसी सिद्ध क्षेत्र में तथा नरसिंह के आश्रम में अपने आपकी स्थिति करे और वहाँ प्रतिष्ठापित करके विधि-विधान से अभ्यर्चन करना चाहिए ॥२०-२१॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपुंगवाः ।
जपेल्लक्षाणि वै विंशन्मनसा संयतेन्द्रियः ॥२२
उपपातकयुक्तश्च महापातकसंयुत. ।
मुक्तो भवत्ततो विप्रा साधको नात्र संशय ॥२३
कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र नरसिंह प्रपूजयेत् ।
पुष्पगन्धादिभिर्धूपैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥२४
कर्पूरचन्दनाक्तानि जातीपुष्पाणि मस्तके ।
प्रदद्यान्नरसिंहस्य तत सिद्धिं प्रजायते ॥२५
भगवान्सर्वकार्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते ।
तेज सोढुं न शक्ता स्युर्ब्रह्मरुद्रादय सुरा ॥२६
किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषा. ।
विद्याधरा यक्षगणा सकिंनरमहोरगा ॥२७
मन्त्रं यानासुरान्हन्तुं जपन्त्येवेऽन्यसाधका. ।
ते सर्वे प्रलयं यान्ति दृष्ट्वाऽनित्याग्निवर्चस. ॥२८

हे मुनिपुङ्गवो ! माघ की कृष्ण पक्ष की द्वादशी के दिन उपवास करें और तथा इन्द्रियों वाला मन से योग मन्त्र जाप करे ॥२२॥ उप पातकों से युक्त और महापातकों से युक्त मनुष्य जो साधना करने वाला है वह मुक्त होजाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२३॥ यहाँ पर प्रदक्षिणा करके नरसिंह भगवान् का पूजन करना चाहिए। पुष्प-गन्ध धूप आदि से अर्चन करके प्रभु के आगे मस्तक भूमि में टेककर प्रणाम करना चाहिए ॥२४॥ इसके अनन्तर भगवान् नरसिंह के मस्तक में कर्पूर और चन्दन से युक्त जाती पुष्पों का अर्पित करे—ऐसा करने से सिद्धि हो जाया करती है। २५॥ नरसिंह भगवान् समस्त कार्यों में कहीं पर भी दृश्यमान नहीं होते हैं। उनका इतना प्रबल तेज होता है कि उसको ब्रह्मा और रुद्र आदि कोई भी गुरु सहन करने में समर्थ नहीं हुआ करते हैं ॥२६॥ फिर लोक में दानवों की तो बात ही क्या है। सिद्ध-गन्धर्व-मनुष्य-विद्याधर-यक्षगण-किन्नर-महोरग तथा अन्य साधक जिन असुरों का हनन करने के लिये नरसिंह देव के मन्त्र का जप किया करते हैं। इस अग्नि के समान वर्चस वालों को देख कर ही वे सब प्रलय को प्राप्त होजाया करते हैं ॥२७-२८॥

सकृज्जप्तं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम् ।
द्विर्जप्तं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात् ॥२६
गन्धर्वा किंनरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः ।
भूता पिशाचा रक्षांसि ये चान्ये परिपन्थिनः ॥३०
त्रिर्जप्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासरैः ।
द्वादशाभ्यन्तरे चैव योजनानां द्विजोत्तमाः ॥३१
रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः ।
ततो गत्वा बिलद्वारमुपोष्य रजनीत्रयम् ॥३२
पलाशकाष्ठैः प्रज्वाल्य भगवन्तं हुताशनम् ।
पलाशसमिधस्तत्र जुहुयात्त्रिमधुप्लुताः ॥३३
द्वे शते द्विजशार्दूला वषट्कारेण साधकः ।
ततो विवरद्वारं तु प्रकटं जायते क्षणात् ॥३४

ततो विशेत् निःशङ्कं कवची विवरं बुधः ।
गच्छतः सकटं तस्य तमोमोहश्च नश्यति ॥३५

एक बार भी इनके कवच का जप सब उपद्रवों से रक्षा किया करता है। यदि दो बार इनके कवच का जाप किया जावे जोकि परम दिव्य है देव और दानवों से रक्षा किया करता है ॥२६॥ गन्धर्व, किन्नर यक्ष, विद्याधर, महोरग, भूत, पिशाच, राक्षस और जो अन्य भी परिपन्थी होते हैं इनसे सुरक्षा पाने के लिये तीन बार इस दिव्य कवच का जाप करे जोकि सुरासुरों के द्वारा अभेद्य है। हे द्विजोत्तमो! द्वादश योजनों के अन्दर उसकी महान् बलवान भगवान् नरसिंहदेव रक्षा किया करते हैं। इसके पश्चात् वहा से किसी बिल के द्वार पर जाकर तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करना चाहिए ॥३०-३२॥ ढाक के काष्ठों से भगवान् हुताशन का प्रज्वलित करके त्रिमधु से युक्त करके उस अग्नि मे पलाश की समिधाओं की आहुतियाँ देनी चाहिए ॥३३॥ हे द्विजशार्दूलो! साधक को वषट्कार से सौ आहुतियाँ देनी चाहिए। इसके पश्चात उसी क्षण मे विवर का द्वार प्रकट हो जाता है ॥३४॥ इसके अनन्तर कवच वाला बुध निःशङ्क होकर उस विवर मे प्रवेश करे। गमन करने वाले उसका सब सङ्कट और तमोमोह नष्ट हो जाया करता है ॥३५॥

राजमार्ग. सुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि(श्चि)तः ।
नरसिंहं स्मरंस्तत्र पाताल विशते द्विजा. ॥३६
गत्वा तत्र जपेत्तस्य नरसिंहाख्यमव्ययम् ।
तत. स्त्रीणा सहस्राणि वीणावादनकर्मणाम् ॥३७
निर्गच्छन्ति पुरो विप्रा. स्वागत ता वदन्ति च ।
प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा साधकेश्वरम् ॥३८
ततो रसायन दिव्य पाययन्ति द्विजोत्तमाः ।
पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबल. ॥३९
मोदते सह कन्याभिर्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
भिन्नदेहो वासुदेवे लीयते नात्र संशयः ॥४०

यदा न रोचते वासस्तस्मान्निर्गच्छते पुनः ।
पट्ट शल च खड्ग च रोचना च मणि तथा ॥४१
रस रसायन चैव पादुकाञ्जनमेव च ।
कृष्णाजिन मुनिश्रेष्ठा गुटिका च मनोहराम् ॥४२
कमण्डलु चाक्षसूत्र यष्टि सञ्जीवनी तथा ।
सिद्धविद्या च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकेश्वर. ॥४३

उसमे भ्रमरो से अन्वित गज मार्ग अत्यन्त सुविस्तीर्ण दिखलाई दिया करता है। हे द्विजो! वहाँ पर भगवान् नरसिंह का स्मरण करता हुआ पाताल में प्रवेश किया करता है ॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक तत्व का जाप करना चाहिए। इसके उपरान्त वीणा के वादन करने वालो की सहस्रो स्त्रियाँ आगे निकलती हैं और हे विप्रो! वे स्वागत कहा करती हैं। वे स्त्रियाँ उस साधक का स्वागत करती हुई उसको हाथ से पकड कर अन्दर प्रवेश कराया करती हैं ॥३७-३८॥ हे द्विजोत्तमो! इसके अनन्तर वे उस साधना करने वाले पुरुष को परम दिव्य रसायन का पान कराती है। उसके पान करते ही वह साधक दिव्यदेह वाला महान् बलवान होता है ॥३६॥ वहाँ पर वह जब तक भूतो का संप्लव होता है जब तक कन्याओं के साथ क्रीडा किया करता है। फिर मित्रदेह वाला वह वासुदेव मे लीन हो जाता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥४०॥ जब इसको वहाँ पर निवास पसन्द नही होता है तो यह वहाँ से पुन निकल कर चला जाता है। पट्ट-शूल खड्ग-रोचना-मणि-रस-रसायन- पादुकाञ्जन -कृष्णजिन और हे मुनिश्रेष्ठो! मनोहरगुटिका, कमण्डलु, अक्षसूत्र, यष्टि, सञ्जीवनी, सिद्धविद्या और शास्त्रो को यह साधकेश्वर सबको ग्रहण कर लेता है ॥४१-४३॥

ज्वलद्वह्निस्फुलिङ्गोभिवेष्टित त्रिशिख हृदि ।
सकृन्न्यस्त दहेत्सर्व वृजिन जन्मकोटिजम् ॥४४
विषे न्यस्त विष हन्यात्कुष्ठ हन्यात्तनो स्थितम् ।
स्वदेहे भ्रूणहत्यादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति ॥४५

महाग्रहग्रहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत् ।
हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दारुणा ग्रहाः ॥४६
बालानां कण्ठके बद्धं रक्षा भवति नित्यशः ।
गण्डपिण्डकलूताना नाशनं कुरुते ध्रुवम् ॥४७
व्याधिजाते समिद्भिश्च घृतक्षीरेण होमयेत् ।
त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत् ॥४८
असाध्यं तु न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यां या कामयते सिद्धि तां तां प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥४९

जलती हुई वह्नि के स्फुलिङ्गो की ऊर्मियो से वेष्टित त्रिशिख को हृदय मे एक बार विन्यस्त करके करोडो जन्मो में समुत्पन्न सम्पूर्ण पापों को दग्ध कर देना चाहिए ॥४४॥ विष मे न्यस्त विष का हनन कर देवे और शरीर मे स्थित कुष्ठ का हनन कर देना चाहिए। अपने देह मे भ्रूण हत्यादि करके दिव्यतेज से शुद्ध होता है ॥४५॥ महाग्रहो मे गृहीतो मे ज्वलमान का विचिन्तन करना चाहिए। इसके अनन्तर हृदन्त मे शीघ्र ही दारुणग्रह नष्ट हो जाते है ॥४६॥ छोटे बालको के कण्ठ मे बद्ध होकर नित्य ही रक्षा होती है। गण्ड-पिण्डका और लूताओ का विनाश निश्चित रूप से कर देता है ॥४७॥ व्याधि के समुत्पन्न होने पर घृत और क्षीर के द्वारा समिधाओ से होम करना चाहिए। एक मास पर्यन्त तीनो सन्ध्याओ के समय मे करने से समस्त रोगो का विनाश कर देता है ॥४८॥ इस चराचर त्रैलोक्य में कुछ भी ऐसा मैं नही देखता हूँ जो साध्य न हो। जिस-जिस सिद्धि की कामना किया करता है उसी-उसी सिद्धि की प्राप्ति निश्चित रूप से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥४९॥

अष्टोत्तरशत त्वेके पूजित्वा मृगाधिपम् ।
मृत्तिकाः सप्त वल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे ॥५०
रक्तचन्दनसमिश्रा गवां क्षीरेण लोडयेत् ।
सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन षडङ्गुलाम् ॥५१

लिम्पेत्तथा भूर्जपत्रे रोचनया समालिखेत् ।
नरसिंहस्य कण्ठे तु बद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित् ॥५२
जपेत्सख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये ।
यावत्सप्ताहमात्र तु जपेत्संयमितेन्द्रियः ॥५३
जलाकीर्णा मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी ।
अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत् ॥५४
जप्त्वा चाष्टशत तत्त्वं वर्षन्त विनिवारयेत् ।
तमेव पिञ्जके बद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः ॥५५
महावातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नात्र संशयः ।
पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस(ज)प्तेन वारिणा ॥५६

कुछ लोग एक सौ आठ भृगाधिप का पूजन सात मृत्तिका वल्मीक (बाँबी) में—श्मशान में और चतुष्पथ में ग्रहण करके रक्त चन्दन से भलीभाँति मिश्रित करे और गौ के क्षीर से लोडन करना चाहिए। फिर छै अंगुल प्रमाण वाली सिंह की प्रतिमा का निर्माण करे ॥५०-५१॥ तथा भोजपत्र में लिम्पन करे और रोचना से लेखन करना चाहिए। मन्त्र के ज्ञाता पुरुष को उसे नरसिंह भगवान् के कण्ठ में बद्ध कर देना चाहिए ॥५२॥ जलाशय में पूजन करके बिना ही सख्या के उसका जाप करे। सब इन्द्रियों का सयम में रखने वाले साधक पुरुष को एक सप्ताह भर इसका जप करना चाहिए ॥५३॥ एक मुहूर्त मात्र समय मे ही सम्पूर्ण मेदिनी जल से समाकीर्ण हो जाती है। अथवा किसी सूखे हुए वृक्ष के अग्रभाग मे नरसिंह देव का यजन करना चाहिए ॥५४॥ आठ सौ तत्त्व का जाप करके वर्षते हुए का निवारण कर देवे। इस प्रकार से उसको एक पिञ्जक मे बाँधकर उत्तम साधक को उसे घुमाना चाहिए ॥५५॥ एक मुहूर्त मात्र समय मे ही महान् वात आ जाया करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है। और फिर इसको शीघ्र ही सात बार जपे हुए जल से धारण करे ॥५६॥

अथ ता प्रतिमा द्वारि निखनेद्यस्य साधकः ।
गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते चैव शान्तिद ॥५७

तस्मात्त मुनिशार्दूला भक्त्या सपूजयेत्सदा ।
मृगराज महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८
विमुक्त सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति ।
ब्राह्मणा. क्षत्रिया वैश्या. स्त्रिय शूद्रान्त्यजातय. ॥५६
सपूज्य त सुरश्रेष्ठ भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ।
मुच्यन्ते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ॥६०
सपूज्य त सुरश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्
देवत्वममरेशत्व गन्धर्वत्व च भो द्विजा. ॥६१
यक्षविद्याधरत्व च तथाऽन्यञ्चाभिवाञ्छितम् ।
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा सपूज्य नरकेसरीम् ॥६२
प्राप्नुवन्ति नरा राज्य स्वर्ग मोक्ष च दुर्लभम् ।
नरसिंह नरो दृष्ट्वा लभेदभिमत फलम् ॥६३

साधक जिसके द्वार पर इस प्रतिमा को गाड देवे तो उसका गोत्र का एकदम उत्साह हो जाया करता है और उसके उद्धृत करने पर शान्ति देने वाला हुआ करता है अर्थात् वह प्रतिमा भूमि मे रहेगी जब तक उसके वश का नाश होता ही रहेगा और उसे निकाल लेने पर ही शान्ति हुआ करती है ॥५७॥ इस कारण से हे मुनि शार्दूलो ! उन महान् वीर्य वाले सब कामो के फल को प्रदान करने वाले मृगरज का सदा ही पूजन करना चाहिए ॥५८॥ वह पूजक पुरुष सब पापो से विमुक्त होकर सीधा विष्णु भगवान् के लोक को गमन किया करता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और स्त्रियाँ तथा अन्त्यज सभी भक्तिभाव से सिंह के शरीर का धारण करने वाले उन सुरो मे श्रेष्ठ का भली भाँति पूजन करके करोडो जन्मो मे समुत्पन्न होने वाले अशुभ दुःखो से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥५६-६०॥ उन सुरो मे परम श्रेष्ठ देव का अभ्यर्चन करके मनुष्य अपने अभिवाञ्छित फल की प्राप्ति किया करते हैं । देवत्व-अमरत्व-अमरो का ईशत्व-गन्धर्वत्व-यक्ष तथा विद्याधरत्व और हे द्विज-गणो ! इनके अतिरिक्त जो कुछ भी अन्य अभीष्ट मनोरथ होता है उसको भी भगवान् नरकेसरी का दर्शन करके स्तवन करके-नमस्कार करके और

भली विधि से पूजन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करते हैं। राज्य-स्वर्गवास और परम दुर्लभ मोक्ष को भी मनुष्य नरसिंह भगवान् का दर्शन करके अभिमत फल का लाभ प्राप्त किया करता है ॥६१-६३॥

निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।
सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुःपरम् ॥६४
मुच्यते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ।
संग्रामे संकटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते ॥६५
कान्तारे प्राणसंदेहे विषवह्निजलेषु च ।
राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६
स्मृत्वा तं पुरुषः सर्वे राजग्रामैर्विमुच्यते ।
सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येति महत्तरम् ॥६७
तथा सद्दर्शने तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवाः ।
गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८
नरसिंहे प्रसन्ने तु प्राप्नोत्यन्यांश्च वाञ्छितान् ।
यान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम् ॥६९
तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०

वह मनुष्य फिर सभी पापों से छूटकर विष्णुलोक में सिंह रूप धारी देव का भक्तिभाव से दर्शन प्राप्त कर लेता है वह करोड़ों जन्मों में उत्पन्न हुए अशुभ दुःखों से विमुक्त हो जाता है। संग्राम में-सङ्कट में-दुर्ग में चोर तथा व्याघ्रादि से पीडित होने के समय में गहन वन में प्राणों के सन्देह के अवसर पर-विष,वह्नि और जल में- राजा आदि से तथा समुद्रों से और ग्रह तथा रोग आदि से पीडित होने पर पुरुष उन भगवान् का स्मरण करके ही सभी राजग्रामों से विमुक्त हो जाया करता है। जिस प्रकार से सूर्य्य के उदय होने पर महान् से भी महान् अन्धकार विनष्ट हो जाता है ठीक उसी भाँति से उन प्रभु के दर्शन होने पर भी प्रकार के उपद्रव विनाश को प्राप्त होते हैं। गुटिका अञ्जन-

पातालाञ्जन-पादुकाएँ तथा रसायन ये सभी भगवान् नरसिंहदेव के प्रसन्न होने पर प्राप्त हो जाया करते है और अन्य भी वाञ्छितों को प्राप्त कर लेता है। नर केसरी का ध्यान करते हुए जिन-जिन मनोरथों को मनुष्य किया करता है उन्ही-उन कामनाओं को मनुष्य प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उन देवेश्वर का दर्शन—भक्ति से अर्चन और प्रणाम करके बहुत अधिक फल प्राप्त किया करता है ॥६४-७०॥

दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत् ।
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१
सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः ।
सौवर्णेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ॥७२
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा ।
तरुणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना ॥७३
दिव्यस्त्रीशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी ॥७४
स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकं व्रजेश्वरः ।
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५
गन्धर्वैरप्सरैर्युक्तः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् ।
मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ६
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे योगिनां कुले ।
चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७

दश अश्वमेध यज्ञों के जो फल होते है उससे भी दश गुना फल भगवान् नरसिंह के दर्शन आदि से प्राप्त हुआ करता है। भगवान् नरसिंह का उपासक पुरुष सब पापों से निर्मुक्त होता हुआ सभी सद्गुणों से समलङ्कृत हो जाता है। सब कामनाओं से समृद्ध होकर जरा (वृद्धता) और मरण से छुटकारा प्राप्त कर लेता है। वह फिर किङ्किणियों के जालों की माला वाले, सुवर्ण निर्मित, सभी कामों से

सुसम्पन्न, नागग, सुवचस, तरुण आदित्य के समान वर्ण वाले, मुक्ताओं के हारों से युक्त, दिव्य स्त्रियों के सकड़ों समूह से संयुत और दिव्य गन्धर्व आदि से समन्वित विमान के द्वारा अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके देवता के समान प्रसन्न एवं सुखी होकर विष्णुलोक को गमन किया करता है और *अप्सराएँ उसकी स्तुति किया करती हैं ॥७१-७५॥* हे द्विजोत्तमो! वह मनुष्य उस विष्णुलोक में परम श्रेष्ठ भोगों का उपभोग करके गन्धर्व तथा अप्सराओं से युक्त होकर चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया करता है और मन को आह्लादित करने वाला सुख महाप्रलय के समय तक प्राप्त किया करता है ॥७६॥ जब पुण्य फलों का क्षय हो जाता है तो पुनः वह *यहाँ पर किसी योगियों के परम श्रेष्ठ कुल में* जन्म ग्रहण किया करता है। वह विप्र चारों वेदों और वेदाङ्गों का *पारगामी विद्वान् हुआ करता है। फिर वैष्णव योग में समास्थित होकर* मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। नरसिंहदेव की उपासना से श्रेष्ठ भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो जाती है ॥७७॥

२८—श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णन

अनन्ताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम् ॥१

मया चाऽऽराधितश्चासौ शक्रेण तदनन्तरम् ।
विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान् ॥२

श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्यच्छ्वेतमाधवम् ।
मत्स्याख्यं माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥३

श्वेतमाधवमाहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ।
विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमा तस्य वै हर ॥४

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले ।
श्वेताख्य माधव देव कस्न स्थापितवान्पुरा ॥५
अभूत्कृतयुगे विप्रा श्वेतो नाम नृपो बली ।
मतिमान्धर्मविच्छूर. सत्यसधो दृढव्रत ॥६
यस्य राज्ये तु वर्षाणा सहस्र दश मानवा. ।
भवन्त्यायुष्मन्तो लोका बालस्तस्मिश्च सीदति ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अनन्त नाम वाले भगवान् वासुदेव को प्रणाम करके मनुष्य सभी पापो से विमुक्त हो जाया करता है और वह परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥१॥ मेरे द्वारा इनकी आराधना की गयी थी और इसके पश्चात् इन्द्रदेव ने उनकी आराधना की थी। विभीषण के द्वारा तथा राम के द्वारा भी उनकी आराधना की गयी थी। ऐसे उनकी कौन पुरुष आराधना न करेगा ॥२॥ जो पुरुष श्वेत गङ्गा में स्नान करके भगवान् श्वेत माधव का दर्शन किया करता है तथा मत्स्य नाम वाले माधव का दर्शन करता है वह श्वेत द्वीप को गमन किया करता है ॥३॥ मुनिगण ने कहा—हे जगन्नाथ ! आप कृपा करके श्वेत माधव का माहात्म्य पूर्ण रूप से और विस्तार पूर्वक वर्णन करने के योग्य हैं तथा हरि की प्रतिमा के विषय में भी वर्णन कीजिए ॥४॥ उस श्रेष्ठ एव पुण्यमय क्षेत्र मे जोकि इस जगती तल मे परम विख्यात है उसमे किसने पहिले श्वेत नामक माधवदेव को स्थापित किया था ॥५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे विप्रो ! कृतयुग मे बलवान् एक श्वेत नाम वाला नृप हुआ था जो बहुत ही बुद्धिमान, धर्म का वेत्ता, शूर, दृढ व्रत वाला और सत्य प्रतिज्ञा वाला हुआ था ॥६॥ जिसके राज्य मे मनुष्य दश सहस्र वर्षो की आयु वाले होते थे तथा उसमे कोई भी बाल्यावस्था मे विनष्ट नही हुआ करता था ॥७॥

वर्तमाने तदा राज्ये किंचित्काले गते द्विजा. ।
कपालगौतमो नाम ऋषिः परमधार्मिक ॥८
सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृतः कालवशाद् द्विजा ।
तमादाय ऋषिर्धीमान्नृपस्यान्तिकमानयत् ॥९

दृष्ट्‌वैव नृपतिं सुप्तं कुमारं गतचेतसम्।
प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनार्थं शिशोस्तदा ॥१०
यावद्‌बालमहं त्वेन यमस्य सदने गतम्।
नाऽऽनये सप्तरात्रेण चितां दीप्ता समारुहे ॥११
एवमुक्त्वाऽसितं पद्मं शतं दंदाशतादिकं।
सपूज्य च महादेवं राजा विद्या पुनर्जपेत् ?) ॥१२
अतिभक्ति तु संचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वरः।
सानिध्यमगमत्तुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया ॥१३
श्रुत्वैव गिरमीशस्य विलोक्य सहसा हरम्।
भस्मदिग्धं विरूपाक्षं शरत्कुन्देन्दुवर्चसम् ॥ ४
शार्दूलचर्मवसनं शशाङ्काङ्कितमूर्धजम्।
मही निपत्य सहसा प्रणम्य स तदाऽब्रवीत् ॥१५

हे द्विजगणो! उसी समय मे उस राजा के राज्य के वर्तमान होने पर तथा कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर एक कपाल गौतम नाम वाला ऋषि परम धार्मिक हुआ था। हे द्विजो! काल के वश से उसका पुत्र जिसके दाँत भी नही निकले थे मृत हो गया था। उसको लेकर धीमान् ऋषि उस नृप के समीप मे उपस्थित हुआ था। हे विप्रो! उस समय मे शिशु के जीवन के लिये राजा ने प्रतिज्ञा की थी ॥८-१०॥ राजा ने कहा—जब तक मैं यमराज के सदन मे गये हुए इस बालक को सात रात्रि म नही ला सकूँगा तो मैं फिर दीप्त हुई चिता पर समारोहण कर जाऊँगा ॥११॥ ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर राजा ने एक सहस्र सौ असित पद्मो से महादेव का भलीभाँति पूजन करके पुन विद्या का जाप किया था ॥१२॥ जगदीश्वर ने नृप की अत्यधिक भक्ति का चिन्तन करके उमादेवी के सहित स्वयं उसके समीप मे आगये और उससे बोले—मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हो गया हूँ ॥१३॥ इस प्रकार की ईश की वाणी का श्रवण करके तथा सहसा भगवान् हर को देखकर जिनका भस्म से दिग्ध शरीर था और जो विरूप नेत्रों वाले थे और शरत्काल के चन्द्र के समान वर्चस वाले थे। शिव शार्दूल के चर्म का

वस्त्र धारण करने वाले और जो शशाङ्क से अङ्कित केशों वाले थे। ऐसे स्वरूप वाले शिव का दर्शन करके उसी समय में वह राजा सहसा शिव के चरणों में भूमि पर गिर गया था और दण्डवत् प्रणाम करके भगवान् महादेव से बोला– ॥१४-१५॥

कारुण्यं यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि।
कालस्य वशमापन्नो बालको द्विजपुत्रकः ॥१६
जीवत्वेष पुनर्बालि इत्येवं व्रतमाहितम्।
अकस्माच्च मृतं बालं नियम्य भगवन्स्वयम् ॥
यथोक्तायुष्यसंयुक्तं क्षेमं कुरु महेश्वर ॥१७
श्वेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुदं प्राप हरस्तदा।
कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयंकरम् ॥१८
नियम्य कालं दुर्धर्षं यमस्याऽऽज्ञाकरं द्विजाः।
बालं संजीवयामास मृत्योर्मुखगतं पुनः ॥१९
कृत्वा क्षेमं जगत्सर्वं मुनेः पुत्रं स तं द्विजाः।
देव्या सहोमया देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥२०
एवं संजीवयामास मुनेः पुत्रं नृपोत्तम ॥२१

राजा श्वेत ने कहा—हे प्रभो ! यदि आप मेरी करुणा पूर्ण दशा को देखकर मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो यह बालक द्विज का पुत्र जो कि काल के वश मे प्राप्त हो गया है। यह बालक पुन जीवित हो जावे–यही व्रत मैंने आहित किया है। हे भगवन् ! यह बालक अकस्मात् मृत हो गया है। हे महेश्वर ! आप स्वयं नियमन करके इसको यथोक्त आयुष्य से संयुक्त करके इसका क्षेम करिये ॥१६-१७॥ उस समय में श्वेत नृप के इस वचन को सुनकर भगवान् हर बहुत अधिक आनन्दित हुए और सब प्राणियों को भय देने वाले काल को उन्होंने उसी समय में आज्ञा दे दी थी ॥१८॥ हे द्विजगणो ! यमराज की आज्ञा को करने वाले काल का नियमन करके जो कि बहुत ही दुर्धर्ष होता है भगवान् हर ने मृत्यु के मुख मे गये हुए बालक को पुनः संजीवित कर दिया था ॥१९॥ हे द्विजो ! उन देवेश्वर ने उस मुनि के पुत्र को जीवित करके सम्पूर्ण

जगत् को क्षेम पूर्ण करके वे फिर उमा देवी के सहित वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥२०॥ उस नृपोत्तम ने इस प्रकार से मुनि के पुत्र को सजीवित कर दिया था ॥२१॥

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवाव्यय ।
ब्रू हि न परम तथ्य श्वेताख्यस्य च साम्प्रतम् ॥२२
शृणुध्व मुनिशार्दू ला सर्वसत्त्वहितावहम् ।
प्रवक्ष्यामि यथातथ्य यत्पृच्छथ ममानघा ॥२३
माधवस्य च माहात्म्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
यच्छ्रु त्वाऽभिमतान्कामान्ध्रु व प्राप्नोति मानव ॥२४
शृणुध्व मुनिशार्दू ला सर्वसत्त्वहितावहम् ।
शृणुध्व ता कथा दिव्या भयशोकार्तिनाशिनीम् ॥२५
स कृत्वा राज्यमेकाग्र्य वर्षाणा च सहस्रश ।
विचार्य लौकिकान्धर्मान्वैदिकान्नियमास्तथा ॥२६
केशवाराधने विप्रा निश्चित व्रतमास्थित ।
स गत्वा परम क्षेत्र सागर दक्षिणाश्रयम् ॥२७
तटे तस्मिञ्छुभे रम्ये देशे कृष्णस्य चान्तिके ।
श्वेतोऽथ कारयामास प्रसाद शुभलक्षणम् ॥२८

मुनिगण ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं और सम्पूर्ण त्रैलोक्य के जन्मदाता हैं । हे अव्यये ! अब आप कृपा करके इस श्वेत नाम वाले नृप का जो परम तथ्य है उसको हमारे सामने वर्णित कीजिए । २२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! आप लोग सभी जीवों के हित का आवहन करके उसका अब श्रवण करिए । हे अनघो ! आप लोग जो मुझ से पूछ रहे है उसको ठीक ठीक बतलाता हू ॥२३॥ भगवान् माधव का माहात्म्य समस्त पापों का विनाश करने वाले हैं । जिसका श्रवण करके मनुष्य अपने अभिमत कामनाओं को निश्चय ही प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ हे मुनिशार्दूलो ! उस सब जीवों के हित करने वाले उस चरित को सुनिए और उस दिव्य तथा भय

शोक और आर्त्ति का नाश करने वाली कथा का श्रवण कीजिए ॥२५॥ उस राजा श्वेत ने सहस्रों वर्षों तक उस अपने उत्तम राज्य का शासन करके तथा लौकिक और वैदिक धर्मों का एवं नियमों का विचार करके हे विप्रो ! फिर उसने भगवान् श्री केशव के आराधन में निश्चित व्रत को करने में अपना ध्यान लगाया था। वह दक्षिण सागर के आश्रय वाले परम क्षेत्र को चला गया था ॥२६-२७॥ उस परम रम्य एवं शुभ देश में तथा तट पर भगवान् श्रीकृष्ण के समीप में उनका परम शुभ लक्षण वाला प्रसाद राजा श्वेत ने कराया था ॥२८॥

धन्वन्तरशतं चैकं देवदेवस्य दक्षिणे।
ततः श्वेतेन विप्रेन्द्राः श्वेतशैलमयेन च ॥२९
कृत. स भगवाञ्छ्वेतो माधवश्चन्द्रसंनिभ.।
प्रतिष्ठा विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टा स्वयं तु स. ॥३०
दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो दीनानाथतपस्विनाम्।
अथानन्तरतो राजा माधवस्य च संनिधौ ॥३१
मही निपत्य सहसा ओंकारं द्वादशाक्षरम्।
जपन्स मौनमास्थाय मासमेकं समाधिना ॥३२
निराहारो महाभाग सम्यग्विष्णुपदे स्थित.।
जपान्ते स तु देवेशं सस्तोतुमुपचक्रमे ॥३३
ओं नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४
नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे।
निर्गुणायाप्रतर्क्याय शुचये शुक्लकर्मणे ॥३५

हे विप्रेन्द्रो ! देवदेव के दक्षिण में एक धन्वन्तर शत उस श्वेत ने श्वेत शैलमय के द्वारा चन्द्रमा के सदृश भगवान् श्वेत माधव का निर्माण किया था। फिर उसने विधि-विधान के साथ स्वयं ही यथोदिष्ट उनकी प्रतिष्ठा भी की थी ॥२९-३०॥ दीनानाथ तपस्वियों को द्विजातियों को दान देकर इसके अनन्तर वह राजा भगवान् माधव की सन्निधि में गया था ॥३१॥ उसने सहसा भूमि में निपात कर दण्डवत् प्रणाम करते हुए

ओङ्कार के सहित द्वादशाक्षर मन्त्र का जाप करते हुए एक मास पर्यन्त समाधि के साथ मौन व्रत मे समास्थित हो गया था ॥-२॥ वह महाभाग निराहार होकर भलीभाँति भगवान् विष्णु के पद मे स्थित हो गया था। जप के अन्त मे उसने देवेश्वर का सस्तवन करने का समारम्भ किया था ॥३०॥ राजा श्वेत ने कहा—भगवान् वासुदेव के लिये मेरा नमस्कार है। सङ्कर्षण प्रभु के लिय मेरा नमस्कार है। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, और नारायण भगवान् की सवा म मेरा नमस्कार है ॥३४॥ बहुत से रूप धारण करने वाले विश्व रूप वेधा निर्गुण, शुचि शुक्लकर्मा, और अप्रतर्क्य प्रभु के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥३५॥

ओ नम पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च ।
नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नम ॥३६
ओ नम पुण्डरीकाक्षाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
नम सहस्रपादाय सहस्रभुज मन्यवे ॥३७
ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे ।
वरिष्ठाय वरेण्याय शरण्यायाच्युताय च ॥३८
ओ नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च ।
बालकरोमनेनाय गुडाकेशाय धीमते ॥३९
केशवाय नमो नित्य नमो नारायणाय च ।
माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नम ॥४०
ओ नमो विष्णवे नित्य देवाय वसुरतसे ।
मधुसूदनाय नम शुद्धायाशुधराय च ॥४१
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नम श्रीवत्सधारिणे ।
त्रिविक्रमाय च नमो दिव्यपीताम्बराय च ॥४२

पद्मनाभ, पद्मगर्भोद्भव, पद्मवर्ण और पद्म हाथ मे धारण करने वाले प्रभु के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार नमस्कार है ॥३६॥ पुण्डरीकाक्ष, सहस्राक्ष मीढु, सहस्रपाद, सहस्रभुज और मन्यु के लिये मेरा नमस्कार है ॥३७॥ श्री वराह वरद, सुमेधा, वरिष्ठ, वरेण्य, शरण्य और भगवान् अच्युत के लिये मेरा नमस्कार है ॥३८॥ बालरूप, बाल पद्मप्रभ, बाल-

सूर्य, और सोम के समान नेत्रों वाले, मुञ्जकेश तथा धीमान् के लिये मेरा नमस्कार है ॥३९॥ भगवान् केशव के लिये मेरा नित्य ही नमस्कार है तथा नारायण के लिये मेरा नमस्कार है। भगवान् माधव, वरिष्ठ, और गोविन्द के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥४०॥ भगवान् विष्णु देव और वसुरेता देव के लिये मेरा नित्य ही प्रणाम है। मधुसूदन-शुद्ध और अणुधर के लिये मेरा नमस्कार है ॥४१॥ अनन्त के लिये-सूक्ष्म के और श्री वत्स का चिह्न धारण करने वाले के लिये नमस्कार है। भगवान् त्रिविक्रम के लिये और दिव्य पीताम्बर धारी प्रभु के लिये मेरा प्रणाम है ॥४२॥

सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्य गोप्त्रे धात्रे नमो नम. ।
नमोऽस्तु गुणभूताय निर्गुणाय नमो नमः ॥४३
नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्मणे ।
नमो वामननेत्राय नमो वामनवाहिने ॥४४
नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्वव्यक्तरूपिणे ।
अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च ॥४५
रासारार्णवपोताय प्रशान्ताय स्वरूपिणे ।
शिवाय सौम्यरूपाय रुद्रायोत्तारणाय च ॥४६
भवभङ्गकृते चैव भवभोगप्रदाय च ।
भवसघातरूपाय भवसृष्टिकृते नमः ॥४७
ओ नमो दिव्यरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च ।
सोमसूर्यांशुकेशाय गाब्राह्मणहिताय च ॥४८
ओं नम ऋक्स्वरूपाय पदक्रमस्वरूपिणे ।
ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्य नम ऋक्साधनाय च ॥४९

इस सृष्टि की रचना करने वाले आपके लिये प्रणाम है तथा गोप्ता और धाता के लिये मेरा नमस्कार है। गुण स्वरूप आपके लिये तथा निर्गुण भगवान् की सेवा मे मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥४३॥ वामन का रूप धारण करने वाले, वामन का कर्म करने वाले, वामन नेत्र, वामन वाही के लिये मेरा प्रणाम है ॥४४॥ परम रम्य, और पूजने

के योग्य के लिये नमस्कार है तथा अव्यक्त रूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और भयों के हरण करने वाले प्रभु के लिये नमस्कार है ॥४५॥ संसाररूप सागर के पोत अर्थात् संसार सागर से पार करने वाले, प्रशान्त स्वरूप, सुन्दर रूप वाले सौम्यरूप धारी शिव के लिये और उच्चारण करने वाले भगवान् रुद्रदेव के लिये प्रणाम है ॥४६॥ इस संसार के भङ्ग करने वाले और सांसारिक भोगों के प्रदान करने वाले, भव (संसार) के संघात रूप वाले और भव की सृष्टि करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥४७॥ दिव्य रूप वाले और सोम एवं अग्नि के आसित वाले के लिये नमस्कार है। सोम सूर्यांशुकेश और गौओं तथा ब्राह्मणों के हित करने वाले के लिये प्रणाम है ॥४८॥ ऋग्वेद के स्वरूप वाले तथा पद, क्रम के स्वरूप से स्थित के लिये और ऋग्वेद द्वारा स्तुति किये गये तथा ऋक् के साधन वाले आपके लिये मेरा अनेक प्रणाम है ॥४९॥

ओं नमो यजुषां धात्रे यजूरूपधराय च ।
यजुर्याज्याय जुष्टाय यजुषां पतये नमः ॥५०
ओं नमः श्रीपते देव श्रीधराय वराय च ।
श्रियः कान्ताय दान्ताय योगिचिन्त्याय योगिने ॥५१
ओं नमः सामरूपाय सामध्वनिवराय च ।
ओं नमः सामसौम्याय सामयोगविदे नमः ॥५२
साम्ने च सामगीताय ओं नमः सामधारिणे ।
सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च ॥५३
नमस्त्वथर्वशिरसे नमोऽथर्वस्वरूपिणे ।
नमोऽस्त्वथर्वपादाय नमोऽथर्वकराय च ॥५४
ओं नमो वज्रशीर्षाय मधुकैटभघातिने ।
महोदधिजलस्थाय वेदाहरणकारिणे ॥५५
नमो दीप्तस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नमः ।
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय ते नमः ॥५६

यजुर्वेद के धाता, यजुर्वेद के स्वरूप धारी, यजुर्वेद के द्वारा यजन करने के योग्य, जुष्ट और यजुर्वेद व मन्त्रो के स्वामी के लिये प्रणाम है ।।५०।। हे श्रीपतेदेव ! श्री के धारण करने वाले और वरदान स्वरूप, श्री के कान्त एव दान्त, योगियो के द्वारा चिन्तन करने के योग्य' योगी आपके लिये मेरा प्रणाम है ।।५१।। सामवेद के रूप वाले और साम की श्रेष्ठ ध्वनि वाले, साम सौम्य तथा साम योग के वेत्ता आपके लिये मेरा प्रणाम है ।।५२।। सामवेद, सामवेद के गीत और साम के धारण करने वाले, सामयश के ज्ञाता और साम के कर्त्ता आपके लिये मेरा नमस्कार है ।।५३।। अथर्ववेद के शिर वाले और अथर्ववेद के स्वरूप वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है । अथर्व के पाद वाले के लिये और अथर्ववेद के करने वाले के लिये प्रणाम है ।।५४।। भगवान् मत्स्य शीर्ष और मधु तथा कैटभ के घात करने वाले और महोदधि के जल मे स्थित एव वेदो के आहरणकारी भगवान् के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ।।५५।। दीप्त स्वरूप वाले हृषीकेश के लिये मेरा नमस्कार है। भगवान् वासुदेव आपके लिये मेरा नमस्कार है ।।५६।।

नारायण नमस्तुभ्य नमो लोकहिताय च ।
ओं नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च ।।५७
गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च ।
त्रैलोक्यतेजसा कर्त्रे नमस्तेज.स्वरूपिणे ।।५८
योगीश्वराय शुद्धाय रामयोत्तरणाय च ।
सुखाय सुखनेत्राय नमः सुकृतधारिणे ।।५९
वासुदेवाय वन्द्याय वामदेवाय वै नमः ।
देहिना देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च ।।६०
देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमालिने ।
नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च ।।६१
ओं नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय च ।
नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने ।।६२

यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे ।
सङ्कर्षणाय च नमः प्रलम्बमथनाय च ॥६३

हे नारायण ! आपके लिये मेरा नमस्कार है । लोगों के हित करने वाले, मोह के नाशक तथा इस संसार के आवागमन के विनाश करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥५७॥ सद्गति के प्रदान करने वाले, बन्धन का हरण करने वाले आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है । इस त्रिलोकी के तेजों के करने वाले तथा तेज के स्वरूप वाले, योगेश्वर, शुद्ध स्वरूप, रामा (महालक्ष्मी) को अपनी बाँई ओर विराजमान रखने वाले, सुख स्वरूप, नेत्रों के सुख प्रदान करने वाले और सुकृत को धारण करने वाले आपको मेरा प्रणाम है ॥५८ ५६॥ वन्दना करने के योग्य वासुदेव भगवान् के लिये तथा वासुदेव प्रभु के लिये नमस्कार । समस्त देहधारियों के देह के करने वाले और भेद के भङ्ग करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥६०॥ देवों के द्वारा वन्दित देह वाले, दिव्य माला धारण करने वाले, वास निवास, वास व्यवहार, वसु के कर्त्ता, वसु और वास के प्रदान करने वाले, यज्ञ के स्वरूप वाले, यज्ञों के स्वामी और योगी के लिये नमस्कार है ॥६१-६२॥ यति और योग करने वालों के ईश, यज्ञाङ्ग धारी, सङ्कर्षण और प्रलम्ब के मथन करने वाले के लिये मेरा प्रणाम है ॥६३॥

मेघघोषस्वनोत्तीर्णवेगलाङ्गलधारिणे ।
नमोऽस्तु ज्ञानिनां ज्ञान नारायणपरायण ॥६४
न मेऽस्ति त्वामृते बन्धुर्नरकोत्तारणे प्रभो ।
अतस्त्वां सर्वभावेन प्रणतो नतवत्सल ॥६५
मल यत्कायजं वाऽपि मानसं चैव केशव ।
न तस्यान्योऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामृतेऽच्युत ॥६६
संसर्गाणि समस्तानि विहाय त्वामुपस्थितः ।
संगो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय केशव ॥६७
यष्टमापत्सुदुष्पार संसार चेदृमि केशव ।
तापत्रयपरिक्लिष्टस्तेन त्वां शरणं गतः ॥६८

एषणाभिर्जगत्सर्वं मोहितं मायया तव ।
आकर्षितं च लोभाद्यै रतस्त्वामहमाश्रितः ॥६९
नास्ति किंचित्सुखं विष्णो संसारस्थस्य देहिनः ।
यथा यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते ॥७०
तथा फलविहीनं तु सुखमात्यन्तिकं लभेत् ।
नष्टो विवेकशून्योऽस्मि दृश्यते जगदातुरम् ॥७१

मेघो के घोष की ध्वनि को पार करने वाले वेग युक्त लाङ्गल के धारण करने वाले के लिए मेरा नमस्कार है। हे ज्ञानियो के भी ज्ञान ! हे नारायण परायण ! हे विभो ! आप के बिना नरको से पार करने वाला कोई भी बन्धु नही है। हे प्रणतो पर प्यार करने वाले ! अतएव मैं आपके चरणो मे प्रणत हो रहा हूँ ॥६४-६५॥ हे केशव ! हे अच्युत ! जो इस काया से समुत्पन्न मल है अथवा मन मे जमा हुआ मल है उसका प्रक्षालन करने वाला हे देवेश्वर ! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नही है ॥६६॥ मैं सभी ससर्गों का त्याग करके अर्थात् अन्य सासारिक समस्त सम्बन्धो को छोडकर अब आपकी सेवा मे समुपस्थित हो गया हूँ। हे केशव ! अबतो आत्म लाभ प्राप्त करने के लिये केवल आपके ही साथ मेरा सग है ॥६७॥ हे केशव ! आपत्तियो मे महान् कष्ट होता है और मैं इस ससार को परम दुश्वार समझता हू। मैं इस समय मे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनो प्रकार के तापो से परिक्लिष्ट हो रहा हूँ। इसीलिये इनसे छुटकारा पाने के लिये आपके चरणो की शरण मे प्राप्त हुआ हू ॥६८॥ आपकी माया बडी प्रबल है और एषणाओ से यह सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है। मैं लोभ आदि से अत्यन्त आकर्षित हो रहा हू। इसीलिये अब मे आपकी शरण मे प्राप्त हो गया हू ॥६९॥ हे विष्णो ! इस ससार मे स्थित देहधारी को कुछ भी सुख नही होता है। जैसे २ हे यज्ञेश ! यह चित्त आपकी शरणागति में प्रवृत्त होता है तथा फल से विहीन यह आत्यन्तिक सुख को प्राप्त किया करता है। मैं विनष्ट और विवेक से शून्य हूँ और सम्पूर्ण जगत् आतुर दिखलाई दिया करता है ॥७०-७१॥

गोविन्द त्राहि संसारान्मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि ।
मग्नस्य मोहसलिले निरुत्तारे भवार्णवे ॥
उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते ॥७२
इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राज्ञा श्वेतेन भो द्विजा ।
तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥७३
भक्ति तस्य तु संचिन्त्य देवदेवो जगद्गुरु ।
आजगाम नृपस्याग्रे सर्वैर्देवैर्वृतो हरि ।७४
नीलजीमूतसंकाश पद्मपत्रायतेक्षण ।
दधत्सुदर्शन धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम् ॥७५
क्षीरोदजलसंकाशो विमलश्चन्द्रसंनिभ ।
रराज वामहस्तेऽस्य पाञ्चजन्यो महाद्युति ॥७६
पक्षिराजध्वज श्रीमान्गदाशार्ङ्गासिधृक्प्रभु ।
उवाच साधु भो राजन्यस्य ते मतिरुत्तमा ॥
यदिष्टं वरं भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥७७

हे गोविन्द ! आप मेरा परित्राण करिए । आप इस संसार से मेरा उद्धार करने के योग्य हैं । इस मोहरूपी जल मे मग्न हो रहा हूं । इस महान् संसार सागर मे जिसका कही भी कोई पार होना नही दिखलाई देता है मैं विमग्न हो रहा हू । हे पुण्डरीकाक्ष ! इससे उद्धार करने वाला मुझे आपके बिना अन्य कोई भी विद्यमान नही दिखलाई देता है ॥७२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! उस राजा श्वेत के द्वारा जब वह इस प्रकार से स्तुति किये गये तो उस परम दिव्य क्षेत्र मे उस विख्यात पुरुषोत्तम मे उसकी भक्ति का भली भाँति चिन्तन करके देवो के भी देव जगत के गुरु समस्त देवो से परिवृत होते हुए भगवान् श्री हरि स्वयं उस राजा के सामने समागत हो गये थे ॥७३-७४॥ जिस समय में श्री हरि स्वयं उस अपने परम भक्त नृप के समक्ष मे पधारे थे उस समय के प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—नीले वर्ण वाले सघन मेघ के समान उनका वर्ण था, पद्म के दलों के सदृश विस्तीर्ण लोचन थे, परम धीमान् प्रभु ने हाथ के अग्रभाग में प्रदीप्त मण्डल वाला

सुदर्शन चक्र धारण कर रक्खा था ॥७५॥ क्षीर सागर के स्वच्छ जल के समान तथा चन्द्रमा के सदृश विमल उनका स्वरूप था। इनके बाँये हाथ में महान् द्युति से युक्त पाञ्चजन्य शङ्ख शोभित हो रहा था ॥७६॥ गरुड़ की ध्वजा से युक्त, श्री सम्पन्न, गदा, शार्ङ्ग धनुष, खड्ग को धारण किये हुए थे ऐसे प्रभु ने वहाँ पर समागत होकर कहा—हे नृप! बहुत अच्छा है, तुम क्षत्रिय की मति अत्यन्त उत्तम है। हे निष्पाप! मैं तुझपर परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब तुझे जो भी अभीष्ट वरदान प्राप्त करना हो करले। तेरा कल्याण ही होगा ॥७७॥

श्रुत्वैवं देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम्।
प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानसः ॥७८
यद्यहं भगवन्भक्तः प्रयच्छ वरमुत्तमम्।
आब्रह्मभवनादूर्ध्वं वैष्णवं पदमव्ययम् ॥७९
विमलं विरजं शुद्धं संसारासङ्गवर्जितम्।
तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८०
यत्पदं विबुधाः सर्वे मुनयः सिद्धयोगिनः।
नाभिगच्छन्ति यद्रम्यं परं पदमनामयम् ॥८१
यास्यसि परमं स्थानं राज्यामृतमुपास्य च।
सर्वाल्लोकानतिक्रम्य मम लोकं गमिष्यसि ॥८२
कीर्तिस्तवात्र राजेन्द्र श्रील्लोकाश्च गमिष्यति।
सान्निध्यं मम चैवात्र सर्वदैव भविष्यति ॥८३
श्वेतगङ्गेति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः।
कुशाग्रेणापि राजेन्द्र श्वेतगाङ्गेयमम्बु च ॥८४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में देवों के भी आराध्यदेव के उस परम अमृतमय वचन का श्रवण करके उस नृप ने उनके श्री चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया था और उस श्वेत राजा ने उनके चरणों में अपना मनपूर्ण तर रखते हुए उनसे निवेदन किया था—॥७८॥ राजा श्वेत ने कहा—हे भगवन्! यदि मैं आपका परम भक्त हूँ तो अब आप कृपया

मुझे उत्तम वरदान प्रदान कीजिए। हे जगत् के स्वामिन्! मैं आपके प्रसाद से ब्रह्मभवन से भी ऊपर-अव्यय विमल विरज शुद्ध संसार के आसङ्ग से रहित जो वैष्णव पद (स्थान) है उसमें मैं गमन करना चाहता हूँ ॥७६-८०॥ श्री भगवान् ने कहा—जिस पद को समस्त देवगण-मुनिमण्डल और सिद्ध तथा योगी जन नहीं जाया करते हैं वह ऐसा ही परम रम्य और अनामय पद है ॥८१॥ तुम प्रथम अपने राज्य के अमृतमय सुखों को भोग कर फिर अन्त में उसी परम पद को प्राप्त करोगे और समस्त लोकों का अतिक्रमण करके मेरे लोक में ही गमन करोगे ॥८२॥ हे राजेन्द्र! तेरा यश तीनों लोकों में फैल जायेगा और तेरा यहाँ पर मेरी सन्निधि में निवास सर्वदा ही रहेगा ॥८३॥ समस्त देव दानव उसे "श्वेत गङ्गा" कहकर गान किया करेंगे। हे राजेन्द्र! कुशा के अग्रभाग के द्वारा भी इस श्वेत गङ्गा के जल का स्पर्श करके स्वर्ग की प्राप्ति किया करेंगे ॥८४॥

स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भक्ता ये समाहिताः ।
यस्त्विमां प्रतिमां गच्छेन्माधवाख्यां शशिप्रभाम् ॥८५
शङ्खगोक्षीरसंकाशामशेषाघविनाशिनीम् ।
तां प्रणम्य सकृद्भक्त्या पुण्डरीकनिभेक्षणाम् ॥८६
विहाय सर्वलोकान्वै मम लोके महीयते ।
मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः ॥८७
गीयमानश्च मधुरं सिद्धगन्धर्वसेवितः ।
भुनक्ति विपुलान्भोगान्यथेष्टं मामकैः सह ॥८८
च्युतस्तस्मादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत् ।
वेदवेदाङ्गविद्धीमान्भोगवांश्चिरजीवितः ॥८९
गजाश्वरथयानाढ्यो धनधान्यावृतः शुचिः ।
रूपवान्बहुभाग्यश्च पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥९०
पुरुषोत्तमं पुनः प्राप्य वटमूलेऽथ सागरे ।
त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शान्तपदं व्रजेत् ॥९१

जो मेरे परम समाहित भक्त है वे ही इसका कुशाग्रभाग से स्पर्श करके स्वर्ग को गमन किया करेंगे। जो चन्द्र के समान प्रभा वाली मेरी माधव नामधारिणी प्रतिमा है उसके समीप मे जो भी कोई गमन करेगा जिसका स्वरूप शङ्ख, गो दुग्ध के समान है और जो समस्त अघो का विनाश करने वाली है एव पुण्डरीक के समान जिसके परम सुन्दर नेत्र हैं उस मेरी प्रतिमा को भक्तिभाव से जो कोई एक बार भी प्रणाम किया करता है वह सभी लोको का त्याग करके मेरे ही लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है। वहाँ पर वह देव कन्याओ से समावृत रहता हुआ बहुत से मन्वन्तरो तक निवास किया करता है। उसको स्तुति का वहाँ गान किया जाता है जो परम मधुर होता है और सिद्ध तथा गन्धर्वगण उसकी सेवा किया करते हैं। वहाँ पर वह मेरे अनेक भक्तो के साथ यथेष्ट रूप से बहुत से भोगो का उपभोग किया करता है ॥८५ ८८॥ वहाँ से च्युत होकर वह अधिक काल के पश्चात् पुण्यो का क्षय हो जाने पर यहाँ पुन आता है और मनुष्यो मे ब्राह्मण हुआ करता है जो वेदो और वेदाङ्ग शास्त्रो का पूर्ण ज्ञाता भोगो वाला और चिरकाल तक जीवित रहने वाला होता है ॥८९॥ वह विप्र होकर भी हाथी घोड़े-रथ और धन से सुसम्पन्न होता है। धन धान्य से परिपूर्ण शुचि रूप लावण्य से युक्त बहुत ही भाग्यशाली तथा पुत्र पौत्रादि से समन्वित हुआ करता है। पुन वह पुरुषोत्तम को वट के मूल मे अथवा सागर मे प्राप्त किया करता है। फिर वह इस देह का परित्याग करके भगवान् श्री हरि का स्मरण करके परम शान्त पद को गमन किया करता है ॥९०-९१॥

२७—समुद्रस्नानविधिवर्णन

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम् ।
एकार्णवजले पूर्वं रोहितं रूपमास्थितम् ॥१
वेदानां हरणार्थाय रसातलतले स्थितम् ।
चिन्तयित्वा क्षितिं सम्यक्तस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२
आद्यावतरणं रूपं माधवं मत्स्यरूपिणम् ।
प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सर्वदुःखाद्विमुच्यते ॥३
प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम् ।
काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४
वरसमाधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः ।
दाता भोक्ता भवेद्यज्वा वैष्णवः सत्यसंगरः ॥५
योगं प्राप्य हरेः पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
मत्स्यमाधवमाहात्म्यं मया सपरिकीर्तितम् ॥
यद्दृष्ट्वा मुनिशार्दूला सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् श्वेत माधव का दर्शन करके उनके समीप में ही मत्स्य माधव विराजमान हैं उनका अवलोकन करना चाहिए। पहिले यह मत्स्य माधव प्रभु उस एकार्णव जल में रोहित के रूप में समास्थित हो गये थे ॥१॥ वेदों के आहरण करने के लिये रसातल में स्थित हुए। क्षिति का चिन्तन करके उसी स्थान में यह भली भाँति प्रतिष्ठित हो गये थे ॥२॥ मत्स्य के स्वरूप वाले माधव का स्वरूप आदि में होने वाला अवतार है। इनको प्रणाम करके और इनके समक्ष में प्रणत होने वाला प्राणी सभी दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर लिया करता है ॥३॥ अन्त समय में वह परम पद को गमन किया करता है जहाँ पर स्वयं श्री हरि विराजमान रहा करते हैं। पुण्य के क्षीण होने पर चिरकाल के पश्चात् वह पुनः इस कर्मभूमि भारत में जन्म ग्रहण करके पृथिवी तल में राजा होता है ॥४॥ मनुष्य वत्स माधव

को प्राप्त करके दुराधर्ष हो जाया करता है। वह दाता-भोक्ता-यज्वा-सत्यसङ्कर और वैष्णव होता है ॥५॥ फिर यहाँ पर भगवान् श्री हरि के योग की प्राप्ति करके मोक्ष को प्राप्त किया करता है। मैंने यह भगवान् मत्स्य माधव के माहात्म्य का परम संक्षेप से वर्णन कर दिया है। हे मुनिशार्दूलो ! जिन मत्स्य माधव भगवान् का दर्शन करके मनुष्य सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है ॥६॥

भगवञ्श्रोतुमिच्छामो मार्जन वरुणालये ।
क्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफल वद ॥७
शृणुध्व मुनिशार्दूला मार्जनस्य यथाविधि ।
भक्त्या तु तन्मना भूत्वा सप्राप्य पुण्यमुत्तमम् ॥८
मार्कण्डेयह्रदे स्नान पूर्वकाले प्रशस्यते ।
चतुर्दश्या विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥९
तद्वत्स्नान समुद्रस्य सर्वकाल प्रशस्यते ।
पौर्णमास्या विशेषेण हयमेधफल लभेत् ॥१०
मार्कण्डेय वट कृष्ण रौहिणेय महोदधिम् ।
इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थीविधि स्मृत (?) ॥११
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्ष यदा भवेत् ।
तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थराज पर शुभम् ॥१२
कायवाङ्मानसै शुद्धस्तद्भावो नान्यमानस ।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो वीतरागो विमत्सर ॥१३
कल्पवृक्षवट रम्य तत्र स्नात्वा जनार्दनम् ।
प्रदक्षिण प्रकुर्वीत त्रिवार सुसमाहित ॥१४

मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब हम लोग वरुणालय (सागर) में मार्जन (स्नान) करने के विधान का श्रवण करने की अत्यन्त उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हैं। वहाँ पर जो स्नान-आदि किया जाता है उस सब फल का वर्णन कीजिए ॥७॥ हे मुनिशार्दूलो ! अब आप लोग मार्जन का विधान सुनिए। जो कि भक्ति भाव के साथ तन्मनस्क होकर यथाविधि मार्जन करके उत्तम पुण्य की प्राप्ति मनुष्य किया करता है

॥८॥ इससे भी पूर्व समय में मार्कण्डेय ह्रद में स्नान करना परम प्रशस्त माना जाता है। विशेष रूप से चतुर्दशी तिथि में यहाँ स्नान करना सभी पापों का विनाश कर देने वाला होता है ॥९॥ उसी भाँति समुद्र में स्नान को भी सभी कालों में प्रशस्त माना गया है। पूर्णिमा तिथि में विशेष रूप से अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥१०॥ मार्कण्डेय-वटकृष्ण-रौहिणेय-महोदधि और इन्द्रद्युम्न सरोवर—यह पाँच तीर्थों की विधि बतायी गयी है ॥११॥ ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में जब कि ज्येष्ठा नक्षत्र होवे उसी समय में विशेष रूप से यह तीर्थराज परम शुभ होता है ॥१२। शरीर-मन वचनों से शुद्ध होकर तीर्थराज में ही भावना रखने वाला अन्य किसी में भी अपना मन न लगाने वाला सभी सांसारिक द्वन्द्वों से विमुक्त रहकर राग से रहित एवं मात्सर्य दोष से शून्य होने वाला पुरुष परम रम्य स्नान करके कल्प वृक्ष वट श्री जनार्दन प्रभु की प्रदक्षिणा करे और परम सावधान होकर तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए ॥१३-१४॥

य दृष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजन्मसमुद्भवात् ।
पुण्य चाऽऽप्नोति विपुल गतिमिष्टा च भो द्विजा ॥१५
तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाण च युगे युगे ।
यथासख्य च भो विप्रा कृतादिषु यथाक्रमम् ॥१६
वट वटेश्वर कृष्ण पुराणपुरुष द्विजा ।
वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु ॥१७
योजन पादहीन च योजनार्धं तदर्धकम् ।
प्रमाण कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम् ॥१८
यथोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु त वटम् ।
दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वन्तरशतत्रयम् ॥१९
यत्रासौ दृश्यते विष्णु स्वर्गद्वार मनोरमम् ।
सागराम्भ समाकृष्ट काष्ठ सर्वगुणान्वितम् ॥२०
प्रणिपत्य ततस्त भो परिपूज्य तत पुन ।
मुच्यते सर्वरोगाद्यैस्तथा पापैर्ग्रहादिभि ॥२१

हे द्विजगण ! उन प्रभु का दर्शन प्राप्त करके मनुष्य सात जन्मों में सञ्चित किये हुए पापों से मुक्त हो जाया करता है और बहुत अधिक पुण्य की प्राप्ति किया करता है तथा अभीष्ट गति का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ उनके शुभ नाम और युग-युग में जो प्रमाण है उनको मैं बतलाता हूँ । हे विप्रो ! कृतयुग आदि में मैं उन नामों को सत्य नुसार तथा क्रम के अनुसार बतलाता हूँ ॥१६॥ हे द्विजो ! कृतयुग आदि में इस वट के वट वटेश्वर-कृष्ण और पुराण पुरुष—ये नाम कीर्तित किये गये हैं ॥१७॥ कृतयुग आदि में एक योजन (जो चार कोश का माना जाता है)—पौन योजन अर्थात् तीन कोश आधा योजन और एक पाव योजन इस कल्प वृक्ष का प्रमाण कहा गया है ॥१८॥ यथोक्त मन्त्र के द्वारा उस वट को प्रणाम करके दक्षिण की ओर मुख करके तीन सौ धन्वन्तर तक गमन करना चाहिए ॥१९॥ जहाँ पर यह भगवान् विष्णु दिखलाई दिया करते हैं वह परम मनोरम स्वर्ग का द्वार है । सागर के जल के द्वारा समाकृष्ट है जो सभी गुण-गण से युक्त होता है ॥२०॥ उसका प्रणिपात करके उसके उपरान्त उसका पूजन करे । इसका यह फल होता है कि वह मनुष्य सब रोग आदि से समस्त पापों से और दुष्ट ग्रह आदि के प्रकोप से मुक्त हो जाया करता है ॥२१॥

उग्रसेन पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण सागरम् ।
गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायण परम् ॥२२
न्यसेदष्टाक्षर मन्त्र पश्चाद्धस्तशरीरयो ।
ॐ नमो नारायणयेति य वदन्ति मनापिण ॥२३
कि कार्यं बहुभिर्मन्त्रैर्मनोविभ्रमकारकैं ।
ॐ नमो नारायणयेति मन्त्र सर्वार्थसाधक ॥२४
आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिता ।
विष्णोस्तास्त्वयन पूर्वं तेन नारायण स्मृत ॥ ५
नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजा ।
नारायणपरा यज्ञा नारायणपरा क्रिया ॥ ६

नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम् ।
नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः ॥२७
नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः ।
अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके ॥२८

पहिले उग्रसेन का दर्शन करके स्वर्ग द्वार से सागर को जाकर वहाँ आचमन करे । पवित्र होकर परम पुरुष नारायण का ध्यान करना चाहिए ॥२२॥ इसके पीछे हाथ और शरीर में अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिए । वह मन्त्र—"ॐ नमो नारायणाय" यह है जिसको मनीषी लोग कहा करते हैं ॥२३॥ अन्य बहुत से अन के विभ्रम करने वाले मन्त्रों से फिर क्या प्रयोजन है ? ॐ नमो नारायणाय- यह मन्त्र ही सर्वार्थों का साधक होता है ॥२४॥ नर के पुत्रहीन होने से ही जल "नारा"—इस नाम से कीर्तित किये गये है । वे ही जल भगवान् विष्णु के अयन हैं जो कि सबसे पूर्व में था । अतएव वह नारायण नाम वाले कहे गये है ॥२५॥ भगवान् नारायण ही मे परायण रहने वाले समस्त वेद हैं अर्थात् सब वेद नारायण को ही मुख्यतया प्रतिपादित किया करते है । सब द्विजगण भी नारायण म ही तत्पर रहा करते हैं । सब यज्ञ भी नारायण के ही प्राप्त कराने वाले है । नारायण की प्राप्ति ही उनका मुख्य ध्येय होता है । समस्त शास्त्रोक्त धार्मिक क्रियाएँ भी नारायण-परामण हुआ करती है । यह सम्पूर्ण पृथ्वी भी नारायण मे ही परायण होती है और जल भी नारायग पर है । नभ तथा वह्नि भी नारायण मे तत्पर रहा करते हैं एव वायु और मन भी नारायण में ही परायण रहते हैं । अहङ्कार और बुद्धि ये दोनो भी नारायण स्वरूप ही होते है ॥२६-२८॥

भूत भव्य भविष्य च यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम् ।
स्थूल सूक्ष्म पर चैव सर्वं नारायणात्मकम् ॥२९
शब्दाद्या विषया. सर्वे श्रोत्रादीनिन्द्रियाणि च ।
प्रकृति. पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मका. ॥३०

जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे ।
अवष्टभ्य इद सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः ॥ ३१
किं चात्र बहुनोक्तेन जगदेतच्चराचरम् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम् । ३२
नारायणात्परं किंचिन्नेह पश्यमि भो द्विजाः ।
तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम् ॥३३
आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवाम्भसां पतिः ।
तस्मादप्सु स्मरेन्नित्य नारायणमघापहम् ॥३४
स्नानकाले विशेपेण चोपस्थाय जले शुचिः ।
स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते कामे च विन्यसेत् ॥३५

भूतकाल जो व्यतीत हो चुका है-मध्यकाल जो वर्त्तमान मे है और भविष्य जो आगे आने वाला समय है तथा जो भी कोई जीव सज्ञा से युक्त है-स्थूल स्वरूप से और सूक्ष्म स्वरूप वाले तथापर ये सभी नारायण के एक होते हैं ॥२६॥ शब्द आदि समस्त इन्द्रियों के विषय और श्रोत्रप्रभृति सब इन्द्रियों का समुदाय प्रकृति एव पुरुष नाम से सम्बोधित किये जाने वाला-ये सभी भगवान् नारायण के ही स्वरूप होते हैं। तात्पर्य यह है कि इस विश्व मे नारायण के सब विभिन्न स्वरूप है और उनसे व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है ॥३०॥ जल मे, स्थल मे, पाताल मे, स्वर्गलोक मे, अम्बर मे, पर्वत में भगवान् नारायण ही सबको अवष्टम्भ करके विद्यमान रहा करते है और निष्कर्षार्थ मे सब नारायण का ही स्वरूप है जो कि सर्व साधारण को विभिन्न रूपों मे दिखलाई दिया करते हैं ॥३१॥ विशेष कथन करने से क्या लाभ है यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सभी नारायण का स्वरूप होता है ॥३२॥ हे द्विजो ! हम यहाँ पर नारायण से पर अन्य कुछ भी नही देखते है। उन्ही से दृश्य तथा अदृश्य चराचर सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ॥३३॥ आप अर्थात् जल भगवान् विष्णु का आयतन अर्थात् निवास स्थान है और वही जलों का स्वामी है। इसी लिये अघो के अपहरण करने वाले भगवान् नारायण का स्मरण नित्य ही जल मे करना चाहिए

॥३४॥ विशेष रूप से स्नान करने के समय में उपस्थान करके और शुचि होकर भगवान् नारायण का स्मरण करना चाहिए तथा हस्त में और शरीर में विन्यास करे ॥३५॥

ओंकार च नकार च अङगुष्ठे हस्तयोर्न्यसेत्।
शर्षेह्(पान्ह)स्ततल (ले)यावत्तर्जन्यादिषु विन्यसेत् ॥३६
ओंकार वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत्।
मोकार वामकटचा तु नाकार दक्षिणे न्यसेत् ॥३७
राकारं नाभिदेशे तु यकार वामबाहुके।
णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥३८
अधश्चोर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः।
ध्यात्वा नारायण पश्चादारभेत्कवच बुध. ॥३९
पूर्वे मा पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः।
पश्चिमे श्रीधरो देव. केशवस्तु तथोत्तरे ॥४०
पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैर्ऋते माधवोऽव्ययः।
वायव्ये तु हृषीकेशस्तथैशाने च वामन. ॥४१
भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वं च त्रिविक्रम.।
कृत्वैव कवच पश्चादात्मान चिन्तयेत्ततः ॥४२

ॐकार और नकार का दोनों हाथों के अंगुष्ठों में न्यास करे। पाद-इनसे हस्ततल में तर्जनी आदि में विन्यास करना चाहिए ॥३६॥ ॐकार को वामपाद में-नकार को दक्षिण पाद में न्यस्त करना चाहिए। मोकार को बाँये पाद में तथा नाकार को दक्षिण पाद में विन्यस्त करे ॥३७॥ राकार को नाभि देश में और यकार को वाम बाहु में न्यस्त करे। णाकार को दक्षिण में विन्यस्त करे तथा यकार का न्यास मूर्धा में करना चाहिए ॥३८॥ हृदय में नीचे तथा ऊपर—पार्श्व भाग में और आगे की ओर भगवान् नारायण का ध्यान करके बुध पुरुष को अनन्तर में *नारायण कवच का आरम्भ करना चाहिए ॥३९॥* श्री गोविन्द भगवान् पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करें, मधुसूदन प्रभु दक्षिण में रक्षा करें। श्रीधरदेव पश्चिम में सुरक्षा करें तथा उत्तर में केशवदेव रक्षा करें ॥४०॥

आग्नेय कोण में विष्णु रक्षा करें, नैऋत्य कोण में अव्यय माधव रक्षा करें। वायव्य दिशा में भगवान् हृषीकेश और ईशान कोण में वामन भगवान् रक्षा करें ॥४१॥ वाराह भगवान भूतल में मेरा यदि त्राण करें और ऊर्ध्वभाग में त्रिविक्रम प्रभु रक्षा करें। इस प्रकार से सम्पूर्ण कवच का पाठ करके पीछे आत्मा का चिन्तन करना चाहिए ॥४२॥

अहं नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः।
एवं ध्यात्वा तदाऽऽत्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४३
त्वमग्निर्द्विपदां नाथ रेतोधाः कामदीपनः।
प्रधानः सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्ययः ॥४४
अमृतस्यारणिस्त्वं हि देवयोनिरपां पते।
वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥४५
एवमुच्चार्य विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत्।
अन्यथा भो द्विजश्रेष्ठाः स्नानं तत्र न शस्यते ॥४६
कृत्वा तु वैदिकैर्मन्त्रैरभिषेकं च मार्जनम्।
अन्तर्जले जपेत्पश्चात्त्रिरावृत्याऽघमर्षणम् ॥४७
हयमेधो यथा विप्रा. सर्वपापहर. क्रतुः।
तथाऽघमर्षणं चात्र सूक्तं सर्वाघनाशनम् ॥४८
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय वै।
प्राणानायम्य चाऽऽचम्य सन्ध्यां चोपास्य भास्करम् ॥४९

आत्म चिन्तन का विधान यह है कि मैं ही देव नारायण का स्वरूप हूँ और शङ्ख-चक्र तथा गदा के धारण करने वाला भी मैं हूँ। इस प्रकार से अपने आपके विषय में ध्यान करके फिर इस नीचे बताये हुए मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥४३॥ हे नाथ! आप द्विपदों की अग्नि हो, रेतोधा तथा काम के दीपन करने वाले हो। आप समस्त भूतों में प्रधान हो और सब जीवों के प्रभु एवं आप अव्यय हो ॥४४॥ हे जलों के स्वामिन्! आप अमृत के अरणि हैं और देवयोनि हैं। हे तीर्थराज! मेरे सब वृजिन (पाप) का हरण करिए मेरा आपको नमस्कार है ॥४५॥ इस प्रकार से विधि पूर्वक उच्चारण करके इसके उपरान्त स्नान करना

चाहिए। हे द्विजो मे परम श्रेष्ठो ! इस विधान के विपरीत वहाँ पर स्नान करना भी प्रशस्त नहीं होता है। कई वैदिक मन्त्रों के द्वारा अभिषेक और मार्जन करके पीछे जल के अन्दर स्थित होकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥४७॥ हे विप्रगणो ! अश्वमेध यज्ञ जिस प्रकार से सभी पापों का हरण करने वाला है उसी भाँति यह अघमर्षण सूक्त समस्त अघो का विनाश करने वाला यहाँ पर हुआ करता है ।।४८।। उतर कर शुद्ध निर्मल धुले हुए वस्त्रों को धारण करना चाहिए। फिर प्राणायाम करके तथा आचमन करके सन्ध्या वन्दना करे और भगवान् भास्कर की उपासना करनी चाहिए ॥४९॥

उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाञ्जलिम् ।
उपस्थायोर्ध्वबाहुश्च तल्लिङ्गैर्भास्करं ततः ॥५०
गायत्री पावनी देवी जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
अन्याश्च सौरमन्त्राश्च जप्त्वा तिष्ठन्समाहितः ॥५१
कृत्वा प्रदक्षिणं सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च ।
स्वाध्यायं प्राङ्मुखः कृत्वा तर्पयेद्दैवतान्यृषीन् ॥५२
मनुष्यांश्च पितॄश्चान्यान्नामगोत्रेण मन्त्रवित् ।
तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहितः ॥५३
तर्पणं देवतानां च पूर्वं कृत्वा समाहितः ।
अधिकारी भवेत्पश्चात्पितॄणां तर्पणे द्विजः ॥५४
श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत् ।
तर्पणे तूभयं कुर्यादेष एव विधिः सदा ॥५५
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः ॥५६

इसके उपरान्त उपस्थान करे और ऊपर की ओर सूर्यदेव के लिये पुष्पाञ्जलि का प्रक्षेप करना चाहिए। उपस्थान करके ऊपर की ओर बाहुओं वाला होते हुए उनके लिङ्गों के द्वारा भास्कर का उपस्थान करे और परम पावनी गायत्रीदेवी का एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए

तथा परम समाहित होते हुए खड़ा रहकर अन्य जो सूर्यदेव के मन्त्र हो उनका भी जप करे। फिर प्रदक्षिणा करके सूर्य्यदेव को प्रणाम करे और बैठ जावे। पूर्व की ओर मुख करके स्वाध्याय करना चाहिए और देवो का तथा ऋषियो का तर्पण करे ॥५०-५२॥ मन्त्रो के ज्ञाता पुरुष को नाम और गोत्रो के उच्चारण के सहित मनुष्यों का एवं पितृगणो का तिलो से मिश्रित जल के द्वारा परम सावधान होकर तर्पण करना चाहिए ॥५३॥ सबसे पूर्व सावधान रह कर देवो का तर्पण करे और इसके पीछे ही द्विज पितृगणो के तर्पण करने का उचित अधिकारी हुआ करता है ॥५४॥ श्राद्ध मे और हवन के समय मे एक हाथ से ही निर्वपन करना चाहिए। तथा तर्पण के समय मे दोनो हाथों से ही करे-यह ही सदा इसका विधान होता है ॥५५॥ अन्वारब्ध सव्य और दक्षिण हाथ से तृप्यताम् अर्थात् तृप्त होइये यह कहते हुए नाम एवं गोत्र का उच्चारण करके मौन रहते हुए सिञ्चन करना चाहिए। यही तर्पण की विधि है ॥५६॥

कायस्थैर्यस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम् ।
तर्पितास्तेन पितरस्त्वड्मासरुधिरास्थिभि. ॥५७
अङ्गस्थैर्न तिलै. कुर्याद्देवतापितृतर्पणम् ।
रुधिर तद्भवेत्तोय प्रदाता किल्बषी भवेत् ॥५८
भूम्या यद्दीयते तोय दाता चैव जले स्थित ।
वृथा तन्मुनिशार्दूला नोपतिष्ठति कस्यचित् ॥५९
स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदक नर. ।
पितृणा नोपतिष्ठेत सलिल यन्निरर्थकम् ॥६०
उदके नोदक कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन ।
उत्तीर्य तु शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम् ॥६१
नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना ।
नोपतिष्ठति तत्तोय यद्भूम्या न प्रदीयते ॥६२

काया मे स्थित तिलो के द्वारा मोह से फिर तर्पण किया करता है उससे त्वचा-माँस-रुधिर और अस्थियो के द्वारा पितर तर्पित होते हैं

॥५७॥ अङ्गस्थ तिलों से देवता पितृगणों का तर्पण नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से वह जल रुधिर हो जाया करता है और जो जल का प्रदान करने वाला है वह पाप का भागी होता है ॥५८॥ दाता जल में स्थित होकर भूमि में जो जल इसके द्वारा दिया जाता है हे मुनि-शार्दूलो! वह व्यर्थ ही होता है और किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥५९॥ जो मनुष्य स्थल में स्वयं स्थित होकर जल को जल में ही दिया करता है वह जल भी पितृगणों को प्राप्त नहीं होता है और ऐसा जल देना सर्व था निरर्थक हुआ करता है ॥६०॥ पितृगणों को जल दान किया जाता है उस उदक को कभी भी उदक में नहीं करना चाहिए। किसी पवित्र भाग में उत्तर का ही उदक तर्पण करना चाहिए। उदकों में नहीं—पात्रों में नहीं—क्रुद्ध होकर एक हाथ से नहीं जलदान करना चाहिए क्योंकि वह जल उनको प्राप्त नहीं हुआ करता है जो कि भूमि में प्रदान नहीं किया जाया करता है ॥६१-६२॥

पितृणामक्षय स्थान मही दत्ता मया द्विजाः ।
तस्मात्तत्रैव दातव्य पितृणां प्रीतिमिच्छता ॥६३
भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्या चैव च संस्थिता ।
भूम्या चैव लय याता भूमौ दद्यात्ततो जलम् ॥६४
आस्तीर्य च कुशान्साग्रास्तानावाह्य स्वमन्त्रत ।
प्राचीनाग्रेषु वै देवान्याम्याग्रेषु तथा पितॄन् ॥६५

हे द्विजो! मैंने पितृगणों को अक्षय स्थान मही दी है। इसलिये पितृगणों की प्रीति की अभिलाषा रखने वालों को भूमि में ही जलदान करना चाहिए ॥६३॥ ये सभी भूमि के ही पृष्ठ पर समुत्पन्न हुए हैं तथा भूमि पर ही संस्थित भी रहे थे और इस भूमि में ही ये सब लय को प्राप्त हुए हैं अतएव भूमि में ही जल उनको देना चाहिए ॥६४॥ अग्रभाग के सहित कुशाओं को फैलाकर वहाँ पर अपने मन्त्र से उनका आवाहन करना चाहिए। प्राचीनाग्रों पर देवों का आवाहन करे तथा याम्याग्रों पर पितृगणों का आवाहन करे ॥६५॥

२८—पूजाविधिकथन

देवान्पितृंस्तथा चान्यान्सतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ।
हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१
पुरं विलिख्य भो विप्रास्तीरे तस्य महोदधेः ।
मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥२
एवं मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजाः ।
अष्टाक्षरविधानेन नारायणमजं विभुम् ॥३
अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् ।
अकारं हृदये ध्यात्वा चक्ररेखासमन्वितम् ॥४
ज्वलन्तं त्रिशिखं चैव दहन्तं पापनाशनम् ।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं राकारं मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥५
शुक्लवर्णं प्रवर्षन्तममृतं प्लावयन्महीम् ।
एवं निर्धूतपापस्तु दिव्यदेहस्ततो भवेत् ॥६
अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेदेवाऽऽत्मनो बुधः ।
वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवों को तथा पितृ गणों को एवं अन्य सबको भली भाँति तृप्त करके आचमन करे और मौन व्रत धारण करके एक हाथ भर के प्रमाण वाले चार कोनों वाले तथा चार द्वारों वाले परम शोभा से युक्त पुर का लेखन करे हे विप्रो ! इस पुर का विलेखन उस महोदधि के तट, पर ही करना चाहिए । उस पुर के मध्य में एक आठ दलों वाले तथा कर्णिका से युक्त पद्म का विलेखन करना चाहिए ॥१-२॥ हे द्विजो ! इस प्रकार के मण्डल का विलेखन करके वहाँ पर पूजा करनी चाहिए । अष्टाक्षर के विधान के द्वारा विभु अजन्मा भगवान् नारायण का अर्चन करे ॥३॥ इससे आगे मैं उत्तम काया के शोधन के विषय में बतलाता हूँ । साधक को अपने हृदय में चक्ररेखा से युक्त अकार का ध्यान करना चाहिए ॥४॥ जाज्वल्यमान-तीन शिखाओं से संयुत-दहन करते हुए पापों का विनाश करने वाले तथा चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित राकार को मूर्धा में चिन्तन करना चाहिए ॥५॥ अमृत

की वर्षा करने वाले-शुक्ल वर्ण से युक्त-सम्पूर्ण मही को प्लावित करते हुए इस प्रकार से निधूत पापों वाला होकर फिर दिव्य देह वाला हो जाया करता है ॥६॥ फिर बुध पुरुष अपना अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिए। वामपाद से समारम्भ करके क्रम से ही विन्यास करना चाहिए ॥७॥

पश्चाङ्ग वैष्णव चैव चतुर्व्यूहं तथैव च ।
करशुद्धिं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण साधकः ॥८
एकैकं चैव वर्णं तु अङ्ग लीषु पृथक्पृथक् ।
ओंकारं पृथिवी शुक्ला वामपादे तु विन्यसेत् ॥९
नकारः शाम्भवः श्यामो दक्षिणे तु व्यवस्थितः ।
मोंकारं कालमेवाऽऽहुर्वामकट्यां निधापयेत् ॥१०
नाकारः सर्वबीजं तु दक्षिणस्यां व्यवस्थितः ।
राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थितः ॥११
वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रितः ।
णाकारः सर्वगो ज्ञेयो दक्षिणांसे व्यवस्थितः ॥
यकारोऽयं शिरस्यश्च यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१२
ममाग्रे व्यवस्थितो विष्णुः पृष्ठतश्चापि केशवः ।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु मधुसूदनः ॥१३-१४

है जहां पर सब लोक प्रतिष्ठित रहा करते हैं ॥१२॥ मेरे आगे वाले भाग मे भगवान् विष्णु अवस्थित हैं और पृष्ठभाग मे केशव स्थित रहते हैं। दक्षिण पार्श्व मे गोविन्द और वाम पार्श्व मे मधुसूदन प्रभु रहते हैं ॥१३-१४॥

उपरिष्टात्तु वैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले ।
अवान्तरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधवः ॥१५
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।
नरसिंहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्ययम् ॥१६
एव विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभेत् ।
यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७
ततश्चैव प्रकुर्वीत प्रोक्षण प्रणवेन तु ।
फट्कारान्त समुद्दिष्ट सर्वविघ्नहरं शुभम् ॥१८
तत्रार्कचन्द्रवह्नीना मन्डलानि विचिन्तयेत् ।
पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णु पवनस्याम्बरस्य च ॥१९
ततो विचिन्त्य हृदय ओंकार ज्योतीरूपिणम् ।
कर्णिकाया समासीन ज्योतीरूप सनातनम् ॥२०
अष्टाक्षर ततो मन्त्र विन्यसेच्च यथाक्रमम् ।
तेन व्यस्तसमस्तेन पूजन परम स्मृतम् ॥२१

ऊपर के भाग मे वैकुण्ठ हैं और पृथिवी तल मे वाराह देव स्थित रहते है। जो अवान्तर दिशाएँ हैं उन सबमे माधव भगवान् विराजमान रहा करते हैं ॥१५॥ गमन करते हुए, स्थित रहते हुए, जागते हुए, सोते हुए नरसिंह कृता गुप्ति है अर्थात् भगवान् नरसिंह के द्वारा की हुई रक्षा होती है। यह सब वासुदेवमय ही है ॥१ ॥ इस प्रकार से विष्णु-मय होकर ही इसके अनन्तर कर्म का आरम्भ करना चाहिए। जिस प्रकार से देह मे है उसी भाँति समस्त तत्त्वो को देव मे योजित करना चाहिए ॥१७॥ इसके उपरान्त प्रणव (ॐकार) के द्वारा प्रोक्षण करे। फट्कार जिसके अन्त में हो ऐसा समुद्दिष्ट किया गया है जो कि सब का हरण करने वाला एव शुभ होता है ॥१८॥ वहाँ पर चन्द्र-अर्क और

वह्नियो के मण्डलो का विचिन्तन करना चाहिए। पद्म के मध्य में भगवान् विष्णु का पवन का तथा अम्बर का न्यास करना चाहिए ॥१६॥ इसके अनन्तर ज्योति स्वरूप वाले ओङ्कार का हृदय विचिन्तन करे जो कर्णिका में समासीन हैं और ज्योति स्वरूप वाले सनातन हैं ॥२०॥ इसके पश्चात् यथाक्रम आठ अक्षर वाले मन्त्र का विन्यास करना चाहिए। उस व्यस्त अर्थात् अलग २ और समस्त अर्थात् सम्पूर्ण उसके द्वारा परम श्रेष्ठ पूजन बताया गया है ॥२१॥

द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देवं सनातनम् ।
ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकायां बहिर्न्यसेत् ॥२२
चतुर्भुजं महासत्त्वं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
चिन्तयित्वा महायोगं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥
ततश्चाऽऽवाहयेन्मन्त्रं क्रमेणाऽऽचिन्त्य मानसे ॥२३
पूर्वे दले वासुदेवं याम्ये सङ्कर्षणं न्यसेत् ।
प्रद्युम्नं पश्चिमे कुर्यादनिरुद्धं तथोत्तरे ॥२४
वाराहं च तथाऽऽग्नेये नरसिंहं च नैऋते ।
वायव्ये माधवं चैव तथैशाने त्रिविक्रमम् ॥२५
तथाऽष्टाक्षरदेवस्य गरुडं पुरतो न्यसेत् ।
वामपार्श्वे तथा चक्रं शङ्खं दक्षिणतो न्यसेत् ॥२६
तथा महागदां चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे ।
ततः शार्ङ्गं धनुर्विद्वान्न्यसेद्देवस्य वामतः ॥२७

इस प्रकार से द्वादशाक्षर (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) अर्थात् बारह अक्षरों वाले इस उपर्युक्त मन्त्र से सनातन देव का यजन करना चाहिए। इसके उपरान्त हृदय में कर्णिका में अर्थात् हृदयरूप कमल की कर्णिका में अवधारण करके फिर बाहिर न्यास करना चाहिए ॥२२॥ महान् सत्त्व वाले, करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा से संयुत चार भुजाओं वाले, महा योग, ज्योति स्वरूप, सनातन का चिन्तन करना चाहिए। और इसके पश्चात् क्रम से मानस में चिन्तन करके मन्त्र के

द्वारा आवाहन करे आवाहन, स्थापन,अर्घ, पाद्य,मधुपर्क,आचमनीय, स्नान, वस्त्र,विलेपन,उपवीत,अलङ्कार,धूप,दीप,नैवेद्य,आदि का मन्त्रो द्वारा विनिवेदन करना चाहिए फिर पूर्व दल मे अर्थात् बाहिर विलिखित पद्म के पूर्व दिशा की ओर वाले दल मे वासुदेव का न्यास करे,दक्षिण दल मे सङ्कर्षण का,पश्चिम की ओर वाले दल मे प्रद्युम्न का तथा उत्तर मे अनिरुद्ध न्यास करना चाहिए ॥२३-२४॥ विदिशाओ मे आग्नेय कोण मे वाराह का, नैर्ऋत मे नरसिंह का, वायव्य मे माधव का और ईशान कोण मे त्रिविक्रम प्रभु का न्यास करना चाहिए ॥२५॥ तथा अष्टाक्षर देव के गरुड को आगे विन्यस्त करे। वाम पार्श्व मे सुदर्शन चक्र का और दक्षिण की ओर शङ्ख (पाञ्चजन्य) का न्यास करना चाहिए ॥२६॥ इसके अनन्तर महा गदा कौमोदकी को देव के दक्षिण भाग मे विन्यस्त करे और शार्ङ्ग धनुष को देव के वाम भाग मे विद्वान के द्वारा विन्यास करना चाहिए ॥२७॥

दक्षिणे चेषुधी दिव्ये खड्ग वामे च विन्यसेत् ।
श्रिय दक्षिणत. स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥२८
वनमाला च पुरतस्तत. श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
विन्यसेद्धृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम् ॥२९
ततोऽस्त्रं देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत् ।
इन्द्रमग्नि यम चैव नैर्ऋत वरुण तथा ॥३०
वायु धनदमीशानमनन्त ब्रह्मणा सह ।
पूजयेत्ताम्निकैर्मन्त्रैरधश्चोर्ध्व तथैव च ॥३१
एव सपूज्य देवेश मण्डलस्थ जनार्दनम् ।
लभेदभिमतान्कामान्नरो नास्त्यत्र सशय. ॥३२
अनेनैव विधानेन मण्डलस्थ जनार्दनम् ।
पूजित य: सपश्येत स विशेद्विष्णुमव्ययम् ॥३३
सकृदप्यर्चिता येन विधिनाऽनेन केशव. ।
जन्ममृत्युजरा तीर्त्वा स विष्णो: पदमाप्नुयात् ॥३४

दक्षिण की ओर दिव्य इषुधियो को और वाम भाग मे खड्ग का न्यास करना चाहिए। श्री देवी को दक्षिण भाग मे स्थापित करके उत्तर

मे पुष्टि का न्यास करे ॥२८॥ आगे वनमाला का और फिर श्री वत्स और कौस्तुभ का न्यास करना चाहिए। पूर्वादिक चारों दिशाओं मे हृदयादि का न्यास करे ॥२६॥ फिर देवों के देव के अस्त्र को कोण मे विन्यस्त करे। इन सब विन्यासो के करने के अनन्तर अधोभाग मे और ऊर्ध्व भाग मे नान्त्रिक मन्त्रों के द्वारा इन्द्रअग्नि-यम नैर्ऋत वरुण वायु-धनद-ईशानब्रह्मा के सहित अनन्त का पूजन करना चाहिए ॥३०-३१॥ इस भांति से मण्डल मे स्थित देवेश्वर जनादन का भली भांति से अभ्यर्चन करके मनुष्य अपने समस्त अभिमत मनोरथो को प्राप्त कर लिया करता है इसमे तनिक भी सशय नही है ॥३२॥ इस वर्णित विधान के द्वारा मण्डल मे समवस्थित देवेश्वर जनार्दन प्रभु को समर्चित हुए जो भी भली-भांति दर्शन कर लेता है वह अव्यय भगवान् विष्णु के पुर मे प्रवेश किया करता है ॥३३॥ इस वर्णित किये हुए विधान के द्वारा जिस किसी ने जीवन मे एक बार भी केशव भगवान् का अभ्यर्चन कर लिया है वह इस ससार के जन्म मरण और जरा को पार करके अन्त मे विष्णु भगवान् के पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥३४॥

य स्मरेत्सतत भक्त्या नारायणमतन्द्रित ।
अन्वह तस्य वासाद्य श्वेतद्वीप प्रकल्पित. ॥३५
ओकारादिसमायुक्त नम कारान्तदीपितम् ।
तन्नाम सर्वतत्त्वाना मन्त्र इत्यभिधीयते ॥३६
अनेनैव विधानेन गन्धपुष्प निवेदयेत् ।
एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्ट क्रमेण तु ॥३७
मुद्रास्ततो निबध्नीयाद्यथोक्तक्रमचोदिता ।
जप चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३८
अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तर तथा ।
कामपु च यथाप्रोक्त यथाशक्ति समाहित ॥३९
पद्म शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गरुड एव च ।
चक्र खड्गश्च शार्ङ्ग च अष्टौ मुद्रा. प्रकीर्तिता ॥४०

विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परं स्थानं पुराणपुरुषोत्तम ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परमं पदम् ॥४१
अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथादितम् ।
ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥४२

जो निरन्तर भक्ति की भावना से तन्द्रारहित होकर भगवान् नारायण का स्मरण किया करता है प्रति दिन उसके वास के लिये श्वेत द्वीप को कल्पित किया गया है ॥३५॥ ओंकार के आदि से युक्त नमःकार के द्वारा अन्त मे दीपित और उनका शुभ नाम सर्व तत्वों का मन्त्र है जोकि कहा जाया करता है ॥३६॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्पादि का समर्पण करना चाहिए । क्रम से जो अङ्ग उद्दिष्ट किये गये हैं उनमें एक-एक को निवेदन करना चाहिए ॥३७॥ जैसा कि क्रम बताया गया है उसी के अनुसार फिर मुद्राओं का निबन्धन करे । मन्त्र के ज्ञाता पुरुषमूल मन्त्र के द्वारा जाप भी करना चाहिए ॥३८॥आठ-अट्ठाईस-अष्टोत्तर शत जाप जो जिस कामना मे जैसा भी कहा गया है उसको यथा शक्ति समाहित होकर वैसा ही करना चाहिए ॥३९॥ पद्म शङ्ख-श्री वत्स-गदा-गरुड़-चक्र-खड्ग-शार्ङ्ग—ये कुल आठ मुद्राएं कीत्तित की गयी हैं ॥४०॥ इसके अनन्तर विसर्जन करे । इसका मन्त्र यही है—हे पुराण पुरुषोत्तम ! अब आप कृपा करके परम स्थान मे पधारिये और गमन करिये जहाँ पर ब्रह्मादिक देवगण परम पद को जानते है ॥४१॥ जो लोग भगवान् के परम भक्त है किन्तु जिन-जिन मन्त्रो द्वारा हरिका अभ्यर्चन ऊपर मे बताया गया है उसका पूर्ण ज्ञान उनको नही है तो वे ज्ञान के अभाव में कुछ भी न करे, ऐसा नही है प्रत्युत उनको सदा केवल मूल-मन्त्र के द्वारा ही अच्युत भगवान् का पूजन करना चाहिए ॥४२॥

—※—

२९—समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णन

एवं सपूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम् ।
प्रणम्य शिरसापश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१
प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितां पते ।
तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय ॥२
स्नात्वैवं सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजा ।
तीरे चाभ्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३
रामं कृष्णं सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम् ।
शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥४
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः ।
वृन्दारक इव श्रीमान्रूपयौवनगर्वितः ॥५
विमानेनार्कवर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥६
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा चाप्सरैः सह ।
मन्वन्तरशतं साग्रं जरामृत्युविवर्जितः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस पूर्व वर्णित विधि-विधान के द्वारा भक्तिभाव से उन पुरुषोत्तम भगवान का सम्यक् रीति से अभ्यर्चन करके और साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम उनको करके पीछे सागर का प्रसाद प्राप्त करना चाहिए ॥१॥ हे सरिताओं के स्वामिन् ! आप ही समस्त भूतों के प्राण तथा उत्पत्ति स्थल हैं । हे अच्युत भगवान् के परम प्रिय तीर्थों के राजन् ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम है । आप मेरा परित्राण करिए ॥२॥ हे द्विजो ! उस परम श्रेष्ठ क्षेत्र में भली-भाँति सागर में स्नान करके तट पर अनामय नारायण का विधि पूर्वक अर्चन करना चाहिए ॥३॥ श्रीराम भद्र, श्रीकृष्ण चन्द्र, सुभद्रा देवी तथा नदीश्वर सागर को प्रणिपात करके मनुष्य एकशत अश्वमेध यज्ञों के यजन करने

का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ॥४॥ वह मनुष्य सभी पापों से जो भी इस जन्म के तथा पूर्व जन्मों मे सञ्चित हो छुटकारा पाकर समस्त सांसारिक दुःखों से रहित हो जाता है । वह फिर देवता के समान श्री से सुसम्पन्न होकर रूप एवं यौवन से गर्वित हो जाया करता है ॥५॥ फिर वह सूर्य के सदृश वर्ण वाले विमान के द्वारा जो कि परम दिव्य गन्धर्व और अप्सरा आदि से ससेवित होता है अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके अन्त मे सीधा विष्णुलोक मे ही गमन किया करता है । वहाँ पर वह परमोत्तमोत्तम भोगों का सुख भोग करके तथा दिव्या-प्सराओं के साथ विलास क्रीडा करके डेढसौ मन्वन्तरों के बहुत लम्बे समय तक जरा-जन्म और मृत्यु के क्लेशों से छुटकारा पा जाया करता है ॥६-७॥

पुण्यक्षमादिहाऽऽयात कुले सर्वगुणान्विते ।
रूपवान्सुभग श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रिय ॥८
वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु वैष्णव ।
योग च वैष्णव प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९
ग्रहोपरागे सक्रान्त्यामयने विषुवे तथा ।
युगादिषु षडशीत्या व्यतीपाते दिनक्षये ॥१०
आषाढ्या चैव कार्तिक्या माघ्या वाऽन्ये शुभे तिथौ ।
ये तत्र दान विप्रेभ्य प्रयच्छन्ति सुमेधस ॥११
फल सहस्रगुणितमन्यतीर्थाल्लभन्ति ते ।
पितॄणा ये प्रयच्छन्ति पिण्ड तत्र विधानत ॥१२
अक्षया पितरस्तेषां तृप्ति सप्राप्नुवन्ति वै ।
एव स्नानफल सम्यक्सागरस्य मयोदितम् ॥१३
दानस्य च फल विप्रा पिण्डदानस्य चैव हि ।
धर्मार्थमोक्षफलदमायुष्कीर्तियशस्करम् ॥१४

जब अपने किये हुए पुण्यों का उपभोग द्वारा शनैः शनैः क्षय होता है तो फिर वह पुनः इस कर्मभूमि भारत में आकर सभी गुणगण से युक्त किसी उत्तम कुल मे जन्म ग्रहण किया करता है । वह मानव जीवन मे

भी उसी पूर्वकृत महान् पुण्य के प्रभाव से रूपवान्, सुभग, श्रीमान, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, वेदों और समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, यज्वा और वैष्णव विप्र हुआ करता है। फिर यहाँ पर वैष्णव योग को प्राप्त करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त किया करता है। तात्पर्य यह है कि पहिले अतुल-अनुपम भोग और अन्त मे मुक्ति दोनो ही उसे प्राप्त हो जाते हैं ॥८-९॥ कुछ ऐसे विशिष्ट अवसर हैं जैसे—ग्रहोपराग (ग्रहण) सङ्क्रान्ति-विषुवअयन-युगादि-षडशीति-व्यतीपात-दिनक्षय-आषाढ़ी, कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा एव अन्य शुभतिथि इन अवसरो पर जो सुन्दर मेधा वाले पुरुष वहाँ पर विप्रो को दान दिया करते हैं वे अन्य तीर्थों से सहस्र गुना पुण्य-फल प्राप्त किया करते है। जो वहाँ पर पितृगणों को विधि पूर्वक पिण्ड दान किया करते हैं ॥१०-१२॥ उससे उनके पितृगण अक्षय तृप्ति की प्राप्ति किया करते हैं। इस रीति से मैंने सागर के स्नान करने का पुण्य-फल भली-भाँति वर्णित कर दिया है। साथ ही यहाँ पर दिये हुए दान का फल तथा पितरो के किये गये पिण्डदान का फल भी बता दिया है जो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के फल देने वाला तथा आयु-कीर्त्ति और यश के प्रदान करने वाला होता है ॥१३-१४॥

भुक्तिमुक्तिफल नृणा धन्य दु.स्वप्ननाशम् ।
सर्वपापहर पुण्य सर्वकामफलप्रदम् ॥१५
नास्तिकाय न वक्तव्य पुराण च द्विजोत्तमाः ।
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वै पृथक्पृथक् ॥१६
यावन्न तीर्थराजस्य महात्म्य वर्ण्यते द्विजा. ।
पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्वक फलम् ॥१७
तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः ।
भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरासि च ॥१८
विशन्ति सागरे तानि तेनासौ श्रेष्ठता गतः ।
राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरिता पति. ॥१९
त्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः ।
नाशं यथाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः ॥२०

यह मनुष्यो को भुक्ति और मुक्ति के फल को प्रदान करने वाला है तथा परम धन्य और दु.स्वप्नो का नाशक भी है। सब पापो के हरण करने वाला परम पुण्यमय और सब मनोरथो के फलो को देने वाला है ॥१५॥ हे द्विजोत्तमो ! इस पुराण को भूलकर भी कभी ऐसे पुरुष को मत बताना जो ईश्वर की सत्ता को ही न मानने वाला नास्तिक हो। तभी तक सब तीर्थ अपने अपने पृथक २ माहात्म्यो की प्रशसा लेकर गर्जना किया करते हैं जब तक कि हे द्विजो ! इस तीर्थराज की महिमा एव माहात्म्य का वर्णन नही किया जाता है। तात्पर्य यह है कि तीर्थराज के माहात्म्य के आगे सब अन्य तीर्थों का माहात्म्य हेय ही रह जाया करता है। अन्य पुष्कर आदि तीर्थ केवल अपना ही फल दिया करते हैं ॥१६-१७॥ किन्तु यह तीर्थराज तो स्वय अकेला ही समस्त तीर्थों का पुण्य-फल प्रदान करने वाला होता है। इस भूमण्डल मे जो भी तीर्थ-सरिताऐं और सर है ॥१८॥ वे सभी अन्त मे सागर में ही जाकर प्रवेश किया करते है। इसी कारण से इसकी श्रेष्ठता सबसे अधिक है। समस्त तीर्थो का राजा सरिताओ का स्वामी सागर ही है ॥१६॥ इसी कारण से यह अन्य सब तीर्थो से श्रेष्ठ और सब कामनाओ का प्रदाता होता है। हे द्विजगण ! जैसे भगवान् भास्कर के समुदित हो जाने पर तम का विनाश हो जाया करता है वैसे ही इस तीर्थराज के द्वारा पापो का नाश हो जाया करता है ॥२०॥

स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य सक्षय.।
तीर्थराजसम तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥२१
अधिष्ठान यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै।
कः शक्नोति गुणान्वक्तु तीर्थराजस्य भो द्विजाः ॥२२
कोट्यो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै।
तस्मात्स्नान च दान च होम जप्य सुरार्चनम् ॥
यत्किंचित्क्रियते तत्र चाक्षय क्रियते द्विजाः ॥२३

इस तीर्थराज सागर के स्नान से पापो का अच्छी तरह से क्षय हो जाता है। इस तीर्थराज के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो अब तक

हुआ है और न भविष्य में भी होगा ॥२१॥ जब जहाँ पर प्रभु नारायण का अधिष्ठ न होता है तो ऐसे इस तीर्थराज सागर के गुणों को कौन वर्णन करने में समर्थ हो सकता है ? करोड़ों नवनवति तीर्थ जहाँ पर विद्यमान रहते हैं उसकी महिमा का क्या पारावार है। इसलिये वहाँ दान-स्नान होम जप और सुराचन जो भी कुछ शुभ कर्म किया जाता है वह सभी हे द्विजगण ! अक्षय ही होता है ॥२२-२३॥

३०—पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपण

ततो गच्छेद्‌द्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यज्ञाङ्गसम्भवम् ।
इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्राऽऽस्ते पावनं शुभम् ॥१
गत्वा तत्र शुचिर्धीमानाचम्य मनसा हरिम् ।
ध्यात्वोपस्थाय च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२
अश्वमेधाङ्गसंभूत तीर्थं सर्वाघनाशन ।
स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते ॥३
एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवानृषीन्पितृन् ।
तिलोदकेन चान्यांश्च सतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ॥४
दत्त्वा पितृणां पिण्डांश्च संपूज्य पुरुषोत्तमम् ।
दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानवः ॥५
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य देववत् ।
कामगेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥६
भुक्त्वा तत्र सुखान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ।
च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो ! इसके आगे यज्ञाङ्ग सम्भव तीर्थ पर गमन करना चाहिए जहाँ पर इन्द्रद्युम्न नाम वाला परम पावन एवं

शुभ सरोवर है ॥१॥ वहाँ पर पहुच कर परम शुचि होकर बुद्धिमान् पुरुष को आचमन करके मन्त्र के द्वारा श्री हरि का ध्यान तथा उपस्थान करना चाहिए। उस जल पर उपस्थित होकर निम्न वर्णित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२॥ हे तीर्थ! आपकी उत्पत्ति अश्वमेध के अङ्ग से हुई है और आप समस्त अघो के विनाश करने की शक्ति रखते है। आज इस समय मे मैं आप मे स्नान करता हूँ। आप मेरे सब पापो का हरण कीजिए। आपको मेरा परमाधिक आदर के साथ प्रणाम है ॥३॥ इस प्रकार से समुच्चारण करके फिर विधि विधान के साथ स्नान करे और तिलोदक से देवो का, ऋषियो का, पितृगण का तथा अन्यो का भली भाँति वहाँ पर तर्पण करना चाहिए। फिर आचमन करके मौन हो पितरो को पिण्ड दान करे और पुरुषोत्तम प्रभु का अभ्यर्चन करना चाहिए। इस सबके करने से मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञो के यजन करने का फल प्राप्त किया करता है ॥४-५॥ वह मनुष्य अपने सात पहिले और सात आगे होने वाले वशो का उद्धार करके स्वेच्छागामी विमान के द्वारा सीधा विष्णुलोक को गमन किया करता है ॥६॥ वहाँ पर जब तक चन्द्र-सूर्य और तारागण नभ मण्डल मे विद्यमान रहते हैं तब तक परमोत्तम दिव्य सुखो का उपभोग किया करता है। जब भोगो के करने से उस महान् पुण्य का शनै शनै क्षय होता है तथा कुछ स्वल्पाश शेष रहता है तब वह वहाँ से च्युत हो जाता है और यहाँ मर्त्यलोक मे जन्म ग्रहण करके निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त करता है ॥७॥

एव कृत्वा पञ्चतीर्थीमेकादश्यामुपोषित.।
ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्यां य पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥८

स पूर्वोक्त फल प्राप्य क्रीडित्वा वाऽच्युतालये।
प्रयाति परम स्थान यस्मान्नाऽऽवर्तते पुन. ॥९

मासानन्यान्परित्यज्य माघादीन्प्रपितामह।
प्रशससि कथ ज्येष्ठ ब्रूहि तत्कारण प्रभो ॥१०

शृणुध्वं मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासतः ।
ज्येष्ठं मासं तथा तेभ्यः प्रशंसामि पुनः पुनः ॥११
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपास्तथा ह्रदाः ॥१२
नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे ।
ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यन्ति सर्वदा ॥१३
स्नानदानादिकं तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः ।
यत्किंचित्क्रियते तत्र तस्मिन्कालेऽक्षयं भवेत् ॥१४

इस प्रकार से पञ्चतीर्थों का क्रियाकलाप समाप्त करके एकादशी से उपवास करना चाहिए। जो ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी के दिन पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन किया करता है वह पूर्व मे वर्णित फल का लाभ लिया करता है अथवा अच्युत भगवान् के आलय मे आनन्द की क्रीडा करके परमोत्तम पद को प्राप्त करता है जहाँ से पुनः आवर्त्तित नही होता है ॥८-६॥ मुनियो ने कहा—हे प्रपितामह ! हे प्रभो ! माघ आदि अन्य समस्त श्रेष्ठ मासो का परित्याग करके इस ज्येष्ठ मास की ही इतनी अधिक प्रशंसा क्या कर रहे है—इसका क्या कारण है—यह हमको बतलाने की कृपा कीजिए ॥१०॥ श्री परमेष्ठी पितामह ने कहा—हे मुनिगणो ! आप इसका कारण सुनिए। मैं संक्षेप मे इसे बतलाता हूँ। मैं इस ज्येष्ठ मास की उन अन्य मासो से जो बारम्बार प्रशंसा क्यो करता हूँ ॥११॥ इस पृथिवी मे जितने भी तीर्थ हैं—सरिताएँ, सरोवर, पुष्करिणियाँ, तालाव, बावडी, कूप, ह्रद—अनेक नदियाँ और समुद्र हैं ये पुरुषोत्तम मे सप्ताह के लिये ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की दशमी से लेकर सर्वदा प्रत्यक्ष रूप को प्राप्त किया करते है ॥१२-१३॥ इसी कारण से हे द्विजो ! उस अवसर पर जो वहाँ स्नान दान आदि तथा देव दर्शन जो कुछ भी किया जाता है उस समय मे अक्षय हुआ करता है ॥१४॥

शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तमाः ।
हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥१५

यस्तस्या हलिन कृष्ण पश्येद्भद्रा सुसयतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोक व्रजेन्नर ॥१६
उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमम् ।
दृष्ट्वा राम सुभद्रा च विष्णुलोक व्रजेन्नरः ॥१७
नरा दोलागत दृष्ट्वा गोविन्द पुरुषोत्तमम् ।
फाल्गुन्या प्रयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुर व्रजेत् ॥१८
विषुद्दिवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थी विधानत. ।
कृत्वा सकर्षण कृष्ण दृष्ट्वा भद्रा च भो द्विजा. ॥ १९
नरः समस्तयज्ञाना फल प्राप्नोति दुर्लभम् ।
विमुक्त सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति ॥२०
य. पश्यति तृतीयाया कृष्ण चन्दनरूषितम् ।
वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम् ॥२१
ज्येष्ठ्या ज्येष्ठर्क्षयुक्ताया य. पश्येत्पुरुषोत्तमम् ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोक स गच्छति ॥ २

हे द्विजोत्तमो ! ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष की जो दशमी तिथि है वह दश प्रकार के पापो का अपहरण किया करती है इसीलिये वह दशहरा कही गयी है ॥१५॥ जो नर उसतिथि के दिन में हलधर बलराम-श्रीकृष्ण और सुभद्रा देवी का सुसयत होकर दर्शन करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक को गमन करता है। उत्तरायण और दक्षिणायन में भगवान् पुरुषोत्तम-श्री बलराम और सुभद्रा का जो पुरुष दर्शन प्राप्त करता है वह विष्णुलोक को चला जाता है ॥१६-१७॥ फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन प्रयत होकर जो मनुष्य दोला में विराजमान पुरुषोत्तम गोविन्द का दर्शन किया करता है वह सीधा गोविन्द के ही पुर को जाया करता है ॥१८॥ विषुवद् दिवस में प्राप्त होने पर पञ्च-तीर्थी के विधान से हे द्विजगण ! भगवान् सङ्कर्षण-श्रीकृष्ण और सुभद्रा देवी के दर्शन करता है वह मनुष्य समस्त यज्ञो के यजन करने का दुर्लभ फल प्राप्त किया करता है और सब पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक को गमन कर जाता है ॥१९-२०॥ जो वैशाख मास के कृष्ण पक्ष में

तृतीया के दिन में चन्दन से रूपित श्रीकृष्ण का दर्शन किया करता है वह सीधा अच्युत भगवान् के मन्दिर को प्राप्त हुआ करता है ॥२१॥ ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तिथि में जो कि ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो पुरुषोत्तम का दर्शन किया करता है वह स्वयं तो उत्तम पद विष्णुलोक को प्राप्त किया ही करता है साथ में अपने कुल की इक्कीस पीढ़ियों का भी उद्धार किया करता है ॥२२॥

—※—

३१—महाज्यैष्ठीप्रशंसावर्णन

यदा भवेन्महाज्यैष्ठी राशिनक्षत्रयोगत. ।
प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गन्तव्यं पुरुषोत्तमम् ॥१
कृष्णं दृष्ट्वा महाज्यैष्ठ्यां रामं भद्रां च भो द्विजाः ।
नरो द्वादशयात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥२
प्रयागे च कुरुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करे गये ।
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गङ्गासागरसंगमे ॥३
कोकामुखे शूकरे च मथुरायां मरुस्थले ।
शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरे सिन्धुसागरे ॥४
पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनखले द्विजाः ।
शङ्खोद्धारे द्वारकायां तथा बदरिकाश्रमे ॥५
लोहकुण्डे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने ।
कामालये कोटितीर्थे तथा चामरकण्टके ॥६
लोहार्गले जम्बुमार्गे सोमतीर्थे पृथूदके ।
उत्पलावर्तके चैव पृथुतुङ्गे सुकुब्जके ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जिस समय में राशि और नक्षत्र के योग से महा ज्येष्ठी होवे उस समय में मनुष्य को परमाधिक प्रयत्नों के साथ

पुरुषोत्तम प्रभु के आयतन पर जाकर उस महाज्यैष्ठी में हे द्विजगण ! श्री बलराम-श्रीकृष्ण और सुभद्रादेवी का दर्शन करके मनुष्य द्वादश यात्रा के तथा उससे भी अधिक फल को प्राप्त करता है ।।२।। प्रयाग में, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, गङ्गाद्वार, कुशावर्त्त, गङ्गासागर संगम, कोका-मुख, शूकर (सोरो) मथुरा, मरुस्थल, शालग्राम, वायुतीर्थ, मन्दर, सिन्धु-सागर, पिण्डारक में, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शङ्खोद्धार, द्वारका, बदरिकाश्रम, लोहाकुण्ड, अश्वतीर्थ, सर्वपाप प्रमोचन, कामालय, कोटि-तीर्थ, अमर कण्टक, लोहार्गल, जम्बुमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक उत्पला-वर्त्तक, पृथुतुङ्ग, गुकुब्जक ये सब भारत में महान् तीर्थ हैं ।।३-७।।

एकाम्रके च केदारे काश्यां च विरजे द्विजाः ।
कालञ्जरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने ।।८
महेन्द्रे मलये विन्ध्ये पारियात्रे हिमालये ।
सह्ये च शुक्तिमन्ते च गोमन्ते चार्बुदे तथा ।।९
गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः ।
सारस्वतेषु गोमत्या ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु ।।१०
गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा ।
तापी पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती द्विजाः ।।११
वितस्ता चन्द्रभागा च शतद्रुर्बाहुदा तथा ।
ऋषिकुल्या कुमारी च विपाशा च दृषद्वती ।।१२
सरयूर्नाकगङ्गा च गण्डकी च महानदी ।
कौशिकी करतोया च त्रिस्रोता मधुवाहिनी ।।१३
महानदी वैतरणी याश्चान्या नानुकीर्तिताः ।
अथवा किं बहूक्तेन भाषितेन द्विजोत्तमाः ।।१४

एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालञ्जर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्ध-मादन, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, परियात्र, हिमालय, सह्य, शुक्तिमान, गोमन्त, अर्बुद, गङ्गा, समस्त यमुना के तीर्थ, सरस्वती के तीर्थ, गोमती, सप्त, ब्रह्मपुत्र, ।।८-१०।। गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी, शिप्रा, चर्मण्वती, वितस्ता, चन्द्रभागा, शतद्रु, बाहुदा,

ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, दृषद्वती, ॥११-१२॥ सरयू, नाकगङ्गा, गण्डकी, महानदी, कौशिकी, करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहनी, महानदी, वैतरणी और जो अन्य नदियाँ तीर्थ हैं जिनका नाम निर्देश यहाँ पर नहीं किया गया है। हे द्विजोत्तमो ! अथवा बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है ॥१३-१४॥

पृथिव्या सर्वतीर्थेषु सर्वप्वायतनेषु च ।
सागरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च ॥१५
यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्यां लभेन्नरः ॥१६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे ।
महाज्यैष्ठ्या मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेप्सुभिः ॥१७
दृष्ट्वा रामं महाज्येष्ठं कृष्णं सुभद्रया सह ।
विष्णुलोकं नरो याति समुद्धृत्य स्वं कुलम् ॥१८
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ॥१९
स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभक्तो जितेन्द्रियः ।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०

इस पृथ्वी तल में सब तीर्थों में तथा समस्त आयतनों में, सागर शैलों में नदियों में और सरोवरों में जो भी पुण्य-फल राहु के द्वारा सूर्य के ग्रसित होने के समय में स्नान करने तथा दान करने से होता है वह सम्पूर्ण फल महाज्येष्ठी में श्री कृष्ण भगवान् के दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥१५-१६॥ इस कारण से सभी प्रकार के प्रयत्न प्रयत्नों के द्वारा हे मुनिश्रेष्ठो ! महाज्यैष्ठी में पुरुषोत्तम प्रभु के समीप में सब कामनाओं के फल प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले पुरुषों को अवश्य जाना चाहिए ॥१७॥ यहाँ पर महा ज्येष्ठ श्री बलराम, श्री कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करे। इससे मनुष्य अपने ही साथ अपने पूरे कुल का उद्धार करके विष्णुलोक को गमन किया करता है ॥१८॥

यहाँ पर परमोत्तम दिव्य भोगों का उपभोग करके महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है। पुण्यों के क्षीण होने पर वह चारों वेदों का ज्ञाता द्विज यहाँ पर होता है। अपने धर्म में रत, शान्त, कृष्णभक्त, जितेन्द्रिय होकर वैष्णव योग को प्राप्त कर फिर मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥१९-२०॥

—:※:—

३२—कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णन

कस्मिन्काले भवेत्स्नान कृष्णस्य कमलोद्भव ।
विधिना केन तद्ब्रूहि ततो विधिविदां वर ॥१
शृणुध्व मुनयः स्नान कृष्णस्य वदतो मम ।
रामस्य च सुभद्रायाः पुण्य सर्वाघनाशनम् ॥२
मासि ज्येष्ठे च सप्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदैवते ।
पौर्णमास्या तदा स्नान सर्वकाल हरेर्द्विजाः ॥३
सर्वतीर्थमयः कूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः शुचिः ।
तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा भवति द्विजा ॥४
तस्माज्ज्यैष्ठ्या समुद्धृत्य हैमाढ्यैः कलशैर्जलम् ।
कृष्णरामाभिषेकार्थं सुभद्रायाश्च भो द्विजा ॥५
कृत्वा सुशोभन मञ्चं पताकाभिरलं कृतम् ।
सुदृढ सुखसंचार वस्त्रैः पुष्पैरल कृतम् ॥६
विस्तीर्णं धूपित धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः ।
सितवस्त्रपरिच्छन्न मुक्ताहारावलम्बितम् ॥७

मुनिगण ने कहा—हे कमलोद्भव ! आप तो विधि-विधान के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं। अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि श्रीकृष्ण

का स्नान किस समय में और किस विधि से होता है ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिगणो ! अब मैं श्रीकृष्ण के स्नान के विषय में बतलाता हूं आप श्रवण कीजिए । इसी भाँति श्री बलराम का और सुभद्रा देवी का स्नान भी बतलाऊँगा जो कि परम पुण्यमय एवं समस्त अघों का विनाश करनेवाला है ॥२॥ हे द्विजगण ! ज्येष्ठ मास में चन्द्र दैवत नक्षत्र के सम्प्राप्त होने पर उसी समय में पूर्णिमा तिथि में श्री हरि का स्नान सर्वकाल में होता है । सर्वतीर्थों से परिपूर्ण कूप होता है और उसमें निर्मल एवं शुचि होता है । उस समय में वहाँ पर भोगवती प्रत्यक्ष होती है ॥३-४॥ उससे ज्येष्ठी में हैमाब्य अर्थात् सुवर्ण निर्मित कलशों से जल को निकाले और हे द्विजो ! वह श्री बलराम-कृष्ण और सुभद्रा के लिये अभिषेक में लिया जाता है ॥५॥ उस अभिषेक के लिये एक मंच की रचना करना आवश्यक है जो कि परम शोभा से समन्वित हो और पताकाओं से भी विभूषित किया जावे । वह मंच सुदृढ़ सुख का संचार करने वाला तथा वस्त्रों और पुष्पों से मण्डित होना चाहिए ॥६॥ यह मंच श्री राम कृष्ण दोनों के अभिषेक के लिये विस्तार वाला तथा धूप से धूपित होना आवश्यक है । इस मंच को श्वेतवस्त्र से ढक देवे और इसके चारों ओर मुक्ताओं के हार लटका देवे ॥७॥

तत्र नानाविधैर्वाद्यैः कृष्णं नीलाम्बरं द्विजाः ।
मध्ये सुभद्रां चाऽऽस्थाप्य जयमङ्गलनिस्वनैः ॥८
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः ।
अनेकशतसाहस्रैर्वृतं स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः ॥९
गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः ।
स्नापयन्ति तदा कृष्णं मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥१०
तथा समस्ततीर्थानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः ।
क्षोदकैः पुष्पमिश्रैश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक् ॥११
पश्चात्पटहशङ्खाद्यैर्भेरीमुरजनिस्वनैः ।
काहलैस्तालशब्दैश्च मृदङ्गैर्झर्झरैस्तथा ॥१२

अन्यैश्च विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः ।
स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः ॥१३
जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः ।
श्रूयते सुमहाञ्छब्दः सागरस्येव गर्जतः ॥१४

उस मंच पर हे द्विजगणो ! अनेक प्रकार के वाद्यों के द्वारा तथा जय मङ्गल शब्दों के द्वारा नीले मेघ के समान वर्ण वाले भगवान् श्रीकृष्ण को तथा मध्य भाग में सुभद्रा जी को समास्थित करे ॥८॥ फिर हे द्विजो ! ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जाति वालों के द्वारा बहुत से सैकड़ों और सहस्रों सभी स्त्री और पुरुषों के से समावृत्त हलायुध (बलराम) के सहित मंच पर स्थित श्रीकृष्ण को गृहस्थ-स्नातक, यतिगण और ब्रह्मचारीगण उस समय में स्नपन कराते हैं ॥९-१०॥ हे उत्तम द्विजो ! उसी भाँति पूर्व में वर्णित समस्त तीर्थ पुष्पों से मिश्रित अपने २ जलों के द्वारा पृथक् २ स्नपन कराते हैं ॥११॥ इसके पश्चात् पटह-शंखादि-भेरी और मुरज की ध्वनियों से कोलाहल और ताल के शब्दों से तथा मृदङ्ग और झर्झरों से एवं अन्य विविध वाद्यों के द्वारा-घण्टा के स्वर (ध्वनि) से विभूषित स्त्रियों के मङ्गल वाचक शब्दों से मनोहर स्तवन के शब्दों से, जय शब्दों से, स्तोत्रों से, वीणा और वेणु के शब्दों से, गर्जना करते हुए सागर के समान महान् शब्दों का घोष सुनाई दिया करता है ॥१२-१४॥

मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथाऽपरैः ।
नानास्तोत्ररवैः पुण्यैः सामशब्दोपबृंहितैः ॥१५
यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः ।
स्नानकाले सुरश्रेष्ठ स्तुवन्ति परया मुदा ॥१६
श्यामवेश्याजनैश्चैव कुचभारावनामिभिः ।
पीतरक्ताम्बराभिश्च माल्यदामावनामिभिः ॥१७
सरत्नकुण्डलैर्दिव्यैः सुवर्णस्तवकान्वितैः ।
चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवौ ॥१८

यक्षविद्याधरैः सिद्धैः किन्नरैश्चाप्सरोगणैः ।
परिवार्याम्बरगतैर्देवगन्धर्वचारणैः ॥१९
आदित्या वसवो रुद्रा साध्या विश्वे मरुद्गणाः ।
लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्ति पुरुषोत्तमम् ॥२०
नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम ।
सर्गस्थित्यन्तकृद् व लोकनाथ जगत्पते ॥२१

उस स्नान के समय में मुनिगणों के द्वारा समुच्चारित वेद मन्त्रों की ध्वनि से, तथा दूसरे अनेक प्रकार के स्तोत्रों के शब्दों से, पुण्यमय सामवेद के शब्दों से उपबृंहित यति स्नातक गृहस्थ और ब्रह्मचारियों के द्वारा हे सुरश्रेष्ठो ! परमाधिक आनन्द से स्तुतियाँ की जाती हैं ॥१५ १६॥ अपने स्तनों के भार से अवनमन करने वाली श्याम केशयुक्त जनों के द्वारा माल्यों के भार से नीचे की ओर झुक जाने वाली तथा पीत और रक्त वस्त्र धारिणी नारियों के द्वारा रत्न जटित कुण्डलों से और दिव्य सुवर्ण के स्तवकों से युक्त रत्नों के दण्ड वाले चामरों से वे दोनों राम और केशव वीज्यमान होते हैं ॥१७-१८॥ यक्ष, विद्याधर सिद्ध, किन्नर, अप्सराओं के गण देव, गन्धर्व चारण लोग आकाश में चारों ओर घिरे हुए होते हैं। इन सबसे परिवारित आदित्य वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण साध्य विश्वेदेवा लोकपाल और अन्य सब उस समय में पुरुषोत्तम प्रभु का स्तवन किया करते हैं ॥१९ २०॥ उस समय में सभी यही स्तवन किया करते हैं—हे पुराण पुरुषोत्तम ! आप तो देवों के भी देवता हैं और आप विश्व की सृष्टि स्थिति तथा अन्त करने वाले हैं। हे देव ! हे लोकों के स्वामिन् ! हे जगत् के पति ! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२१॥

त्रैलोक्यधारिणं देवं ब्रह्मण्यं मोक्षकारणम् ।
तं नमस्यामहे भक्त्या सर्वकामफलप्रदम् ॥२२
स्तुत्वैवं विबुधाः कृष्णं रामं चैव महाबलम् ।
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाशे व्यवस्थिताः ॥२३

गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा ।
देवतूर्याण्यवाद्यन्त वाता वान्ति सुशीतला. ॥२४
पुष्पमिश्रं तदा मेघा वर्षन्त्याकाशगोचराः ।
जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः ॥२५
शक्राद्या विबुधाः सर्वे ऋषयः पितरस्तथा ।
प्रजाना पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥२६
ततो मङ्गलसभारं विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।
अभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणा ॥२७
इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यः सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥२८

उन त्रैलोक्य के धारण करने वाले ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले मोक्ष के कारण स्वरूप सब कामनाओं के फल प्रदान करने वाले उन देव को हम नमस्कार करते है ॥२२॥ इस रीति से देवगण महान् बल वाले श्री राम एव कृष्ण का स्तवन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! तथा सुभद्रा देवी की स्तुति करके फिर सब आकाश मे व्यवस्थित हो जाया करते है ॥२३॥ देव गन्धर्व गान किया करते है—अप्सराएँ नृत्य करती हैं—देवो के तूर्य बजाये जाते है और वायु परम शीतल होकर वहन किया करते हैं ॥२४॥ उस सुसमय पर आकाश मे दिखाई देने वाले मेघ पुष्पो से मिश्रित जल की वृष्टि किया करते हैं। मुनिगण-सिद्ध और चारण जय-जयकार के शब्दो का उच्चारण किया करते हैं ॥ ५॥ इन्द्र आदि देवता सब ऋषिगण पितृगण प्रजापतियो के समुदाय नाग तथा अन्य स्वर्ग निवासी सभी जय-जयकार किया करते है ॥२६॥ इसके पश्चात् मङ्गल के सभारो से विधि मन्त्रो से पुरस्कृत अभिषेक के द्रव्य को देवगण ग्रहण करके वहाँ पर स्थित रहते है ॥२७॥ उनके कतिपय प्रमुख नामो को बतलाया जाता है—इन्द्र विष्णु जो महान् वीर्य से युक्त हैं—सूर्य चन्द्रमा-धाता-विधाता-अनिल अनल ये सब देवता वहाँ पर उपस्थित रहते हैं ॥२८॥

पूषा भगोऽर्यमा त्वष्टा अंशुनैव विवस्वता ।
पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥२९
रुद्रैर्वसुभिरादित्यै रश्विभ्यां च वृतः प्रभुः ।
विश्वैर्देवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥३०
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ।
देवर्षिभिरसङ्ख्येयैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः ॥३१
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः ।
भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च सर्वविद्यासुनिष्ठितैः ॥३२
सर्वविद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धिभिरावृतः ।
पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥३३
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च ।
क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ॥३४
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च द्विजोत्तमाः ।
मूर्त्तिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातनाः ॥३५

पूषा, भग, अयमा, त्वष्टा जो अंशु और विवस्वान् धीमान् पत्नियों के सहित हैं। मित्र, वरुण, रुद्र, वसु, आदित्य और अश्विनी कुमारों से प्रभु परिवृत रहते हैं। विश्वेदेवा, मरुद्गण, साध्य, पितृगण गन्धर्व, अप्सराएं यक्ष, राक्षस और पन्नगों से पुरुषोत्तम प्रभु उस समय में घिरे हुए रहते हैं। असंख्य देवर्षि गण तथा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों से भी चारों ओर में आवृत रहते हैं ॥२९-३१॥ वैखानस, बालखिल्य, वायु के आहार करने वाले, मरीचिप, सब विद्याओं में परिनिष्ठित भृगु और अङ्गिरा, सब विद्याओं के धारण करने वाले पुण्यात्मा योग सिद्धियों के द्वारा वे आवृत रहते हैं। उस अभिषेक के समय पर पितामह, पुलस्त्य पुलह, महात्मा अङ्गिरा कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु क्रतु, हर, प्रचेता, मनु दक्ष-ये सब उस अभिषेक के समय में उपस्थित थे ॥३२-३४॥ सब ऋतुएँ, समस्त ग्रह, ज्योतिगण, मूर्त्तिमती सब सरिताएँ और सनातन सब देवगण वहाँ पर थे ॥३५॥

समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमा. ॥३६
अदितिर्देवमाता च ह्री· श्रीः स्वाहा सरस्वती ।
उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥३७
राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम् ।
हिमवाश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥३८
ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च ।
मासार्धं मासऋतवस्तथा रात्र्यहनी समाः ॥३९
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वामनः ।
अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥४०
धर्मश्च भगवान्देव· समाजग्मुर्हि सगता. ।
कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥४१
बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणा. ।
ते देवस्याभिषेकार्थी समायान्ति ततस्ततः ॥४२

द्विजोत्तमो ! सब समुद्र, ह्रद, विविध तीर्थ, पृथिवी, द्यौ, दिशाऐं समस्त पादप, देवमाता अदिति, ह्री, श्री स्वाहा, सरस्वती, उमा शची, सिनी वाली, अनुमति, कुहू, राका, धिषणा, देवगणो की अन्य पत्नियाँ ये सब वहाँ पर उस समय मे विद्यमान थे । हिमवान्, विन्ध्य, मेरु, अनेक शृङ्गवान्, ऐरावत, अनुचरो के सहित, कला, काष्ठा, मास का अर्धभाग पक्ष, मास, सब ऋतुऐं, रात्रि, दिन, समा, हयो मे श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, नागराज, वामन, अरुण, गरुड, सब वृक्ष, समस्त औषधिया, भगवान् देव धर्म मे सभी सगत होकर वहाँ पर समागत हुए थे । काल, यमराज, मृत्यु, और समस्त यम के अनुचर गण, देवगण अनेक और बहुत हैं वे सब नही बतलाय गये हैं। वे सभी जिनके नाम नही बतलाये गये हैं इधर-उधर से पुरुषोत्तम देव के अभिषेक के लिए समागत होते हैं ॥३६–४२॥

गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिवौकसः ।
आभिषेचनिकं द्रव्यं मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३

दिव्यसंभारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्द्विजाः ।
सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव च ॥४४
तोयेनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्णं रामेण संगतम् ।
सपुष्पैः काञ्चनैः कुम्भैः स्नापयन्त्यवनिस्थिताः ॥४५
संचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तथा ।
उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः ।
गीतवाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥४७
एवं तदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं रामेण संगतम् ।
स्नापयित्वा सुभद्रां च संस्तुवन्ति मुदाऽन्विताः ॥४८

देवराज जय जय कैटभारे जय जय वेदवर जय जय कूर्मरूप जय जय यज्ञवर जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय योगशायिन्नय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर जय जय भूतनाथ जय जय धरणीधर जय जय शेषशायिन्नय जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय दहनवक्त्र जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय धर्मनेतो जय जय महीनिवास जय जय गहनचरित्र जय जय योगिगम्य जय जय मखनिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शान्तिकर जय जय योगिचिन्त्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय जय कमलाकर जय जय भावबेद्य जय जय मुक्तिकर जय जय विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय जय जय गुणसमृद्ध जय जय यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूशरण्य जय जय कान्तियुत जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मीयुत जय जय पङ्कजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत जय जयातसीकुसुमश्यामदेह जय जय समुद्रविष्टदेह जय जय लक्ष्मीपङ्कजपट्चरण जय जय भक्तवश जय जय लोककान्त जय जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्षकर जय जय कलुषहर ॥४६

अब गद्यस्तवन जिस प्रकार से किया जाता है वह बतलाते हैं—हे देवेश्वर ! आप सब लोकों के पालन करने वाले हैं आपकी सदा जय जय होवे। आप अपने भक्तों की रक्षा करने वाले हैं आपका जय-जयकार होवे। आप शरणागति में आने वाले प्रणतों पर प्यार करने वाले हैं आपकी सदा जयकार होवे। हे भूत चरण ! आपकी जय होवे। आप आदि देव हैं तथा बहुतों के कारण हैं आपका सदा जयकार होवे। हे वासुदेव ! आपकी जय हो। हे असुरों के संहार करने वाले !

आपकी जय हो। हे दिव्यमीन ! आपका जय जयकार होवे। हे देवों में परमश्रेष्ठ ! आपकी जय हो। आप जलधि में शयन करने वाले तथा योगियों में परम श्रेष्ठ हैं आपकी जय होवे। हे सूर्य के नेत्र वाले ! आप देवों के राजा हैं और हे कैटभ असुर के हनन करने वाले ! आप देवों में परमश्रेष्ठ पुकारे जाते हैं आपकी जयकार हो। हे कूर्म का स्वरूप धारण करने वाले ! आप यज्ञों में श्रेष्ठ हैं तथा नाभि में कमल रखने वाले हैं आपकी सर्वदा जय हो। हे शैलों पर चरण करने वाले ! आप योगावस्था में शयन करने वाले तथा वेदों को धारण करने वाले हैं आपकी जय हो। हे विश्व की मूर्ति वाले ! तथा हे चक्र को धारण करने वाले ! आप समस्त भूतों के नाथ हैं और इस धरणी को धारण करने वाले हैं आपका सदा जयकार होवे। हे शेष की शय्या पर शयन करने वाले ! आप पीताम्बर धारी हैं—चन्द्र के समान सुन्दर हैं तथा योग में ही वास किया करते हैं आपकी जय हो। हे दहन के मुख वाले ! हे धर्म के निवास से युक्त आप गुणों की खान हैं—आप में श्री का निवास रहता है और सदा अपने वाहन गरुड़ पर बैठ कर गमन किया करते हैं आपकी सदा जयकार होवे। हे गुह्य के आश्रय ! आप धर्म के केतु हैं आपकी जय हो। हे भूमि पर निवास करने वाले अथवा मही को आश्रय देने वाले ! आपका चरित्र बहुत ही महान है—आप योगियों के द्वारा जानने के योग्य हैं—यज्ञों में आप विद्यमान रहा करते हैं—वेदों के द्वारा आपका ज्ञान होता है और आप शान्ति के करने वाले हैं आपका अनन्त बार जय-जयकार होवे। हे योगिजनों के द्वारा चिन्तन करने के योग्य ! आप पुष्टि के करने वाले हैं—ज्ञान की मूर्ति हैं—कल्पना के आकार हैं—भावना के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हैं और आप मानव का संसार के जन्म मरण जय के बारम्बार बन्धन से छुटकारा देने वाले हैं—आपका कर्म पुण्यमय निर्मल है अर्थात् कर्मों का कोई भी प्रभाव आपके देह पर नहीं होता है। आपकी जय हो। हे नरक रिपु ! आप गुण गणों से समृद्धि प्राप्त करने वाले हैं—धर्मों के करने वाले—मोक्ष को प्रदान करने वाले—भूमि को धारण

देने वाले और कान्ति से युक्त है अर्थात् पूर्ण कान्ति से सुसम्पन्न है। आपका सर्वदा जय जयकार हो। हे लोको को सुरक्षा प्रदान करने वाले ! आप लक्ष्मी से युक्त हैं—कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों वाले हैं—सृष्टि के करने वाले हैं—योग से युक्त हैं—अलसी के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले है—समुद्र मे विष्ट देह वाले हैं आपकी जय-जयकार होवे। हे महालक्ष्मी के स्वरूप रूप कमल के लिये भ्रमर के समान हैं। आप अपने भक्तो के वश मे रहते है—लोको के कान्त है—परम शान्त स्वरूप है—परमाधिक तार रूप है—सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले हैं भोगियो से युक्त हैं—हे नीले अम्बर वाले ! हे शान्ति के करने वाले ! मोक्ष के कर्त्ता और आप कलुषो के हरण करने वाले है—आपका सदा-सर्वदा जय-जयकार होवे ॥४९॥

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सकर्षणानुज ।
जय पद्मपलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद ॥५०
जय मालावृतोरस्क जय चक्रगदाधर ।
जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥५१
एव स्तुत्वा तदा देवाः शक्राद्या हृष्टमानसाः ।
सिद्धचारणसघाश्च ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥५२
मुनयो वालखिल्याश्च कृष्ण रामेण सगतम् ।
सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठाः प्रणिपत्याम्बरे स्थिताः ॥५३
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवौकसः ।
कृष्ण राम सुभद्रा च यान्ति स्व स्व निवेशनम् ॥५४
सचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा ।
उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥५५
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः ।
गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥५६

हे जगत् के नाथ कृष्ण ! आपकी जय हो। हे सङ्कर्षण भगवान् के छोटे भाई ! आपका जयकार हो। हे पद्म के दलों के समान लोचनो वाले ! आप वाञ्छा के अनुसार फल प्रदान करने वाले हैं। आपकी

जय-जयकार होवे ॥५०॥ हे माताओं के समान कामनाओं वाले ! हे शङ्ख गदा दोनों के धारण करने वाले ! हे महालक्ष्मी देवी के स्वामिन् ! हे विष्णु देव ! आपका सर्वदा जयकार होवे और हमारा आपकी चरण सेवा में प्रणाम समर्पित है ॥५१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस महानिदेश के समय में इस प्रकार से इन्द्र प्रभृति देवों ने परम प्रसन्न होकर स्तवन किया था और सिद्ध तथा चारणों के गणों के सहित अन्य स्वर्ग लोक में निवास करने वालों ने भी मधुसूदन विष्णुदेव की स्तुति की थी ॥५२॥ बालखिल्य मुनियों ने राम के सहित स्थित श्रीकृष्ण और सुभद्रा को प्रणिपात किया था और फिर वे सभी आकाश में स्थित हो गये थे ॥५३॥ उस काल में उन सब सिद्ध के निवासियों ने दर्शन करके स्तवन करके श्रीकृष्ण-राम और सुभद्रा जी को प्रणाम किया था फिर वे सब अपने २ निवास स्थलों को गमन किया करते हैं ॥५४॥ उस महाभिषेक के शुभावसर पर देवों के विमान अम्बर में सञ्चरण किया करते हैं जो कि ऊँचे और नीचे हैं—परम दिव्य-कामनानुसार गमन करने वाले तथा स्थिर हैं ॥५५॥ वे देवों के विमान परम दिव्य रत्नों से अतीव अद्भुत हैं और अप्सराओं के गणों के द्वारा सुसेवित हैं तथा गीत वाद्यों के द्वारा और पताकाओं से वे विमान सुन्दर शोभा से युक्त थे ॥५६॥

तस्मिन्काले तु ये मर्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ।
बलभद्र सुभद्रा च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥५७

सुभद्रारामसहित मञ्चस्थ पुरुषोत्तमम् ।
दृष्ट्वा निरामय स्थान यान्ति नास्त्यत्र संशयः ॥५८

कपिलाशतदानेन यत्फल पुष्करे स्मृतम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ सहलायुधम् ॥
सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभमुद्धरः ॥५९

कन्याशतप्रदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥६०

सुवर्णशतनिष्काणां दानेन यत्फलं स्मृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६१
गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६२
भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६३

उस समय पर जो मनुष्य पुरुषोत्तम प्रभु बलभद्र और सुभद्रा का दर्शन किया करते हैं वे सीधे अव्यय पद को प्राप्त किया करते हैं ॥५७॥ सुभद्रा देवी और बलराम जी के सहित महामञ्च पर विराजमान श्री पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन करके परम निरामय स्थान को गमन किया करते है—इसमे किञ्चिन्मात्र भी संशय नही है ॥५८॥ एक सौ कपिला गौओं के दान का जो पुष्कर राज में पुण्य फल होता है वही फल हलायुध प्रभु के साथ मञ्च पर स्थित श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त करके तथा सुभद्रा देवी का अवलोकन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! शुभ कर्म करने वाला नर प्राप्त कर लिया करता है ॥५९॥ एक सौ कन्याओं के दान करने से जो फल बताया गया है उसी फल की प्राप्ति मंच पर विराजमान श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य किया करता है ॥६०॥ एक सौ सुवर्ण के निष्क (एक प्राचीन सिक्का तथा परिमाण का नाम है) के दान से जो पुण्य-फल कहा गया है उसी फल को मंच पर विराजमान श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥६१॥ एक सहस्र गौओं के दान करने का जो भी पुण्य फल कहा गया है उसी फल को मंच पर समवस्थित श्रीकृष्ण का दर्शन करके मनुष्य पा लेता है ॥६२॥ विधिपूर्वक भूमि के दान से जो फल बताया गया है उसी फल को मंचस्थ कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥६३॥

यत्फलं चान्नदानेन अर्घातिथ्येनकीर्तितम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६४
वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः ॥६५

यत्फल तोयदानेन ग्रीष्मे वाऽन्यत्र कीर्त्तितम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥६६
तिलधेनुप्रदानेन यत्फल सप्रकीर्त्तितम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥६७
गजाश्वरथदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥६८
सुवर्णशृङ्गीदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥६९
जलधेनुप्रदानेन यत्फल समुदाहृतम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥७०

जो फल अन्न के दान से तथा अर्घ्य के सहित आतिथ्य करने से कहा गया है वही फल मञ्चस्थ श्रीकृष्ण का दर्शन कर प्राप्त हो जाता है ॥६४॥ शास्त्रोक्त विधान के साथ जो एक वृष के उत्सर्ग करने का फल कहा गया है वही फल अभिषेक के मञ्च पर विराजमान श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन से प्राप्त हो जाया करता है ॥६५॥ ग्रीष्म के तपन काल मे जो फल जल के दान का अन्य स्थल मे बताया गया है वही पुण्य का फल मञ्चपद पर विराजमान श्री कृष्ण के दर्शन से हो जाता है ॥६६॥ तिल और धेनु के दान का जो फल कहा गया है वह मञ्चस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से मनुष्य पा जाता है ॥६७॥ गज-अश्व और रथ के दान का जो फल होता है वह मञ्च पर स्थित श्रीकृष्ण के दर्शन से होता है ॥६८॥ सुवर्ण शृङ्गी के दान के फल के समान मचस्थ श्रीकृष्ण-दर्शन से प्राप्त होता है ॥६९॥ जल धेनु के दान के फल के तुल्य ही मचस्थित श्रीकृष्ण दर्शन से हुआ करता है ॥७०॥

दानेन घृतधेन्वाश्च फलयत् समुदाहृतम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥७१
चान्द्रायणेन चीर्णेन यत्फल समुदाहृतम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥७२

मासोपवासैर्विधिवद्यत्फल समुदाहृतम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ लभते नरः ॥७३
अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुन. पुन. ।
तस्य देवस्य माहात्म्य मञ्चस्थस्य द्विजोत्तमा. ॥७४
यत्फल सर्वतीर्थेषु व्रतैर्दानैश्च कीर्तितम् ।
तत्फल कृष्णमालोक्य मञ्चस्थ सहलायुधम् ॥७५
सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा प्राप्नोति शुभकृन्नर. ।
तस्मान्नरोऽथवा नारी पश्येत पुरुषोत्तमम् ॥७६
तत. समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिक फलम् ।
स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिषिच्यते ॥७७

घृत धेनु के दान का जो फल कहा गया है वही पुण्य फल मञ्च-स्थित कृष्ण दर्शन से होता है ॥७१॥ चान्द्रायण महाव्रत के चीर्ण करने से जो फल बताया गया है वही फल मञ्चस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से वह प्राप्त कर लेता है ॥७२॥ एक मास के लम्बे उपवास से जो फल बताया गया है वही मञ्चस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥७३॥ इसके पीछे बारम्बार बहुत कथन से क्या लाभ है जो कि हे द्विजगणो ! उन देवेश्वर के मंच पर विराजमान के दर्शन का माहात्म्य हुआ करता है क्योंकि सभी तरह के महान् पुण्यो का फल इससे प्राप्त हो जाया करता है ॥७४॥ जो फल समस्त तीर्थों मे व्रतो और दानो के करने से हुआ करता है वह केवल एकमात्र मंचस्थ श्रीकृष्ण के दर्शन से ही जाया करता है जो कि हलायुध के सहित विराजमान रहते है ॥७५॥ हे मुनियो मे परम श्रेष्ठो ! सुभद्रा देवी जी का दर्शन कोई परम शुभ कर्म करने वाला ही पुरुष प्राप्त किया करता है । इस लिये नर हो अथवा नारी हो उन पुरुषोत्तम प्रभु का उनको दर्शन अवश्य ही करना चाहिए ॥७६॥ इसके अनन्तर जो श्रीकृष्ण के स्नान से शेष जल है उसके द्वारा अपने आपका अभिषिञ्चन किया जाता है वह समस्त तीर्थों के स्नान करने आदि के पुण्य फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥७७॥

वन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता ।
राक्षसाद्यं गृंहीता या तथा रोगैश्च संहृता ॥७८
सद्यस्ता स्नानशेषेण उदकेनाभिषेचिता ।
प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७६
पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्सौभाग्य च सुखार्थिनी ।
रोगार्ता मुच्यते रोगाद्धन च धनकाङ्क्षिणी ॥८०
पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले ।
तानि स्नानावशेषस्य कला नाहन्ति षोडशीम् ॥८१
तस्मात्स्नानावशेष यत्कृष्णस्य सलिल द्विजा ।
तेनाभिषिञ्चेद्गात्राणि सर्वकामप्रद हि तत् ॥८२
स्नात पश्यन्ति ये कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम् ।
ब्रह्महत्यादिभि पापैर्मुच्यन्ते ते न सशय ॥८३
शास्त्रेषु यत्फल प्रोक्त पृथिव्याख्रिप्रदक्षिणे ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण व्रजन्त दक्षिणामुखम् ॥८४

जो नारी वन्ध्या हैं अथवा जिसकी सन्तान समुत्पन्न होकर मृत हो जाया करती हैं—जो दुर्भाग्य वाली-ग्रहो से सतायी हुई हैं—जो राक्षसादि के द्वारा गृहीत हैं—जो रोगो स युक्त हैं वे सभी प्रकार से पीडित नारियाँ स्नान स बचे हुए जल स अभिषेचित होकर तुरन्त ही सब कष्टो से छूट जाया करती हैं तथा अपने अभीष्ट मनोरथो को प्राप्त कर लेती हैं जो भी वे मन म इच्छा किया करती हैं ॥७८ ७६॥ जो पुत्र की अभिलाषा रखती हैं व पुत्रो का प्राप्त कर लिया करती हैं—जो सुखो की चाह रखती हैं वे परम सौभाग्य का लाभ लिया करती हैं। रोगो से पीडित नारी रोग से मुक्त हो जाती हैं और धन की आकाक्षा रखने वाली धन लाभ करती हैं ॥८०॥ इस धरणी तल मे जो भी पुण्यमय जल स्थित हैं वे सभी इस श्रीकृष्ण के अभिषेक से बचे हुए जल की सोलहवी कला के योग्य नही हो सकते हैं ॥८१॥ इसलिय हे द्विजो ! श्रीकृष्ण के स्नानावशेष जो परम पावन जल हैं उससे अपने समस्त अङ्गो का अभिषिञ्चन करना चाहिए क्योंकि वह सभी प्रकार की कामनाओ के फल प्रदान

करने वाला होता है ॥८२॥ दक्षिण की ओर अभिमुख स्नान करते हुए श्रीकृष्ण का जो दर्शन किया करते हैं वे ब्रह्महत्या प्रभृति जो महान् पाप हैं उन सबसे छूट जाता है—इसमें संशय नहीं है ॥८३॥ शास्त्रों में इस पृथिवी की तीन प्रदक्षिणाओं के करने का जो फल बताया गया है उसको दक्षिण की ओर मुख करके गमन करने वाले श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त कर लिया करता है ॥८४॥

तीर्थयात्राफलं यत्तु पृथिव्यां समुदाहृतम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८५
बदर्यां यत्फलं प्रोक्तं दृष्ट्वा नारायणं नरम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८६
गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८७
प्रयागे च महामाघ्यां यत्फलं समुदाहृतम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८८
शालग्रामे महाचैत्र्यां स्नानदानेन यत्फलम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८९
महाभिधानकार्तिक्यां पुष्करे यत्फलं स्मृतम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९०
यत्फलं स्नानदानेन गङ्गासागरसंगमे ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९१

जो पृथिवी में तीर्थों की यात्रा का फल बताया गया है वही सम्पूर्ण फल दक्षिणा मुख कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥८५॥ बदरी आश्रम में नर नारायण का दर्शन प्राप्त करने से जो पुण्य का फल प्राप्त होता है उसको दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण का दर्शन करके मनुष्य पा जाता है ॥८६॥ गङ्गा द्वार में कुरुक्षेत्र में स्नान करने तथा दान देने से जो फल होता है वही पुण्य फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥८७॥ महामाघी में प्रयाग में जो फल बताया गया है वही फल दक्षिणामुख श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन से

हुआ करता है ।।८८।। महा चैत्री मे शालग्राम मे स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य फल दक्षिणा की ओर मुख वाले श्री कृष्ण के दर्शन से हुआ करता है ।।८६।। महाभिधान कार्तिकी मे पुष्कर मे जो फल बताया गया है वही फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण को अवलोकन करके प्राप्त कर लिया करता है ।।६०।। गङ्गा सागर के सगम म स्नान करने तथा दान करने से जो परम पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है वह फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन करने से प्राप्त हो जाया करता है ।।६१।।

ग्रस्ते सूर्ये कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ।।६२
गङ्गाया सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजा ।
सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सर सु च ।।६३
यत्फल स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम् ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ।।६४
पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्टके ।
नैमिषादिषु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ।।६५
यत्फल स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ।।६६
अथ किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुन पुन ।
यत्किंचित्कथित चात्र फल पुण्यस्य कर्मण ।।६७
वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमा ।
धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभि ।।६८
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल सहलायुधम् ।
सकल भद्रया सार्धं व्रजन्त दक्षिणामुखम् ।।६६

कुरुक्षेत्र में सूर्य के ग्रस्त हो जाने पर अर्थात् सूर्य ग्रहण के समय म स्नान एव दान से जो फल मनुष्य को मिलता है ठीक वैसा ही फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के अवलोकन से हो जाता है ।।६२।। हे

द्विजगणो ! गङ्गा में यमुना के सभी तीर्थों में सरस्वती के समस्त तीर्थों में तथा अन्य पुण्यमय सरोवरों में स्नान से तथा दान देने से जितना भी पुण्य का विधिवत् करने से फल प्राप्त हुआ करता है वही फल केवल एक दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥९३-९४॥ पुष्कर में-तीर्थों में-गया में-अमर कण्टक में-नैमिषारण्य आदि में तथा अन्य तीर्थों में, क्षेत्रों में और देवायतनों में राहु के द्वारा ग्रस्त हुए दिवाकर के समय में स्नान एवं दान करने से जो फल मिलता है वही पूरा फल दक्षिणाभिमुख श्री कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होता है ॥९५-९६॥ बारम्बार कथन से और उसी बात को दुबारा-तिबारा पुनः बोलने से क्या लाभ है निष्कर्ष में बात यह है कि यहाँ पर पुण्य कर्म्म का जितना भी कुछ कहा गया है और द्विजोत्तमो ! महामनीषियों ने धर्म शास्त्रों में-सब वेदों में-पुराणों में और भारत में जो भी बताया गया है वह सम्पूर्ण पुण्य कर्म्म का फल ज्येष्ठ भाई हलायुध के सहित एवं सुभद्राजी के साथ गमन करते हुए दक्षिण की ओर मुख वाले श्री कृष्ण के दर्शन करने से मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥९७–९९॥

३३—तीर्थ संख्या के विषय में नारदजी का प्रश्न

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः ।
जपहोमव्रतानां च तपोदानफलानि च ॥१
न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सदृशं भुवि ।
किं चात्र बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥२
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत् ।
पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भः समाप्लुतम् ॥३
ब्रह्मविद्यां सकृज्ज्ञात्वा गर्भवासो न विद्यते ।
हरेः सन्निहिते स्थाने उत्तमे पुरुषोत्तमे ॥४

संवत्सरमुपासीत मासमात्रमथापि वा ।
तेन जप्तं हुतं तेन तेन तप्तं तपो महत् ॥५
स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ।
भुक्त्वा भोगान्विचित्रांश्च देवयोषित्समन्वितः ॥६
कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः ।
जायते योगिनां विप्रा ज्ञानज्ञेयोद्यतो गृहे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! समस्त तीर्थों के-सब क्षेत्रों के और जाप, होम और सब व्रतों के तपों दान के जो पुण्य फल होते हैं, हे विप्रो ! मैं इस भूमण्डल में वैसा इसके समान कुछ भी नहीं देखता हूँ। यहाँ इस विषय में बहुत अधिक कहने से तथा बारम्बार भाषण करने से क्या लाभ है ॥१-२॥ यह सर्वथा सत्य है और पूर्णतया सत्य है एवं परम सत्य है कि वह परमाधिक एवं महान् क्षेत्र है कि सागर के जल में समाप्लुत पुरुष नाम धारी प्रभु का दर्शन करके और ब्रह्म विद्या का ज्ञान एक बार प्राप्त करके फिर गर्भ में वास नहीं हुआ करता है अर्थात् पुनर्जन्म की वेदना नहीं होती है। श्री हरि के सन्निहित उत्तम पुरुषोत्तम स्थान में एक वर्ष तक अथवा केवल एक मास पर्यन्त ही उपासना करनी चाहिए। उस पुरुष ने सब जाप कर लिया समझो तथा होम और महान् तपस्या भी करली है—ऐसा ही मान लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उसको फिर किसी भी जप-तपादि एवं होम करने की आवश्यकता अपने कल्याण के लिये नहीं होती है ॥३-५॥ वह पुरुष तो उतने ही करने से परम स्थान को प्राप्त हो जाता है जहाँ पर योगेश्वर श्री हरि विराजमान रहा करते है। वहाँ पर देवाङ्गनाओं के साथ रह कर अतीव अद्भुत एवं भोगों का उपभोग करके एवं कल्प के अवसान होने पर वह श्रेष्ठ नर पुनः इस मनुष्य लोक में आया करता है और योगियों के गृह में हे विप्रो ! ज्ञान द्वारा ज्ञेय के प्राप्त करने के लिए उद्यत होने वाला होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥६-७॥

संप्राप्य वैष्णव योग हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत् ।
कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह ॥८
मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं माधवस्य च ।
स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात् ॥९
मार्जनस्य यथाकाले भागीरथ्याः समागमम् ।
सर्वमेतन्मया ख्यात यत्परं श्रोतुमिच्छथ ॥१०
इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथित मया ।
सर्वाश्चर्य समाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम् ॥
पुराणं परम गुह्यं धन्यं ससारमोचनम् ॥११
नहि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां तीर्थविस्तरम् ।
पुनरेव पुरं गुह्यं वक्त महर्स्यशेषतः ॥
पर तीर्थस्य माहात्म्य सर्वतीर्थोत्तमम् ॥१२
इममेव पुरा प्रश्न पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमाः ।
नारदेन प्रयत्नेन तदा त प्रोक्तवानहम् ॥१३
तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां पावन स्मृतम् ।
सर्वं श्रुत मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते ॥१४
कियन्ति सन्ति तीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसातले ।
सर्वेषामेव तीर्थानां सवदा किं विशिष्यते ॥१५

फिर वह यहाँ पर हरि के वैष्णव योग को प्राप्त करके परम स्वच्छन्दता को गमन किया करता है। मैंने कल्प वृक्ष का-सुभद्रा के साथ कृष्ण का मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्न का-माधव का-तथा स्वर्ग द्वार का माहात्म्य तथा क्रम से सागर के मार्जन का विधान और यथा काल में भगवती भागीरथी का समागम-यह सभी वर्णित कर दिया है। अब इससे आगे आप लोग क्या श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं ? ॥८-१०॥ इन्द्र द्युम्न का यह माहात्म्य भी मैंने कह दिया है। मैंने सभी आश्चर्य कह दिये हैं और पुरुषोत्तम प्रभु का जो परम रहस्य है वह भी आप लोगों को बतला दिया है। यह पुराण परमाधिक गोपनीय है तथा अतीव धन्य है और संसार के भय से छुड़ा देने वाला है ॥११॥

मुनियो ने कहा—हे भगवन्! यहाँ पर तीर्थों के विस्तार का जो वर्णन किया है उसका श्रवण करते हुए हमारी तृप्ति नहीं हो रही है। हमारी अब आगे यही आपकी सेवा मे प्रार्थना है कि पुन उस परम गोपनीय विषय का पूर्ण रूप से वर्णन करने के लिये आप योग्य हैं। समस्त तीर्थों मे उत्तम से भी उत्तम तीर्थ का परम माहात्म्य कहिए।१२। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजसत्तमो! पहिले भी इसी प्रश्न को देवर्षि नारद ने मुझ से पूछा था सो मैंने पूर्ण प्रयत्न के साथ उसको बतलाया था ॥१३॥ श्री नारदजी ने कहा था—तप कान्यश और तीर्थों का माहात्म्य मैंने हे जगत् के स्वामिन्! और जगत् के कारण! आप से सभी सुना है ।१४॥ स्वर्ग मे रसातल मे और मनुष्यलोक मे कितने तीर्थ हैं? उन सब तीर्थों मे सर्वदा क्या विशेषता होती है? ॥१५॥

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
दैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यार्षाणि च ॥१६
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभि।
मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षं तीर्थमनुत्तमम् ॥१७
आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम्।
आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं दैवं तत्सार्वकामिकम् ॥१८
ब्रह्मविष्णुशिवश्चैव निर्मितं दैवमुच्यते।
त्रिभ्यो यदेक जायते तस्माच्छ्रात परं विदु ॥१९
त्रयाणामपि लोकाना तीर्थं मेध्यमुदाहृतम्।
तत्रापि जाम्बवं द्वीपं तीर्थं बहुगुणोदयम् ॥२०
जाम्बवे भारतं वर्ष तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
कर्मभूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थं तदुच्यते ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—स्वर्ग पाताल और मर्त्यलोक मे चार प्रकार के तीर्थ होते हैं। हे मुनिशार्दूल! सुरादि के द्वारा त्रिलोक मे देवसुर आर्ष और मानुष ये चार प्रकार परम विख्यात हैं। जो मानुष

तीर्थ हैं उनसे आर्षतीर्थ अधिक उत्तम होते है ॥१६-१७॥ आर्ष तीर्थों से भी अधिक पुण्य प्रदान करने वाला असुर तीर्थ होता है। उसी भाँति आसुर तीर्थों से अधिक पुण्यप्रद दैव तीर्थ हुआ करता है जो कि सभी कामनाओं का देने वाला होता है ॥१८॥ जो तीर्थ ब्रह्मा विष्णु और शिव के द्वारा निर्मित होता है वही दैव तीर्थ कहा जाता है। यह तीर्थ जो तीनों देवों से समुत्पन्न होता है इसी कारण से सर्वोत्तम होता है और इससे उत्तम अन्य कोई भी नही हुआ करता है ॥१६॥ तीनों लोको मे तीर्थ को परम पवित्र कहा गया है। उसमे भी जम्बूद्वीप मे होने वाला तीर्थ बहुत गुणो के उदय वाला होता है ॥२०॥ इस जम्बूद्वीप मे भारतवर्ष तीर्थ त्रैलोक्य मे विख्यात है। हे पुत्र! यह भारतवर्ष कर्मों के करने की भूमि है इसी कारण से यह तीर्थ कहा जाया करता है॥२१॥

तत्रैव यानि तीर्थानि यान्युक्तानि मया तव ।
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पण्नद्यो देवसभवा ॥२२
तथैव देवजा ब्रह्मन्द क्षिणार्णवविन्ध्ययो ।
एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिता ॥२३
अभिमपूजित यस्माद्भारत बहुपुण्यदम् ।
कर्मभूमिरतो देववर्ष तस्मात्प्रकीर्तितम् ॥२४
आर्षाणि चैव तीर्थानि देवजानि क्वचित्क्वचित् ।
आसुरैरावृतान्यासस्तदेवाऽऽसुरमुच्यते ॥२५
दैवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षय. ।
दैवप्रभावात्तपस आर्षाण्यपि च तान्यपि ॥२६
आत्मन श्रेयसे मुक्त्यै पूजायै भूतयेऽथवा ।
आत्मन फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुन ॥२७
मानुषै कारितान्याहुर्मानुषाणीति नारद ।
एव चतुर्विधो भेदस्तीर्थाना मुनिसत्तमा ॥२८

इस भारत मे जो जो भी तीर्थ होते हैं वे सब मैंने आपको बतला दिये हैं। हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल इन दोनो के मध्य भाग मे

छै सरिताऐ ऐसी हैं जो देवा से ही समुत्पन्न हुई हैं ॥२२॥ उसी प्रकार से हे ब्रह्मन् ! दक्षिण सागर और विन्ध्याचल के मध्य म देवो से समुत्पन्न नदियाँ है। ये बारह नदियाँ प्रधान तथा बताई गयी हैं ॥२३॥ जिस कारण से बहुत पुण्य का प्रदान करने वाला यह भारत-वर्ष अभिसपूजित होता है। यह कर्मों के करने की भूमि है इसी कारण से देवों ने भी इसकी प्रशसा का कीर्त्तन किया है ॥२४॥ आर्ष और दैव तीर्थ कहीं कहीं पर ही हैं। जो आसुरा स आवृत्त है वे ही आसुर तीर्थ कहे जाते हैं ॥२५॥ दैव प्रदेशो म ही महर्षियो ने तपश्चर्या की है। दैव प्रभाव म और तप के प्रभाव से भी युक्त वे तीर्थ दैव और आर्ष दोनों ही हैं ॥२६॥ हे नारद ! आत्मा के श्रेय के लिये मुक्ति के लिये पूजा के निय अथवा भूति के लिये आत्मा की फल मूर्ति के लिये तथा पुत्र यश की प्राप्ति के लिये मानुषो के द्वारा जो कराये गये हैं वे मानुष तीर्थ है। हे मुनियो ! इस तरह से तीर्थों के चार भेद है ॥२७ २८॥

भेद न कश्चिज्जानाति श्रोतु युक्तोऽसि नारद।
बहव पण्डितमन्या ब्रुवन्ति कथयन्ति च॥
सुकृति योऽपि जानाति वक्तु श्रोतु निजगुण ॥२९
तथा स्वरूप भेद च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ॥३०
ब्रह्म कृतयुगादौ तु उपायोऽन्यो न विद्यते।
तीर्थसेवा विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम् ॥३१
न त्वया सदृशो धातर्वक्ता ज्ञाताऽथवा क्वचित्।
त्व नाभिकमले विष्णो सजातोऽखिलपूर्वज ॥३२
गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका।
तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिता ॥३
भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती।
विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिता ॥३४

एता नद्य. पुण्यतमा देवतीर्थान्युदाहृता: ।
गयः कोल्लासुरो वृत्रास्त्रपुरो ह्यन्धकस्तथा ॥ ३५
हयमूर्धा च लवणो नमुचिः शृङ्गकस्तथा ।
यमः पातालकेतुश्च मयः पुष्कर एव च ॥ ६

इन तीर्थों के भेद को कोई भी नही जानता है हे नारद ! अतएव तुम श्रवण करने के योग्य हो। बहुत से अ ने आपको महा पण्डित मानने ाले श्रवण किया करते है और कहा करते हैं। कोई ही सुकृत करने वाला पुरुष ऐसा होता है जो निज के गुणो के द्वारा कहना और सुनना जाना करता है ॥२९॥ श्री नारदजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इन समस्त तीर्थों के स्वरूप को एव भेद को मैं सात्विक रूप से श्रवण करने की अभिलाषा रखता हूं। जिसका श्रवण करके मनुष्य समस्त पापो से मुक्त हो जाया करता है इसमें कुछ भी सशय नही है ॥३०॥ हे ब्रह्मन् ! सत्य प्रभादि मे अन्य कोई भी उपाय नही है। केवल तीर्थों की ही सेवा ऐसी है जो थोडे से ही आयास से अभीष्टो के प्रदान कर देने वाली होती है ॥३ ॥ हे धाता ! आपके समान अन्य यहाँ पर भी इन विषयो का ज्ञाता तथा वक्ता कोई नही है। आप तो सभी से पूर्व में समुत्पन्न हुए हैं और साक्षात् भगवान् विष्णु के नाभि मे स्थित कमल से ही आपकी उत्पत्ति हुई है ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण मे गोदावरी-भीमरथी-तुङ्ग भद्रा-वेणिका-तापी-और पयोष्णी ये छै छै नदियाँ बतलाई गयी हैं ॥३३॥ हिमालय पर्वत मे उत्पन्न होने वाली छै सरिताओं में भागीरथी-नर्मदा-यमुना-सरस्वती और वितस्ता तथा विशोका है ॥३४॥ ये नदियाँ परम पुण्यतमा हैं और ये देव तीर्थ कही गयी हैं। गय, कोल्लासुर-वृत्र-त्रिपुर-अन्धक-हयमूर्धा-लवण-नमुचि-शृङ्गक-यम-पाताल केतु-मय और पुष्कर ये असुरों के नाम हैं ॥३५-३६॥

एतैराव्रततीर्थानि आसुराणि शुभानि च ।
प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणौ तथा ॥३७

वसिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः ।
इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद ॥ ३८
अम्बरीपो हरिश्चन्द्रो माधाता मनुरेव च ।
कुरुः कनखलश्चैव भद्राश्वः सगरस्तथा ॥३८
अश्वयूपो नाचिकेता वृषाकपिररिंदमः ।
इत्यादिमानुषैर्विप्र निर्मितानि शुभानि च ॥४०
यशसः फलभूत्यर्थं निर्मितानीह नारद ।
स्वतोद्भूतानि दैव नि यत्र क्वापि जगत्त्रये ॥
पुण्यतीर्थानि तान्याहुस्तीर्थभेदा मयोदिताः ॥४१

इन उपर्युक्त असुरो से समाकूल एव परम शुभ आसुर तीर्थ कहे जाते है । प्रभास-भार्गव-अगस्ति-नर-नारायण-वसिष्ठ-भरद्वाज-गौतम-कश्यप-मनु कुरु-कनखल- भद्राश्व-सागर-अश्वयूप-नागिकेता वृषाकपि-अरिन्दय-इत्यादि मानुषो के द्वारा निर्मित शुभ तीर्थ हैं ॥३७-४०॥ हे नारद ! ये यहाँ पर यश की फल भूति के लिये ही निर्मित तीर्थ हैं जो परम शुभ हैं । स्वतः ही उत्पन्न दैव तीर्थ तीनो लोको मे जहाँ कही पर ही होते है वे सब पुण्य तीर्थ हैं जो कहे जाते है । इस प्रकार से तीर्थों का भेद मैंने बतला दिया है ॥४१॥

—:※:—

३४—गंगाजी के दो रूप कथन

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता ।
श्रुता देव यथा मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे ॥१
महेश्वरजटास्था या आपो देव्यो महामते ।
तासां च द्विविधो भेद आहर्तुर्द्वयकारणात् ॥२
एकांशो ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना ।
गौतमेन शिवं पूज्य आहृतो लोकविश्रुतः ॥३

अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण वलीयसा ।
आराध्य शंकरं देवं तपोभिर्नियमैस्तथा ॥४
भगीरथेन भूपेन आहृतोऽशोऽपरस्तथा ।
एवं द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया मुनिसत्तम ॥५
महेश्वरजटास्था या हेतुना केन गौतमः ।
आहार्तां क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद ॥६
यथाऽऽनीता पुरा वत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा ।
तत्सर्वं विस्तरेणाहं वदिष्ये प्रीतये तव ॥७

श्री नारद जी ने कहा—कमण्डलु में स्थित रहने वाली देवी (गङ्गा) फिर महेश्वर को मस्तक की जटा में प्राप्त हुई थी । हे देव ! जिस तरह से वह इस मनुष्य लोक मे समागत हुई थी यह श्रवण किया है अब आप उसी को पूर्ण रूप से बतलाइये ॥१॥ श्री परमेष्ठी ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् महेश्वर देव की जटाओं में संस्थित रहने वाली जो जल स्वरूपा है विपार्थी हे महामते ! आहर्त्ता के दो कारणो से उनके भी दो भेद हैं ॥२॥ उसका एक भाग व्रत और दान की समाधि वाले गौतम ब्राह्मण के द्वारा यहाँ पर भगवान् शिव की पूजा करके लाया गया है । हे महामति वाले ! यह लोक मे विश्रुत है ॥३॥ हे महती प्रज्ञा वाले ! दूसरा अंश जो उस गङ्गा देवी का था वह महान् बलवान् क्षत्रिय राजा के द्वारा परम दुष्कर तपश्चर्या और नियमो के द्वारा देव शङ्कर की आराधना करके लाया गया था ॥४॥ इस प्रकार से भूप भगीरथ के द्वारा दूसरा भाग यहाँ पर समाहृत हुआ था । हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से गङ्गा देवी के दो स्वरूप हुए थे ॥५॥ देवर्षि श्री नारद जी ने कहा था—महेश्वर की जटा मे स्थित जो गङ्गा देवी थी उसका आहरण करने वाला गौतम किस कारण से हुए थे । तथा क्षत्रिय के द्वारा भी किस कारण से वह कहाँ पर लाई गयी थी यह मुझे बतलाइये ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! जिस रीति से पहिले समय मे एक ब्राह्मण के द्वारा तथा दूसरे क्षत्रिय के द्वारा वह यहाँ लायी गयी थी उस सम्पूर्ण इतिहास को मैं केवल तुम्हारे ऊपर प्रीति होने के कारण बतलाता हूँ ॥७॥

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवत्प्रिया ।
तस्मिन्नेवाभवद्गङ्गा प्रिया शम्भोर्महामते ॥८
मम दोषापनोदाय चिन्तयान शिवस्तदा ।
उमया सहित श्रीमान्देवी प्रेक्ष्ये विशेषतः ॥९
रसवृत्तौ स्थितो यस्मान्निर्ममे रसमुत्तमम् ।
रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्रैणत्वात्पावनत्वत ॥१०
सर्वाभ्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाऽभूद्द्विजसत्तम ।
तामेव चिन्तयानोऽसौ सर्वदाऽऽस्ते महेश्वर ॥११
सैवोद्भूता जटामार्गात्कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।
स तु सगोपयामास गङ्गा शम्भुर्जटागताम् ॥१२
शिरसा च धृता ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा ।
सोढु ब्रह्मञ्जटाजूटे स्थिता दृष्ट्वा पुन पुन ॥१३
अमर्षेण मव गौरी प्रेमयस्वेत्यभाषत ।
नैवासौ प्रे रयच्छम्भू रसिको रसमुत्तमम् ॥१४

जिस समय मे सुरेश की उमादेवी परम प्रिया पत्नी हुई थी और उसी समय मे हे महामते ! भगवान् शम्भु की प्रिया गङ्गा देवी हुई थी ॥८॥ उस समय मे मरे दोष के अपनयन करने के लिये भगवान् शिव चिन्ता करने वाले उस समय मे थे । उमा सहित श्रीमान् भगवान् शम्भु देवी को विशेष रूप से देखते थे । ॥९॥ रस की वृत्ति मे स्थित वे स्थित थ इस कारण से उन्होने उत्तम रस का निर्माण किया था । रसिक होने से प्रिय होने से स्त्रैण होने से और पावन होने से ही उन्होने ऐसा किया था ॥१०॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! सभी से अधिक प्रीति वाली गङ्गा हो गयी थी । यह महेश्वर देव सर्वदा उसी गङ्गा का चिन्तन करने वाले रहा करते थे ॥११॥ किसी अन्य कारण से वही गङ्गा देवी जटाओ के मार्ग से समुद्गत हो गयी थी और वे भगवान् शम्भु अपनी जटाओ मे स्थित गङ्गा को छिपा रहे थे ॥१२॥ क्योकि उस समय मे गङ्गा देवी शिर के द्वारा जटा में स्थित थी और धारण की हुई थी इसलिये उमादेवी जान

न सकी थी। हे ब्रह्मन् ! बारम्बार जटाजूट मे स्थित गगा को देखकर गौरी उसको सहन नही कर सकी थी और गौरी देवी अमर्ष से भगवान् भव (शिव) से यही कहा था कि उसको प्रकट कर प्रेम करिये। किन्तु भगवान् शम्भु परम रसिक थे और उस उत्तम रस को उन्होने प्रकट नही किया था ॥१३-१४॥

जटास्वेव तदा देवी गोपायन्त विमृश्य सा ।
विनायक जयां स्कन्दं रहो वचनमब्रीत् ॥१५
नैवायं त्रिदेशेशानो गङ्गा त्यजति कामुकः ।
साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथं त्यजति ता प्रियाम् ॥१६
एव विमृश्य बहुशो गौरी चाऽऽह विनायकम् ॥१७
न देवैर्नासुरैर्यक्षैर्न सिद्धैर्भवताऽपि च ।
न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभुः ॥१८
पुनस्तप्स्यामि वा गत्वा हिमवन्त नगोत्तमम् ।
अथवा ब्राह्मणैः पुण्यैस्तपोभिर्हतकल्मषैः ॥१९
तैर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमाप्नुयात् ॥२०
एमच्छ्रुत्वा मातृवाक्य मातर प्राह विघ्नराट ।
भ्राता स्कन्देन जयया समन्त्र्येह च युज्यते ॥२१

उस समय मे गौरी देवी ने जटाओ मे ही गगा देवी को छिपा कर सुरक्षित रखने वाले शम्भु को विचार कर उमा देवी ने एकान्त मे विनायक-जया और स्कन्द से यह वचन कहा था ॥१५॥ यह देवो के अधीश्वर कामुक होने के कारण गगा का त्याग नही करते हैं। आज यह भी शिव की प्रिया है। उस प्रिया को कैसे त्याग करें। इस प्रकार से बहुत अधिक विचार करके गौरी देवी विनायक से बोली—॥१६-१७॥ पार्वती जी ने कहा—देवो के द्वारा-असुर-यक्ष-सिद्ध अन्य राजा तथा आपके द्वारा भी प्रभु गगा का त्याग नही करते हैं ॥१८॥ अतएव मैं फिर पर्वतो मे उत्तम हिमवान् मे जाकर तपस्या करूँगी। अथवा परम पुण्यमय तपस्वी और निष्पाप ब्राह्मणो के द्वारा जटाजूट मे स्थित गंगा से प्रार्थना की जावे कि यह भूलोक मे प्राप्त हो जावे ॥१९-२०॥ श्री ब्रह्माजी

ने कहा—अपनी माता के इस वाक्य को सुनकर विघ्नों के राजा गणेश जी ने अपने भाई स्कन्द और जया के साथ भलीभाँति मन्त्रणा करके फिर अपनी माता उमादेवी से कहा कि यहाँ पर यह युक्त हो सकता है ॥२ ॥

तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गा यथा त्यजति मे पिता ।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्ननावृष्टिर जायत ॥२२
द्विद्वादश समा मर्त्ये सर्वप्राणिभयावहा ।
ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२३
विना तु गौतम पुण्यमाश्रम सर्वकामदम् ।
स्रष्टुकाम परा पुत्र स्थावर जङ्गम तथा ॥२४
कृतो यज्ञो मया पूर्वं स देवयजनो गिरि ।
मन्नाम्ना तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरि सदा ॥२५
तमाश्रित्य नगश्रेष्ठ सर्वदाऽऽस्ते स गौतम ।
तस्याऽऽश्रमे महापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरौ शुभे ॥२६
आधयो व्याधो वाऽपि दुर्भिक्ष वाऽप्यवर्षणम् ।
भयशोकौ न दारिद्र्य न श्रूयन्ते कदाचन ॥२७
तदाश्रम विनाऽन्यत्र हव्य वा कव्यमेव वा ।
नास्ति पुत्र तथा दाता होता यष्टा तथैव च ॥२८

हम वही कार्य करते हैं जिस प्रकार से पिताजी अपने मस्तक से गंगा का त्याग कर देवें । इसी बीच मे हे ब्रह्मन् ! अनावृष्टि हो गयी थी ॥२२॥ वह अनावृष्टि भी मर्त्यलोक मे चौबीस वर्ष तक रही थी जो कि समस्त प्राणियों के लिये बहुत ही अधिक भय देने वाली थी । इसके पश्चात् चराचर सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो गया था ॥२३॥ स र मनोरथों को देने वाले पुण्य आश्रम गौतम के बिना हे पुत्र ! पहिले स्थावर जगम की सृष्टि करने की इच्छा वाले मैंने पूर्व मे यज्ञ किया था । वह देव यजन गिरि है । वहाँ पर वह मेरे नाम से ही विख्यात हो गया था और सदा ब्रह्मगिरि कहा जाता है ॥२४-२५॥ उस श्रेष्ठ पर्वत का आश्रय ग्रहण

करके गौतम सर्वदा रहा करते हैं। उसके आश्रम मे जो महान् पुण्यमय श्रेष्ठ है और शुभ ब्रह्मगिरि मे स्थित है ? उसकी ऐसी महिमा है कि वहाँ पर कोई भी आधियाँ (मानसिक व्यथाऐं) व्याधियाँ-दुर्भिक्ष और अवृष्टि-भय-शोक तथा दरिद्रता कभी भी नही सुनी जाया करती हैं ॥२६-॥२७॥ हे पुत्र ! उस आश्रम के बिना अन्य किसी भी स्थान में हव्य-कव्य का दाता, होता और यष्टा नही है ॥२८॥

यदेव गौतमो विप्रो ददाति च जुहोति च ।
तदेवाप्ययन स्वर्गे सुराणामपि नान्यतः ॥२९
देवलोकेऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनिः ।
होता दाता च भोक्ता च स एवेति जनाः विदुः ॥३०
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे नानाश्रमनिवासिनः ।
गौतमाश्रममागृच्छन्नागच्छन्तस्तपोधनाः ॥३१
तेषा मुनीना सर्वेषामागताना स गौतमः ।
शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पोषकोऽभवत् ॥३२
यस्य(तेषा)यथेप्सित काम यथा योग्य यथाक्रमम् ।
यथानुरूप सर्वेषा शुश्रूषामकरोन्मुनिः ॥३३
आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्नोषध्यो लोकमातरः ।
आराधिताः पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३४
जायन्ते च तदौषध्यो लूयन्ते च तदेव हि ।
सपत्स्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात् ॥३५

जिस समय मे विप्र गौतम देता है और हवन किया करता है तभी स्वर्ग मे सुरो की तृप्ति हुआ करती है अन्य से नही होती है ॥२९॥ देव लोक में अथवा मर्त्यलोक में गौतम मुनि का नाम सुना जाता है । मनुष्य यह जानते हैं कि वह ही मुनि होता दाता और भोक्ता है ॥३०॥ यह श्रवण करके अनेक आश्रमो मे निवास करने वाले मुनिगण सभी गौतम के आश्रम को पूछते थे और तपोधन मुनिगण सब ओर से वहाँ पर आ रहे थे ॥३१॥ वह गौतम ऋषि उन समागत समस्त मुनियों का भक्ति-

भाव से शिष्यवत् और पुत्रवत् तथा पिता की भाँति पोषक हो गये थे ॥३२॥ जिसका जो भी जिस प्रकार का काम था उसको यथोचित रूप से यथा क्रम स्वरूप के अनुरूप समझकर उस मुनि ने सबकी सेवा शुश्रूषा की थी ॥३३॥ उस समय में गौतम मुनि की आज्ञा से लोक की माताएँ ओषधियाँ हुई थीं। इसके अनन्तर उन्होंने ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर को महेश्वर की आराधना की थी ॥३४॥ उस समय में ओषधियाँ उत्पन्न होती थी और उसी समय में छिन्न की जाती थी। गौतम के तपोबल से सब उगती थी और सम्पन्न होती थीं ॥३५॥

सर्वाः समृद्धयस्तस्य ससिध्यन्ते मनोगताः ।
प्रत्यहं वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन् ॥३६
पुत्रवच्छिष्यवच्चैव प्रेष्यवत्करवाणि किम् ।
पितृवत्पोषयामास सवत्सरगणान्बहून् ॥३७
एव वसत्सु मुनिषु त्रैलोक्ये ख्यातिराश्रयात् ।
ततो विनायकः प्राहमातर भ्रातर जयाम् ॥३८
देवाना सदने मातर्गीयते गौतमो द्विजः ।
यन्न साध्य सुरगणैर्गौतमः कृतवानिति ॥३९
एव श्रुत मया देवि ब्राह्मणस्य तपोवलम् ।
स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गा जटागताम् ॥४०
तपसा वाऽन्यतो वाऽपि पूजयित्वा त्रिलोचनम् ।
स एव च्यावयेदेना जटास्था मे पितृप्रियाम् ॥४१
तत्र नीतिर्विधातव्या ता विप्रो याचयेद्यथा ।
तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोऽवतरत्यपि ॥४२

उसके मन में रहने वाली सभी समृद्धियाँ ससिद्ध होती थीं। जो मुनिगण वहाँ पर समागत हुए थे उनसे गौतम मुनि विनय पूर्वक प्रतिदिन निवेदन किया करते थे ॥३६॥ पुत्र की भाँति शिष्य के सदृश और प्रेष्य (दूत) के समान मैं आपकी क्या सेवा करूँ। इस प्रकार से गौतम मुनि ने बहुत से वर्षों तक उन सबका पिता के समान पूर्णतया पोषण किया था ॥३७॥ इस तरह से यहाँ पर उन मुनियों के निवास करने पर

उस आश्रय से तीनों लोकों में ख्याति हो गयी थी। इसके अनन्तर विनायक ने अपनी माता से, भाई से और जया से कहा था ॥३८॥ विनायक ने कहा—हे माताजी ! देखो के भी सदन मे गौतम द्विज, की प्रशस्त घर मस्त किया करता है कि जो सुरगणों से द्वारा भी साध्य नहीं है वह गौतम ने कर दिया है ॥३९॥ हे देवि ! मैंने ब्राह्मण का इस प्रकार का तपोबल सुना है। हे माताजी ! वह विप्र इस जटाओं में समवस्थित गङ्गा को वहाँ से चला देगा ॥४०॥ तप से अथवा किसी अन्य साधन से भगवान् त्रिलोचन का पूजन करके वही मेरे पिताजी की प्रिया इस गङ्गा को जो कि जटाओं में स्थित है च्यावित कर देगा अर्थात् वहाँ अलग कर देगा ॥४१॥ उस विषय में कुछ नीति (व्यावहारिक चाल) करनी चाहिए जिससे उस गङ्गा से वह विप्र याचना करे और उसके प्रभाव से वह सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा पिताजी के शिर से नीचे उतर भी आयगी ॥४२॥

इत्युक्त्वा मातरं भ्रात्रा जयया सह विघ्नराट् ।
जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधरः कृशः ॥४३
सन्कतिपयाह सु गौतमाश्रममण्डले ।
उवाच ब्राह्मणान्सर्वांस्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४
गच्छामः स्वमधिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च ।
पुष्टाः स्म गौतमान्नेन पृच्छामो गौतमं मुनिम् ॥४५
इति समन्त्र्य पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः ।
स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पृथक् ॥४६
कृताञ्जलिः सविनयमासाध्वमिह चैव हि ।
युष्मच्चरणशुश्रूषां करोमि मुनिपुङ्गवाः ॥४७
शुश्रूषौ पुत्रवन्नित्यं मयि तिष्ठति नोचितम् ।
भवतां भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८
इदमेवाऽऽश्रमं पुण्यं सर्वेषामिति मे मतिः ।
अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन विघ्नों के राजा श्री गणेश जी ने अपनी माताजी उमादेवी से इस प्रकार से कहकर फिर वह अपने भाई स्कन्द और जया के साथ वहाँ पर गये थे जहाँ पर ब्रह्मसूत्र को धारण करने वाले तपस्वी गौतम थे ॥४३॥ उस गौतम ऋषि के आश्रम मे कुछ दिन पर्यन्त निवास करके वहाँ वहाँ पर विघ्नराट् ने सभी ब्राह्मणों से कहा था ॥४४॥ अब हम अपने परम पवित्र आश्रमों को गमन करते हैं और ये भी आश्रम पवित्र हैं तथा गौतम के अन्न से अत्यधिक पुष्ट हो गये हैं। अब हम गौतम मुनि से पूछकर गमन की आज्ञा प्राप्त करते हैं ॥४५॥ इस तरह से मन्त्रणा करके मुनियों मे श्रेष्ठ मुनियों ने गौतम से पूछा था ॥४६॥ गौतम मुनि ने कहा—मैं हाथ जोड़ने वाला हूँ और विनय पूर्वक निवेदन करता हूँ कि यह आपका यहाँ से गमन करना अनुचित है। हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं आप लोगों के चरणों की सेवा करता हूँ ॥४७॥ एक पुत्र की भाँति सेवा करने की इच्छा वाले मेरे विद्यमान रहते हुए यह उचित नहीं है कि भूमिदेव आप सब मेरे इस आश्रम का त्याग कर किसी अन्य आश्रम मे जाकर आश्रय ग्रहण करें ॥४८॥ मेरा ऐसा विचार है कि आप सब लोगों के लिये यही आश्रम परम पुण्यमय है। अतएव हे मुनिगणो ! अन्य आश्रम को यहाँ से आपको गमन नहीं करना चाहिए ॥४९॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं विघ्नकृत्यमनुस्मरन् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिप ॥५०
अन्नक्रीता वयं किं नो निवारयत गौतम ।
साम्ना नैव शक्ता गन्तुं स्वं स्वं निवेशनम ॥५१
नायमर्हति दण्डं वा उपकारी द्विजोत्तम ।
तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२
तत सर्वे द्विजश्रेष्ठा क्रियतामित्यनुब्रुवन् ।
एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३
ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा कुरु ।
ब्राह्मणानां वच श्रुत्वा मेने वाक्यं गणाधिप ॥५४

क्रियते गुणरूप यद्गौतमस्य विशेषत ॥५५
अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुन पुनरुदारधी ।
स्वय च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुन ॥
मातुर्मते स्थितो विद्वाञ्जया प्राह गणेश्वर ॥५६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस वचन का श्रवण कर जो कि गौतम मुनि ने कहा था और विघ्न के कृत्य का स्मरण करते हुए गणाधिप ने हाथ जोड कर उन ब्राह्मणो से कहा था—॥५०॥ हम लोग अन्न के क्रय करने वाले हैं। यह गौतम क्यो हम लोगो को निवारित करते हैं। हम साम के द्वारा ही अपने २ आश्रम को गमन करने मे समर्थ नही हैं ॥५१॥ यह परम उपकार करने वाले परम श्रेष्ठ द्विज गौतम दण्ड के योग्य नही हैं अतएव मैं अपनी बुद्धि से ऐसा निश्चय करता हूँ अतएव आप सबको अनुमति दे देनी चाहिए ॥५२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर सभी द्विजश्रेष्ठो ने 'करिए'—यह कहा क्योकि लोकों के हित की कामना से यह इसके उपकार के लिये ही होगा ॥५३॥ जिस प्रकार से समस्त ब्राह्मणो का कल्याण होवे वैसा ही करिये। ब्राह्मणो के इस वचन का श्रवण करके गणाधिप ने इस वाक्य को मान लिया था ॥५४॥ विनायक ने कहा—गुणो के अनुरूप ही और विशेष रूप से गौतम के अनुरूप ही किया जाता है ॥५५॥ इस तरह से बारम्बार समस्त द्विजो की अनुमति ग्रहण करके उदार बुद्धि वाले गणेश्वर ने स्वय ब्राह्मण बनकर तथा समस्त ब्राह्मणो को प्रणाम करके अपनी माताजी के मत मे स्थित होकर विद्वान् गणेश जी ने जया से कहा था ॥५६॥

यथानान्यो विजानीते तथा कुरु शुभानने ।
गोरूपधारिणी गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति ॥५७
शालीन्खाद विनाश्याथ विकार कुरु भामिनि ।
कृते प्रहारे हुकारे प्रेक्षिते चापि किंचन ॥
पत दीन कृत्वा न स्वन म्रियस्व न जीव च ॥५८

तथा चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता ।
यत्राऽऽसीद्गौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥५९
जगाम शालीन्खादन्ती तां ददर्श स गौतमः ।
गां दृष्ट्वा विकृतां विप्रस्तां तृणेन न्यवारयत् ॥६०
निवार्यमाणा सा तेन स्वनं कृत्वा पपात गौः ।
तस्यां तु पतितायां च हाहाकारो महानभूत् ॥६१
स्वनं श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम् ।
व्यथिता ब्राह्मणाः प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृताः ॥६२

विनायक ने कहा—हे शुभ मुख वाली ! जिस तरह से अन्य कोई भी न जान सके वैसा ही करो । जिस स्थल पर गौतम विद्यमान हैं वहाँ पर तुम गो रूप के धारण करने वाली होकर गमन करो ॥५७॥ इसके अनन्तर हे भामिनि ! तुम शालियों को खाओ और विनाश करके विकार उत्पन्न करो । कुछ भी प्रहार-हुङ्कार और देखने पर तुम यही पर दीनता से पूर्ण ध्वनि करके गिर जाना और ऐसी अपनी अवस्था बना लेना कि न तो मरण ही हो और न जीवित रहो ॥५८॥ ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् विघ्नेश्वर के मत मे स्थित रहने वाली विजया ने उसी भाँति से यह सभी कुछ किया था । जहाँ पर विप्र गौतम रहा करते थे वहीं पर विजया ने गमन किया था और शालियों को खाती हुई उस गौ का स्वरूप धारण करने वाली उसको गौतम ने देखा था । उस विकृत रूप वाली गौ को देखकर उस विप्र गौतम ने उसको तृण से निवारित किया था ॥५९-६०॥ उसके द्वारा निवारित होती हुई उस गौ के रूप धारण करने वाली ने वहाँ पर ध्वनि करके पतन किया था अर्थात् वह गिर पड़ी थी । उस समय पर उसके मूर्छित सी होकर गिर जाने पर महान् हाहाकार हो गया था ॥६१॥ उस गौ की उस ध्वनि का श्रवण कर तथा गौतम के उस विशेष कृत्य को देखकर विघ्नेश्वर को अपने आगे करते हुए सब ब्राह्मण बहुत ही अधिक व्यथित हुए और बोले—॥६२॥

इतो गच्छामहे सर्वे न स्थातव्यं तवाऽऽश्रमे ।
पुत्रवत्पोषिताः सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुंगव ॥६३

इति श्रुत्वा मुनिर्वाक्यं विप्राणां गच्छतां तदा ।
वज्राहत इवाऽऽसीत्स विप्राणां पुरतोऽपतत् ॥६४
तमूचुर्ब्राह्मणाः सर्वे पश्येमां पतितां भुवि ।
रुद्राणां मातरं देवीं जगतां पावनीं प्रियाम् ॥६५
तीर्थदेवस्वरूपिण्यामस्यां गवि विधेर्बलात् ।
पतितायां मुनिश्रेष्ठ गन्तव्यमवशिष्यते ॥६६
चीर्णं व्रतं क्षयं याति यथा वासस्त्वदाश्रमे ।
वयं नान्यधना ब्रह्मन्केवलं तु तपोधनाः ॥६७
विप्राणां पुरतः स्थित्वा विनीतः प्राह गौतमः ॥६८
भवन्त एव शरणं पूत मां कर्तुमर्हथ ॥६९
ततः प्रोवाच भगवान्विघ्नराड्ब्राह्मणैर्वृतः ॥७०
नैवेयं म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम् ।
तदामोऽस्मिन्सुसंदिग्धे निष्कृतिं गतिमेव वा ॥७१

ब्राह्मणों ने कहा—हे मुनियों में श्रेष्ठ ! अब हम सब यहाँ से जाना चाहते हैं और आपके इस आश्रम में हमको नहीं ठहरना चाहिए। आपने एक पुत्र की भाँति ही हम सबको पोषित किया है अतएव हम आपसे पूछते हैं ॥६३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस अवसर पर उस गौतम मुनि ने जब गमन करते हुए मुनियों का यह वचन सुना था तो वह वज्र से आहत हुए के समान ही अत्यन्त दुःखित होकर उन सबके आगे गिर गया था ॥६४॥ उस समय में सभी ब्राह्मण उस मुनि से बोले—इस रुद्रों की माता देवी और जगतों को पवित्र करने वाली प्रिया को भूमि में पतित हुई देखो ॥६५॥ तीर्थ और देव स्वरूप वाली इस गौ के विधि बल से गिर जाने पर हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तो हमारा गमन ही करना अवशेष रहा जाता है क्योंकि यहाँ रहना ठीक नहीं है ॥६६॥ हम लोगों ने जो कुछ भी व्रत चीर्ण किया है वह सभी क्षीणता को प्राप्त हो जाता है जब कि आपके इस आश्रम में निवास करते हैं। हे ब्रह्मन् ! हम लोगों के समीप में अन्य तो कोई धन का वैभव है ही नहीं—हम तो केवल अपने सञ्चित किये हुए तप के ही वैभव वाले हैं ॥६७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—

उस समय में उन समस्त विप्रों के आगे परम विनयान्वित होकर गौतम ने प्रार्थना पूर्वक कहा था ॥६८॥ गौतम ने कहा—अब आप लोग ही मेरे रक्षक हैं और आप मुझको पवित्र करने के योग्य होते हैं ॥६६॥ ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर जब कि गौतम ने ऐसी प्रार्थना की थी तो ब्राह्मणों से आवृत ब्राह्मण रूपधारी विघ्नराज ने कहा था—॥७०॥ श्री भगवान् विघ्नराट् बोले—यह गौ न तो मर रही है और न जीवित ही हो रही है तो इस प्रकार के सन्देह से युक्त इस विषय में हम लोग क्या इसकी निष्कृति और गति बतलावें अर्थात् ऐसी दशा में इसका कोई भी प्रायश्चित नहीं बताया जा सकता है ॥७१॥

कथमुत्थास्यतीयं गौरथ चास्मिश्च निष्कृतिम् ।
वक्तुमर्हथ तत्सर्वं करिष्येऽहमसंशयम् ॥७२
सर्वेषां च मतेनायं वदिष्यति च बुद्धिमान् ।
एतद्वाक्यमथास्माकं प्रमाणं तव गौतम ॥७३
ब्राह्मणे प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन बलीयसा ।
विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिदं वचः ॥७४
सर्वेषां च मतेनाहं वदिष्यामि यथार्थवत् ।
अनुमन्यन्तु मुनयो मद्वाक्यं गौतमोऽपि च ॥७५
महेश्वरजटाजूटे ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कमण्डलुस्थितं वारि तिष्ठतीति हि शुश्रुम ॥७६
तदानयस्व तरसा तपसा नियमेन च
तेनाभिषिञ्च गामेतां भगवन्भुवमाश्रिताम् ॥
ततो वत्स्यामहे सर्वे पूर्ववत्तव वेश्मनि ॥७७

गौतम मुनि ने कहा—अब यह गौ किस प्रकार से उठ कर खड़ी होगी और जो कुछ भी बन पड़ा है उसका क्या प्रायश्चित होगा—इस सब को आप लोग बतलाइये—मैं निश्चय ही वह सभी करूँगा ॥७२॥ ब्राह्मणों ने कहा—हे गौतम ! हम सबकी राय से यह ब्राह्मण इस विषय में बतलायेंगे क्योंकि यह बहुत ही अधिक बुद्धिमान् है। इनका वचन हम सबको प्रमाण स्वरूप ही होता है और आपको भी होगा

चाहिए। इस प्रकार का संकेत विप्र रूपधारी विघ्नराज की ओर उस समय मे सब ने किया था ॥७३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे समस्त ब्राह्मणो के द्वारा तथा बलीमान् गौतम के द्वारा जब बहुत ही अधिक प्रेरित किया गया था तो वह ब्राह्मण वेषधारी विघ्नराज सब से यह वचन बोले थे ॥७४॥ विघ्नराज ने कहा—आप सबकी सलाह से ही मैं बिल्कुल यथार्थ बात बतलाता हूँ। आप सब मुनिगण और यह गौतम भी मेरे वचन को मान लेवें ॥७५॥ महेश्वर प्रभु के जटा-जूट मे अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के कमण्डलु मे जो स्थित था वह इस समय मे स्थित है—ऐसा सुनते हैं ॥७६॥ उस जल को बडी शीघ्रता से तपोबल से और नियत से लाइये। उस जल से इस गौ का अभिषिञ्चन करो जो कि हे भगवन्! इस समय मे भूमि मे एक मूर्छित दशा मे पडी हुई है। तभी हम सब भी पूर्व के ही समान आपके इस आश्रम मे निवास करेंगे अन्यथा नहीं रहेंगे ॥७७॥

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे ब्राह्मणाना च ससदि ।
तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयशब्दो व्यवर्धत ॥
ततः कृताञ्जलिर्नम्रो गौतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८
तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादतः ।
भवता च प्रसादेन मत्सकल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९
एवमस्त्विति त विप्रा आपृच्छन्मुनिपु गवम् ।
स्वानि स्थानानि ते जग्मु समृद्धान्यन्नवारिभि. ॥८०
यातेषु तेषु विप्रेषु ब्राह्मा सह गणेश्वर. ।
जयया सह सुप्रीतः कृतकृत्यो न्यवर्तत ॥८१
गतेषु ब्रह्मवृन्देषु गणेशे च गते तथा ।
गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठस्तपसा हृतकल्मष. ॥८२
ध्यायस्तदर्थं स मुनिः किमिद मम सस्थितम् ।
इत्येव बहुशो ध्यायञ्ज्ञानेन ज्ञातवान्द्विज ॥८३
निश्चित्य देवकार्यार्थमात्मनः किल्विषां गतिम् ।
लोकानामुपकार च शम्भो प्रीणनमेव च ॥८४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ब्राह्मणों की सभा में उस विप्रेन्द्र के द्वारा ऐसा कहने पर उसी समय में आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई थी और जयकार की ध्वनि भी हुई थी। इसके उपरान्त हाथ जोड़ते हुए गौतम मुनि ने अत्यन्त विनम्र होकर यह वाक्य कहा था ॥७८॥ गौतम ने कहा—तप से अग्नि देव के प्रसाद से-देवों तथा ब्रह्मा की कृपा से और आप सब लोगों के प्रसाद से मेरा यह सत्य सङ्कल्प सिद्ध हो जावे ॥७९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय में उन समस्त ब्राह्मणों ने उस मुनियों में श्रेष्ठ गौतम से कहा था—ऐसा ही होगा अर्थात् आपका मनोरथ सफल हो जायगा। वे फिर सब विप्रगण अन्न जल से समृद्ध होकर अपने आश्रमों को चले गये थे ॥८०॥ उन समस्त विप्रों के चले जाने पर गणेश्वर प्रभु अपने भाई के साथ तथा जया के सहित अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कृत कृत्य होकर वहाँ से वापिस लौट आये थे ॥८१॥ उन विप्र वृन्दों के और गणेश के वहाँ से चले जाने पर मुनियों में परम श्रेष्ठ गौतम भी तप से क्षीण कल्मषों वाले हुए ॥८२॥ उस गौतम मुनि ने उसके विषय में ध्यान करते हुए विचार किया था कि यह मुझे क्या परिस्थिति प्राप्त हो गयी है और अब कैसे तथा क्या करना चाहिए। इस प्रकार से बहुत ही अधिक सोचने पर हे द्विज नारद ! ध्यान करते हुए ज्ञान के द्वारा उस गौतम ने यह जाना था ॥८३॥ यह देवों का कार्य है और अपनी भी परम पूर्ण गति का निवारण इसमें होता है तथा सभी लोकों का इससे महान् उपकार होता है, अतएव भगवान् शम्भु का प्रसन्न करना ही इसका एक मात्र समुचित साधन होता है ॥८४॥

उमाया प्रीणनं चापि गङ्गानयनमेव च।
सर्वश्रेयस्करं मन्ये मयि नैव च किल्विषम् ॥८५
इत्येव मनसा ध्यायन्सुप्रीतोऽभूद्द्विजोत्तमः।
आराध्य जगतामीशं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥८६
आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठां प्रीताऽस्तु गिरिजा मम।
सपत्नी जगदम्बाया महेश्वरजटास्थिता ॥८७

एव हि सकल्प्य मुनिप्रवीरः,
स गौतमो ब्रह्मगिरेर्जगाम ।
कैलासमाधिष्ठितमुग्रधन्वना,
सुरार्चित प्रियया बृह्मवृन्दैः ॥८८

इससे उमादेवी को प्रसन्नता होगी तथा गङ्गा का आनयन भी हो जायगा । यह सभी परम कल्याण कारक कार्य होगा और इससे मुझ मे भी कोई पाप शेष न होगा—ऐसा मैं मानता हू ॥८५॥ इस तरह से यह द्विजों मे उत्तम गौतम मन मे ध्यान करते हुए बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे कि मैं त्रिलोचन वृषभ की ध्वजा वाले जगतो के स्वामी भगवान् शम्भु की समाराधना करके उस सरिताओ मे श्रेष्ठ गंगा को यहां ले आऊँगा तथा गिरिजा देवी भी मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न होगी क्यो कि यह गङ्गा महेश्वर प्रभु की जटाजूट मे स्थित होकर उमादेवी की सपत्नी बनी हुई हैं ॥८६-८७॥ इस प्रकार से उस मुनियो मे प्रकृष्ट वीर गौतम ने अपने मन मे दृढ सकल्प किया था और वह फिर उग्र धनुष वाले शम्भु के द्वारा जो कि अपनी प्रिया एव ब्राह्मणो के वृन्द से युक्त तथा सुरो के द्वारा समर्चित होते हुए ब्रह्मगिरि में कैलास पर समवस्थित थे वही पर वह गौतम भी चले गये थे ॥८८॥



३५—गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवन

कैलाशशिखरं गत्वा गौतमो भगवानृषिः ।
किं चकार तपो वाऽपि का चक्रे स्तुतिमुत्तमाम् ॥१
गिरिं गत्वा ततो वत्स वाच सयम्य गौतमः ।
आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञः कैलासे पर्वतोत्तमे ॥२

उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्रं चेद ततो जगौ ।
अपतत्पुष्पवृष्टिश्च स्तूयमाने महेश्वरे ॥३

भोगार्थिना भोगमभीप्सित च, दातु महान्त्यष्टवपूंषि धत्ते ।
सोमो जनाना गुणवन्तिनित्य, देव महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४
कर्तुं स्वकीयैर्विषयैः सुखानि, भर्तुं समस्त सचराचर च ।
सपत्तये ह्यस्य विवृद्धये च, महीमय रूपमितीश्वरस्य ॥५

सृष्टेः स्थितेः संहरणाय भूमेराधारमाधातुमपा स्वरूपम् ।
भेजे शिवः शान्ततनुर्जनाना, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम् ॥६
कालव्यवस्याममृतस्रव च, जीवस्थिति सृष्टिमथो विनाशनम् ।
मुद प्रजाना सुखमुन्नति च, चक्रेऽर्कचन्द्राग्निमय शरीरम् ॥७

श्री नारदजी ने कहा—भगवान् गौतम ऋषि ने कैलास के शिखर पर पहुँच कर क्या किया था ? क्या कोई वहाँ पर उन्होंने तपस्या की थी अथवा कौन सी उत्तम स्तुति की थी ? ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! फिर उस कैलास पर जाकर उस गौतम ने अपनी वाणी का सर्व प्रथम सयम किया था । फिर उस पर्वतों में परम श्रेष्ठ कैलास पर उस परम प्राज्ञ गौतम ने कुशाओं को फैला दिया था । उस स्थल पर वह उपविष्ट हो गये थे और पवित्र होकर उन्होंने इस नीचे बताये जाने वाले स्तोत्र का गान किया था । इस प्रकार से महेश्वर प्रभु की स्तुति करने पर नभोमण्डल से पुष्पों की वृष्टि हुई थी ॥२-३॥ गौतम ने इस प्रकार से महेश्वर की स्तुति करते हुए कहा था—गौतम बोले—हे भगवन् ! आप भोगों के अभिलाषा रखने वाले अपने भक्तों को उनका अभीष्ट भोग प्रदान करने के लिये महान् आठ वपुओं को धारण किया करते हैं । आप उमादेवी के सहित अपने जनों के लिये ही नित्य उन गुणों से युक्त आठ शरीरों को धारण करते हैं । सभी इनका देव-महान् देव हैं—ऐसा स्तवन किया करते हैं ॥४॥ आप अपने विषयों के द्वारा गुणों का सवर्धन करने के लिये तथा इस सम्पूर्ण चराचर विश्व का भरण करने के वास्ते और इस विश्व की सम्पत्ति

एव विशेप वृद्धि के लिये ईश्वर आपका यह महीमय ही स्वरूप है ॥५॥ शिव प्रभु सृजन-स्थिति-और सहार के लिये तथा भूमि के आधार को रखने के वास्ते आप जल के स्वरूप को धारण किया करते हैं। शास्त्र स्वरूप वाले भगवान् शिव अपने भक्तजनो के सुख तथा धर्म के लिये ही इस जगत् मे प्रतिष्ठित रहा करते हैं ॥६॥ इस काल की व्यवस्था को–अमृत के स्रवण को–जीवो की स्थिति–सृष्टि और विनाश-प्रजाओ का आनन्द-सुख और उन्नति को आपका चन्द्राग्निमय शरीर किया करता है'॥७॥

वृद्धि गति शक्तिमथाक्षराणि, जीवव्यवस्था मुदमप्यनेकाम् ।
स्रष्टु कृत वायुरितीशरूप, त्व वेत्सि नून भगवन्भवन्तम् ॥८
भेदं विना नैव कृतिर्न धर्मो,नाऽऽत्मीयमन्यन्नदिशोऽन्तरिक्षम् ।
द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती,तस्मादिद व्योमवपुस्तवेश ॥९
धर्म व्यवस्थापयितु व्यवस्य,ऋवसामशास्त्राणि यजुश्च शाखाः।
लोके च गाथा स्मृतय पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपैति॥१०
यष्टा क्रतुर्यान्यपि साधनानि,ऋत्विक्प्रदेश(य)फलदेशकालाः।
त्वमेव श भो परमार्थतस्त्व,वदन्ति यज्ञाङ्गमय वपुस्ते ॥११
कर्ता प्रदाता प्रतिभूः प्रदान,सर्वज्ञसाक्षी पुरुषः परश्च ।
प्रत्यात्मभूत. परमार्थरूप,स्त्वमेव सर्वं किमु वाग्विलासै. ॥१२
न वेदशास्त्रै गुरुभि प्रदिष्टो,न नासि बुद्ध्यादिभिरप्रघृष्यः।
अजोऽप्रमेय.शिवशब्दवाच्यस्त्वमस्तिसत्यं भगवन्नमस्ते ॥१३
आत्मं कृता स्वप्रकृति कदाचिदं क्षच्छिव. सपदिय ममेति ।
पृथक्तदं वाभवदप्रतर्क्याचिन्त्यप्रभावो बहुविश्वमूर्ति. ॥१४

वृद्धि-गति शक्ति-अक्षर और अनेक प्रकार का आनन्द तथा जीवो की व्यवस्था का सृजन करने के लिये ही ईश का वायु स्वरूप होता है। हे भगवन् ! आप निश्चय ही अपने आपको जानते हैं अर्थात् अपने आपका ज्ञान आपको ही होता है अन्य को नही है ॥८॥ भेदो के बिना न कोई कृति (यत्न) है और न धर्म ही होता है। अन्य कोई आत्मीय

नही है–न दिशाऐं हैं और न अन्तरिक्ष ही है। ये द्यावा पृथिवी भी नहीं है और न भुक्ति है तथा न मोक्ष है। इसीलिये हे ईश ! आपका यह व्योम रूपी वपु होता है ॥९॥ धर्म की व्यवस्था करने के ही लिये पृथक् ऋग्वेद-यजुर्वेद की शाखाऐं-सामवेद शास्त्र और लोक मे गाथा-स्मृतियाँ पुराण इत्यादि शब्द शास्त्रों के समुदाय के स्वरूप को आप ही स्वयं प्राप्त हुआ करते हैं ॥१०॥ यजन करने वाला यज्ञ-यजन के समस्त साधन-ऋत्विक जन-यजन का स्थल-फल देश और काल ये सभी कुछ हे शम्भो ! आप ही हैं अर्थात् आपके ही विभिन्न रूप हैं। परमार्थ तत्व आपको ही कहते हैं। यह यज्ञाङ्गमय आपका ही एक स्वरूप होता है ॥११॥ कर्म करने वाला–प्रदान करने वाला-प्रतिभू प्रदान-सब कुछ का ज्ञाता सबको देखने वाला पर पुरुष प्रत्येक आत्मा के रूप मे रहने वाले और परमार्थ भूत सभी कुछ आप ही का रूप है जो भिन्नतया दिखाई दिया करता है। विशेष वाणी के विलासो से क्या लाभ है अर्थात् आपके विषय मे कुछ अधिक कहना व्यर्थ है ॥१२॥ आप वेदो और शास्त्रो के द्वारा तथा गुरुओ के द्वारा प्रदिष्ट नहीं हो सकते हैं। बुद्धि आदि के द्वारा भी आप प्रधर्षण करने के योग्य नहीं हैं। आप अजन्मा हैं–प्रमा के द्वारा जानने के योग्य नहीं हैं। आप "शिव"–इस शब्द के द्वारा कहने के योग्य होते हैं। आप सत्य स्वरूप वाले हैं। हे भगवन् ! आपको मेरा सादर नमस्कार है ॥१३॥ अपनी आत्मा की स्वकीय प्रकृति को किसी समय मे भगवान् शिव ने यह इच्छा की थी कि यह सब मेरी ही सम्पत्ति है उसी समय मे तर्कना न करने के योग्य और अचिन्तनीय प्रभाव वाले बहुविश्वमूर्ति पृथक् हो गये थे ॥१४॥

भावेऽभिवृद्धा च भवे भवे च,
स्वकारण कारणमास्थिता च।
नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा वा,
विलक्षणा विश्वकरस्य शक्ति ॥१५
उत्पादन सस्थितिरन्नवृद्धि-
लयासता यत्र सनातनास्ते।

एकैव मूर्तिर्न समस्ति किंचिद-
साध्यमस्या दयिता हरस्य ॥१६
यदर्थमन्नानि धनानि जीवा,
यच्छन्ति कुर्वन्ति तपांसि धर्मान् ।
साऽपीयमम्बा जगतो जनित्री,
प्रिया तु सोमस्य महासुकीर्तिः ॥१७
यदीक्षितं काङ्क्षति वासवोऽपि,
यद्धामतो मङ्गलमाप्नुयाच्च ।
या व्याप्य विश्वं विमलीकरोति,
सोमा सदा सोमसमानरूपा ॥१८
ब्रह्मादिजीवस्य चराचरस्य,
बुद्ध्यक्षिचैतन्यमनः सुखानि ।
यस्याः प्रसादात्फलवन्ति नित्यं,
वागीश्वरी लोकगुरोः सुरम्या ॥१९
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीनं,
किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता ।
गङ्गाऽवतारं विविधैरुपायैः,
सर्वं जगत्पावयितुं चकार ॥२०
श्रुतीः समालम्ब्य हरप्रभुत्वं,
विश्वस्य लोकः सकलैः प्रमाणैः ।
कृत्वा च धर्मान्बुभुजे च भोगान्-
विभूतिरेषा तु सदाशिवस्य ॥२१

भाव मे अभिवृद्ध और भव-भव में अपने कारण स्वरूप कारण मे समास्थित-नित्या-समस्त सुलक्षणो वाली तथा विलक्षण विश्व के करने वाले की शक्ति ही शिवा है। अर्थात् शिव की शक्ति ही गौरी का स्वरूप धारण करने वाली उमा है उनसे भिन्न नहीं है ॥१५॥ उत्पादन-संस्थिति-अन्न की वृद्धि-क्षय और सत्ता का जहाँ पर आपके सनातन है वे सभी एक ही मूर्त्ति है और कुछ भी नही है जो दूसरी असाध्य

है। यह हर की दयिता है ॥१६॥ जिसके लिये जीव अन्न और धनों को दिया करते हैं और धर्मों को तथा तपों को किया करते हैं वह भी यह जगदम्बा इस जगत् के जनन करने वाली है और वह भी सुकीर्त्ति वाली सोम की प्रिया है ॥१७॥ जिसकी कृपा दृष्टि की इन्द्र भी अभिलाषा रखता है और जिसके परम पावन नाम के स्मरण एवं उच्चारण से मङ्गल की प्राप्ति किया करता है। जो इस सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके उसको विमल किया करती है वह सोम के ही सदा समान स्वरूप वाली सौमा है ॥१८॥ ब्रह्मा से आदि लेकर चराचर जीवों के बुद्धि-नेत्र-चैतन्य और मन के सुख जिसके प्रसाद से ही नित्य फल वाले हुआ करते हैं वह लोकों के गुरु भगवान् शिव परम सुरम्य वागीश्वरी हैं ॥१६॥ चतुर्मुख (ब्रह्मा) का भी मन मलिन रहता है तो दूसरे जन्तु की बात ही क्या है यही विचार करके माता ने इस सब जगत् को पावन करने के लिये अनकजरायो के द्वारा गङ्गा का अवतरण किया था ॥२०॥ मुनियों को विश्व के हर-प्रभुत्व का अवलोकन कर लोक समस्त प्रमाणों से धर्मों को करके भोगों का उपभोग किया करता था—यह सदा शिव भगवान की विभूति है ॥२१॥

कार्य क्रियाकारकसाधनाना,
वेदोदितानामथ लौकिकानाम् ।
यत्साध्यमुत्कृष्टतम प्रिय च,
प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्त्तु ॥२२
ध्यात्वा वर ब्रह्म पर प्रधान,
यत्सारभूत यदुपासितव्यम् ।
यत्प्राप्य मुक्ता न पुनर्भवन्ति,
सद्योगिनो मुक्तिरुमापति स ॥२३
यथा यथा श भुरमेयमाया-
रूपाणि धत्ते जगतो हिताय ।
तद्योगयोग्यानि तथव धत्से,
पतिव्रतात्व त्वयि मातरेवम् ॥२४

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पुरस्ताद्वृषभध्वजः ।
उमया सहितः श्रीमान्गणेशादिगणैर्वृतः ॥२५
साक्षादागत्य स शंभुः प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत् ॥२६
किं ते गौतम दास्यामि भक्तिस्तोत्रव्रतैः शुभैः ।
परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम् ॥२७

वेदों के द्वारा वर्णित तथा लौकिक कार्य-क्रिया-कारक और साधनों का जो सबसे उत्कृष्टतम और प्रियसाध्य है वह उसी अनादि कर्त्ता की ही सिद्धि बतायी गयी है ॥२२॥ परम श्रेष्ठ और सर्व प्रमुख ब्रह्म का ध्यान करके जो भी सारभूत है और जो उपासना करने के योग्य है—जिसको प्राप्त करके मुक्त हो जाने वाले फिर प्राणी जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं और सद्योगियों की मुक्ति है वह उमा के ही पति देव है ॥२३॥ जैसे-जैसे भगवान् शम्भु इस जगत् के हित के लिये अमेय माया के रूपों को धारण किया करते हैं उसी-उस योग के योग्य उसी प्रकार के जगदम्बा भी आपके विषय में पतिव्रतात्व को धारण किया करती हैं ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह से स्तवन करने वाले उस गौतम मुनि के सामने उमादेवी के सहित गणेश आदि से युक्त श्रीमान् वृषभध्वज भगवान शम्भु साक्षात् उपस्थित होकर बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर उस गौतम से यह वाक्य बोले—॥२५-२६॥ भगवान् शिव ने कहा—हे गौतम ! तुम्हारे भक्तिभाव से समन्वित परम शुभ स्तोत्रों से मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हो गया हूँ। मैं तुमको क्या दूँ ? तुम जो देवगणों को प्राप्त होना बहुत कठिन हो उसको मुझ से प्राप्त कर लो ॥२७॥

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तेर्वाक्यं वाक्यविशारदः ।
हर्षवाष्पपरीताङ्गो गौतमः पर्यचिन्तयत् ॥२८
अहो दैवमहो धर्मो ह्यहो व द्विप्रपूजनम् ।
अहो लोकगतिश्चित्रा अहो धातर्नमोऽस्तु ते ॥२९
जटास्थितां शुभां गङ्गां देहि मे त्रिदशार्चित ।
यदि तुष्टोऽसि देवेश त्रयीधाम नमोऽस्तु ते ॥३०

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया ।
आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभय ॥३१
स्तोत्रेणानेन ये भक्तास्त्वां च देवो स्तुवन्ति वै ।
सर्वकामसमृद्धाः स्युरेतद्धि वरयाम्यहम् ॥३२
एवमस्त्विति देवेशः परितुष्टोऽब्रवीद्वच ।
अन्यानपि वरान्मत्तो याचस्व विगतज्वर ॥३३
एवमुक्तस्तु हर्षेण गौतमः प्राह शंकरम् ॥३४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन जगन्मूर्त्ति भगवान् शम्भु के इस परम सुरम्य वचन का श्रवण करके हर्षातिरेक से निकल हुए अश्रुओं से भीगे हुए अङ्गों वाले तथा वचनों के कहने में बड़े पण्डित गौतम मुनि ने विचार किया था ॥२८॥ अहो ! दैव अर्थात् दैव के विषय में कैसा आश्चर्य है । ओहो ! यह धर्म कितना अद्भुत है और विप्रों के पूजन का कैसा विलक्षण प्रभाव होता है । ओहो ! यह लोक की गति कैसी अद्भुत है । हे धाता ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम सादर समर्पित है ॥२६॥ गौतम मुनि ने कहा—हे देवों के द्वारा अभ्यर्चित ! हे देवेश्वर ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो अपनी जटा में स्थित गङ्गा को जो शुभ हैं मुझे प्रदान कर दीजिए । हे त्रयीधाम ! अर्थात् वेदों के द्वारा प्राप्त होने वाले धाम ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥३०॥ ईश्वर ने कहा—यह जो गङ्गा की याचना तुमने की है यह तो तीनों लोकों के उपकार के ही लिए की है अब अपने आपकी भलाई के लिये भी सर्वथा निडर होकर मुझ से कुछ याचना करो ॥३१॥ गौतम मुनि ने कहा—इस स्तोत्र से जिसके द्वारा मैंने आपका स्तवन किया है उससे भक्त गण आपकी और देवी अम्बिका की स्तुति करते हैं वे अपनी सम्पूर्ण कामनाओं से समृद्ध हो जावें—यह मैं आप से वरदान चाहता हूँ ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम परितुष्ट देवेश्वर ने यह वचन कहा—ऐसा ही होगा अर्थात् जो तुमने वरदान माँगा है वह पूरा होगा । हे गौतम ! इसके अतिरिक्त और भी वरदानों को तुम चिन्ता रहित होकर याचना करो ॥३३॥ इस प्रकार से भगवान् शिव के द्वारा

जब गौतम मुनि से कहा गया था तो वह बहुत प्रसन्नता से शंकर भगवान् से बोले—॥३४॥

इमां देवीं जटासंस्थां पावनीं लोकपावनीम् ।
तव प्रियां जगन्नाथ उत्सृज ब्रह्मणो गिरौ ॥३५
सर्वासां तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम् ।
ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च ॥३६
स्नानमात्रेण सर्वाणि विलयं यान्तु शंकर ।
चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा ॥३७
संक्रान्तौ वैधृतौ पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम् ।
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर ॥३८
श्लाघ्यं कृते तपः प्रोक्तं त्रेतायां यज्ञकर्म च ।
द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे ॥३९
युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च ।
देशकालादिसंयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ॥४०
यदन्यत्र कृतं पुण्यं स्नानदानादिसंयमैः ।
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर ॥४१
यत्र यत्र त्विय याति यावत्सागरगामिनी ।
तत्र तत्र त्वया भाव्यमेष चास्तु वरो वर ॥४२

गौतम मुनि ने कहा—आपकी जटाओं में समवस्थित स्वयं परम पवित्र और सब लोकों को पावन करने वाली आपकी परम प्रिया गङ्गा को हे जगन्नाथ ! ब्रह्माजी के गिरि पर छोड़ दीजिए ॥३५॥ यह समस्त सरिताओं की भी तीर्थभूता है और जब तक यह सागर में जायगी तब तक ब्रह्म हत्या प्रभृति महान् पापों को और मन वाणी तथा शरीर से किये जाने वाले सब पाप हे शङ्कर ! इसके स्नान मात्र से ही विलीन हो जाया करें । चन्द्र-सूर्य के ग्रहण के समय में-अयन में-विषुव के अवसर पर-संक्रान्ति में-वैधृति में तथा अन्य पुण्य तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है हे हर ! इस गङ्गादेवी के केवल स्मरण मात्र में ही वह पुण्य-फल प्राप्त हो जाना चाहिए ॥३६-३८॥ कृत युग

३६—स्वर्गादौपंचदशाकृत्यागङ्गायागमन

महेश्वरजटाजूटाद्गङ्गामादाय गौतमः ।
आगत्य ब्रह्मणः पुण्ये ततः किमकिरोद्गिरौ ॥१
आदाय गौतमो गङ्गा शुचिः प्रयतमानसः ।
पूजितो देवगन्धर्वै स्तथा गिरि निवासिभिः॥२
गिरेर्मूर्ध्नि जटां स्थाप्य स्मरन्देवं त्रिलोचनम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा गङ्गा स द्विजसत्तमः॥३
त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकानप्रदायिनि ।
क्षमस्व मातः शान्तासि सुखं याहि हितं कुरु ॥४
एवमुक्ता गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम् ।
दिव्यरूपधरा देवी दिव्यस्रगनुलेपना ॥५
गच्छेय देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम् ।
रसातलं वा गच्छेय जातस्त्वं सत्यवागसि ॥६
त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचिता मया ।
शम्भुना च तथा दत्ता देवि तन्नान्यथा भवेत् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—गौतम ने महेश्वर की जटा-जूट से गङ्गा को लाकर ब्रह्माजी के पुण्य गिरि में समागत होकर इसके उपरान्त वहाँ पर क्या किया था ? ॥१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतम मुनि गङ्गा को लाकर परम शुचि और प्रयत मन वाला हो गया था और वहाँ पर उस पर्वत के निवासी देवों और गन्धर्वों के द्वारा वह पूजित हुआ था ॥२॥ फिर उस गौतम ने उस पर्वत के शिखर पर जय को स्थापित करके त्रिलोचन देव का स्मरण करते हुए हाथ जोड़ कर वह द्विज श्रेष्ठ गङ्गा से बोला—॥३॥ गौतम मुनि ने कहा—हे माता ! आप तो भगवान् त्रिलोचन देव की जटा से समुद्भूत हुई हैं और सभी मनोरथों को प्रदान करने वाली हैं । आप तो परम शान्त स्वरूप वाली हैं मुझे क्षमा करिए । अब आप सुख पूर्वक गमन करिए तथा सबका

हित करिए ।।४।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से गौतम मुनि के द्वारा कही गयी गङ्गा ने फिर गौतम से कहा था जो गङ्गा उस समय में परमाधिक दिव्य रूप के धारण करने वाली तथा दिव्य माला एवं अनुलेपन से युक्त देवी थी ।।५।। श्री गङ्गा देवी ने कहा—मैं अब देवों के सदन स्वर्ग में जाऊँगी अथवा परमेष्ठी के कमण्डलु में पुनः प्राप्त हो जाऊँगी या रसातल को चली जाऊँगी । तुम तो सत्य वाणी वाले हो ही गये हो । तात्पर्य यह है कि तुमने मेरे लाने की प्रतिज्ञा की थी वह पूरी हो गई है ।।६।। गौतम मुनि ने कहा—मैंने जो भगवान् शम्भु से आपके प्राप्त करने की याचना की थी वह याचना तीनों लोकों की भलाई के ही लिये की थी । भगवान् शम्भु ने भी उसी मेरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपको मुझे दिया है । हे देवि ! वह वचन अन्यथा नहीं होना चाहिए ।।७।।

तद्गौतमवचः श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विजेरितम् ।
नेधाऽऽत्मानं विभज्याथ स्वर्गमर्त्यरसातले ।।८
स्वर्गे चतुर्धा व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले ।
रसातले चतुर्धैव सैव पञ्चदशाकृतिः ।।९
सर्वत्र सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनी ।
सर्वकामप्रदा नित्यं सैव वेदे प्रगीयते ।।१०
मर्त्या मर्त्यगतामेव पश्यन्ति न तलं गताम् ।
नैव स्वर्गगता मर्त्याः पश्यन्त्यज्ञानबुद्धयः ।।११
यावत्सागरगा देवी तावद्देवमयी स्मृता ।
उत्सृष्टा गौतमेनैव प्रायात्पूर्वार्णवं प्रति ।।१२
ततो देवर्षिभिर्जुष्टां मातरं जगतः शुभाम् ।
गौतमो मुनिशार्दूलः प्रदक्षिणमथाकरोत् ।।१३
त्रिलोचनं सुरेशानं प्रथमं पूज्य गौतमः ।
उभयोस्तीरयो. स्नानं करोमीति दधे मतिम् ।।१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस गौतम के विनम्र वचन को सुन कर उस द्विज के द्वारा कथित वचन को गङ्गा ने स्वीकार कर लिया था ।

इसके अनन्तर स्वर्ग-पाताल और मनुष्य लोक में अपने स्वरूप को तीन भागों में उस देवी ने विभाजित किया था ।८। स्वर्ग में भी उसने पुन चार भाग किये थे । मर्त्यलोक मे अपने स्वरूप को सात भागो मे विभाजित किया था और रसातल मे भी चार भागों में अपना स्वरूप विभक्त किया था । इस प्रकार से वह पन्द्रह आकृतियो वाली हो गई थी ॥६॥ वह सर्वत्र सर्व भूता और समस्त पापो के विनाश कर देने वाली हैं । सब कामनाओ को पूर्ण करने वाली नित्य ही यही वेदों मे गायी जाया करती हैं ॥१०॥ अज्ञान से पूर्ण बुद्धि वाले मनुष्य उसको इस मनुष्य लोक ही मे रहने वाली देखते हैं । वे उसको रसातल में गमन करने वाली और स्वर्ग लोक मे गई हुई नहीं देखते हैं ॥११॥ जब तक वह देवी सागर मे गमन करने वाली थी तब तक वह देवमयी कही गयी है । गौतम मुनि के द्वारा उत्सृष्ट हुई वह पूर्वार्णव के प्रति गमन कर गयी थी ॥१२॥ इसके पश्चात् मुनियो मे शार्दूल के समान गौतम ने उस जगत् की परम शुभा-देवर्षियो के द्वारा सेवित माता की प्रदक्षिणा की थी ॥१३॥ गौतम मुनि ने सर्व प्रथम सुरेशान त्रिलोचन की पूजा की थी और फिर उसने मन मे ऐसा विचार किया था कि मैं दोनो तटो पर स्नान करूँगा ॥१४॥

स्मृतमात्रस्तदा तत्राऽऽविरासीत्करुणार्णव. ।
तत्र स्नानं कथ सिध्येदित्येव शर्वमब्रवीत् ॥१५
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रस्त्रिलोचनम् ॥१६
देवदेव महेशान तीर्थस्नानविधिं मम ।
ब्रूहि सम्यङ्महेशान लोकाना हिकाम्यया ॥१७
महर्षे शृणु सर्वं च विधिं गोदावरीभवम् ।
पूर्वं नान्दीमुख कृत्वा देहशुद्धिं विधाय च ॥१८
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च ।
ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिता ॥१९
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२०

भावदुष्टिं परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठितः ।
श्रान्तसंवाहनं कुर्वन्दद्यादन्नं यथोचितम् ॥२१
अकिंचनेभ्यः साधुभ्यो दद्याद्वस्त्राणि कम्बलान् ।
शृण्वन्हरिकथां दिव्यां तथा गङ्गासमुद्भवाम् ॥
अनेन विधिना गच्छन्सम्यक्तीर्थफलं लभेत् ॥२२

उस अवसर पर वहाँ पर स्मरण मात्र करने से करुणा के सागर भगवान् शिव तुरन्त प्रकट हो गये थे उस समय मे वहा पर स्नान किस प्रकार से सिद्ध होगा—यह इस प्रकार से शम्भु से पूछा था ॥१५॥ अपने दोनों हाथो को जोड कर भक्ति की भावना से अत्यन्त विनम्र होकर भगवान् त्रिलोचन से कहा था ॥१६॥ गौतम ने कहा—हे देवो के भी देव ! हे महेशान ! समस्त लोको के हित की कामना से मुझे तीर्थों के स्नान की विधि बतलाइये ॥१७॥ भगवान् शिव ने कहा—हे महर्षे ! अब गोदावरी मे होने वाली सम्पूर्ण विधि का मुझ से तुम श्रवण करो । सर्व प्रथम नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिए और फिर देह की शुद्धि करे ॥१८॥ ब्राह्मणो को भोजन करा कर उनकी आज्ञा को ग्रहण करना चाहिए । पतित प्राणियों के साथ वार्त्तालाप न करने वाले होकर ब्रह्मचर्य व्रत के साथ गमन किया करते हैं ॥१६॥ जिसके हाथ पैर और मन सुसयत होते हैं तथा विद्या-तप एव जिसकी कीर्त्ति होती है वही पुरुष तीर्थ के पुण्य-फल का भागी हुआ करता है ॥२०॥ भावो के दोषों का परित्याग करके अपने धर्म मे परिनिष्ठित रहे और श्रान्तों का सेवाहन करते हुए यथोचित अन्न देना चाहिए ॥२१॥ जो अकिञ्चन हो अर्थात् जिनके पास कुछ भी वस्त्रादि के साधन न हो उन साधु पुरुषो को वस्त्र और कम्बल भी देने चाहिए । फिर गङ्गा से समुत्पन्न होने वाली श्री हरि की दिव्य कथा का श्रवण करते तीर्थ में इस उपर्युक्त विधि से गमन करें तो भली भाँति वह मनुष्य तीर्थ का पुण्य-फल प्राप्त कर सकेगा ॥२२॥

३७—गौतमीमहत्त्ववर्णन

त्र्यम्बकश्च इति प्राह गौतमं मुनिभिर्वृतम् ॥१
द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सम्भविष्यन्ति गौतम ।
सर्वत्राहं सन्निहितः सर्वकामप्रदस्तथा ॥२
गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सागरसंगमे ।
एतेषु पुण्यदा पुंसां मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३
नर्मदा तु सरिच्छ्रेष्ठा पर्वतेऽमरकण्टके ।
यमुना संगता तत्र प्रभासे तु सरस्वती ॥४
कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद ।
तिसृणां संगमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिदं नृणाम् ॥५
पयोष्णी संगता यत्र तत्रस्या तत्र मुक्तिदम् ।
इयं तु गौतमी वत्स यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया ॥६
सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ।
किंचित्काले पुण्यतमं किंचित्तीर्थं सुरागमे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में मुनियों से आवृत गौतम से भगवान् त्र्यम्बकजी ने कहा ॥१॥ भगवान् शिव बोले—हे गौतम ! दो हाथ मात्र में तीर्थ होंगे । मैं वहाँ सर्वत्र सब कामों के प्रदान करने वाला मैं सन्निहित रहा करता हूँ ॥२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गंगा द्वार में प्रयाग में तथा सागर के सङ्गम में इन स्थलों में वह भागीरथी गङ्गा मनुष्यों को पुण्य फल प्रदान करने वाली तथा मुक्ति देने वाली हुआ करती है ॥३॥ अमर कण्टक पर्वत में सरिताओं में परम श्रेष्ठ नर्मदा है । वहाँ पर यमुना संगता होती हैं और प्रभास क्षेत्र में सरस्वती है ॥४॥ हे नारद ! कृष्णा-भीमरथी-तुङ्गभद्रा इन तीनों का जहाँ पर सङ्गम होता है वह तीर्थ मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥५॥ जहाँ पर वहाँ पर होने वाली पयोष्णी सरिता संगता हुआ करती है वह स्थल मुक्ति प्रदान करने वाला होता है । हे वत्स ! यह तो गौतमी गङ्गा है । जहाँ कहीं पर मेरी आज्ञा से संगता होती है ॥६॥ सर्वदा सभी मनुष्यों को यह स्नान करने से मुक्ति प्रदान करेगी ।

कुछ तीर्थ गुरो के आगमन होने पर किसी काल में विशेष पुण्य के प्रदाता होते हैं ॥७॥

सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नात्र संशयः ।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च योजनानां शतद्वये ॥८
तीर्थानि मुनिशार्दूल संभविष्यन्ति गौतम ।
इयं माहेश्वरी गङ्गा गौतमी वैष्णवीति च ॥९
ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी ।
ब्रह्मतेजःसमानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०
स्मरणादेव पापौघहन्त्री मम सदा प्रिया ।
पञ्चानामपि भूतानामापः श्रेष्ठत्वमागताः ॥११
तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादापः पराः स्मृताः ।
तासां भागीरथी श्रेष्ठा ताभ्योऽपि गौतमी तथा ॥१२
आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम् ।
स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थदं मुने ॥१३
इत्येतत्कथितं पुत्र गौतमाय महात्मने ।
साक्षाद्धरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम् ॥१४
एवं सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका मता ।
तत्स्वरूपं च कथितं श्रुताऽन्या श्रवणस्पृहा ॥१५

किन्तु यह गौतमी गङ्गा सर्वदा ही समस्त मनुष्यों के लिये तीर्थ है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। दो सौ योजनों में साढ़े तीन करोड़ हे मुनि शार्दूल गौतम ! तीर्थ समुत्पन्न होंगे। यह माहेश्वरी गङ्गा है तथा गौतमी और वैष्णवी है ॥८-९॥ ब्राह्मी गोदावरी नन्दा-सुनन्दा काम दायिनी है ब्रह्म तेज के द्वारा समानीता है और सब प्रकार के पापों का प्रणाश कर देने वाली है ॥१०॥ मेरी प्रिया सदा ही केवल स्मरण मात्र से ही पापों के समुदाय को नष्ट कर देने वाली होती है। पाँचों भूतों में जल ही परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है ॥११॥ उनमें भी जो जल तीर्थ भूत हैं। इसी कारण से जल सबसे प्रमुख कहे गये हैं। उन सबमें भागीरथी गङ्गा श्रेष्ठ है और उनसे भी गौतमी परम श्रेष्ठ है

॥१२॥ यह गौतमी जटाओ के सहित ही लाई गयी थी। हे मुने! इससे अन्य कोई भी शुभा वह तथा समस्त अर्थों के देने वाला तीर्थ स्वर्ग मे तथा भूतल मे भी नही है ॥१३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र! यह सब साक्षात् भगवान् हर ने परम तुष्ट होकर महात्मा गौतम से कहा था और वह सब मैंने तुमको बतला दिया है ॥१४॥ इस रीति से यह गौतमी गङ्गा समस्त अन्य तीर्थों से अधिक श्रेष्ठा बतायी गयी है। उसका स्वरूप मैंने पूर्ण रूप से आपको वर्णित करके बतला दिया है। अब आप को अन्य क्या श्रवण करने की स्पृहा है सो मुझे बतलाइये जिसे मैं बताऊँ ॥१५॥

—※—

३८—कपोततीर्थवर्णन

कुशावर्तस्य माहात्म्यमहं वक्तुं न ते क्षमः।
तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यः भवेन्नरः ॥१
कुशावर्तमिति ख्यातं नराणां सर्वकामदम्।
कुशेनाऽऽवर्तितं यत्र गौतमेन महात्मना ॥२
कुशेनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास तां मुनिः।
तत्र स्नानं च दानं च पितॄणां तृप्तिदायकम् ॥३
नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा निःसृता नीलपर्वतात्।
तत्र स्नानादि यत्किंचित्करोति प्रयतो नरः ॥४
सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितॄणां तृप्तिदायकम्।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु कपोतं तीर्थमुत्तमम् ॥५
तस्य रूपं च वक्ष्यामि मुने शृणु महाफलम्।
तत्र ब्रह्मगिरौ कश्चिद्व्याधः परमदारुणः ॥६
हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्यतीन्गोपक्षिणो मृगान्।
एवंभूतः स पापात्मा क्रोधनोऽनृतभाषणः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा--कुशावर्त्त का माहात्म्य बडा विशाल है। मैं। उसको तुम्हे बतला देने मे समर्थ नहीं हूँ अर्थात् उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहिर है उसका तो केवल स्मरण ही कर लेने से मनुष्य कृत कृत्य (सफल) हो जाया करता है ॥१॥ वह "कुशावर्त्त" इस नाम से ही प्रसिद्ध हुआ है और मनुष्यो के सब मनोरथो के प्रदान करने वाला है। जहाँ पर महात्मा गौतम ने इसको कुशा से आवर्त्तित किया था ॥२॥ उस महा मुनि ने कुशा से आवर्त्तन करके उसका आनयन किया था। वहाँ पर स्नान करना तथा दान करना पितृगणो को बहुत ही अधिक तृप्ति देने वाला होता है ॥३॥ नील गङ्गा समस्त सरिताओं मे बहुत ही श्रेष्ठ है और वह नील पर्वत से निकली है। वहाँ पर कोई मनुष्य प्रयत होकर जो स्नान आदि जो कुछ भी किया करता है वह सभी अक्षय समझना चाहिए क्योंकि यह पितृगण को भी बहुत तृप्ति का देने वाला होता है। यह उत्तम तीर्थ तीनो लोको मे कपोत नाम से विख्यात है ॥४-५॥ हे मुने ! मैं उसका स्वरूप बतलाता हूं। जिसका कि महान् फल हुआ करता है। उसका तुम श्रवण करो। उस ब्रह्मगिरि मे एक व्याध रहता था जो बहुत ही दारुण था ॥६॥ वह सर्वदा ब्राह्मणो को-साधुओ को-यतियो को गौओ को तथा पक्षियो को और मृगो को मारा करता था। वह पापात्मा इसी तरह का था जो अत्यन्त क्रोधी एव मिथ्या भाषण करने वाला था ॥७॥

भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुकः ।
दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिकः ॥८

ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभस्वनः ।
पाशहस्तः पापचित्तः पापिष्ठः सधनुः सदा ॥९

तस्य भार्या तथाभूता अपत्यान्यपि नारद ।
तथा तु प्रेर्यमाणोऽसौ विवेश गहनं वनम् ॥१०

स जघान मृगान्पापः पक्षिणो बहुरूपिणः ।
पञ्जरे प्राक्षिपत्काश्चिज्जीवमाना स्तथेतरान् ॥११

क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृषया तथा ।
भ्रान्तदेशो बहुतरं न्यवर्तत गृहं प्रति ॥१२
ततोऽपराह्णे सम्प्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे ।
क्षणात्सविद्युद्गर्जितं च साभ्रं चैवाभवत्तदा ॥१३
ववौ वायुः साश्मवर्षो वारिधारातिभीषण. ।
स गच्छँल्लुब्धकः श्रान्तः पन्थानं नावबुध्यतः ॥१४

वह बहुत ही भीषण आकृति वाला था । उसके नेत्र नीले वर्ण के थे और उसकी भुजाऐं बहुत छोटी थीं । बड़े दाँतों वाला विनष्ट नाक और आँखों वाला छोटे पैरों वाला तथा बड़ी कुक्षियों वाला वह था ॥८॥ उसका उदर छोटा था भुजाऐं भी छोटी थीं तथा अत्यन्त विकृत स्वरूप वाला था । उसकी ध्वनि गधे के समान थी । वह सर्वदा अपने हाथों में पाश लेकर रहा करता था । चित्त में उसके पाप ही भरा रहता था और धनुष हाथ में लेकर वह महान् पापिष्ठ घूमा करता था ॥९॥ हे नारद ! उसकी भार्या भी वैसी ही दारुण और विकृत आकृति वाली थी और उसकी सन्तान भी उसी प्रकार की थी । उस पत्नी के द्वारा प्रेरित होकर गहन वन में प्रवेश किया करता था ॥१०॥ वन में प्रविष्ट होकर उस महान् पापी ने बहुत से स्वरूप वाले मृगों को और पक्षियों को मार डाला था । जो कुछ जीवित रह गये थे उन सबको उसने एक पिंजड़े में डाल दिया था ॥११॥ भूख से परितप्त अङ्गों वाला वह प्यास से भी बहुत घबड़ाया हुआ था । बहुत से वन के भागों में भ्रमण करने वाला वह अपने घर की ओर वापिस लौटा था ॥१२॥ जब दुपहर के बाद का समय हुआ तो उस समय में मधु माधव के निवृत्त हो जाने पर क्षण मात्र में ही उस समय में मेघों के सहित बिजली की गर्जना हुई थी ॥१३॥ उस समय में जल की घोर धाराओं से अत्यन्त भीषण पत्थरों की अर्थात् ओलों की वर्षा के सहित बड़ी भयानक वायु चलने लगीथी । वह व्याध घर को जा ही रहा था कि मार्ग में ही ऐसी घटना घटने लगी थी । वह बहुत ही थका हुआ था और महान् भयानक समय में अपने घर का मार्ग भूल गया था ॥१४॥

जल स्थल गर्तमथो पन्थानमथवा दिशः ।
न बुबोध तदा पापः श्रान्तः शरणमप्यथ ॥१५
क्व गच्छामि क्व तिष्ठेय किं करोमीत्यचिन्तयत् ।
सर्वेषां प्राणिनां प्राणानाहर्ताऽहं यथाऽन्तकः ॥१६
ममाप्यन्तकरं भूत सम्प्राप्तं चाश्मवर्षणम् ।
त्रातारं नैव पश्यामि शिलां वा वृक्षमन्तिके ॥१७
एवं बहुविधं व्याधो विचिन्त्यापश्यदन्तिके ।
वने वनस्पतिमिव नक्षत्राणां यथाऽत्रिजम् ॥१८
मृगाणां च यथा सिंहमाश्रमाणां गृहाधिपम् ।
इन्द्रियाणां मन इव त्रातारं प्राणिनां नगम् ॥१९
श्रेष्ठं विटपिनं शुभ्रं शाखापल्लवमण्डितम् ।
तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्क्लिष्टमयासा स लुब्धकः ॥२०
स्मरन्भार्यापत्यानि जीवेयुरथवा न वा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्तं प्राप्तो दिवाकरः ॥२१

उस समय में वह पापी इतना थका हुआ था कि उस अन्धड़ और तूफान में उसे जल-स्थल-गड्ढा-मार्ग और दिशाएँ कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। वह किसकी शरण ग्रहण करे—यह वह नहीं जान सका था ॥१५॥ उसने सोचा कि मैं अब क्या करूँ ? मैं यमराज की भाँति ही समस्त प्राणियों के प्राणों का आहरण करने वाला हूँ। मेरा भी अन्त कर देने वाली अश्मों (ओलों) की वर्षा हो रही है। मैं इस समय में अपना परित्राण करने वाला कोई भी नहीं देख रहा हूँ। न इस समय में मेरे समीप में कोई शिला है और न कोई वृक्ष ही है जिसका आश्रय मैं ले सकूँ ॥१६-१७॥ इस तरह से बहुत रीति से उस व्याध ने सोचा था इसके उपरान्त उसने समीप में ही एक वृक्ष को देखा था जो उस उपवन में वनस्पति की भाँति तथा नक्षत्रों में अत्रिज के समान था। जिस तरह से सब पशुओं में सिंह होता है और समस्त आश्रमों में गृहस्थ होता है तथा सब इन्द्रियों में मन होता है उसी प्रकार से प्राणियों के त्राण करने वाले उस वृक्ष को व्याध ने देखा था ॥१८-१९॥ वह वृक्ष परम श्रेष्ठ शुभ्र

और शाखाओं तथा पल्लवों से विभूषित था। उसी वृक्ष का समाश्रय लेकर भीगे हुए वस्त्रों वाला वह व्याध बैठ गया था ॥२०॥ वह व्याध अपनी भार्या और बच्चों का स्मरण कर रहा था कि व इस भीषण समय में जीवित भी रहे होंगे या नहीं। इसी बीच में वहीं पर सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये थे ॥२१॥

तमेव नगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह ।
पुत्रपौत्रै परिवृतो ह्यास्ते तत्र नगात्तमे ॥२२
सुखेन निभयो भूत्वा सुतृप्त प्रीन एव च ।
वहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षि ॥२३
पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन चव हि ।
कोटरे तद्गगे श्रेष्ठे जलवाय्वग्निर्जिते ॥२४
भार्यापुत्र परिवृत सर्वदाऽऽस्ते कपोतक ।
तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी ॥२५
भक्ष्यार्थं तु उभो यातो कपोतो नगमभ्यगात् ।
साऽपि दैववशात्पुत्र पञ्जरस्थैव वर्तते ॥२६
गृहोता लुब्धकेनाथ जीवमानेव वर्तते ।
कपोतकीऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च ॥२७
वर्ष च भीषण प्राप्तमस्त यातो दिवाकर. ।
स्वकोटर तयाहीनमालोक्य विललाप स. ॥२८

इसी वृक्ष का आश्रय ग्रहण करके एक कपाल (कबूतर) अपनी भार्या के सहित पुत्र-पौत्रों से परिवृत होता हुआ उस उत्तम वृक्ष पर निवास किया करता था ॥२२॥ वह सुख के साथ निर्भय होकर परम सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर वहाँ रहा करता था। उसको वहाँ पर निवास करते हुए बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥२३॥ उसकी भार्या पतिव्रता थी और उस अपने पति से भी वह परम प्रसन्न रहा करती थी। जल-अग्नि और वायु के भय से रहित उस श्रेष्ठ वृक्ष की खोतर में वह कबूतर अपनी भार्या और पुत्रों से परिवृत होता हुआ सवदा निवास किया करता है। उसी दिन में दैव वश से वह कपोत और कबूतरी दोनों ही भक्ष्य के

लिये चले गये थे। हे पुत्र! वह कपोती भी भाग्य के वश से पिंजरे मे स्थित होकर व्याध के बन्धे मे फँस गयी थी और वह कबूतर अपने आश्रम वाले वृक्ष पर समागत हो गया था। वह कपोती जीवित रहते हुए ही लुब्धक के द्वारा पकड़ ली गई थी। उस कपोत ने अपने बच्चों को माता से हीन देखा था ॥२४-२७॥ वर्षा बहुत ही भीषण हुई थी और सूर्यदेव भी अस्त हो गये थे। उस समय में उस कपोत ने अपनी आश्रय की खोखर को पत्नी से रहित देखा तो वह विलाप करने लग गया था ॥२८॥

ता बद्धा पञ्जरस्था वा न बुबोध कपोतराट् ।
अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम् ॥२९
नाद्याप्यायाति कल्याणी मम हर्षविवर्धिनी ।
मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी ॥३०
धर्मार्थकाममोक्षाणां सैव नित्य सहायिनी ।
तुष्टे हसन्ती रुष्टे च मम दुःखप्रमार्जनी ॥३१
सखी मन्त्रेषु सा नित्यं मम वाक्यरता सदा ।
नाद्याप्यायाति कल्याणी सम्प्रयातेऽपि भास्करे ॥३२
न जानाति व्रतं मन्त्रं दैवं धर्मार्थमेव च ।
पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया ॥३३
नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि क्व यामि वा ।
किं मे गृहं काननं च तया हीनं हि दृश्यते ॥३४
तया युक्तं श्रिया युक्तं भीषणं वाऽपि शोभनम् ।
नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदीरितम् ॥३५

वह कपोतों का राजा यह नहीं जानता था कि वह उसकी पत्नी पिंजरे में स्थित होकर बद्ध हो गयी है। तब तो अपनी पत्नी के वियोग में विलाप करते हुए उस कपोत ने अपनी प्रिया के गुणों का कीर्तन करना आरम्भ कर दिया था ॥२९॥ कपोत कह रहा था—वह कल्याणी मेरे हर्ष को बढ़ाने वाली अभी तक भी नहीं आ रही है। यह प्रिया मेरे धर्म की जननी है और मेरे शरीर की स्वामिनी है ॥३०॥ धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष—इन चारो पुरुषार्थों की नित्य ही सहायता करने वाली भी वह ही मेरी प्रियतमा होती है। जब मैं परम तुष्ट होता था तो वह हँसती रहा करती थी और किसी कारण वश रुष्ट हो जाता था तो वह मेरे हार्दिक दु ख का परिमार्जन किया करती थी ॥३१॥ कभी किसी विषय मे मन्त्रणा करने का अवसर होता था तो वह हमेशा मेरी सखी बन जाया करती थी अर्थात् हितैषी मित्र के समान सलाह दिया करती थी। वह सर्वदा मेरे वचनो मे रति रक्खा करती थी। भगवान् भास्कर भी अस्त हो गये है और इतना विलम्ब होने पर भी वह कल्याणी भार्या अब तक भी नही आयी है ॥३२॥ वह मेरी पत्नी परम पतिव्रता है–पति को ही प्राण के समान मानने वाली है–पति ही उसका एक मात्र मन्त्र है और पति की वह बहुत ही प्यारी है। वह न कोई व्रत जानती है न मन्त्र का ही ज्ञान है–दैव को भी वह कुछ नही समझती और पति के सिवाय धर्मार्थ को भी नही जानती है ॥३३॥ वह मेरी परम कल्याणी प्रिया अभी तक भी नही आई है। मैं कहाँ जाऊँ और अब क्या करूँ ? अब यह मेरा घर क्या है–यह तो वन जैसा ही है। उसके बिना यह गृह बहुत बुरा दिखाई दे रहा है ॥३४॥ जब इस घर मे वह रहती है तो यह गृह श्री से सुसम्पन्न दिखाई देता है और चाहे यह कैसा भी भीषण हो तो अच्छा दिखलाई दिया करता है। वह मेरी कान्ता अभी तक भी नही आयी है जिसके होने पर ही यह गृह कहा गया है ॥३५॥

विनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रिया तनुम्।
किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वहं पुन ॥३६
एव विलपतस्तस्य भर्तुर्वाक्य निशम्य सा।
पञ्जरस्थैव सा वाक्य भर्तार मिदमब्रवीत् ॥३७
अत्राहमस्मि बद्धैव विवशाऽस्मि खगोत्तम।
आनीताऽहं लुब्धकेन बद्धा पाशैर्महामते ॥३८
धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि पतिर्वक्ति गुणान्मम।
सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्थाऽहं न सशय: ॥३९

तुष्टे भर्तरि नारीणा तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
विपर्यये तु नारीणामवश्य नाशमाप्नुयात् ॥४०
त्व देव त्व प्रभुर्मह्य त्व सुहृत्त्व परायणम् ।
त्व व्रत त्व पर ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च ॥४१
मा चिन्ता कुरु कल्याण धर्मे बुद्धि स्थिरा कुरु ।
त्वत्प्रसादाद्व भुक्ता हि भोगाश्च विविधा मया ॥४२
अल खेदेन मज्जेन धर्मे बुद्धि कुरु स्थिराम् ॥४३

उस कपोत ने उक्त प्रकार पत्नी के वियोग मे क्रन्दन करते हुए कहा था कि अब मैं इसके बिना जीवित नही रहूँगा अथवा इस प्रिय शरीर का ही परित्याग कर दूँ । ये बच्चे क्या करेंगे ? मैं तो धर्म के लुप्त हो जाने वाला ही हो गया हूँ ॥३६॥ इस प्रकार से विलाप करते हुए अपने स्वामी के क्रन्दन पूर्ण इन वचनों को सुनकर पिंजडे मे स्थित होती हुई ही उस कपोती ने अपने भर्त्ता से यह कहा था ॥३७॥ उस कपोती ने कहा—हे खगोत्तम ! मैं हू तो यही पर, किन्तु पिंजडे मे बद्ध होने के कारण विवश हू । हे महती मति वाले ! पतिदेव ! इस लुब्धक के द्वारा पाशो से बाँध कर मुझे यहाँ लाया गया है ॥३८॥ मैं परम धन्य हूँ और अनुग्रहीत हो गई हूँ कि मेरा स्वामी स्वय अपने मुख से मेरे गुणो का कीर्त्तन करते है । चाहे वे गुण हो अथवा न भी हो तो भी मैं परम कृतार्थ हो गयी हूँ इसमे कुछ भी सशय नही है ॥३९॥ नारियों का यदि भर्त्ता पूर्णतया सन्तुष्ट है तो उससे सभी देवता परम सन्तुष्ट एव प्रसन्न रहा करते हैं । यदि नारियो का पति ही उनसे सन्तुष्ट नही है तो अवश्य ही नाश के विपर्यय होने पर प्राप्त हो जाया करती हैं क्योंकि नारियो का एक मात्र पति ही सब कुछ हुआ करता है ॥४०॥ हे पति देव ! मेरे आप ही देव हैं—आप ही प्रभु हैं मेरे आप ही सुहृत है और आप ही मेरे लिये परम देवता हैं । आप ही मेरे व्रत हैं—आप ही परमोपास्य देव हैं परब्रह्म हैं और आप ही मेरे लिये स्वर्ग एव मोक्ष हैं ॥४१॥ हे कल्याण स्वरूप ! आप मेरे लिये चिन्तित होकर ऐसा करुण क्रन्दन मत करिए और आप अपनी धर्म सम्बन्धनी बुद्धि को ही सुस्थिर कीजिये । हे ...

देव ! आपके प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग किया है। आप अब अत्यन्त खेद मेरे लिये न करिए और वियोग की खिन्नता में निमग्न न होइए। आप तो मेरी चिन्ता का पूर्णतया त्याग करके धर्म में ही अपनी बुद्धि को सुस्थिर करिये ॥४२-४३॥

इति श्रुत्वा प्रिया वाक्यमुत्ततार नगोत्तमात् ।
यत्र सा पञ्जरस्था तु कपोति वर्तते त्वर(द्रु त)म् ॥४४
तामागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम् ।
मोचयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना ॥४५
मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सबन्धमस्थिरम् ।
लुब्धाना खेचरा ह्यन्न जीवो जीवस्य चाशनम् ॥४६
नापराध स्मराम्यस्य धर्मबुद्धि स्थिरा कुरु ।
गुरुरग्निर्द्विजातीना वर्णाना ब्राह्मणो गुरुः ॥४७
पतिरेव गुरु स्त्रीणा सर्वस्याभ्यागतो गुरु ।
अभ्यागतमनुप्राप्त वचनैस्तोषयन्ति ये ॥४८
तेषा वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम् ।
तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥४९
पितर पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापति ।
तस्योपचाराद्वै लक्ष्मीविष्णुना प्रीतिमाप्नुयात् ॥५०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार के अपनी प्रिया के वचनों का श्रवण करके वह कपोत उस अपने आश्रय वाले वृक्ष से नीचे उतर आया था और वह वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर पिंजड़े में स्थित वह कपोती विद्यमान थी ॥४४॥ वह तुरन्त ही बहुत ही शीघ्रता से उसके समीप में पहुँच गया और उसने अपनी प्रिया को वहाँ पर देखा था तथा उस लुब्धक को भी देखा था जो मृतक के समान वहीं पर पड़ा हुआ था। उस कपोत ने अपनी प्रिया से कहा था कि मैं तुम्हारा मोचन करता हूँ क्योंकि यह व्याध तो इस समय में चेतनाहीन मूर्छित सा पड़ा हुआ है ॥४५॥ उस कपोती ने कहा—हे महाभाग ! इस सम्बन्ध को स्थिरता से शून्य समझ कर मेरा मोचन मत करो। तात्पर्य यह है कि यह तात्त्विक

पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थायी नहीं है। व्याधों का खाद्य अन्न तो पक्षी ही हुआ करते हैं क्योंकि जीव ही जीवों का भोजन हुआ करता है ॥४६॥ अब मैं तो इस व्याध के अपराध के विषय में कुछ भी स्मरण नहीं करती हूँ। आप भी धर्म की बुद्धि ही को स्थिर करिए। द्विजातियों का गुरु अग्निदेव होते हैं—वर्णों के गुरु ब्राह्मण होते हैं ॥४७॥ स्त्रियों का गुरु एक मात्र पति हुआ करता है और जो अभ्यागत होता है वह तो सभी का गुरु हुआ करता है। अभ्यागत अर्थात् अतिथि का सबसे अधिक महत्त्व शास्त्रों में माना गया है। जो लोग प्राप्त हो जाने वाले अभ्यागत का परम सुमधुर वचनों के द्वारा तोष किया करते हैं उनके ऊपर वागीश्वरी देवी निश्चित रूप से तृप्त हो जाती है। उस अभ्यागत को जो सुख अन्न समर्पित किया जाता है तो उससे महेन्द्र देव परम संतृप्त हो जाया करते हैं ॥४८-४६॥ अतिथि के चरणों को धोने से पितृगण प्रसन्न होते हैं और अन्नादि के समर्पित करने से प्रजापति संतृप्त होते हैं। अभ्यागत के अन्य उपचार करने से लक्ष्मी देवी तृप्त होती है और लक्ष्मी के साथ ही भगवान् विष्णु भी परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥५०॥

शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः।
अभ्यागतमनुश्रान्तं सूर्योढं गृहमागतम्॥
स विद्याद्वरूपेण सर्वक्रतुफलो ह्यसौ ॥५१

अभ्यागतं श्रान्तमनुव्रजन्ति,
देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च।
तस्मिन्हि तृप्ते मुदमाप्नुवन्ति,
गते निराशेऽपि च ते निराशाः ॥५२

तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःखं त्यक्त्वा शमं व्रज।
कृत्वा तिष्ठ शुभां बुद्धिं धर्मकृत्यं समाचर ॥५३
उपकारोऽपकारश्च प्रवराविति नमतौ।
उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः ॥५४
अपकारिषु यः साधु पुण्यभाक्स उदाहृतः ॥५५

स तु गत्वा वह्निदेश चञ्चुनोल्मुकमाहरत् ।
पुरोऽग्नि ज्वालयामास लुब्धकस्य कपोतक. ॥६२
शुष्ककाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुन पुन. ।
अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपातराट् ॥६३

कपोत ने कहा—हे प्रिये ! तुमने हम दोनो के ही अनुरूप कथन किया है और तुम्हारा ज्ञान परमोत्तम है तथा तुम समुचित ही मानती हो किन्तु हे वरानने ! इस विषय मे मेरा कुछ वक्तव्य है उसका भी श्रवण कर लो ॥५६॥ इस ससार मे बहुत प्रकार के जीव हैं—कोई तो एक सहस्र प्राणियो का भरण-पोषण किया करता है—दूसरा सौ प्राणियों का पालन करता है, अन्य ऐसा है जो दश ही जीवो का पोषण किया करता है—कोई ऐसा ही है जो सुखपूर्वक अपना ही उदर-पोषण कर लेता है किन्तु हम लोग तो ऐसे प्राणी हैं जो अपना ही उदर बडे कष्ट के साथ भरा करते हैं ॥५७॥ कुछ प्राणी ऐसे इसी ससार मे विद्यमान हैं जो अपने विशाल धन को भूमि के तहखानो मे गाड कर रखते हैं—दूसरे ऐसे हैं जो कुशल धनी हैं। कतिपय ऐसे भी प्राणी है जो घटो मे भरकर धन को अर्थात् धान्य को रखते है किन्तु हम तो उन प्राणियो मे से हैं जो केवल अपनी चोंच मे ही धन अर्थात् धान्य को रखते हैं। कथन का अभिप्राय ऐसा ही है कि हमारे पास सग्रह तो होता ही नही है। हे शुभे ! भला फिर तुम ही बतलाओ मैं इस परम श्रान्त अभ्यागत का पूजन एव सलाह किस तरह से करूँ क्योकि हमारे पास मे तो कुछ भी सगृहीत नही है ॥५८-५९॥ उस कपोती ने कहा—हे प्राणनाथ ! इस समय मे विचारा यह लुब्धक शीत से अत्यन्त उत्पीडित हो रहा है। अग्नि-जल-परम मधुर एव शुभ वाणी और जो भी तृण-काष्ठ प्रभृति कुछ हो वही इसको देना चाहिए ॥६०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपनी प्रिया के द्वारा कथित इस वचन को सुनकर वह पक्षियो का राजा अपने आश्रय वाले उस वृक्ष पर चढा गया था और उस समय मे उसने देखा था कि बहुत दूरी पर कहीं अग्नि विद्यमान है ॥६१॥ वह उसी समय मे अग्नि के स्थल पर उड कर गया और अपनी चोंच से वह्नि का एक कण वहाँ से

ले आया था। फिर उस लुब्धक के सामने उस कपोत (कबूतर) ने आग जलायी थी। उस आग मे उसने सूखी हुई लकड़ियाँ-पत्ते तथा तृणों को बारम्बार डाल दिया था। वह उस समय मे आधी रात का घोर शीत से पूर्ण समय था ॥६२-६३॥

तमग्निं ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः ।
अवशानि स्वकाङ्गानि प्रताप्य सुखमाप्तवान् ॥६४
क्षुधाग्निना दह्यमानं व्याधं दृष्ट्वा कपोतकी ।
मा मुञ्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत् ॥६५
स्वशरीरेण दुःखार्तं लुब्धकं प्रीणयामि क्षम् ।
इष्टातिथीनां ये लोकास्तांस्त्वं प्राप्नुहि सुव्रत ॥६६
मयि तिष्ठति नैवायं तव धर्मो विधीयते ।
इष्टातिथिर्भवामीह अनुजानीहि मां शुभे ॥६७
इत्युक्त्वाऽग्निं त्रिरावर्त्य स्मरन्देवं चतुर्भुजम् ।
विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥६८
यथासुखं जुषस्वेति वदन्नग्निं तथाऽऽविशत् ।
तं दृष्ट्वाऽग्नौ क्षिप्तजीवं लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ॥६९
अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिदं मम ।
यदिदं पक्षिराजेन मदर्थे साहसं कृतम् ॥७०

उस जली हुई अग्नि को देखकर वह व्याध जो शीत से अत्यन्त दुःखित था कुछ चेष्टा युक्त हुआ और उसने अपने शीत की अधिकता से विवश अङ्गों को प्राप्त किया था और उससे उसे बहुत ही सुख प्राप्त हुआ था ॥६४॥ अब तो क्षुधा की अग्नि से दग्ध हुए उस व्याध को कपोती ने देखा था और फिर उसने अपने स्वामी से निवेदन किया कि हे नाथ ! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं अब मुझको इस पीञ्जरे से मुक्त कर दीजिए अर्थात् पीञ्जरे को खोलकर जाल मे बद्ध मुझे खोलकर बाहिर निकाल देवें जिससे मैं अपने शरीर के द्वारा जो कि एक दिन अवश्य ही विनाश को प्राप्त होने वाला है उस भूख से परम दुःखित व्याध को प्रसन्न करूँ। हे सुव्रत ! जो लोक अपने इष्ट अतिथियों के हैं

उनको आप प्राप्त करिए ॥६५-६६॥ कपोत ने अपनी प्रिया के उन वचनो का श्रवण करके कहा—कपोत बोला—मेरे जीवित एवं विद्यमान रहते हुए तुम्हारा यह धर्म नहीं किया जाता है। हे शुभे ! यहाँ पर इष्टातिथि मैं ही होता हूँ—ऐसा ही तुम समझ लो ॥६७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना भर कहकर उस अग्नि की तीन प्रदक्षिणा उस कपोत ने की और भगवान् चतुर्भुज का स्मरण किया था जो इस विशाल विश्व के स्वरूप वाले शरणागति में सम्प्राप्त प्राणी की रक्षा करने वाले—अपने भक्तों पर बहुत ही प्यार करने वाले महाविष्णु हैं ॥६८॥ सुखपूर्वक प्रीति के साथ सेवन करो—इतना कहते हुए वह उस अग्नि में प्रवेश कर गया था। अग्नि में अपने सजीव शरीर को प्रक्षिप्त करने वाले उस कपोत को देखकर वह लुब्धक यह वचन कहने लगा। उस व्याध ने कहा—ओहो ! मनुष्य का देह धारण करने वाले मेरे इस जीवन को धिक्कार है जब कि इस पक्षियों के राजा कपोत ने मेरे प्राणों की सुरक्षा के वास्ते इतना बड़ा साहस किया है अर्थात् अपने परम प्रिय प्राणों की आहुति दे दी है ॥६९-७०॥

एवं ब्रुवन्तं तं लुब्धं पक्षिणी वाक्यमब्रवीत् ॥७१
मा त्वं मुञ्च महाभाग दूरं यात्येव मे पतिः ॥७२
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्थां कपोतकीम् ।
लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३
साऽपि प्रदक्षिणं कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ ॥७४
स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम् ।
वेदे च विहितो मार्गः सर्वलोकेषु पूजितः ॥७५
व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात् ।
एवं त्वनुगता नारी सह भर्त्रा दिवं व्रजेत् ॥७६
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥७७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार के वचनों को कहने वाले उस व्याध से वह कपोती यह वचन कहने लगी थी ॥७१॥ कपोती ने —

मुक्तपाप पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने ।
अश्वमेधफल पुण्य प्राप्य पुण्यो भविष्यसि ॥८७
सरिद्वराया गौतम्या ब्रह्मविष्णवीशसभुवि ।
पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देह मलीमसम् ॥८८
विमानवरमारूढः स्वर्गं गन्ताऽस्यसशयम् ॥८९
तच्छ्रुत्वा वचन ताभ्या तथा चक्रे स लुब्धक ।
विमानवरमारूढो दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥९०
दिव्यमाल्याम्बरधर पूज्यमानोऽप्सरोगणै ।
कपोतश्च कपोती च तृतीयो लुब्धकस्तथा ॥
गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे व दिवमाक्रमन् ॥९१
तत प्रभृति तत्तीर्थं कापोतमिति विश्रुतम् ।
तत्र स्नान च दान च पितृपूजनमेव च ॥९२
जपयज्ञादिक कर्म तदानन्त्याय कल्पते ॥९३

लुब्धक ने कहा—हे महाभाग वालो ! आपको मेरा त्याग नहीं करना चाहिए। मैं तो बहुत ही अज्ञानी हू। मुझे भी आप लोगों को कुछ देना चाहिए। मैं यहाँ पर मान्य अतिथि हू। आप मेरे पापों की कोई निष्कृति बतलाने के योग्य हैं ॥८५॥ दम्पती ने कहा—आप गौतमी गङ्गा के समीप मे जाइये। आपका कल्याण वहीं पर होगा। गौतमी से अपने पापों के विषय मे निवेदन करो। एक पक्ष पर्यन्त वहाँ पर आप्लवन करने से आप समस्त पापो से छुटकारा पाजायगे ॥८६॥ जब आप अपने किये हुए पापों से मुक्त हो जावे तो फिर विशुद्ध होकर उस गौतमी गङ्गा म अवगाहन करने पर अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त कर परम पुण्यवान् हो जाँयगे ॥८७॥ ब्रह्मा विष्णु और शम्भु से समुत्पन्न हुई उस समस्त सरिताओ मे श्रेष्ठ गौतमी गङ्गा म फिर स्नान करने से ही इस महामलिन देह को त्याग कर आप परम श्रेष्ठ विमान पर समारूढ होकर निश्चित रूप से स्वर्गलोक को गमन करेंगे—इसमे कुछ भी संशय नहीं हैं ॥८८-८९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन दोनों से कहे हुए उस वचन को सुनकर उस लुब्धक ने वैसा ही

किया था और फिर उस पुण्य के प्रभाव से एक परम दिव्य विमान पर समारूढ़ होकर वह दिव्य रूप के धारण करने वाला हो गया था ॥६०॥ वह दिव्य मालाओं के धारण करने वाला तथा दिव्य वस्त्रधारी और अप्सराओं के द्वारा पूज्यमान हो गया था। वे कपोत कपोती दोनों और तीसरा लुब्धक गौतमी गङ्गा के प्रभाव से सब के सब स्वर्गलोक को चले गये थे ॥६१॥ तभी से लेकर वह तीर्थ "कपोत तीर्थ"—इस शुभ नाम से विख्यात हो गया है। वहां पर किया हुआ स्नान-दान तथा पितृगण का अर्चन और जाप-यज्ञ प्रभृति सब अनन्त एवं अक्षय माने जाते हैं ॥६२-६३॥

--:*:--

३६—दशाश्वमेधतीर्थवर्णन

दशाश्वमेधिकं तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने ।
यस्य श्रवणमात्रेण हयमेधफलं लभेत् ॥१
विश्वकर्मसुतः श्रीमान्विश्वरूपो महाबलः ।
तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः ॥२
पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः ।
तमपृच्छन्महाबाहुर्भौवनः सार्वभौवनः ॥३
यक्ष्येऽहं हयमेधैश्च युगपद्दशभिर्मुने ।
इत्यपृच्छद्गुरुं विप्रं क यक्ष्यामि सुरानिति ॥४
सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम ।
यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रावर्तन्त महान्क्रतून् ॥५
तत्राभवन्नृषिगणा आर्त्विज्ये मखमण्डले ।
युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा ॥६
पूर्णता नाऽऽययुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः ।
विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्क्रतून् ॥७

उपक्रामतथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययु ।
दृष्ट्वाऽपूर्णास्ततो यज्ञाश्राजा गुरुमभाषत ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे महामुने ! एक दशाश्वमेधिक तीर्थ है उसके विषय में श्रवण करिए जिसके केवल सुनने से ही अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त हो जाता है ॥१॥ विश्वकर्मा का पुत्र महान् बलवान् श्री सम्पन्न विश्व रूप था। उसका भी जो प्रथम पुत्र था उसका पुत्र विभु भौवन हुआ था ॥२॥ उसका पुरोहित कश्यप ऋषि थे जो कि सब प्रकार के शास्त्र के महान् पण्डित थे। महाबाहु सार्व भौवन ने उन अपने पुरोहित जी से पूछा था ॥३॥ हे महामुने ! मैं एक ही बार में एक साथ दश अश्वमेधों के द्वारा यजन करूँगा। उसने अपने गुरु उन विप्रवर से यही पूछा था कि सब सुरों का यजन मैं कहाँ पर कर सकूँगा ॥४॥ उस पुरोहित कश्यप ने कहा—हे नृपोत्तम ! वहाँ वहाँ पर ही देवों का यजन होता है जहाँ-जहाँ पर श्रेष्ठ द्विजों ने महान् क्रतुओं को पहिले किया था ॥५॥ वहाँ पर आतिज्य मखमण्डल में ऋषियों का समुदाय एकत्रित हुआ और पुरोहित कश्यप मुनि के द्वारा एक साथ दश अश्वमेध यज्ञों का प्रारम्भ किया गया था ॥६॥ किन्तु वे पूर्ण नहीं हुए थे—उन यज्ञों की अपूर्णता को देखकर नृप बहुत ही चिन्ता युक्त हो गया था। उस राजा ने वहाँ पर देवों का यजन करता त्याग कर फिर किसी अन्य स्थान पर उन्हीं क्रतुओं को करने का उपक्रम किया था किन्तु वहाँ पर भी उसको विघ्नों के दोषों का समुदाय आगया। उस राजा ने अपने समारब्ध यज्ञों को अपूर्ण देखकर गुरुजी से कहा ॥७ ८॥

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तथापि वा ।
पूर्णता नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिनः ॥६
ततश्च दुःखिनो राजा कश्यपेन पुरोधसा ।
सोऽप्य तत्रभ्रातर ज्येष्ठ गत्वा सर्वतमूचतु ॥१०
भगवन्दश्मकश्यपाद्य धानि मानद ।
दश सपूर्णता यान्ति त देश त गुरु वद ॥११
ततो ध्यात्वा ऋषिश्रेष्ठ सार्वो भौवन तदा ।

अब्रवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदिष्यति ॥१२
भौवनोऽपि महाप्राज्ञ. कश्यपेन महात्मना ।
आगत्य मामब्रवीत्तं गुरुं देशादिकं च यत् ॥१३
ततोऽहमब्रवं पुत्र भौवनं कश्यपं तथा ।
गौतमीं गच्छ राजेन्द्र स देशः क्रतुपुण्यवान् ॥१४

राजा ने कहा—हे भगवन् ! यह कोई देश का दोष है अथवा काल का दोष है ? मेरा ही कोई दोष या कमी है या कोई आपका दोष है ? क्या कारण है कि मेरे ये दश अश्वमेध यज्ञ एक साथ करने का जो मेरा सङ्कल्प था वह पूर्ण नहीं होता है ? ॥८॥ ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त वह राजा अत्यन्त दुःखित होकर अपने पुरोहित कश्यप जी के साथ भगवान् बृहस्पति जी के जो ज्येष्ठ भाई संवर्त थे उनके समीप मे जाकर उनसे उन दोनों ने कहा—कश्यप और भौवन ने कहा—हे मानद ! भगवन् ! दश अश्वमेध यज्ञ मुझे एक ही साथ करने हैं। वे दशों अश्वमेध यज्ञ पूर्णता को प्राप्त हो जावें—वह स्थल कौन सा है उसी देश को मेरे गुरुजी को बतलाने की कृपा कीजिए ॥१०-११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त उसी समय मे ऋषियों मे परम श्रेष्ठ सम्वर्त्त जी ने योगाभ्यास की रीति से ध्यान किया था और फिर उन्होने कहा था कि ब्रह्माजी के समीप मे चले जाओ। वे आपके गुरुजी को वह देश बतला देंगे ॥१२॥ इसके अनन्तर महान् पण्डित राजा भौवन महान् आत्मा वाले कश्यप ऋषि के साथ मेरे समीप मे समागत हुए थे और वह गुरु तथा देशादि के सम्बन्ध में बोला था ॥१३॥ हे पुत्र ! इसके पश्चात् मैंने भौवन नृप और कश्यप मुनि से कहा था कि हे राजेन्द्र ! गौतमी गङ्गा के समीप मे चले जाओ। वही देश क्रतुओं के लिये पुण्य वाला है ॥१४॥

अयमेव गुरुः श्रेष्ठः कश्यपो वेदपारगः ।
गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादत. ॥१५
एकेन हयमेधेन तत्र स्नानेन वा पुनः ।
सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधानि वाजिनः ॥१६

यच्छ्रुत्वा भौवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात् ।
कश्यपेन सहायेन हयमेधाय दीक्षित ॥१७
तत प्रवृत्ते यज्ञेशे हयमेधे महाक्रतौ ।
सपूर्णे तु तदा राजा पृथिवीं दातुमुद्यत ॥१८
ततोऽन्तरिक्षे वागुच्चैरुवाच नृपसत्तमम् ।
पूजयित्वा स्थित विप्रानृत्विजोऽथ सदस्पतीन् ॥१९
पुरोधसे कश्यपाय सशैलवनकाननाम् ।
पृथिवी दातुकामेन दत्त सर्वं त्वया नृप ॥२०
भूमिदानस्पृहा त्यक्त्वा अन्न देहि महाफलम् ।
नान्नदानसम पुण्य त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२१

हे राजन् ! आपके गुरु तो यह ही कश्यप मुनि परम श्रेष्ठ हैं क्योंकि यह वेदों के पारगामी महान् मनीषी हैं। इन्हीं गुरुदेव के प्रसाद से और भगवती गौतमी गंगा की कृपा से यहीं पर एक अश्वमेध यज्ञ से अथवा पुनः स्नान से यहीं पर दश अश्वमेध यज्ञ एक साथ पूर्ण हो जायेंगे ॥१५-१६॥ यह श्रवण करके राजा भौवन हयमेध यज्ञ का यजन करने के लिये ही दीक्षित होकर कश्यप ऋषि को सहायक बनाकर गौतमी गंगा के तट पर पहुँच गया था ॥१७॥ इसके अनन्तर महान् क्रतु अश्वमेध के प्रवृत्त हो जाने पर जो कि सभी यज्ञों का ईश्वर है यह सम्पूर्ण हो गया था और उसके यज्ञ सम्पूर्ण हो जाने पर राजा समस्त भूमि का दान करने के लिए उद्यत हो गया था ॥१८॥ तब तो नभोमण्डल में आकाश वाणी ने उस राजाओं में श्रेष्ठ से कहा था जो विप्रों की ऋत्विजों की और सदस्पतियों की पूजकर वहीं पर स्थित था ॥१९॥ आकाश वाणी ने कहा था—हे नृप ! आपने अपने पुरोहित मुनि के लिए पर्वतों और वनों से युक्त पृथिवी को दान करने की कामना वाले ने सब कुछ दान कर दिया है ॥२०॥ अब आप भूमि के दान की स्पृहा का त्याग करके अब महान् फल वाले अन्न का दान दो क्योंकि अन्न के दान के समान पुण्य तीनों लोकों में अन्य किसी भी दान का पुण्य नहीं होता है ॥२१॥

विशेषतस्तु गङ्गायाः श्रद्धया पुलिने मुने ।
त्वया तु हयमेधोऽग्र्यं कृतः सबहुदक्षिणः ॥
कृतकृत्योऽसि भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा ॥२२
तथाऽपि दातुकामं तं मही प्रोवाच भौवनम् ॥२३
विश्वकर्मज सार्वभौम मा मां देहि पुनः पुनः ।
निमज्जेऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीयताम् ॥२४
ततश्च भौवनो भीतः किं देयमिति चाब्रवीत् ।
पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥२५
तिला गावो धनं धान्यं यत्किंचिद्गौतमीतटे ।
सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि ॥२६
गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्राममेकं ददाति यः ।
तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि ॥२७
तद्भुवो वचनं श्रुत्वा भौवनः सार्वभौवनः ।
तथेति मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम् ॥२८
ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः ।
दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते ॥२९

हे मुने ! विशेष रूप से श्रद्धा के साथ गङ्गा के पुलिन पर आपने बहुत दक्षिणा वाला यह अश्वमेध यज्ञ किया है। अब आप पूर्णतया कृत कृत्य (सफल) हो गये हैं। आपका कल्याण होगा। इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—तो भी दान करने की कामना वाले उस राजा भौवन से मही ने कहा था ॥२३॥ पृथिवी बोली—हे विश्वकर्मा से समुत्पन्न होने वाले ! हे सार्वभौम ! मुझको आप वारम्बार मत दीजिए। मैं समुद्र के मध्य में निमग्न हो जाती हूँ अतएव मेरा दान मत करिए ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् वह राजा भौवन भय से डरा हुआ हो गया था और उसने कहा था कि मुझे क्या दान करना चाहिये। इसके अनन्तर फिर वह पृथ्वी ब्राह्मणों से समावृत भौवन से बोली ॥२५॥ भूमि ने कहा—हे भौवन ! इस गौतमी के तट पर तिल-गौएँ,धन-धान्य जो कुछ भी दान किया

जाता है वह अक्षय होता है फिर आप मुझको क्यों देते हैं ॥२६॥ इस गौतमी गङ्गा के तीर पर समाश्रय करके जो कोई एक भी ग्रास का दान किया करता है उसने समस्त भूमि का दान ही कर दिया है ऐसा समझना चाहिए फिर हे भौवन ! मुझको क्यों दे रहे हैं ? ॥२७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस सार्व भौवन सम्राट् भौवन ने भूमि के इस वचन का श्रवण करके उसे उसी तरह से मान लिया था और फिर उसने बहुत अधिक अन्न का दान विप्रों को दिया था ॥२८॥ उसी दिन से आरम्भ करके वह तीर्थ दशाश्वमेधिक विश्रुत हो गया है। वहाँ पर उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को दश अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है ॥२९॥



४०—पैशाचतीर्थवर्णन

पैशाच तीर्थमपरं पूजितं ब्रह्मवादिभिः ।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१

गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद ।
तस्मिञ्शैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा ॥२

अञ्जना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी ।
केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा ॥३

साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा वराप्सरा ।
उत्तमाङ्गेन मार्जारी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते ॥४

दक्षिणार्णवमभ्यागात्केसरी लोकविश्रुतः ।
एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जनं पर्वतमभ्यगात् ॥५

अञ्जना चाद्रिका चैव अगस्त्यमृषिसत्तमम् ।
पूजयामासतुरुभे यथान्यायं यथासुखम् ॥६

ततः प्रसन्नो भगवानाहोभे व्रियतां वरः ।
ते आहतुरुभेऽगस्त्य पुत्रौ देहि मुनीश्वर ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहाँ पर गौतमी गङ्गा के दक्षिण तट पर एक दूसरा पैशाच तीर्थ है जो ब्रह्म वादियों के द्वारा समर्चित होता है। अब मैं उसका पूर्ण स्वरूप को बतलाता हूँ ॥१॥ हे नारद ! ब्रह्म गिरि के पार्श्व में एक अञ्जन नाम का गिरि है। हे मुनिवर ! उस पर्वत पर एक परम श्रेष्ठ अप्सरा शाप से भ्रष्ट हो गई थी ॥२॥ वहाँ पर उत्तम अङ्गों से युक्त अञ्जना नाम वाली नारी थी। केसरी नाम वाला उसका स्वामी था। और दूसरी अद्रिका नाम वाली थी ॥३॥ यह भी केसरी की ही भार्या थी जो कि परा अप्सरा शाप से भ्रष्ट हो गयी थी उत्तमाङ्ग से वह मार्जारी भी उस अञ्जन पर्वत पर रहती थी ॥४॥ वह लोकों में परम प्रख्यात केसरी दक्षिण सागर को चला गया था। इसी अन्तर में अगस्त्य उस अञ्जन पर्वत पर समागत हो गये थे ॥५॥ उस समय में अञ्जना और अद्रिका इन दोनों ने ऋषिगणों में श्रेष्ठ अगस्त्य का न्यास पूर्वक यथा भुक्त पूजन किया था ॥६॥ तब तो भगवान् अगस्त्य उन दोनों पर बहुत ही अधिक प्रसन्न होकर उन दोनों से बोले कि मुझ से तुम दोनों वरदान माँग लो। हे मुनीश्वर ! इन दोनों ने अगस्त्य मुनि से कहा था कि हम दोनों को पुत्र होने का वरदान प्रदान करिये ॥७॥

सर्वेभ्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ ।
दयेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगमाऽऽशां स दक्षिणाम् ॥८
ततः कदाचित्ते काले अजना चाद्रिका तथा ।
गीत नृत्य च हास्य च कुर्वत्यौ गिरिमूर्धनि ॥९
वायुश्च निर्ऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ ।
कामाक्रान्तधियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतुः ॥१०
भार्ये भवेतामुभयोरावां देयौ वरप्रदौ ।
ते अप्यूचतुरस्त्वेवद्ध मातेगिरिमूर्धनि ॥११

अञ्जनाया तथा वायोर्हनुमान्समजायत ।
अद्रिकाया च निऋतेरद्रिर्नाम पिशाचराट् ॥१२
पुनस्ते आहतुरुभे पुत्रौ जातौ मुनेवरात् ।
आवयोर्विकृत रूपमुत्तमाङ्गेन दूषितम् ॥१३
शापाच्छचीपतेस्तत्र युवामाज्ञातुमर्हथ ।
तत प्रोवाच भगवान्वायुश्च निऋतिस्तथा ॥१४

वे पुत्र भी ऐसे होने चाहिए कि सबसे अधिक बलवान् श्रेष्ठ और सभी लोकों की भलाई करने वाले होवें । उस मुनि श्रेष्ठ ने ऐसा ही होगा । यह कह दिया था और फिर वे दक्षिण दिशा को वहाँ से चले गये थे ॥८॥ इसके अनन्तर वे दोनों अञ्जना और अद्रिका किसी समय में उस पर्वत की शिखर पर गीत नृत्य और हास्य कर रही थीं । उसी समय में वायु और निऋति इन दोनों ने उन दोनों को देखा था और वे दोनों सुरस्मित युक्त हो गये थे । वे दोनों ही देव काम वासना से आक्रान्त बुद्धि वाले होकर बहुत ही शीघ्र वहाँ पर उसी समय में समागत होगये थे ॥६ १०॥ उन्होंने वहा पर उनसे कहा था कि दोनों हम दोनों की भार्या हो जाओ । हम दोनों वरदान देने वाले देव हैं । उन दोनों ने भी उनके कथन को स्वीकार कर लिया था और उन दोनों ने उस पर्वत की चोटी पर रमण किया था ॥११॥ उस अञ्जना नाम वाली वानरी के उदर से वायुदेव के द्वारा हनुमान ने जन्म ग्रहण किया था और अद्रिका के उदर से निऋति के द्वारा अद्रि नाम वाला पिशाचराट् समुत्पन्न हुआ था ॥१२॥ फिर उन दोनों ने कहा था कि दोनों पुत्र मुनि वर से समुत्पन्न हुए हैं । उन दोनों का रूप उत्तमाङ्ग ने विकृत एवं दूषित कर दिया है ॥१३॥ वहाँ पर शची के पति महेन्द्र के शाप से ऐसा हुआ है तो आप दोनों आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं । इसके अनन्तर भगवान् वायु देव तथा निऋति ने कहा था ॥१४॥

गौतम्या स्नानदानाभ्या शापमोक्षो भविष्यति ।
इत्युक्त्वा तावुभौ प्रीतौ तत्रवान्तरधीयताम् ॥१५

ततोऽञ्जनां समादाय अद्रिः पैशाचमूर्तिमान् ।
भ्रातुर्हनुमतः प्रीत्यै स्नापयामास मातरम् ॥१६
तथैव हनुमान्गङ्गामादायाद्रिमतित्वरन् ।
मार्जाररूपिणीं नीत्वा गौतम्यास्तीरमाप्तवान् ॥१७
ततः प्रभृति तत्तीर्थं पैशाचं चाऽञ्जनं तथा ।
ब्रह्मणो गिरिमासाद्य सर्वकामप्रदं शुभम् ॥१८
योजनाना त्रिपञ्चाशन्मार्जारं पूर्वतो भवेत् ।
मार्जारसंज्ञितात्तस्माद्धनूमन्तं वृषाकपिम् (?)॥१९
फेनासंगममाख्यात सर्वकामप्रदं शुभम् ।
तस्य स्वरूप व्युष्टिश्च तत्रैव प्रोच्यते शुभा ॥२०

गौतमी गङ्गा में स्नान और दान करने से उस पाप से छुटकारा हो जायगा। इतना कह कर वे दोनों परम प्रसन्न हुए थे और वहीं पर वे अन्तर्धान हो गये थे ॥१५॥ इसके पश्चात् पैशाच मूर्ति वाले अद्रि ने अञ्जना को लेकर भाई हनुमान् की प्रीति के लिये माता का स्नपन कराया था ॥१६॥ उसी प्रकार से हनुमान भी बहुत ही शीघ्रता करते हुए मार्जार रूपिणी अद्रि को लेकर गौतमी के तट पर प्राप्त हो गये थे ॥१७॥ उसी समय से लेकर यह तीर्थ पैशाच तथा अञ्जन प्रसिद्ध हो गया था। ब्रह्मा के गिरि पर प्राप्त होकर यह परम शुभ तथा सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला हो गया था ॥१८॥ तिरेपन योजन पूर्व मार्जार होता है और उस मार्जार संज्ञा वाले से वृषाकपि हनुमन्त फेना सङ्गम नाम वाला है जो शुभ और सब मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला है। उसका स्वरूप और व्युष्टि परम शुभ यहीं पर कही जाती है ॥१९-२०॥

८१—क्षुधातीर्थवर्णन

क्षुधातीर्थमिति ख्यात शृणु नारद तन्मनाः ।
कथ्यमान महापुण्य सर्वकामप्रद नृणाम् ।।१
ऋषिरासित्पुरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तम. ।
परिभ्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः ।।२
गौतमस्याऽऽश्रम पुण्य समृद्धं चान्नवारिणा ।
आत्मनं च क्षुधायुक्त समृद्धं चापि गौतमम् ।।३
वीक्ष्य कण्वोऽथ वैषम्य वैराग्यमगमत्तदा ।
गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यह तपसि निष्ठितः ।।४
समेन याच्ञाऽयुक्ता स्यात्तस्माद्गौतमवेश्मनि ।
न भोक्ष्येऽह क्षुधार्तोऽपि पीडितेऽपि कलेवरे ।।५
गच्छेय गौतमी गङ्गामर्जयेय च सपदम् ।
इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गा च पावनीम् ।।६
स्नात्वा शुचिर्यतमना उपविश्य कुशासने ।
तुष्टाव गौतमी गङ्गा क्षुधा च परमापदम् ।।७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! एक क्षुधा तीर्थ नाम वाला परम विख्यात है । अब तुम तन्मत्क होकर उसका श्रवण करो । उसके विषय मे कथन करना मनुष्यो के लिये महान् पुण्य का प्रदान करने वाला तथा सब अभीप्सित मनोरथो को पूर्ण करने वाला होता है ।।१।। बहुत प्राचीन काल मे एक कण्व नाम धारी परम तपस्वी और वेदो के ज्ञाताओ मे श्रेष्ठ ऋषि हुए थे । वह आश्रमो मे इधर-उधर भ्रमण करते हुए भूख से अत्यन्त पीड़ित हो गये थे ।।२।। अन्न और जल से समृद्ध एक परम पुण्यमय गौतम मुनि का आश्रम था । अपने आपको क्षुधा से युक्त और गौतम को पूर्णतया सभी प्रकार से समृद्ध देखा था । जब कण्व ने इतनी अपने आप मे और गौतम मे विषमता देखी तो उसी समय मे कण्व मुनि को उत्कट वैराग्य हो गया था । उन्होने अपने मन मे विचार किया था क गौतम भी द्विजो मे परम श्रेष्ठ है और मैं भी सर्वदा तपश्चर्या मे

निश्चित रहने वाला हूँ ॥३-४॥ एक अपने ही समान मुनि से याञ्चा करना भी उचित नहीं प्रतीत होती है। अतएव मैं गौतम के घर में यद्यपि मैं क्षुधा से अत्यन्त उत्पीडित होते हुए भी और शरीर के पीडित होने पर भी वहाँ भोजन नहीं करूँगा ॥५॥ मुझे अब गौतमी गङ्गा के सन्निधि मे ही चलना चाहिए और वही सम्पदाओ का अर्जन करना चाहिए। ऐसा ही अपने मन मे दृढ निश्चय करके मेधा से सम्पन्न कण्व मुनि ने परम पावनी गौतमी गङ्गा के समीप मे गमन किया था। वहाँ पर पहुच कर कण्व ने स्नान किया था और परम पवित्र एव सयत मन वाला होकर एक कुशा के आसन पर उपवेशन किया था। वहाँ पर उस कण्व मुनि ने गौतमी गङ्गा का स्तवन किया था और परमापदा क्षुधा के विषय मे भी प्रार्थना की थी ॥६-७॥

नमोऽस्तु गङ्गे परमार्तिहारिणि,
नमः क्षुधे सर्वजनार्तिकारिणि।
नमो महेशानजटोद्भवे शुभे,
नमो महामृत्युमुखाद्विनिसृते ॥८
पुण्यात्मना शान्तरूपे क्रोधरूपे दुरात्मनाम्।
सरिद्रूपेण सर्वेषा तापपापाहारिणी ॥६
क्षुधारूपेण सर्वेषा तापपापप्रदे नमः।
नमः श्रेयस्करि देवि नमः पापप्रमर्दिनि ॥
नम शान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यनाशिनि ॥१०
इत्येव स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवद्द्वयम्।
एक गाङ्ग मनोहारि ह्यपर भीषणाकृति ॥
नमः कृताञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तमः ॥११
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे।
वैष्णवि त्र्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१२
त्र्यम्बकस्य जटोद्भूते गौतमस्याघनाशिनि।
सप्तधा सागर यान्ति गोदावरि नमोस्तु ते ॥१३

सर्वपापकृता पापे धर्मकामार्थनाशिनि।
दुःखलोभमयि देवि क्षुधे तुभ्यं नमो नमः ॥१४

श्री कण्व मुनि ने कहा—हे मगे! आपकी सेवा मे मेरा सादर प्रणाम समर्पित है। आप तो परम आपत्तियो के हरण करने वाली हैं। हे क्षुधे! आपको भी मेरा नमस्कार है। आप तो समस्त जनो की आर्त्ति (पीडा) दूर कर देने वाली हैं। हे शुभे! आप तो भगवान् महेश्वर की जटाओं से समुत्पन्न होने वाली हैं। आपको मेरा नमस्कार है। आप महाभूत के मुख से विनिःसृत होने वाली हैं आपको प्रणाम है ॥८॥ आप पुण्यात्मा जनों के लिये तो परम शान्त स्वरूप वाली हैं और जो दुष्ट आत्मा वाले जन हैं उनके लिये आप क्रोध रूपिणी हैं। आप एक सरिता के स्वरूप के द्वारा सभी जनो के तापों और पापो का हरण करने वाली हैं ॥९॥ आप ही क्षुधा का स्वरूप धारण करके सबको तापो और पापो को प्रदान किया करती हैं। आपको मेरा नमस्कार है। हे क्षेम करने देवि! आपकी सेवा म मेरा प्रणाम है। हे पापों का अतदन करने वाली देवि! आपको नमस्कार है। हे देवि! आप शान्ति कर देने वाली हैं और हे देवि! आप दरिद्रता का विनाश करने वाली हैं। आपको नमस्कार है ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी न कहा—इस रीति से स्तुति करने वाले उन कण्व मुनि के समक्ष मे दो स्वरूप प्रकट होकर उपस्थित हो गये थे। एक तो उन दो म गङ्गा का मनोहर स्वरूप था और दूसरा परम भीषण आकृति वाला था। वह द्विजोत्तम दोनो हाथो को जोड कर नमस्कार करके उनके सामने खडा हो गया था ॥११॥ कण्व मुनि ने कहा—हे समस्त मङ्गलों के भी मङ्गल रूप वाली! हे माहि! हे शुभे! माहेश्वरि! हे वैष्णवि! हे त्र्यम्बक! हे देवि गोदावरि! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम है। हे गौतम मुनि के अघों का विनाश करने वाली! आपका समुद्भव तो भगवान् त्र्यम्बक की जटाओं से ही हुआ था। आप सात स्वरूपों से सागर में गमन किया करती हैं। हे गोदावरि! आपको मेरा नमस्कार है ॥१२-१३॥ हे क्षुधे! आप तो सब पापो के करने वालों को नाश कर देने वाली हैं तथा धर्म और काम तथा अर्थ इन तीनों का भी

विनाश कर देने वाली हैं। हे देवि ! आप परमाधिक दुःख और लोभ से परिपूर्ण हैं। आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

तत्कण्ववचनं श्रुत्वा सुप्रीते आहतुर्द्विजम् ॥१५
अभीष्टं वद कल्याण वराम्वरय सुव्रत ॥१६
प्रोवाच प्रणतो गङ्गा कण्वः क्षुधा यथाक्रमम् ॥१७
देहि देवि मनोज्ञानि कामानि विभव मम।
आयुर्वित्तं च भुक्तिं च मुक्तिं गङ्गे प्रयच्छ मे ॥१८
इत्युक्त्वा गौतमीं गङ्गा क्षुधां चाऽऽह द्विजोत्तमः ।१६
मयि मद्वंशजे चापि क्षुधे तृष्णे दरिद्रिणि।
याहि पापतरे रुक्षे न भूयास्त्व कदाचन ॥२०
अनेन स्तवेन ये वै त्वा स्तुवन्ति क्षुधातुराः।
तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्वरोऽपरः ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—कण्व मुनि की इस स्तुति के वचनों को सुनकर वे दोनों देवियाँ बहुत प्रसन्न होकर उस द्विज कण्व से कहने लगी। गङ्गा और क्षुधा दोनो ने कहा—हे सुव्रत ! हे कल्याण ! अब तुम अपने अभीष्ट वरदानो की याचना कर लो ॥१५-१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—कण्व मुनि ने परम प्रणत होकर गङ्गा देवी और क्षुधा से यथाक्रम निवेदन किया था ॥१७॥ कण्व ने कहा—हे देवि ! हे देवि ! मेरी मनोज्ञ कामनाओ को विभव-आयु वित्त और भुक्ति तथा मुक्ति को हे गंगे ! मुझे प्रदान कीजिए ॥१८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह उत्तम द्विज कण्व इस प्रकार से गौतमी गङ्गा देवी से निवेदन करके फिर क्षुधा से कहने लगा था ॥१६॥ कण्व ने कहा—हे क्षुधे ! हे तृष्णे ! हे दरिद्रिणि ! हे पापतरे ! हे रुक्षे ! मुझ में और मेरे वंश मे समुत्पन्न मे फिर आप कभी भी मत गमन करना, यही मैं आपसे वरदान चाहता हूँ। इस स्तव के द्वारा जो लोग क्षुधा से आतुर होकर आपकी स्तुति किया करते हैं उनको कभी भी दरिद्रता का दुःख न होवे—यही मेरा दूसरा वरदान है जिसको मैं आपसे प्राप्त करना चाहता हूँ ॥२०-२१॥'

अस्मिस्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम् ।
ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते ॥२२
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं तीर्थे वा यदि वा गृहे ।
तस्य दारिद्र्य दुःखेभ्यो न भयं स्याद्वरोऽपरः ॥२३
एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वमालयम् ।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं काण्व गाङ्गं क्षुधाभिधम् ॥
सर्वपापहरं वत्स पितॄणां प्रीतिवर्धनम् ॥२४-२५

इस महा पुण्यमय महान् तीर्थ मे जो पुरुष स्नान-दान-होम और जप आदि किया करते हैं और भक्ति की भावना से युक्त होते है वे सभी लक्ष्मी के भाजन हो जावें ॥२२॥ जो पुरुष इस स्तोत्र का पाठ करता है चाहे किसी तीर्थ मे इसका पाठ करे या घर मे ही बैठकर करे उसको दरिद्रता के दुःखो से भय कभी भी न होवे—यह भी मुझे एक अन्य वरदान प्रदान कीजिए ॥२३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय मे "ऐसा ही होगा"—यह कण्व मुनि से कहकर वे दोनो गङ्गा और क्षुधा देवियाँ अपने निवास गृह को चली गयी थीं। तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ क्षुधा नाम वाला कण्व और गाङ्ग इन नामो से विख्यात हो गया था। हे वत्स! यह तीर्थ समस्त पापो का हरण करने वाला है और पितृगणो की प्रीति के वर्धन करने वाला होता है ॥२४-२५॥

—※—

४२—जनस्थानतीर्थवर्णन

तस्मादप्यपरं तीर्थं जनस्थानमिति श्रुतम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिदं नृणाम् ॥१
वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनकः पुरा ।
सोऽपापतेस्तु तनुजामुपयेमे गुणार्णवाम् ॥२

धर्मार्थकाममोक्षाणा जनकां जनको नृपः ।
अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा ॥३
याज्ञवल्क्यश्च विप्रेन्द्रस्तस्य राज्ञः पुरोहितः ।
तमपृच्छन्नृपश्रेष्ठो याज्ञवल्क्य पुरोहितम् ॥४
भुक्तिमुक्ती उभे श्रेष्ठे निर्णीते मुनिसत्तमैः ।
दासीदासेभतुरगरथाद्यैर्भुक्तिरुत्तमा ॥५
किंत्वन्तविरसा भुक्तिर्मुक्तिरेका निरत्यया ।
भुक्तेर्मुक्तिः श्रेष्ठतमा भुक्त्या मुक्ति कथ व्रजेत् ॥६
सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्तिः सुदुःखतः ।
तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्तिः कथं भवेत् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उससे भी दूसरा एक तीर्थ है जो "जनस्थान"—इस शुभ नाम से प्रसिद्ध है। इस तीर्थ का विस्तार चार योजन का है और यह केवल स्मरण करने ही से मुक्ति मनुष्यों को प्रदान कर दिया करता है ॥१॥ बहुत प्राचीन समय में पहिले वैवस्वत मनु के वंश में एक जनक नामधारी राजा ने जन्म ग्रहण किया था। उस राजा ने जलों के स्वामी की गुण गणों की सागर पुत्री के साथ विवाह किया था ॥२॥ राजा जनक की वह भार्या धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की जनक थी। उस राजा के रूप और गुणों के अनुरूप होने से ही उसकी भार्या भी गुणों की खान थी ॥३॥ विप्रों का स्वामी याज्ञवल्क्य उस राजा जनक का पुरोहित था। उस नृपों में परम श्रेष्ठ जनक ने अपने पुरोहित याज्ञवल्क्य जी से एक बार पूछा था ॥४॥ राजा जनक ने कहा—परम श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा भुक्ति (सांसारिक सुखों का उपभोग) और मुक्ति ये दोनों ही श्रेष्ठ बतलाई गयी है। दासी-दास-हाथी-घोड़े-रथ आदि के द्वारा सुखों का उपभोग करना भुक्ति होती है जो कि परमोत्तम है और प्रायः सभी इसकी अभिलाषा रखते हैं ॥५॥ किन्तु विषयों के रस का भोग करना अच्छा तो प्रतीत होता है अन्त में वह भुक्ति निरस हो जाया करती है अर्थात् उसका आनन्द नष्ट हो जाता है क्योंकि इसकी एक अवधि हुआ करती है। हाँ, मुक्ति एक ऐसी है जिसका कभी विनाश

नहीं होता है और उसमें नीरसता आती ही नहीं है। अतएव इस भुक्ति से मुक्ति परम श्रेष्ठतम होती है तो हे भगवन्! यह बतलाइये इस भुक्ति से मुक्ति की प्राप्ति के लिए कैसे गमन किया जाता है? ॥६॥ सभी के सङ्ग के परित्याग कर देने से जो मुक्ति की प्राप्ति बतलायी गयी है वह तो बहुत ही दुःखों के साथ हो सकती है क्योंकि सबके सग का परित्याग करना ही बहुत दुष्कर कार्य है। हे द्विज शार्दूल! अब आप कृपा कर यही बतलाइये कि सुख पूर्वक मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है? ॥७॥

अपांपतिस्तव गुरुः श्वशुरः प्रियकृत्तथा।
तं गत्वा पृच्छ नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥८
याज्ञवल्क्यश्च जनको राजानं वरुणं तदा।
गत्वा चोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम् ॥९
द्विधा तु संस्थितः मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि।
वेदे च निश्चिता मार्गाः कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥१०
सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरुषार्थचतुष्टयम्।
अकर्मणैवाऽऽप्यत इति मुक्तिमार्गो मृषोच्यते ॥११
कर्मणा सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम।
तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः ॥१२
तेन भुक्तिं च मुक्तिं च प्राप्नुवन्तीह मानवाः।
अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च ॥१३
जात्याश्रितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित्।
आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद ॥१४

याज्ञवल्क्य महामुनि ने कहा—जलों का स्वामी वरुण देव आपके गुरु श्वशुर तथा आपके प्रिय करने वाले हैं। हे नृप! आप उन्हीं वरुण देव के समीप में गमन करिये। वे आपके हित की बात का उपदेश अवश्य ही करेंगे ॥८॥ उसी समय में याज्ञवल्क्य मुनि और राजा जनक राजा वरुण देव के समीप में पहुंचे थे। वहाँ जाकर इन दोनों ने व्यग्रता से रहित होकर यथाक्रम मुक्ति के मार्ग को पूछा था ॥९॥ वरुण देव ने कहा—यह मुक्ति दो प्रकार की संस्थित होती है। कर्मद्वार में और

अकर्म मे भी मुक्ति होती है अर्थात् कर्मों के करते हुए भी मुक्ति होती है तथा कर्मों का सर्वथा त्याग करके भी मुक्ति प्राप्त की जाया करती है। वेद मे इसका मार्ग निश्चित किया गया है। कर्म न करने से कर्मों का करना अधिक श्रेष्ठ होता है ॥१०॥ ये चारों प्रकार के पुरुषार्थ सभी कर्मों के द्वारा बद्ध है और अकर्म से भी है अतएव यह मुक्ति का मार्ग ही मृषा कहा जाता है ॥११॥ हे नृप श्रेष्ठ ! समस्त धान्य कर्म से ही हुआ करते है इसी लिये मनुष्यो को सर्वात्मभाव से वैदिक कर्म के द्वारा मानव भुक्ति एव मुक्ति दोनों को इस लोक म प्राप्त किया करते है। कर्म न करने से कर्मों का करना पुण्यमय होता है और वह कर्म भी आश्रमो मे रह कर ही करना चाहिए ॥१२-१३॥ हे राजेन्द्र ! वह जाति के आश्रित है। उनमे भी धर्म के वेत्ता श्रवण करो। वे आश्रम चार होते है, जो हे मानद ! कर्मों के द्वारा हुआ करते है ॥१४॥

चतुर्णामाश्रमाणा च गार्हस्थ्य पुण्यद स्मृतम् ।
तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम ॥१५
एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान्।
वरुण पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतु ॥१६
को देश कि च तीर्थ स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१७
पृथिव्या भारत वर्ष दण्डक तत्र पुण्यदम् ।
तस्मिन्क्षेत्रे कृत कर्म भुक्तिमुक्तिप्रद नृणाम् ॥१८
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा मुक्तिप्रदा नृणाम् ।
तत्र यज्ञेन दानेन भोगान्मुक्तिमवाप्स्यति ॥१९
याज्ञवल्क्यश्च जनको वाच श्रुत्वा ह्यपापते ।
वरुणेन ह्यनुज्ञातौ स्वपुरीं जग्मतुस्तदा ॥२०
अश्वमेधादिक कर्म चकार जनको नृप ।
याजयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च त नृपम् ॥२१

इन चारों आश्रमो मे गार्हस्थ्य आश्रम परम पुण्य के प्रदान करने वाला बताया गया है। इस गार्हस्थ्य आश्रम म रहने से भुक्ति और

मुक्ति ये दोनो ही हो जाती हैं—मेरा ऐसा ही विचार है ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—राजा जनक और परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य मुनि ने वरुण देव के उन वचनो का श्रवण करके उन दोनो ने पुन वरुण देव का पूजन करके फिर उनसे पूछा था ॥१६॥ कौन सा वह देश है और कौन सा तीर्थ है जो भुक्ति और मुक्ति इन दोनो के प्रदान करने वाला होता है ? हे सुरो मे परम श्रेष्ठ ! यही आप हमको बतलाने की कृपा कीजिए। आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं ॥१७॥ वरुण देव ने कहा—पृथिवी मे भारत वर्ष है और उस भारत मे भी एक दण्डक नामक क्षेत्र है जो परम पुण्य का प्रदान करने वाला है। उस क्षेत्र मे किया हुआ कर्म मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति दोनो के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥१८॥ सब तीर्थों में गौतमी गङ्गा परम श्रेष्ठ है जो कि मानवों को भोग और मोक्ष दोनो के प्रदान करने वाली होती है। वहाँ पर यज्ञ का यजन करने से और दान देने से भोग से ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपो (जलो) के स्वामी (वरुण) के इन वचना का श्रवण करके याज्ञवल्क्य मुनि और जनक नृप दोनो ही वरुण के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर उस समय मे अपनी पुरी को चले गये थे ॥२०॥ फिर राजा जनक ने अश्वमेध आदि कर्म किये थे और विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने उस नृप को यजन कराया था ॥२१॥

गङ्गातीरं समाश्रित्य यज्ञान्मुक्तिमवाप राट् ।
तथा जनकराजानो बहवस्तत्र कर्मणा ॥२२
मुक्ति प्रापुर्महाभागा गौतम्याश्च प्रसादत ।
तत प्रभृति तत्तीर्थं जनस्थानेति विश्रुतम् ॥२३
जनकाना यज्ञसदो जनस्थान प्रकीर्तितम् ।
चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४
तत्र स्नानेन दानेन पितृणा तर्पणेन तु ।
तीर्थस्य स्मरणाद्वाऽपि गमनाद्भक्तिसेवनात् ॥२५
सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्ति च समवाप्नुयात् ॥२६

उस राजा ने गौतमी गंगा के तट पर समाश्रित होकर यज्ञ का यजन करने से मुक्ति प्राप्त की थी। तथा वहाँ पर कर्म के द्वारा जनक आदि राजाओं ने जो महान् भाग वाले थे, गौतमी गङ्गा के प्रसाद से मुक्ति को प्राप्त किया था। तभी से लेकर वह तीर्थ 'जनस्थान'—इस नाम से संसार में विख्यात हो गया है ॥२२-२३॥ जनकों के जो यज्ञों के यजन करने के स्थल हैं वे ही जनस्थान नाम से प्रख्यात हैं। ये स्थल चार योजन के विस्तार वाले है और इनके केवल स्मरण करने ही से समस्त पापों का विनाश कर देने वाला होता है ॥२४॥ वहाँ पर पहुँच कर स्नान-दान और पितृगणों का तर्पण करने से अथवा केवल इस तीर्थ के स्मरण करने से भी एवं वहाँ गमन करके भक्ति भाव से सेवन करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त कर लेता है और मुक्ति को भी निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया करता है ॥२५-२६॥

४३—गरुड़तीर्थवर्णन

गारुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम्।
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः ॥१
मणिनाग इति ख्यासीच्छेषपुत्रो महाबलः।
गरुडस्य भयाद्भक्त्या तोषयामास शंकरम् ॥२
ततः प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वरः।
तमुवाच महानागं वरं वरय पन्नग ॥३
नागः प्राह प्रभो मह्यं देहि मे गरुडाभयम्।
तथेत्याह च तं शंभुर्गरुडादभयं भवेत् ॥४
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात्।
क्षीरोदशायी यत्राऽऽस्ते क्षीरार्णवसमीपतः ॥५
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ सुखशीतले।
गरुडोऽपि च यत्राऽऽस्ते तं देशमपि यात्यसौ ॥६

गरुडः पन्नगं दृष्ट्वा चरन्तं निर्भयेन तु ।
तं गृहीत्वा महानागं प्राक्षिपत्स्वस्य वेश्मनि ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—गरुड नाम वाला जो तीर्थ है वह सब विघ्नों की प्रशान्ति के प्रदान करने वाला है। हे नारद ! उस तीर्थ के प्रभाव को मैं बतलाऊँगा। उसको आप श्रवण करो और यत्न के साथ ही भली-भांति सुन लो ॥१॥ एक महान् बलशाली शेषनाग का पुत्र मणिनाग था। उसने गरुड के भय से डर कर बहुत ही भक्ति की प्रबल भावना से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न किया था ॥२॥ उसकी भक्ति से भगवान् परमेष्ठी महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे और उस महानाग से उन्होंने कहा था—हे पन्नग ! वरदान का वरण कर लो ॥३॥ उस नाग ने कहा था—हे प्रभो ! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं तो मुझको गरुड से कोई भी भय न रहने का वरदान मुझे प्रदान कीजिए। तब तो भगवान् शम्भु ने उससे कहा था कि तुझे गरुड से अभय हो जायगा ॥४॥ फिर वह नाग अरुण के अनुज गरुड से सर्वथा निडर होकर निकल गया था और जहाँ पर क्षीर सागर के समीप से क्षीर सागर में शयन करने वाले रहते थे ॥५॥ यह नाग सुख शीतल स्थल में इधर-उधर विचरण किया करता था। जहाँ पर गरुड भी रहा करता था उस भाग में भी यह आया करता था क्योंकि इसको फिर उसको गरुड से तो कोई भय शेष नहीं रह गया था ॥६॥ निर्भयता पूर्वक सञ्चरण करने वाले उस पन्नग को देखकर गरुड ने उस महानाग को पकड़ कर अपने ही घर में डाल दिया था ॥७॥

तं बद्ध्वा गारुडैः पाशैर्गरुडो नागसत्तमम् ।
एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेशं जगत्प्रभुम् ॥८
नूनं नागो न चाऽऽयाति भक्षितो बद्ध एव वा ।
गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न सञ्चरेत् ॥९
नन्दिनो वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा शम्भुरथाब्रवीत् ॥१०
गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम् ।
गत्वा त्वं जगतामीशं विष्णुं स्तुहि जनार्दनम् ॥११

बद्धं नागं काश्यपेन मद्वाक्यादानय स्वयम् ।
तत्प्रभोर्वचनं श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रियः पतिम् ॥१२
व्यज्ञापयत्स्वयं वाक्यं विष्णुं लोकपरायणम् ।
नारायणः प्रीतमना गरुडं वाक्यमब्रवीत् ॥१३

गरुड़ ने उस नागों में श्रेष्ठ को गारुड़ पाशों से बाँध कर घर में डाल रक्खा था। इसी बीच में नन्दी ने जगत् के प्रभु ईश्वर से कहा था ॥८॥ नन्दिकेश्वर ने निवेदन किया था—वह नाग यहाँ पर नहीं आता है अतः निश्चय ही या तो वह खा लिया गया है अथवा बाँधकर कहीं पर उसे डाल दिया है। हे सुरेशान ! गरुड़ के द्वारा ही ऐसा किया गया है कि यदि वह जीवित भी है तो यहीं पर गमन नहीं कर रहा है ॥९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—नन्दी के इस वचन का श्रवण करके और जान करके भगवान् शम्भु ने कहा था ॥१०॥ शिवजी ने कहा—इस समय में वह नाग गरुड़ के घर में बाँधा हुआ पड़ा है। तुम शीघ्र जाओ और जगतों के स्वामी भगवान् जनार्दन विष्णु का स्तवन करो ॥११॥ काश्यप अर्थात् कश्यप मुनि के पुत्र गरुड़ के द्वारा बद्ध किये गये नाग को मेरे वचन से स्वयं तुम यहाँ ले आओ। प्रभु शिव के उस आदेश वचन को सुन कर तुरन्त ही नन्दी श्री के स्वामी भगवान् विष्णु के समीप में पहुँच गया था और उस नन्दी ने लोक परायण विष्णु की सेवा में भगवान् शिव के आदेश को बतला दिया था तब तो प्रसन्न मन वाले नारायण ने गरुड से यह वचन कहा था ॥१२-१३॥

विनतात्मज मे वाक्यान्नन्दिने देहि पन्नगम् ।
कम्पमानस्तदाकर्ण्य नेत्युवाच विहंगमः ॥
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दिनोऽन्तिके ॥१४
यद्यत्प्रियतमं किंचिद्भृत्यैरन्यैः प्रभविष्णवः ।
दास्यन्त्यन्ये भवान्नेव मयाऽनीतं हरिष्यति ॥१५
पश्य देव त्रिनयन नाग मोदयति नन्दिना ।
मयोपपादितं नागं त्वं तु दास्यसि नन्दिने ॥१६

त्वां वहामि सदा स्वामिन्मम देयं सदा त्वया ।
मयोपपादितं नागं प्रत्त देहीति नोचितम् ॥१७
सतां प्रभूणां नेयं स्याद्वृत्तिः सद्वृत्तिकारिणाम् ।
सन्तो दास्यन्ति भृत्येभ्यो मदुपात्तहरो भवान् ॥१८
दैत्याञ्जयसि संग्रामे मद्बलेनैव केशव ।
अहं महाबलीत्येवं मुधैव श्लाघते भवान् ॥१९
गरुडस्येति तद्वाक्यं श्रुत्वा चक्रगदाधरः ।
विहस्य नन्दिनः पार्श्वे पश्यद्भिर्लोकपालकैः ॥२०
इदमाह महाबुद्धिर्मां समुह्य कृशो भवान् ।
त्वद्बलादसुरान्सर्वाञ्जयेऽहं खगसत्तम ॥२१

भगवान् विष्णु ने कहा—हे विनता के पुत्र ! मेरी आज्ञा से इस पन्नग को, इसी समय में नन्दी को दे दो । यह सुन कर काँपते हुए पक्षी गरुड़ ने 'नहीं दूँगा'—यह वचन कहा था । उस नन्दी के समीप में ही उस सुपर्ण (गरुड़) ने कोप से भगवान् विष्णु को भी ऐसा कह दिया था ॥१४॥ गरुड़ ने कहा—जो जो भी कुछ प्रियतम हुआ करता है समर्थ स्वामी अपने भृत्यों को दिया करते है यह तो अन्य स्वामियों की बात है । आप मेरे द्वारा लाये हुए इस नाग को नहीं हरण करेंगे ॥१५॥ आप त्रिनेत्र देव भगवान् शिव को ही देख लीजिए कि वे नन्दी के द्वारा नाग को छुड़वा रहे हैं । मेरे द्वारा लाये हुए नाग को मेरे स्वामी होकर भी आप इस नन्दी को दिला रहे हैं ॥१६॥ हे स्वामिन् ! मैं तो आपका वाहन सदा किया करता हूं । मुझे तो सदा ही आपको देना चाहिए । मेरे द्वारा प्राप्त किये गये नाग को आप कहते हैं 'दे दो'—यह तो सर्वथा अनुचित ही है ॥१७॥ सद्वृत्तिकारी सत् प्रभुओं की वृत्ति ऐसी होती है कि प्राप्त करना चाहिए और सत्पुरुष तो अपने भृत्यों के लिये दिया ही करते हैं किन्तु आप तो मेरे द्वारा जो प्राप्त किया गया है उसका भी हरण करने वाले हो रहे हैं ॥१८॥ हे केशव ! संग्राम में आप मेरे ही बल के द्वारा दैत्यों के ऊपर विजय प्राप्त किया करते हैं । आपकी जो यह श्लाघा है कि मैं बड़ा भारी बलवान् हूं वह तो मिथ्या ही है ॥१९॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समस्त लोक पालकों के देखते हुए गरुड़ के इन वचनों को चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु ने सुनकर नन्दी के समीप में उनको हँसी आ गई थी ॥२०॥ भगवान् महा बुद्धिमान् विष्णु ने कहा था कि हे खगों मे परम श्रेष्ठ ! आप मेरा वहन करके कृश हो गये हैं क्योंकि मैं तुम्हारे ही बल से सब असुरों को जीतूँगा ॥२१॥

इत्युक्त्वा श्रीपतिर्ब्रह्मञ्शान्तकोपोऽब्रवीदिदम् ।
वहाङ्गुलिं करस्याऽऽशु कनिष्ठां नन्दिनोऽन्तिके ॥२२
गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत् ।
सत्यं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहङ्गम ॥२३
न्यस्तायां च ततोऽङ्गुल्यां शिरः कुक्षौ समाविशत् ।
कुक्षिश्च चरणस्यान्तः प्राविशच्चूर्णितोऽभवत् ॥
ततः कृताञ्जलिर्दीनो व्यथितो लज्जयाऽन्वितः ॥२४
त्राहि त्राहि जगन्नाथ भृत्यं मामपराधिनम् ।
त्व प्रभुः सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च ॥२५
अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णवः ।
कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा ॥२६
वदन्ति मुनयः सर्वे त्वामेव करुणाकरम् ।
रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्माम्म्बुजनिवासिनि ॥
कमले बालकं दीनमार्तं तनयवत्सले ॥२७

हे ब्रह्मन् ! इतना कहकर श्री पति ने अपने क्रोध को शान्त करके उससे यह कहा था कि इस नन्दी के समीप मे बहुत ही शीघ्र मेरे हाथ की कनिष्ठा अगुलि का वहन करो ॥२२॥ इसके पश्चात् गरुड़ के मस्तक पर उसको रखकर फिर यह कहा था—हे विहङ्गम ! यह सर्वथा सत्य है कि तुम नित्य ही मेरा वहन किया करते हो अर्थात् मुझे अपने ऊपर चढ़ाकर ले जाया करते हो । अब उसके धर्म को देखो ॥२३॥ इसके उपरान्त उस अगुलि के रखने पर उस गरुड़ का शिर कुक्षि मे घुस गया था और वह कुक्षि भी चरणों मे अन्दर प्रविष्ट होकर चूर्णित हो गया था । तब तो वह हाथों को जोड़कर अत्यन्त दीन होता हुआ बहुत

ही पीडित हो गया था और लज्जा से भी युक्त हो गया था ॥२४॥ गरुड़ ने कहा—हे जगन्नाथ ! मुझ परमाधिक अपराधी का परित्राण करिए, मैं आपका भृत्य हूँ मेरी रक्षा कीजिए। आप तो सभी लोकों के प्रभु और सबके धारण करने वाले हैं तथा आप ही धारण करने के योग्य भी हैं ॥२५॥ प्रभाविष्णु सहस्रों अपराधों को भी क्षमा किया करते हैं। जो अपना भक्तजन कोई अपराध भी कर देता है तो उस पर भी जिन दयालु प्रभु की बहुत बड़ी कृपा हुआ करती है आप ऐसे ही प्रभु हैं। सब मुनिजन परम करुणा करने वाले दया के सागर आप ही को कहा करते हैं। हे कमल में निवास करने वाली माता ! आप तो समस्त जगत् की अम्बा हैं। अधिक आर्त्त मेरी आप रक्षा करिए। हे कमले ! आप तो अपने पुत्रों पर कृपा एवं प्यार करने वाली हैं। इस परम दीन आर्त्त बालक की रक्षा कीजिए ॥२६-२७॥

ततः कृपान्विता देवी श्रीरप्याह जनार्दनम् ॥२८
रक्ष नाथ स्वकं भृत्यं गरुडं विपदं गतम् ।
जनार्दन उवाचेदं नन्दिनं शम्भुवाहनम् ॥२९
नय नागं सगरुडं शम्भोरन्तिकमेव च ।
तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः ॥
आत्मीयं च पुना रूपं गरुडः समवाप्स्यति ॥३०
तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च ।
शनैः स शंकरं गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥
शंकरोऽपि गरुत्मन्तं प्रोवाच शशिशेखरः ॥३१
याहि गङ्गां महाबाहो गौतमीं लोकपावनीम् ।
सर्वकामप्रदां शान्तां तामाप्लुत्य पुनर्वपुः ॥३२
प्राप्स्यसे सर्वकामांश्च शतधाऽथ सहस्रधा ।
सर्वतापोपतप्ता ये दुर्दैवान्मुलितोद्यमाः ॥
प्राणिनांऽभीप्सदा तेषां शरणं सा गौतमी ॥३३
तदाकर्ण्य प्रणतो भूत्वा श्रुत्वा तु गरुडोऽप्यगात् ।
गङ्गामाप्लुत्य गरुडः शिवं विष्णुं ननाम स. ॥३४

तत स्वर्णमय पक्षी वज्रदेहो महाबल ।
वेगी भवन्मुनिश्रेष्ठ पुनर्विष्णुमियात्सुधी ॥३५
तत प्रभति तत्तीर्थं गारुड सर्वकामदम् ।
तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रयतो नर ॥
सर्वं तदक्षय वत्स शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से प्रार्थना करने पर श्री देवी के हृदय मे कृपा उभर आई और वे श्री जनार्दन से कहने लगी थी ॥२८॥ कमला देवी ने कहा—हे नाथ ! अब आप कृपा करके अपने भृत्य गरुड की रक्षा कीजिए क्योंकि वह इस समय मे विपत्ति से ग्रस्त हो रहा है। तब तो जनार्दन प्रभु ने भगवान् शम्भु के वाहन नन्दी से यह कहा था ॥२९॥ श्री विष्णु देव ने कहा—जाओ गरुड के सहित इस नाग को भगवान् शम्भु के समीप मे ले जाओ। आपके प्रसाद से यह गरुड भी महेश्वर प्रभु के द्वारा निरीक्षित होने का सुअवसर प्राप्त कर लेगा। तथा यह गरुड पुन अपने आत्मीय रूप को भी प्राप्त कर लेगा ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही किया जायगा—यह कहकर वह वृषभ नन्दी उस नाग और गरुड के साथ धीरे २ भगवान् शङ्कर के समीप चला गया था और वहाँ पर पहुच कर उनसे सम्पूर्ण हाल निवेदन कर दिया था। भगवान् शङ्कर भी उस समय मे गरुड से कहने लगे ॥३१॥ श्री शिव ने कहा—हे महाबाहो ! सब लोकों को पावन बना देने वाली गौतमी गङ्गा पर चले जाओ। सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली परम शान्तस्वरूप से युक्त उस गौतमी गङ्गा मे निमज्जन करके पुन शरीर प्राप्त करोगे और सभी कामनाओं को सैकड़ो तथा सहस्रो रूप से पा लोगे। जो सभी तरह के पापो से सतृप्त होते हैं और जो दुर्भाग्य से उन्मूलित उद्यम वाले हैं ऐसे प्राणियो के लिए वह अभीप्सित मनोरथों को पूर्ण कर देने वाली है। हे खग ! गौतमी उनकी शरण अर्थात् रक्षिका हुआ करती है ॥३२-३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम प्रणत होकर उनके वचन को सुनकर गरुड गौतमी पर चला गया था और वहाँ गौतमी गङ्गा मे निमज्जन करके उस गरुड ने भगवान् शिव एव विष्णु को

प्रणाम किया था ॥३४॥ उसके पश्चात् वह पक्षी वज्र देह वाला महान् बलवान् वेग से युक्त हो गया था और हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर वह सुधी भगवान् विष्णु की सन्निधि में प्राप्त हो गया था ॥३५॥ तभी से लेकर वह गारुड तीर्थ प्रख्यात हो गया है जो कि समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देने वाला है। वहाँ पर जो कोई मनुष्य प्रणत होकर स्नान तथा दान आदि जो कुछ भी सत्कर्म किया करता है हे वत्स ! वह सभी शिव और विष्णु के प्रिय करने वाला तथा अक्षय हो जाता है ॥३६॥

— ※ —

४४—अग्नितीर्थवर्णन

अग्नितीर्थमिति ख्यातं सर्वक्रतुफलप्रदम् ।
सर्वविघ्नोपशमनं तत्तीर्थस्य फलं शृणु ॥१
जातवेदा इति ख्यातो ह्यग्नेर्भ्राता स हव्यवाट् ।
हव्यं वहन्तं देवानां गौतम्यास्तीर एव तु ॥२
ऋषीणां सत्रसदने अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम् ।
भ्रातुः प्रियं तथा दक्षं मधुर्दितिसुतो बली ॥३
जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि ।
हव्यं देवा नवं चाऽऽपुर्मृते वै जातवेदसि ॥४
मृते भ्रातरि स त्वग्निः प्रिये वै जातवेदसि ।
कोपेन महताऽऽविष्टो गाङ्गमम्भः समाविशत् ॥५
गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नौ देवाश्च मानुषाः ।
जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मताः ॥६
यत्राग्निर्जलमाविष्टस्तं देशं सर्व एव ते ।
आजग्मुर्विबुधाः सर्व ऋषयः पितरस्तथा ॥७
विनाऽग्निना न जीवामः स्तुवन्तोऽग्निं विशेषतः ।
अग्निं जलगतं दृष्ट्वा प्रियं चोचुर्दिवौकसः ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सब ऋतुओ के पुण्य फल को प्रदान करने वाला अग्नि तीर्थ-इस नाम से तीर्थ ससार मे प्रसिद्ध है। यह तीर्थ समस्त विघ्नो का उपशमन करने वाला है। अब इस अग्नि तीर्थ का फल सुनो ॥१॥ वह अग्नि का भाई हव्यवाट् 'जातवेदा'—इस नाम से प्रख्यात है। गौतमी के तट पर ही वह देवो के लिये हव्य का वहन किया करता है ॥२॥ दिति के पुत्र मधु ने जो बहुत बलवान् था ऋषियो के सत्र सदन मे भाई के परम प्रिय तथा अतीव दक्ष अग्नि के उत्तम भाई को सब ऋषियो के तथा सुरो के देखते हुए ही मार दिया था। उस जात वेदा के मृत हो जाने पर देवगण अपना हव्य नही प्राप्त किया करते थे ॥३-४॥ वह अग्नि परम प्रिय अपने भाई जात वेदा के मर जाने पर महान् क्रोध मे आविष्ट होकर गङ्गा के जल मे समाविष्ट हो गया था ॥५॥ अग्नि देव के गङ्गा के जल मे समाविष्ट हो जाने पर सब देवगण और मनुष्यो ने अपने जीव का उत्सर्ग कर दिया था क्यो कि ये सभी अग्नि जीव ही माने गये हैं ॥६॥ जिस स्थान पर अग्नि जल मे प्रविष्ट हुआ था उसी स्थल पर वे सब देवगण-समस्त ऋषि लोग और सब पितृगण वहाँ पर आगये थे ॥७॥ सबने विशेष रूप अग्नि का स्तवन किया था और कह रहे थे कि हम बिना अग्नि के नही जीवित रहेंगे। अग्नि को जल के अन्दर गया हुआ देखकर देवो ने उसका प्रिय कहा था ॥८॥

देवाञ्जीवय हव्येन कव्येन च पितॄ स्तथा।
मानुपानन्नपाकेन बीजाना क्लेदनेन च ॥९
अग्निरप्याह तान्देवान्दक्षो यो मे गतोऽनुजः।
क्रियमाणे भवत्कार्ये या गतिर्जातवेदसः ॥१०
सा वाऽपि स्यान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने।
कार्यं तु सर्वतस्तस्य भवता जातवेदसः ॥११
दर्मा स्थितिमनुप्राप्तो न जाने मे क्व भवेत्।
इह चामुत्र च व्याप्ती शक्तिरप्यम नो भवेत् ॥१२

अथापि क्रियमाणे वै कार्ये सेव गतिर्मम ।
देवास्तमूचुर्भावेन सर्वेण ऋषयस्तथा ।।१३
आयुः कर्माणि च प्रीतिर्व्याप्तौ शक्तिश्च दीयते ।
प्रयाजाननुयाजाश्च दास्यामो हव्यवाहन ।।१४

देवो ने कहा था—हे अग्ने ! आप हव्य के द्वारा देवो को जीवन प्रदान करो—कव्य पहुचा कर पितरों को जीवित रक्खो—अन्न के परिपाक के द्वारा मनुष्यो को जीवन दो तथा क्लेदन से बीजो को जीवन दो ।।६।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे अग्नि ने भी उन देवो से कहा था कि जो समर्थ मेरा छोटा भाई था वह तो अब चला ही गया है अर्थात् मृत हो गया है । आप लोगो के कर्म के करने पर भी जात वेदा की जो यह गति हुई है वही मेरी भी गति हो सकती है अतएव हे सुरगणो ! मुझे आप लोगो के कार्य के साधन करने मे कुछ भी उत्साह नही होता है । सब प्रकार से आप लोगो के कार्य को करने वाले उस जात वेदा की यह स्थिति हो गयी है तो मैं नही जानता हू कि मेरी किस प्रकार की गति हो जावे । यहाँ पर और परलोक में व्याप्ति में भी हमारी शक्ति है ।।१०-१२।। तो भी कार्य के करने पर वही मेरी भी गति हो जायगी जो जात वेदा मेरे भाई की हुई है । तब तो देवो ने उससे कहा था तथा ऋषियो ने भी सर्व भाव से कहा था कि कर्म मे आयु और व्याप्ति मे प्रीति तथा शक्ति दी जाती है । हे हव्य वाहन ! प्रयाज अनुयाजो को देंगे ।।१३-१४।।

देवाना त्व मुख श्रेष्ठमाहूत्य. प्रथमास्तव ।
त्वया दत्त तु यद्द्रव्य भोक्ष्याम सुरसत्तम ।।१५
ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्देववाक्याद्यथाक्रमम् ।
इह चामुत्र च व्याप्तौ हव्ये वा लौकिके तथा ।।१६
सर्वत्र वह्निरभय समर्थोऽभूत्सुराज्ञया ।
जातवेदा बृहद्भानु सप्तार्चिर्नीललोहित ।।१७
जलगर्भ शमीगर्भो यज्ञगर्भ. स उच्यते ।
जलादाकृष्यविबुधा अभि(म्य,पिच्यवि(ञ्चन्वि)मावरम ।।१८

उभयत्र पदे वासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत् ।
यथागतं सुरा जग्मुर्वह्नितीर्थं तदुच्यते ॥१६
तत्र सप्त शतान्यासस्तीर्थानि गुणवन्ति च ।
तेषु स्नानं च दान च यः करोति जितात्मवान् ॥२०
अश्वमेधफल साग्र प्राप्नोत्यविकल शुभम् ।
देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेय जातवेदसम् ॥२१
अग्निप्रतिष्ठित लिङ्गं तत्राऽऽस्तऽनेकवर्णवत् ।
तद्देवदर्शनादेव सर्वक्रतुफल लभेत् ॥२२

हे अग्ने ! आप देवो के परम श्रेष्ठ मुख हैं और प्रथम आहुतियाँ आपकी ही है। हे सुरो मे श्रेष्ठ ! आप के द्वारा दिया हुआ द्रव्य ही हम ग्रहण कर भक्षण करेंगे ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर वह क्रमानुसार देवो के वाक्य से वह वह्नि सन्तुष्ट हुआ था। यहाँ पर-परलोक मे- व्याप्ति मे-हव्य मे तथा लौकिक मे सर्वत्र वह्नि अभय और समर्थ सुरो की आज्ञा से होगया था। वह फिर जात वेदा-वृहद्भानु सप्तार्चि-नील लोहित-जलगर्भ-शमी गर्भ और यज्ञ गर्भ कहा जाया करता है। देवो ने उसको जल से आकृष्ट करके और विभावसु का अभिषेचन करके उभयत्र पद मे वास वाला सर्वत्र गमन करने वाला तब से अग्नि हो गया था। सुरगण जिस मार्ग से यहाँ समागत हुए थे उसी से वे फिर चले गये थे और वह वह्नि तीर्थ नाम से कहा जाता है ॥१६-१६॥ वहाँ पर सात सौ तीर्थ हैं जो गुणो वाले हैं। उन तीर्थों मे जो कोई जितात्मा पुरुष स्नान और दान किया करता है वह साग्र अश्वमेघ यज्ञ के यजन करने का सम्पूर्ण एव परम शुभ पुण्य फल का लाभ किया करता है। वहाँ पर ही देव तीर्थ है और वहाँ पर ही जातवेदस आग्नेय है ॥२०-२१॥ वहाँ पर अनेक वर्णों वाला अग्नि प्रतिष्ठित लिङ्ग है। उस देव के दर्शन मात्र से ही सब क्रतुओं के करने का फल प्राप्त हो जाया करता है ॥२२॥

—:※:—

४५—ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णन

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं वेदविदो विदुः ।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥१
आसीत्पृथुश्रवा नाम प्रियः कक्षीवतः सुतः ।
न दारसंग्रहं लेभे वैराग्याद्धाग्निपूजनम् ॥२
कनीयांस्तु समर्थोऽपि परिवित्तिभयान्मुने ।
नाकरोद्दारकर्मादि नैवाग्नीनामुपासनम् ॥३
ततः प्रोचुः पितृगणा. पुत्रं कक्षीवतः शुभम् ।
ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथक्पृथगिदं वचः ॥४
ऋणत्रयापनोदाय क्रियतां दारसंग्रहः ॥५
नेत्युवाच ततो ज्येष्ठः किमृणं केन युज्यते ।
कनीयांस्तु पितृन्प्राह न योग्यो दारसंग्रहः ॥६
ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञः परिवित्तिभयादिति ।
तावुभौ पुनरप्येवमूचुस्ते वै पितामहाः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऋण प्रमोचन नाम वाला एक तीर्थ है जिसको वेदों के ज्ञाता लोग भली भाँति जानते हैं। हे नारद! अब हम उस तीर्थ के स्वरूप का वर्णन करेंगे। तुम तन्मनस्क होकर उसका श्रवण करो ॥१॥ एक पृथुश्रवा नामधारी कक्षीवान् का परम प्रिय पुत्र था। उसने वैराग्य से दारा का संग्रह नहीं किया था और अग्नि पूजन भी नहीं किया था ॥२॥ हे मुने! कनीयान् वह समर्थ भी था किन्तु परिवित्ति के भय से दार कर्मादि को नहीं किया था और अग्नियों की भी उपासना नहीं की थी ॥३॥ इसके अनन्तर पितृगणों ने उस कक्षीवान् के शुभ पुत्र से पूछा था। पितरों ने ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ दोनों ही से पृथक् पृथक् वचनों द्वारा कहा था ॥४॥ पितृगणों ने कहा—तीन प्रकार के ऋणों के अपमोदन करने के लिये दाराओं का संग्रह करो। देव ऋण-ऋषि ऋण और पितृऋण ये तीन ऋण सभी के ऊपर हुआ करते हैं जिनका चुकाना सबको परमावश्यक है और गृहस्थ होकर उन

ऋणों को चुकाया जाता है ॥५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पितरों के ऐसा कहने पर उनमें जो ज्येष्ठ था उसने निषेध कर दिया था और कहा क्या ऋण होता है और किस के द्वारा युक्त किया जाता है । जो कनीयान् छोटा था उसने भी पितरों से कहा था कि दाराओं का संग्रह करना योग्य नहीं है ॥६॥ क्योंकि ज्येष्ठ के होने पर मुझे दार संग्रह क्यों करना है । उस महा प्राज्ञ ने यह भी कहा था परिवित्ति का भय भी दार-संग्रह में रहता है अतएव मैं नहीं करता हूँ । तब तो पितामहों ने उन दोनों से पुनः इस प्रकार से कहा था ॥७॥

यातामुभौ गौतमीं तु पुण्यां कक्षीवतः सुतौ ।
कुरुतां गौतमीस्नानं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥८
गच्छतां गौतमीं गङ्गां लोकत्रितयपावनीम् ।
स्नानं च तर्पणं तस्यां कुरुतां श्रद्धयाऽन्वितौ ॥९
इष्ट्वाऽवनमिता ख्याता गौतमी सर्वकामदा ।
न देशकालजात्यादिनियमोऽस्यावगाहने ॥
ज्येष्ठोऽनृणस्ततो भूयात्परिवित्तिर्न चेतरः ॥१०
ततः पृथक्तया ज्येष्ठः कृत्वा स्नानं सतर्पणम् ।
त्रयाणामपि लोकानां काक्षीवतोऽनृणोऽभवत् ॥११
ततः प्रभृति तत्तीर्थमृणमोचनमुच्यते ।
श्रौतस्मार्तमृणेभ्यश्च इतरेभ्यश्च नारद ॥
तत्र स्नानेन दानेन ऋणी मुक्तः सुखी भवेत् ॥१२

तुममे जो ज्येष्ठ है वह ऋण रहित हो जायगा और जो छोटा दूसरा भाई है उसकी परिवृत्ति नही होगी ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस ज्येष्ठ भाई ने वहाँ पर स्नान और तर्पण किया था वह कक्षीवान् का पुत्र तीनो लोको मे ऋण रहित हो गया था ॥११॥ तभी से आरम्भ करके यह तीर्थ ऋण मोचन नाम से पुकारा जाया करता है। हे नारद ! श्रौत-स्मार्त्त ऋणो से और अन्य ऋणो से भी वहाँ पर स्नान तथा दान से ऋणी मुक्त हो जाता है और सुखी होता है ॥१२॥



४६ —पिप्पलतीर्थवर्णन

पिप्पल तीर्थमाख्यात चक्रतीर्थादनन्तरम् ।
यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः ॥१
यत्र विष्णु. स्वय स्थित्वा चक्रार्थं शकर विभुम् ।
पूजयामास वत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥२
यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णो शभुस्तत्पिप्पल विदु ।
महिमान यस्य वक्तु न क्षमोऽप्यहिनायक ॥३
चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम् ।
शृणु नारद तद्भक्त्या साक्षाद्वेदोदित मया ॥४
दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वित. ।
तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता ॥५
लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गभस्तिनी ।
इति नाम्ना च विख्याता वडवेति प्रकीर्तिता ॥६
दधीचेः सा प्रिया नित्य तपस्तेपे तया महत् ।
दधीचिरग्निमाश्रित्य गृहधर्मपरायणः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चक्रतीर्थ के अनन्तर पिप्पल तीर्थ कहा गया है जहाँ पर चक्रेश्वर देव हैं जिनसे श्री हरि ने चक्र को प्राप्त किया था

॥१॥ जहाँ पर भगवान् विष्णु ने स्वयं स्थित होकर सुदर्शन चक्र को प्राप्त करने के लिये विभु शङ्कर का अभ्यर्चन किया था। वही तीर्थ "चक्र तीर्थ"—कीर्तित हुआ है ॥२॥ जिस स्थल पर भगवान् शंकर विष्णु पर परम प्रसन्न हुए थे वह शम्भुरपिप्पल जाने गये हैं। जिसकी महिमा को शेष नाग भी वर्णन करने मे असमर्थ हैं ॥३॥ पिप्पलेश चक्रेश्वर नाम का भी एक विशेष कारण है। हे नारद! भक्ति की भावना से उस कारण को जो वेदो के द्वारा बताया गया है आप इस समय मे मुझ से श्रवण करो ॥४॥ एक दधीचि नामधारी मुनि परम विख्यात थे जो अनेक गुणगणो से युक्त हुए हैं। उन महामुनि की भार्या महापण्डिता एवं कुलीना और परमाधिक पतिव्रता थी ॥५॥ वह लोपा मुद्रा—इस नाम से विख्यात थी और उसकी बहिन गभस्तिनी हुई थी। वह इसी नाम से प्रसिद्ध थी और बड़वा इस नाम से कही गयी थी ॥६॥ वह मुनिवर दधीचि की परम प्रिया थी। और उसके साथ वह नित्य ही तपश्चर्या का तपन किया करते थे। दधीचि नित्य ही अग्निमान् थे तथा धर्म के कर्मों मे परम तत्पर रहा करते थे ॥७॥

भागीरथी समाश्रित्य देवातिथिपरायणः।
स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः ॥८
तस्य प्रभावात्त देश नारयो दैत्यदानवाः।
आजग्मुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः ॥९
तत्र देवाः समाजग्मू रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ।
इन्द्रो विष्णुर्यमोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान् ॥१०
जयेन जातसहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः।
दधीचिं मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः ॥११
दधीचिर्जातसहर्षः सुरान्पूज्य पृथक्पृथक्।
गृहकृत्य ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह ॥१२
पृष्टाश्च कुशलं तेन कथाश्चक्रुः सुरा अपि।
दधीचिमवदन्देवा भार्यया सुखित पुनः ॥१३
आसीनं हृष्टमनसं ऋषिं नत्वा पुनः पुनः ॥१४

भगवती भागीरथी गङ्गा का समाश्रय ग्रहण करके देवगण तथा अतिथियों की सेवा में वे परायण रहा करते थे। अपनी ही पत्नी में रति रखने वाले थे और परम शान्त स्वरूप से सम्पन्न एवं दूसरे कुम्भ योनि के ही समान थे ॥८॥ उनके तप के प्रभाव से उस देश में अरि दैत्य तथा दानव नहीं आये थे। हे मुनिशार्दूल! वहाँ पर अगस्त्य महामुनि का भी आश्रम था ॥९॥ यहाँ पर रुद्र, आदित्य, अश्विनी कुमार, इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, उपागत दैत्यों को जीत कर अपनी विजय होने के कारण अधिक हर्ष वाले एवं मरुद्गणों के द्वारा स्तुत होते हुए समागत हुए थे। मुनिशार्दूल दधीचि का दर्शन करके वे सब सुरेश्वर उनको प्रणिपात करने वाले हुए थे ॥१०-११॥ दधीचि भी परम हर्षित हुए और उन्होंने उन देवों की पृथक्-पृथक् पूजा की थी। इसके उपरान्त अपनी भार्या के साथ उन्होंने सुरों के लिये गृह-कृत्य किया था ॥१२॥ उन मुनिवर ने उन समस्त देवों से क्षेम-कुशल पूछा था और सुरगण कथाएँ करने लगे थे। फिर अपनी भार्या के साथ परम सुखी दधीचि से देवों ने कहना आरम्भ किया था। सभी देव अत्यधिक-प्रसन्न मन वाले थे और वहाँ समवस्थित मुनि को बारम्बार उन सबने प्रणाम किया था ॥१३-१४॥

किमद्य दुर्लभं लोके श्रेयोऽस्माकं भविष्यति ।
त्वादृशः शक्रपो येषु मुनिर्भूकल्पपादपः ॥१५
एतदेव फलं पुंसां जीवतां मुनिसत्तम ।
तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशाम् ॥१६
यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने ।
जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपन्नगान् ॥१७
वयं च गुणिनो ब्रह्मंस्त्वयि दृष्टे विशेषतः ।
नाऽऽयुधैः फलमस्माकं वोढुं नैव क्षमा वयम् ॥१८
स्थाप्यदेशं न पश्याम आयुधानां मुनीश्वर ।
स्वर्गे सुरद्विषो ज्ञात्वा स्थानितानि हरन्ति च ॥१९
नदेवुरासुपानोति तथैव च रसातले ।
तस्मात्तवाश्रमे पुण्ये स्थाप्यन्तेऽस्त्राणि मानद ॥२०

नैवात्र किंचिद्भयमस्तिविप्र,
न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम् ।
त्वदाज्ञया रक्षितपुण्यऽशो,
न विद्यते तपसा ते समानः ॥२१

देवगण ने कहा—हे ऋषिवर ! लोक मे अब हम लोगो के लिये क्या वस्तु दुर्लभ हो सकती है जिन हम सब पर आप परमाधिक कृपा करने वाले आप विद्यमान है जिनको कि इस भूमण्डल का कल्प वृक्ष ही कहना चाहिए जो हृदय मे समुत्थित सभी मनोरथो को तुरन्त पूर्ण कर दिया करता है ॥१५॥ हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ ! जीवनधारी पुरुषो का यही सबसे बड़ा फल होता है कि तीर्थों मे अभिषेचन करना प्राणियो पर परमाधिक दया का भाव रखना और आप सरीखे महामुनियों का दर्शन प्राप्त कर लेना—ये सब पुण्य-फल होते है ॥१६॥ जिनके अधिक स्नेह होने के कारण से ही हे मुनिवर ! हम लोगो के द्वारा निवेदन किया जाता है । आप उसका अवधारण कीजिए । हम लोग दैत्यो के ऊपर विजय प्राप्त करके तथा बड़े २ महा राक्षसो को मारकर ही इस समय मे आपकी सेवा मे समुपस्थित हुए है ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! हम इस समय मे परम सुख से सम्पन्न हैं और आप का दर्शन करके अधिक सुखी हुए है । अब हमको आयुधो से कुछ भी फल नहीं है और न हम उनके वहन करने मे समर्थ ही हैं ॥१८॥ हे मुनीश्वर ! उन समस्त आयुधो के स्थापित करने के योग्य किसी भी स्थल को हम लोग नहीं पा रहे हैं । स्वर्ग मे उनको स्थापित करे तो वहाँ पर सुरो के द्वेषीगण जान लेते हैं और उनका हरण कर लिया करते हैं ॥१९॥ यदि हमने उन सब आयुधो को जान लेते हैं तो सबको लेकर वे रसातल को ले जायेंगे । हे मानद ! इसी कारण से आपके ही इस पुण्यमय आश्रम मे उन अस्त्रो को स्थापित किया जाता है ॥२०॥ हे विप्र ! यहाँ पर कुछ भी भय नहीं है । न तो दानवो के आने का डर है और न राक्षसो से ही घोर भय यहाँ पर है । यदि आपकी आज्ञा ऐसी हो जावे तो बहुत

ही अच्छा हो। यह तो परम सुरक्षित एवं पवित्र स्थल है क्यो कि तप-
स्या में आपके सदृश अन्य कोई भी विद्यमान नही है ॥२१॥

जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठ,
वय च पूर्व निहता दैत्यसघा.।
अस्त्रैरल भारभूतं कृतार्थै:,
स्थाप्य स्थान ते समीपे मुनीश ॥२२
दिव्यान्भोगान्कामिनीभि. समेता-
न्देवोद्याने नन्दने सभजामः।
ततो यामः कृतकार्या सहेन्द्रा:,
स्व स्व स्थान चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३
त्वया कृता जायता तत्प्रशाधि।
समर्थस्त्व रक्षणे धारणे च ॥२४
तद्वाक्यमाकर्ण्य दधीचिरेव,
वाक्य जगौ विबुधानेवमस्तु।
निवार्यमाणः प्रियशीलया स्त्रिया,
किं देवकार्येण विरुद्धकारिणा ॥२५
ये ज्ञातशास्त्रा परमार्थनिष्ठा:,
ससारचेष्टासु गतानुरागाः।
तेषा परार्थ व्यसनेन किं मुने,
येनात्र वाऽमुत्र सुख न किंचित् ॥२६
देवद्वियो द्वेषमनुप्रयान्ति,
दत्ते स्थाने विप्रवर्य शृणुष्व।
नष्टे हृते चाऽऽयुधाना मुनीश,
कृप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति ॥२७
तस्मान्नेद वेदविदा वरिष्ठ,
युक्त द्रव्ये परकीये ममत्वम्।
तावद्ध मैत्री द्रव्यभावश्च ताव-
न्नष्टे हृते रिपवस्ते भवन्ति ॥२८

आप तो ब्रह्म के ज्ञाताओ मे परम वरिष्ठ हैं। और हम लोग अपने अरियो के जीत लेने वाले हैं। और हमने सब दैत्यो के सघो को पूर्व मे ही मार दिया है। अब ये सब अस्त्र व्यर्थ ही हैं क्यो कि हम सफल हो चुके है अतएव केवल ये सब एक भार के ही समान प्रतीत हो रहे हैं। हे मुनीश्वर! अब आपके ही समीप मे इस स्थान मे इनको स्थापित कर देना चाहिए ॥२२॥ अब तो आप लोग देवो के उद्यान नन्दन वन मे कामिनियो से युक्त होकर दिव्यभोगो के सुख का भोग करें। इसलिये कृतकार्य हम सब इन्द्रदेव के सहित वापिस गमन करते हैं और अपने २ आश्रमो को जाते हैं क्योकि आयुधो की तो सुरक्षा है यहाँ पर आयुधो की रक्षा आपके द्वारा हो ही गयी है। अब आप हमको आज्ञा दीजिए। आप इनके धारण एव सरक्षण करने मे पूर्णतया समर्थ हैं ॥२३-२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन देवो के इस वचन को सुन कर दधीचि मुनि ने उन देवो से ऐसा ही होगा—यह वाक्य कह दिया था। उस समय मे प्रिय शील स्वभाव वाली पत्नी के द्वारा निवरण भी किया गया था कि विरुद्ध कार्य करने वाले इस देवो के इस कार्य से हमको क्या प्रयोजन है ॥२५॥ जिन्होंने शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जो परमार्थ मे ही निष्ठा रखते हैं तथा जिनका सासारिक चेष्टाओ मे अनुराग सर्वथा गत हो गया है हे मुने! उनको दूसरो के अर्थ के व्यसन से क्या प्रयोजन है जिससे न तो इस लोक मे और न परलोक मे ही कुछ सुख है वे दूसरों के झगडो म क्यों पड़ें क्यों कि उनके लिये सब व्यर्थ ही हैं ॥२६॥ हे विप्रवर्य! देवो से द्वेष करने वाले द्वेष करेगे जब कि आप इन देवो के लिये आयुधो के रखने का स्थान देदेंगे। आप यह सुनिये कि यदि किसी कारण से नष्ट होगये या हे मुनिवर! हरण कर लिये गये तो ऐसा हो जाने पर ये ही देवगण आप पर क्रोधित हो जाँयगे और फिर आपके ही ये सब शत्रु बन जायेंगे जोकि इस समय आपकी बडी वन्दना अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये कर रहे हैं ॥२७॥ हे वेदों के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ! इस कारण से दूसरों के द्रव्य मे ममता रखना युक्त नहीं है। ये सब तभी तक आपके

मैत्री का भाव रखते हैं और द्रव्य भाव भी इनका तभी तक है। नष्ट हो जाने या अपहृत हो जाने पर ये सब आपके शत्रु हो जायेंगे ॥२८॥

चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते,
दातव्यमर्थार्थिने किं विचार्यम् ।
नो चेत्सन्त. परकार्याणि कुर्यु-
र्वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिस्तथैव ॥२९
परस्यसधारणमेतदेव,
सद्भिर्निरस्त त्यज कान्त रायः ॥३०
एव प्रियाया वचन स विप्रो,
निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रू म् ॥३१
पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे,
नेतीति वाणी न सुरा मर्मेति ॥३२
श्रुत्वेति पत्युरिति प्रियाया,
दैव विनाऽन्यन्न नृणा समर्थम् ।
तूष्णी स्थितायां सुरसत्तमास्ते,
सस्थाप्य चास्त्राण्यतिदीप्तिमन्ति ॥३३
नत्वा मुनीन्द्रं ययुरेव लोका-
न्दैत्यद्विपो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः ।
गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो
हृष्टोऽवसद्भार्यया धर्मयुक्तः ॥३४
गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते,
दैवे वर्षे सख्यया वै सहस्रे ।
न ते सुरा आयुधाना मुनीश,
वाच मनश्चापि तथैव चक्रु ॥३५

यदि आपकी द्रव्य के दान मे शक्ति है तो याचना करने वाले को दे ही देना चाहिए—इसमे विचार ही क्या करना है। यदि कुछ देना नहीं है तो सन्त पुरुष दूसरो के कार्यों को कर दिया करते हैं और कर भी देना चाहिए। अपनी वाणी सन्मन से और प्रयत्नो के द्वारा परकार्य

कर देने चाहिए और सन्त पुरुष ऐसा ही किया भी करते हैं ॥२६॥ किन्तु हे कान्त ! पराये धन का रखना ऐसा है कि सत्पुरुषों ने इसका निषेध ही किया है सो हे स्वामिन् ! इसका आप तुरन्त ही त्याग कर दीजिए ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए अपनी प्रिय पत्नी के वचनों का श्रवण करके उस विप्र ने सुन्दर भृकुटियों वाली भार्या से यह कहा था ॥३१॥ दधीचि मुनि ने कहा—हे भद्रे ! पहिले सुरों का समादर पूर्वक कथन मान कर अब निषेध करना मुझे सुखकर प्रतीत नहीं होता है ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने स्वामी के कथित वचन को सुन कर प्रिया के विषय मे देव के बिना मनुष्यों के लिये अन्य कोई भी समर्थ नहीं है। वह मुनि पत्नी चुप-चाप स्थित हो गई तो वे सब सुरगण अपने दीप्ति से युक्त अस्त्रों को वहाँ पर सस्थापित करके उन महामुनि को नमस्कार करके अपने२ लोकों को वापिस चले गये थे क्यों कि वे दैत्यों के शत्रु देवगण अस्त्रों को रखने में सफल हो गये थे ! जब सब देवगण चले गये तो उनके जाने पर मुनियों में परम श्रेष्ठ दधीचि प्रसन्न होकर अपनी भार्या के साथ धर्म से युक्त होते हुए अपने आश्रम मे निवास किया करते थे ॥३३-३४॥ फिर एक सहस्र दैव वर्षों के काल के व्यतीत हो जाने पर भी हे मुनीश्वर ! उन देवों ने अपने आयुधों के विषय में कुछ भी न कहा और न उन्होंने मन में आयुधों का स्मरण भी नहीं किया था ॥३५॥

दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा,
देवारयो मा द्विषतीह भद्रे ।
न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति,
सस्थापितान्यत्र वदस्व युक्तम् ॥३६

सा चाऽऽह कान्त विनयादुक्तमेव,
त्व जानीषे नाथ यदत्र युक्तम् ।
दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धा-
स्तपोयुक्ता बलिनः स्वायुधानि ॥३७

तदस्त्ररक्षार्थमिदं स चक्रे,
मन्त्रैस्तु सक्षाल्य जलैश्च पुण्यै. ।
तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्यं,
तेजोयुक्तं सन्न पपौ दधीचिः ॥३८
निर्वीर्यरूपाणि तदायुधानि,
क्षयं जग्मु. क्रमशः कालयोगात् ।
सुरा· समागत्य दधीचिमूचु-
र्महाभयं ह्यागतं शाश्वत न. ॥३९
ददस्व चास्त्राणि मुनिप्रवीर,
यानि त्वदन्ते निहितानि देवैः ।
दधीचिरप्याह सुरारिभीत्या,
अनागत्या भवता चाचिरेण ॥४०
अस्त्राणि पीतानि शरीरसस्था-
न्युक्तानि युक्तं मम तद्वदन्तु ।
श्रुत्वा तदुक्तं वचनं तु देवा,
प्रोचुस्तमित्थं विनयावनम्रा ॥४१
अस्त्राणि देहीति च वक्तुमेव-
च्छक्यं न वाऽन्यत्प्रतिवक्तु मुनीन्द्र ।
विना च तं परिमृयेम नित्यं,
पुष्टास्य के प्रयामो मुनीश ॥४२

दधीचि मुनि ने भी ओज के साथ गमस्ति से कहा था कि हे भद्रे ! देवों के रिपुगण मुझ से द्वेष करते हैं । वे सुरगण तो इन अपने शस्त्रों को ले जाने की इच्छा वाले ही नहीं हैं । ये उनके आयुध यहाँ पर सस्थापित किये हुए हैं । अब क्या करना उचित है मुझे बतलाओ ॥३६॥ उसने विनय पूर्वक अपने स्वामी से जा पूर्व कथित बात थी वही कह दी । उसने कहा था कि हे नाथ ! यहाँ पर क्या उचित है इसे आप स्वयं ही जानते हैं । दैत्य महान् प्रवृद्ध हैं । वे तप से भी युक्त हैं तथा बहुत बल वाले हैं । वे अपने आयुधों का हरण कर लेंगे ॥३७॥ इस

सो उन महामुनि ने उनके अस्त्रो की सुरक्षा के लिये यह किया था कि मन्त्रो के द्वारा तथा पुण्यमय जलो के द्वारा उनका सक्षालन कर दिया और दधीचि ने सब अस्त्रो से परिपूर्ण पुण्य से युक्त उस जल का जो तेज से भी युक्त था स्वय पान कर लिया था ॥३८॥ वीर्य से हीन स्वरूप वाले ने उनके आयुध काल के योग से क्रम से क्षय को प्राप्त हो गये थे। फिर सुरगण वहाँ पर समागत हो गये थे और दधीचि मुनि से कहने लगे थे कि हमको शत्रुओ का महान् भय समागत हो गया है ॥३६॥ हे मुनि प्रवीर ! देवो ने जो आपके पास मे निहित किये थे वे अस्त्र हमको दे दीजिए। दधीचि मुनि ने कहा था कि सुरो के शत्रुओ के भय के कारण से और शीघ्र आप लोगो के न आने के कारण से ये सब मैंने पा लिये हैं। अब जो भी युक्त हो यह आप लोग मुझको बतलायें। इस प्रकार से ऋषि के द्वारा कथि वचन का श्रवण करके देवो ने विनय से अवनत होकर इस प्रकार से उन मुनि से कहा था ॥४०-४१॥ इस समय मे तो हमारे अस्त्रो को आप दे देवें यही कहा जा सकता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही कहा जा सकता है हे मुनीन्द्र ! बिना अपने उन आयुधो के तो हम नित्य ही महान् पराभव को प्राप्त करेंगे। हे मुनीश ! हमारे शत्रुगण तो बड़े ही परिपुष्ट हो गये हैं। आप ही बतलाइये कि हम कहाँ पर जायें ॥४२॥

न मर्त्यलोके न तले न नाके,
वासः सुराणा भविताऽद्य तात।
त्व विप्रवर्यस्तपसा चैव युक्तो,
नान्यद्वक्तु युज्यते ते पुरस्तात् ॥४३

विप्रस्तदोवाच मदस्थिसस्था-
न्यस्त्राणि गृह्णन्तु न सशयोऽत्र।
देवास्तमप्याहुरनेन कि नो,
ह्यस्त्रैर्हीनाः स्त्रीत्वमाप्ताः सुरेन्द्राः ॥४४

पुनस्तदा चाऽऽह मुनिप्रवीर-
स्त्वक्ष्ये जीवान्दैहिकान्योगयुक्तः।

अस्त्राणि कुर्वन्तु मदस्थिभूता-
न्यनुत्तमान्युत्तमरूपवन्ति ॥४५
कुरुध्व चेत्याहुरदीनसत्त्व,
दधीचिमित्युत्तरमग्निकल्पम् ।
तदा तु तस्य प्रियमीरयन्ती,
न सान्निध्ये प्रातिथेयी मुनीश ॥ ६
ते चापि देवास्तामदृष्ट्वैं शीघ्र,
तस्या भीता विप्रमूचुः कुरुष्व ।
तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रीतियुक्तो
यथासुख देहमिम जुपध्वम् ॥४७
मदस्थिभिः प्रीतिमन्तो भवन्तु,
सुराः सर्वे किंतु देहेन कार्यम् ॥४८

हे तात ! इस समय मे तो ऐसी परिस्थिति बन गई है कि सुरों का मर्त्यलोक मे-पाताल मे और स्वर्ग में कही पर भी निवास नही हो सकेगा। हे भगवन् ! आप तो विप्रो मे परम श्रेष्ठ हैं और तपश्चर्या से भी युक्त हैं। आपके समक्ष मे हम लोग अन्य कुछ भी कह नही सकते हैं ॥४३॥ तब तो विप्र दधीचि ने कहा था कि वे अस्त्र तो मेरी अस्थियो मे इस समय म सस्थित हैं। आप मेरी अस्थियो को ही ग्रहण कर लेवें—इसमे कुछ भी सशय नही है। देवो ने कहा था कि इससे हमारा क्या भला होगा ? अब तो हम लोग अस्त्रो से हीन होकर सब सुरेन्द्र स्त्री को ही प्राप्त होगये हैं अर्थात् स्त्रियो के समान ही बल विहीन बन गये हैं ॥४४॥ तब तो उसी समय मे वह मुनियो मे परम श्रेष्ठ दधीचि ने कहा—मैं योगाभ्यास से युक्त होकर अपने देह के अङ्गो मे रहने वाले प्राणो का त्याग कर दूँगा। आप लोग फिर अत्यन्त स्वरूप सम्पन्न और उत्तम मेरी अस्थियो से अपने अस्त्रो का निर्माण कर लीजिए ॥४५॥ उन देवो ने अदीन सत्व वाले अग्नि के सदृश दधीचि को 'करो'—यही उत्तर में कहा था। हे मुनीश ! उस समय मे उसके प्रिय का कथन करने वाली प्रातिथेयी वहाँ समीप मे नही थी ॥४६॥ उन देवो ने भी

उसको न देख कर बहुत ही शीघ्र उसके भय से डरे हुए होकर विप्र दधीचि से कहा—'करिये'। बहुत ही प्रीति से युक्त होकर दधीचि ने परम दुस्त्यज जीवों का परित्याग कर दिया था। तथा उस समय में देवों से मुनीन्द्र ने कहा था कि आप लोग सुख पूर्वक इस मेरे देह का सेवन करिए ॥४७॥ आप समस्त सुरगण मेरे देह से जो भी आपका करना हो उसे करिए और आप लोग मेरी अस्थियों से परम प्रीति वाले होइये ॥४८॥

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्थो,
नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रशान्तः।
वायुं सर्वांह्नि मध्यमोद्घाटयांगा-
न्नीत्वा शनैर्दहराकाशगर्भम् ॥४६
यदप्रमेयं परम पद य-
द्यद्ब्रह्मरूप यदुपासितव्यम्।
तत्रैव विन्यस्य धियं महात्मा,
सायुज्यता ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥५०
निर्जीवता प्राप्तमभीक्ष्य देवाः,
कलेवरं तस्य सुराश्च सम्यक्।
त्वष्टारमप्यूचुरतित्वरन्तः,
कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः ॥५१
स चापि तानाह कथं नु कार्यं,
कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः।
बिभेमि कर्तुं दारुणं चाक्षमोऽहं,
विदारितान्यायुधान्युत्तमानि ॥५२
तदस्थिभूतानि करोमि सद्य-
स्ततोदेवा गाः समूचुस्त्वरन्तः ॥५३
वज्रं मुखं वः क्रियते हितार्थं,
गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन।

दधीचिदेह तु विदाय यूय-
मस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताय ॥५४

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रुः,
सलिह्य चास्थीनि ददु सुराणाम् ।
सुरास्त्वरा जग्मुरदीनसत्त्वाः,
स्वमालय चापि तथैच गाव. ॥५५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन मुनीश्वर दधीचि ने इतना देवो से निवेदन करके पद्मासन को बांध कर स्थित होगये और अपनी नासिका के अग्र भाग मे नेत्रो के प्रकाश को लगाकर परम प्रसन्न हो गये थे तथा मध्यमो द्वारा योग से शनैः वह्नि के सहित वायु को दहराकाश गर्भ में ले गये थे ॥४६॥ फिर जो प्रमान करने के योग्य परम पद है और जो उपासना करने के योग्य ब्रह्म का स्वरूप है । उस महान् आत्मा वाले ब्राह्मण ने वही पर अपनी बुद्धि का न्यास करके सायुज्यता की प्राप्ति कर ली थी ॥५०॥ देवो ने जब देखा कि वह मुनीश्वर निर्जीवता को प्राप्त हो गये तो सुरगण ने उनके कलेवर को लेकर अत्यन्त शीघ्रता करते हुए त्वष्टा से भली भाँति कहा था कि इसकी अस्थियो से तुरन्त बहुत से अस्त्रो की रचना कर डालो ॥५१॥ उस त्वष्टा ने भी उन देवो से कहा था कि हे देवो ! यहा पर इस ब्राह्मण के शरीर से मैं कैसे क्या करूँ और क्या बनाऊँ ? मैं तो इस महान् दारुण कर्म के करने में डरता हू । हे देवगण ! मैं तो इस कर्म करने की क्षमता नही रखता हूँ । उत्तम आयुध विदारित हो गये हैं ॥५२॥ मैं तो उनको तुरन्त अस्थि भूत कर देता हू । इसके अनन्तर देवगण शीघ्रता करते हुए गायो से बोले ॥५३॥ देवो ने कहा—क्षण मात्र मे आयुधो के लिये हे गौओ ! आपका मुख देवो के द्वारा वज्र किया जाता है । आप दधीचि के देह को विदीर्ण करके इस समय विशुद्ध अस्थियो को हमको देवे ॥५४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन गायो ने देवो के वाक्य से उसी भाँति किया था । अस्थियों को भली-भाँति चाट कर सुरों को दे दिया था । अदीन

सत्व वाले सुरगण बडी शीघ्रता से अपनेर आश्रमो को चले गये थे और वे गौएं भी चली गयी थी ॥५५॥

कृत्वा तथाऽस्त्राणि च देवताना,
त्वष्टा जगमाथ सुराज्ञया तदा ।
तदधिराच्छीलवती सुभद्रा,
भर्तु:प्रिया बालगर्भा त्वरन्ती ॥५६

करे गृहीत्वा कलश वारिपूर्ण-
मुमानत्वा फलपुष्पैः समेत्य ।
अग्नि च भर्तारमथाऽऽश्रम च,
सद्रष्टुकामा ह्याजगामाथ शीघ्रम् ॥५७

आगच्छन्तो ता प्रातिवेशी तदानो,
निवारयामास तदोल्कपात. ।
सा सभ्रमादागता चाऽऽश्रम स्व,
नैवापश्यत्तत्र भर्तारमग्रे ॥५८

क्व या गतश्चेति सविस्मया सा,
पप्रच्छ चाग्नि प्रातिवेशी तदानीद् ।
अग्निस्तदोवाच सविस्तर ता,
देवागम याचन यं शरीरे ॥५९

अस्थ्नामुपादानमथ प्रयाण,
श्रुत्वा सद्य दु खिता सा बभूव ।
दु खोद्वेगात्सा पपाताथ पृथ्व्या,
मन्द मन्द वह्निनाऽऽश्वासिता च ॥६०

शापंस्मरन्ती तु साह समर्था,
अग्नि प्राप्स्ये कि नु कार्य मयेऽस्मे ॥६१

धैर्य च दुःख च निरस्य नार्यो,
तदात्मार्दितमसुर्व च भर्तुः ॥६२

उत्पद्यते यत्त विनाशि सर्वं,
न शाच्यमस्तीति ममुष्यलोके ।
गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति,
प्राणान्प्रियान्पुण्यभाजो मनुष्या ॥६३

उसी समय मे सुरो की आज्ञा से देवो के अस्त्रो का निर्माण करके त्वष्टा चला गया था । इसके पश्चात् बहुत समय के अनन्तर शील वाली सुभद्रा अपने स्वामी की प्रिया बालक को गर्भ मे धारण करती हुई बहुत ही शीघ्रता करती हुई हाथ मे जल से भरा हुआ करवा लेकर फलो और पुष्पो से उमादेवी को नमस्कार करके तथा अग्नि को नमन करके अपने भर्ता को देखने की इच्छा वाली आश्रम मे बहुत शीघ्र ही आगयी थी ॥५६-५७॥ उस समय मे आगमन करती हुई उस प्रातिथेयी को उल्का-पात ने निवारित किया था यह बहुत ही सभ्रम के साथ अपने आश्रम मे समागत हो गयी और वहाँ पर उसने आगे अपने भर्ता को नही देखा था ॥५८॥ मेरे स्वामी कहाँ पर चले गये हैं इस विस्मय से बहुत समन्वित हो गई थी क्यो कि वह उनको वही पर छोड कर गयी थी । उस समय प्रातिथेयी ने अग्नि से पूछा था । उस समय मे अग्नि ने विस्तार के साथ उससे वहाँ पर देवो का समागमन और शरीर की याचना करना बतला दिया था ॥५६॥ उनकी अस्थियो का उपादान करना और इसके अन्तर शीघ्रता से प्रयाण कर जाना सभी कुछ घटना को अग्नि ने वतला दिया था। इस दुर्घटित घटना का श्रवण कर वह बहुत ही दु खित हुई थी । उस महान् दु ख के उद्वेग के कारण वह भूमि पर गिर पडी थी फिर धीरे२ वह्नि के द्वारा उसको समाश्वास नही दिया गया था ॥६०॥ प्रातिथेयी ने कहा—मैं देवो को शाप देने मे जो समर्थ नही हूँ किन्तु अब मैं अग्नि मे प्राप्त हो जाऊँगी क्यो कि मेरे यहाँ पर रहने से क्या प्रयोजन होगा ॥६१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस परम साध्वी ने अपने हार्दिक दु ख और कोप का नियमन करके अपने भर्त्ता के उस धम से युक्त कार्य के विषय मे कहा था ॥६२॥ प्रातिथेयी

ने कहा—जो इस जगत् में समुत्पन्न होता है वह सभी कुछ विनाशशील होता है अतएव इस मनुष्य लोक मे भी शोच करने के योग्य नही है। बहुत ही पुण्यशाली मनुष्य ही गो-विप्र और देवो के लिये अपने परम प्रिय प्राणो का परित्याग किया करते है ॥६३॥

ससारचक्रे परिवर्तमाने
देह समर्थ धर्मयुक्त त्ववाप्य ।
प्रियान्प्राणान्देवविप्रार्थहेतो-
स्ते वै धन्याः प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥६४

प्राणाः सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य,
यातारो वै नात्र सदेहलेशः ।
एव ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीना-
मर्थचैनानुत्सृजन्तीश्वरास्ते ॥६५

निवार्यमाणोऽपि मया प्रपत्तया,
चकार देवाक्षपरिग्रह सः ।
मनोगत वेत्त्यथवा विधातुः,
को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य ॥६६
इत्येवमुक्त्वाऽऽमृज्य चाग्नीन्यथाव-
द्भर्तुं स्त्वचालोमभिः सा विवेश ।
गर्भस्थित बालक प्रातिथेयी,
कुक्षि विदार्याथ करे गृहीत्वा ॥६७
नत्वा च गङ्गा भुवमाश्रम च,
वनस्पतीनोपधीराश्रमस्थान् ॥६८

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजैश्च,
मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।
रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसघा-
स्तथौषध्यो बालकं लोकपालाः ॥६९

ये बालकं मातृपितृप्रहीण,
सनिर्विशेष स्वतनुप्ररूढ़ैः।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नून,
ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीया.॥७०

इस परिवर्त्तनशील ससार रूप चक्र मे इस परम सामर्थ्य से युक्त मानवीय-धर्म से युक्त शरीर को प्राप्त करके अपने परमाधिक प्रिय प्राणो को देवो और विप्रो के कार्य की सिद्धि के लिये जो प्राणी त्याग किया करते हैं वे वास्तव मे बहुत ही धन्य हैं ॥६४॥ ये प्राण तो सब ही देह-धारी मनुष्य के गमन करने वाले हुआ करते हैं अर्थात् जो भी कोई देहधारी है वे सभी अवश्य ही एक न एक दिन अवश्य ही अपने प्राणो का त्याग किया करते हैं—इसमें कुछ भी सशय नही है। इस तरह से ज्ञान प्राप्त करके जो ब्राह्मण गौ और देवो के हित सम्पादन करने के लिये इनका उत्सर्ग कर दिया करते है वे परम समर्थ ईश्वर ही होते हैं ॥६५॥ मेरु द्वारा बहुत कुछ निवारण करने पर जो कि मैं परम प्रपन्न अपने पतिदेव की थी मेरे स्वामी ने देवो के अस्त्रो को अपने आश्रय मे रख लेना स्वीकार कर लिया था। अथवा मनुष्य लोक के अतिगमन करने वाली चेष्टा से युक्त विधाता के मन मे रहने वाली बात को कौन जानता है अर्थात् विधाता के हृदय की बात को कोई भी नही जान सकता है ॥६६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा था। ब्रह्माजी बोले—इस तरह से उस दधीचि मुनि की पत्नी ने कहकर यथोचित रीति से अग्नियो का पूजन करके जो अपने भर्ता की त्वचा और लोमादि वहाँ पर शेष थे उनके साथ उसने अग्नि मे प्रवेश कर लिया था उसके गर्भ मे स्थित जो बालक था उसको उस प्रातियेयी ने कुक्षि को विदारित करके हाथ मे ग्रहण कर लिया था। फिर गङ्गा का, भूदेवी का और अपने आश्रम का तथा उस आश्रम मे स्थित वनस्पतियो का और ओषधियो का प्रणिपात किया था ॥६७-६८॥ प्रातियेयी ने कहा—यह बालक इस समय मे पिता सब धुगण गोत्रज और माता से भी हीन है अर्थात् इसका इस समय मे ोई भी रक्षा करने वाला नही है। सर्वथा अनाथ ही है इसका सरक्षण

समस्त भूतसंघ, ओषधियाँ और सब लोकपाल करें ॥६६॥ इस माता-पिता से हीन बालक को अपने शरीर से प्ररूढ़ों के द्वारा विशेष रूप से अपना ही समझकर देखेंगे और इसकी सुरक्षा करेंगे वे निश्चय ही ब्रह्मादि देवों के भी वन्दनीय होंगे। अर्थात् ब्रह्मा प्रभृति देव भी उसकी वन्दना करेंगे ॥७०॥

इत्युक्त्वा चात्यजद्बालं भर्तृचित्तपरायणा ।
पिप्पलानां समीपे तु न्यस्य बालं नमस्य च ॥७१
अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य यज्ञपात्रसमन्विता ।
विवेशाग्निं प्रातिथेयी भर्त्रा सह दिवं ययौ ॥७२
रुरुदुश्चाऽऽश्रमस्था ये वृक्षाश्च वनवासिनः ।
पुत्रवत्पोषिता येन ऋषिणा च दधीचिना ॥७३
विना तेन न जीवामस्तया मात्रा विना तथा ।
मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४
स्वर्गमासेदुषोः पित्रोस्तदपत्येष्वकृत्रिमम् ।
ये कुर्वन्त्यनिशं स्नेहं त एव कृतिनो नराः ॥७५
दधीचिः प्रातिथेयी वा वीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा ।
तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम् ॥७६
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम् ।
बालो दधीचिः प्रातिथेयी बालो धर्मः सनातनः ॥७७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने स्वामी में अपने चित्त को तत्पर रखने वाली प्रातिथेयी ने इतना निवेदन करके उस बालक को पिप्पलों के समीप में रखकर तथा नमस्कार करके उस बालक का त्याग कर दिया था फिर यज्ञ के पात्रों से समन्वित होकर अग्नि की प्रदक्षिणा की थी और तदनन्तर उस प्रातिथेयी ने अग्नि में प्रवेश कर लिया था और अपने स्वामी के साथ ही वह दिव्यलोक को चली गयी थी ॥७१-७२॥ उस समय में वहाँ पर बहुत ही करुणापूर्ण दृश्य उपस्थित हो गया था जो भी आश्रम में स्थित वृक्ष एवं वन में निवास करने वाले थे वे सभी रुदन करने लगे थे क्योंकि दधीचि ऋषि ने उन सबका अपने ही पुत्र के समान

पोषित किया था। वहाँ के सभी पक्षी मृग और वृक्ष परस्पर मे कह रहे थे कि हम अब उस ऋषि के बिना तथा परम करुणामयी माता के बिना अब जीवित नही रहेंगे ॥७३-७४॥ वृक्षो ने कहा—स्वर्ग मे गमन करने वाले माता-पिता के अपत्यो में जो अकृत्रिम स्नेह निरन्तर किया करते हैं वे ही मनुष्य परम पुण्यात्मा होते है ॥७५॥ पहिले महर्षि दधीचि और प्रातिथेयी हम लोगो को जिस तरह से देखा करते थे अर्थात् हम सबकी पूर्णतया देखभाल रखते थे वैसी देखभाल माता-पिता भी नही किया करते हैं। हम बड़े ही पापी है हमको धिक्कार है ॥७६॥ इसी लिये हम सबका भी आज से लेकर यही निश्चय है कि यह बालक ही दधीचि ऋषि हैं और यह बालक ही प्रातिथेयी माता के सदृश है एवं सनातन धर्म धर्म स्वरूप है। तात्पर्य यह है कि अब तो यह बालक ही उनका स्वरूप है ॥७७॥

एवमुक्त्वा तदौषध्यो वनस्पतिसमन्विताः।
सोम राजानमभ्येत्य याचिरेऽमृतमुत्तमम् ॥७८
स चापि दत्तवांस्तेभ्यः सोमोऽमृतमनुत्तमम्।
ददुर्बालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम् ॥७९
स तेन तृप्तो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी।
पिप्पलैः पालितो यस्मात्पिप्पलादः स बालकः।
प्रवृद्धः पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मितः ॥८०
मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः।
बीजेभ्यो वीरुधो लोके वैषम्यं नैव दृश्यते ॥
यार्क्षस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ॥८१
वृक्षास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वमूचुर्यथाक्रमम्।
दधीचेर्मरणं साध्व्यास्तथा चाग्निप्रवेशनम् ॥८२
अस्थ्नां सहरणं देवैरेतत्सर्वं सविस्तरम्।
श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तदा भुवि ॥८३
आश्वासितः पुनर्वृक्षैर्वाक्यैर्धर्मार्थसहितैः।
आश्वस्तः स पुनः प्राह तदौषधिवनस्पतीन् ॥८४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर उन सब ओषधियों ने और वृक्षों ने तथा वनस्पतियों ने राजा सोम के समीप में जाकर उत्तम अमृत की याचना की थी ॥७८॥ उस सोम राजा ने भी उनको परमोत्तम अमृत का प्रदान कर दिया था। उन्होंने फिर उस सुरों का परम प्रिय अमृत को लाकर उस शिशु को दे दिया था। वह बालक उस अमृत से सतृप्त होकर शुक्ल पक्ष में चन्द्र के ही समान वर्धमान हो गया था। पिप्पलों के द्वारा वह पालित किया गया था इसी कारण से वह बालक पिप्पलाद नाम वाला हो गया था। जब वह बड़ा हो गया था तो उसने अत्यन्त विस्मित होकर उन पिप्पलों से इस तरह कहा था। पिप्पलाद बोला—मनुष्यों से मनुष्य समुत्पन्न हुआ करते हैं—पक्षियों से पक्षी पैदा होते हैं तथा बीजों से लताएँ, और वृक्ष आदि की समुत्पत्ति हुआ करती है—इस प्राकृतिक नियम में कहीं पर भी विषमता नहीं दिखलाई दिया करती है। मैं फिर वृक्ष से समुत्पन्न होने वाला हाथ-पैर आदि से युक्त जीवधारी मनुष्य कैसे उत्पन्न हुआ हूँ ? यहाँ पर इस सार्वत्रिक नियम में विषमता कैसे होगयी है ? ॥७९-८१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस बालक के इस प्रकार के समुचित प्रश्न-वचनों का श्रवण करके उन आश्रम में रहने वाले वृक्षों ने सम्पूर्ण वृत्तान्त क्रम पूर्वक उस बालक को बतला दिया था जिस तरह से महर्षि दधीचि का मरण हुआ और जैसे साध्वी प्रातिथेयी का अग्नि में प्रवेश हुआ था तथा जिस रीति से देवों के द्वारा दधीचि की अस्थियों का संहरण किया गया था यह सभी सुविस्तृत रूप से कहकर उस बालक को श्रवण करा दिया गया था। यह समस्त वृत्तान्त सुनकर वह बालक दुःख से समाविष्ट हो गया था और उसी समय में भूमि पर गिर पड़ा था ॥८२-८३॥ फिर उन वृक्षों ने धर्मार्थ समन्वित वाक्यों के द्वारा उसको समाश्वासित किया था। आश्वस्त होकर फिर उस बालक ने उन ओषधि और वनस्पतियों से कहना आरम्भ कर दिया था ॥८४॥

पितृहन्तॄन्हनिष्येऽहं नान्यथा जीवितुं क्षमः ।
पितुर्मित्राणि शत्रूंश्च तथा पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५

स एव पुत्रो योऽन्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः ।
वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितानपि ॥८६
वृक्षास्त बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः ।
बालवाक्य तु ते वृक्षाः सोमायाथ न्यवेदयन् ॥
श्रुत्वा सोमोऽपि त बाल पिप्पलादमभाषत ॥८७
गृहाण विद्यां विधिवत्समग्रा,
तपःसमृद्धि च शुभां च वाचम् ।
शौर्यं च रूप च वल च बुद्धि,
सप्राप्स्यसे पुत्र मदाज्ञया त्वम् ॥८८
पिप्पलादस्तमप्याह ओषधीशं विनीतवत् ॥८६
सर्वमेतद्वृथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम् ।
न करोम्यत्र यावन्न तस्मात्तत्प्रथमं वद ॥६०
यस्मिन्देशे यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके ।
यत्र तीर्थं च सिध्येत मत्सकल्पः सुरोत्तम ॥६१

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता पिताओ के हनन करने वालो को अवश्य ही मार डालूँगा अन्यथा मैं जीवित रहने मे समर्थ नही रहूँगा। पुत्र का कर्त्तव्य होता है कि वह माता-पिता के जो मित्र होते हैं अथवा शत्रु होते हैं उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया करता है ॥८५॥ वही वास्तव मे पुत्र है तथा इसके विपरीत आचरण करने वाला तो पुत्र नही होता है प्रत्युत वह पुत्र के रूप में रिपु ही हुआ करता है ऐसा ही कहा गया है। पितृ मित्र कहते हैं और वे अहितों को भी तार दिया करते हैं ॥८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वे वृक्ष उस बालक को साथ लेकर राजा सोम के समीप मे समागत हुए थे और उन वृक्षो ने यह समस्त वृत्तान्त जो उस बालक ने कहा था सोम से निवेदन कर दिया था। यह श्रवण करके सोम ने भी उस पिप्पलाद बालक से कहा था ॥८७॥ राजा सोम कहने लगा—हे पुत्र ! पहिले तुम विधि पूर्वक समग्र विद्या को ग्रहण करो—तपश्चर्या की पूर्ण समृद्धि को सम्प्राप्त करो और परम शुभ वाणी का भी तुमको ग्रहण करना चाहिए। तथा शौर्य, रूप, बल, विक्रम और

कुशाग्र बुद्धि को ग्रहण कर लो। फिर मेरी भी आज्ञा है कि तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे ॥८८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे उस पिप्पलाद ने परम विनम्र होकर ओषधियो के स्वामी उस सोम से कहा था। पिप्पलाद बोला—मैं तो इन सब विद्याओ तथा सिद्धियो को प्राप्त करना व्यर्थ ही समझता हूँ जब तक कि मैं पिता के हनन करने वालो की विनिष्कृति नही करूँ अर्थात् पिता के मारने वालो से बदला न ले लूँ। अतएव आप कृपा करके सबसे प्रथम मुझे वही बदला लेने का उपाय बतलाइये ॥८९ ९०॥ हे सुरोत्तम ! जिस देश मे, जिस काल मे, जिस देव मे, जिस मन्त्र मे, और जिस तीर्थ मे मेरा मन का सत्य सङ्कल्प पूर्ण हो जावे वही मुझे आप पहिले बतलाइये ॥९१॥

चन्द्र प्राह चिर ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा।
सर्व महेश्वराद्वाञ्छायते नात्र सशय ॥ ९२
स सोम पुनरप्याह कथ द्रक्ष्ये महेश्वरम्।
बालोऽह बालबुद्धिश्च न सामर्थ्य तपस्तथा ॥९३
गौतमी गच्छ भद्र त्व स्तुहि चक्रेश्वर हरम्।
प्रसन्नस्तु तवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सक ॥९४
प्रीतो भवेन्महादेव साक्षात्कारुणिक शिव।
आस्ते साक्षात्कृत शम्भुर्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥९५
वर च दत्तवान्विष्णोश्चक्र च निदर्शाचिम्।
गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गौतमी नदीम् ॥९६
चक्रेश्वर नाम तीर्थ जानन्त्योषधयस्तु तत्।
त गत्वा स्तुहि देवेश सर्वभावेन शकरम् ॥
स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—चन्द्र देव ने बहुत अधिक समय तक ध्यान करके भुक्ति अथवा मुक्ति सभी कुछ महेश्वर देव की उपासना एव समाराधना से हुआ करती हैं—इसमे लेशमात्र भी सशय नही है ॥९२॥ उस बालक पिप्पलाद ने पुन उस सोमदेव से पूछा था कि मैं भगवान् महेश्वर का दर्शन किस रीति से प्राप्त कर सकूँगा। मैं तो अत्यन्त

छोटा बालक हूँ और मेरे अन्दर अभी बाल बुद्धि है। मुझ में न तो इतनी शक्ति ही है और न कोई तपोबल ही विद्यमान है ॥९३॥ चन्द्र देव ने कहा—हे भद्र ! तुम गौतमी गङ्गा पर चले जाओ और वहाँ पर पहुंच कर चक्रेश्वर हर का स्तवन करो। हे वत्स ! वहाँ पर थोड़े से ही परिश्रम के करने से भगवान् ईशान तुम पर परम प्रसन्न हो जायगे ॥९४॥ भगवान् शिव बहुत ही अधिक दयालु है और महादेव साक्षात् होकर तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे। वहाँ पर प्रभाविष्णु के द्वारा शिव का साक्षात्कार किया है ॥९५॥ भगवान् शम्भु ने वहाँ पर विष्णु को वरदान दिया था तथा देवो के द्वारा समर्चित सुदर्शन चक्र भी दिया था। अतएव हे वत्स ! तुम तो महान् बुद्धिमान बालक हो दण्डकारण्य में गौतमी नदी पर शीघ्र ही गमन करो ॥९६॥ वहाँ पर चक्रेश्वर नामक तीर्थ है और ये समस्त ओषधियाँ उस तीर्थ को जानती हैं। वहाँ पर पहुंच कर सर्वभाव से देवेश्वर भगवान् शङ्कर की स्तुति करो। वह प्रसन्न मन वाले होकर हे तात ! तुम्हारे समस्त मनोरथों को अवश्य ही पूर्ण कर देंगे ॥९७॥

तद्राजवचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनिः ।
आजगाम जगन्नाथो यत्र रुद्रः स चक्रदः ॥९८
तं बालं कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमान्ययुः ।
गोदावर्यां ततः स्नात्वा नत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ॥
तुष्टाव सर्वभावेन पिप्पलादः शिवं शुचिः ॥९९
सर्वाणि कर्माणि विहाय धीरा-
स्त्यक्तैषणा निर्जितचित्तवाताः ।
यं यान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्ना-
त्तमादिदेवं प्रणमामि शम्भुम् ॥१००
यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा,
सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम् ।
विज्ञाय मच्चित्तगतं समस्तं,
स मे स्मरारिः करुणां करोतु ॥१०१

दिगीश्वराक्षित्य सुरार्चितस्य,
कैलासमान्दोलयत: पुरारे: ।
अङ्गुष्ठकस्यैव रसातलादधो-
गतस्य तस्यैव दशाननस्य ॥१०२
आलूनकायस्य गिर निशम्य,
विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि तद्व-
दयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम् ॥१०३
सौत्रामणीमृद्धिमधः स चक्रे,
योऽर्चा हरौ रे, नित्यमतीव कृत्वा ।
बाण: प्रशस्य: कृतवानुग्रपूजा,
रम्या मनोज्ञा शशिखण्डमौले: ॥१०४
जित्वा रिपून्देवगणान्प्रपूज्य,
गुरु नमस्कर्तु मगाद्विशाखः ।
चुकोप दृष्ट्वा गणनाथमूढ-
मङ्के तमारोप्य जहास सोमः ॥१०५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे महान् ! उस राजा सोम देव के वचन से यह महामुनि पिप्पलाद वहाँ पर समागत हो गया था जहाँ पर इस जगत् के स्वामी चक्र प्रदान करने वाले रुद्रदेव विराजमान थे ॥९८॥ उस बालक को वहाँ पहुँचा कर दया से परिपूर्ण पिप्पल वृक्ष अपने आश्रमों को चले गये थे । उस पिप्पलाद बालक ने गोदावरी में स्नान किया था। फिर उसने भगवान् त्रिभुवनेश्वर को प्रणाम किया था । पिप्पलाद ने परम शुचि होकर सर्वभाव से भगवान् शिव का स्तवन किया था ॥९९॥ पिप्पलाद ने शिव से निवेदन किया था कि धीर पुरुष सब एषणाओं का त्याग करके और अन्य सब कर्मों को छोड़कर अपनी चित्त की वृत्ति पर विजय पाकर जिस देवेश्वर की शरणागति में प्रयत्न पूर्वक मुक्ति के लिये श्रमा करते हैं उन्हीं आदि देव भगवान् शम्भु के चरणों में मेरा प्रणाम समर्पित है ॥१००॥ जो सबका साक्षी है और जो सबका अन्तरात्मा है

अर्थात् सबके अन्दर अन्तर्यामी रूप से विराजमान है। जो सबका ईश्वर तथा समस्त कलाओं की खान है वही प्रभु मेरे चित्त में स्थित मनोरथ को समझकर कामदेव को भस्म कर देने वाले भगवान् शम्भुदेव मुझ पर करुणा की वृष्टि करें ॥१०१॥ समस्त दिक्पालों को जीत कर सुरों के द्वारा समर्पित भगवान् पुरारि के आश्रय भूत कैलास पर्वत को हिला देने वाले अगुष्ठशक्ति से ही रसातल से भी नीचे गये हुए आक्रान्तकाय दशानन की वाणी को सुनकर देवी के साथ हँस कर जिसने अभीष्ट दिया था। कुपित होकर भी उस पर परम प्रसन्न हो गये थे उसी की भाँति हे महेश्वर ? आप अयुक्त दाता हैं ॥१०२-१०३॥ जिस बाण ने हर की नित्य अर्चा को करके सौत्रामणी ऋद्धि का भी तुच्छ कर दिया था उस प्रशस्य बाण ने शशि खण्ड को मस्तक पर धारण करने वाले प्रभु की परम रम्य एव मनोज्ञ समुच्च पूजा की थी ॥१०४॥ विशाख रिपुओं को जीतकर देवगणों की पूजा करके गुरु को प्रणाम करने के लिये गया और ऊढ गणनाथ को देखकर कुपित हो गया था उसको सोम ने अङ्क मे समारोपित कर हास किया था ॥१०५॥

ईशाङ्कुरूढोऽपि शिशुस्वभावा-
न्न मातुरङ्क प्रमुमोच बाल ।
क्रुद्ध सुत बोधितुमप्यशक्त-
स्ततोऽर्धनारित्वमवाप सोम ॥१०६

तत स्वयभू सुप्रीत पिप्पलादमभाषत ॥१०७
वर वरय भद्र ते पिप्पलाद यथेप्सितम् ॥१०८
हतो देवैर्महादेव पिता मम महायशा ।
अदाम्भिक सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ।१०९
देवेभ्यश्च तयोर्नाश श्रुत्वा नाथ सविस्तरम् ।
दु खकोपसमाविष्टो नाह जीवितुमुत्सहे ॥११०
तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेय सुरान्यथा ।
अवध्यसेव्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव शशिशेखर ॥१११

ईश के अङ्क (गोद) में समारूढ होते हुए भी शिशु के स्वभाव के कारण बालक ने माता की गोद को नही छोडा था उस समय मे क्रुद्ध सुत को समझाने मे असमर्थ होकर तभी से सोम अर्धनारीश्व को प्राप्त हो गये थे ॥१०६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन का श्रवण करके स्वयम्भू प्रभु परम प्रसन्न हो गये थे और उसी समय में पिप्पलाद से कहने लगे ॥१०७॥ भगवान् शिव ने कहा—हे पिप्पलाद ! मुझ से वरदान का वरण कर लो । जो भी कुछ तुमको अभीष्ट हो माँग लो ॥१०८॥ पिप्पलाद ने कहा—हे महादेव प्रभो ! महान् यशस्वी मेरे पिता दधीचि का देवो के द्वारा हनन किया गया था । मेरे पिता श्री दम्भ से सर्वथा रहित थे और सत्यवादी थे । मेरी माता पूर्ण पतिव्रता थी ॥१०९॥ हे नाथ ! देवो से उन दोनो का सविस्तृत विनाश सुनकर मैं अत्यन्त दुःख और कोप से समाविष्ट हो गया हूँ और अब मैं जीवित रहने का उत्साह नही करता हूँ । अतएव आप कृपा करके मुझ मे ऐसी शक्ति दीजिए कि मैं जिसके द्वारा सुरो का विनाश कर सकूँ । हे शशि को मस्तक पर धारण करने वाले स्वामिन् ! आप ही ऐसे प्रभु त्रिलोकी मे हैं जो अवध्य हैं और सेव्य हैं ॥११०-१११॥

तृतीय नयन द्रष्टुं यदि शक्नोपि मेऽनघ ।
ततः समर्थो भविता देवाश्छेदयितु भवान् ॥११२
ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीय लोचन विभोः ।
न शशाक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शंकरम् ॥११३
किंचित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम् ।
तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र सशय ॥११४
एतच्छ्रुत्वेशानवाक्यं तपसे कृतनिश्चयः ।
दधीचिसूनुर्धर्मात्मा तत्रैव बहुलाः सपा: ॥११५
शिवाध्यानैकनिरतो बालोऽपि बलवानिव ।
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय स्नात्वा नत्वा गुरून्क्रमात् ॥११६
सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः ।
हस्तस्वस्तिकमारोप्य नाभौ विस्मृतसंसृतिः ॥११७

स्थानात्स्थानान्तरोत्कर्षान्विदध्यौ शाभव मह ।
ददर्श चक्षुर्देवस्य तृतीय पिप्पलाशन ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत् ॥११८

ईश्वर ने कहा—हे आय ! यदि तुम मेरे तीसरे नत्र को देख सकते हो तो तुम निश्चय ही सब देवो का छेदन करने म समय हो सकते हो ॥११२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस पिप्पलाद ने विभु के तीसरे नेत्र को देखने का मन में विचार किया था किन्तु वह ऐसा न कर सका था । उसी समय म उसने भगवान शङ्कर से कहा था—हे भगवन् ! मैं तो आपका तृतीय नत्र देखने की शक्ति नही रखता हू ॥११३॥ भगवान् ईश्वर न कहा—हे बच्चे ! अभी तुम कुछ तप करो तभी तुम मेरा तीसरा नत्र देख लोगे । और जब मेरा तीसरा लोचन देख लोगे तो उसी समय से अपना अभीप्सित मनोरथ भी अवश्य ही प्राप्त कर लोगे इसमे लेशमात्र भी सशय नही है ॥११४॥ यह ईशान देव का वचन सुनकर उस बालक ने तपश्चर्या करन का निश्चय किया था और दधीचि महर्षि के पुत्र न वही पर परम धर्मात्मा दधीचि के पुत्र ने बहुत से वर्षो तक तप किया था ॥११५॥ यद्यपि वह बालक था, तो भी एक बलवान् पुरुष की ही भाँति शिवजी के ध्यान मे निरत होकर तपश्चर्या कर रहा था । प्रतिदिन प्रात काल मे उठकर स्नान किया करता था और क्रम से अपने गुरुजनो को प्रणाम करता था ॥११६॥ सुख पूर्वक फिर बैठकर अनन्य बुद्धि वाला होते हुए अपने मन को सुषुम्ना नाडी में करके हस्त स्वस्तिक का नाभि म आरोप करके एकदम ससार को विस्मृत कर देता था ॥११७॥ शनै शनै एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपना उत्कर्ष करके भगवान् शम्भु के तेज का चिन्तन किया करता था । उस पिप्पलाशन न देवेश्वर के तीसरे नत्र को देख लिया था । जैसे ही तृतीय लोचन का उन्नत दर्शन प्राप्त किया था वैसे ही हाथ जोडकर परम विनम्र होते हुए यह वचन बोला था ॥११८॥

शम्भुना देवदेवेन वरो दत्त पुरा मम ।
तार्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात् ॥११९

सर्वं ते प्रार्थितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः ।
तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूतां प्रयच्छ मे ॥१२०
तदैव पिप्पलाः प्रोचुर्वडवाऽपि महाद्युते ।
माता तव प्रातिथेयी वदन्त्येव दिवं गता ॥१२१
पराभिद्रोहनिरता विस्मृतात्महिता नराः ।
इतस्ततो भ्रान्तचित्ताः पतन्ति नरकावटे ॥१२२
तन्मातृवचनं श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशनः ।
अभिमाने ज्वलत्यन्तः साधुवादो निरर्थकः ॥१२३
देहि देहीति स प्राह कृत्या नेत्रविनिर्गता ।
वडवेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि वडवाकृतिः ॥१२४
सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलगर्भिणी ।
गभस्तिनो बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः ॥१२५
तद्ध्यानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलगर्भिणी ।
उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वेव भीषणा ॥१२६

पिप्पलाद ने कहा—भगवान् शम्भु ने पहिले मुझे वरदान दिया था कि जिस समय मे तृतीय नेत्र मे होने वाली ज्योति का दर्शन करेगा तुरन्त ही उसी क्षण मे तेरा सभी प्रार्थना किया हुआ मनोरथ सिद्ध हो जावेगा—यही मुझसे भगवान् त्रिदशेश्वर ने आदेश प्रदान किया। अतएव मेरे शत्रुओं के विनाश करने के लिये जो भी हेतुभूता हो उसका प्रदान कीजिए ॥११९-१२०॥ उसी समय मे पिप्पलों ने कहा था—हे महती द्युति वाले! आपकी माता प्रातिथेयी और वड़वा ने भी दिवलोक को गमन करने के समय मे यह कह रही थी ॥१२१॥ पराये द्रोह में अभिरति रखने वाले तथा आत्मा के हित को भुला देने वाले मनुष्य इधर-उधर भ्रान्त चित्त होकर भटकते हुए अन्त मे नरकावट में पतन किया करते हैं ॥१२२॥ उस माता के द्वारा कथित वचन का श्रवण करके पिप्पलाशन बहुत ही कुपित हो गया था और अभिमान में उसका अन्तःकरण जलने लगा था। उसने कहा था कि यह साधुवाद निरर्थक ही है ॥१२३॥ उस अवसर पर भगवान् शम्भु के तृतीय नेत्र से निकली हुई

कृत्या ने उससे 'दो-दो'—यह कहा था। विप्र ने वडवा का स्मरण करते हुए देखा था कि वह कृत्या भी बड़वा के समान ही आकृति वाली थी ॥१२४॥ समस्त जीवों के विनाश करने के लिये वह अनलगर्भिणी समुत्पन्न हुई थी जो पप्पलाशी की बालक को गर्भ धारण करने वाली यमस्तिनी माता थी ॥१२५॥ उसके ध्यान योग से वह अनल गर्भिणी कृत्या होकर समुत्पन्न हुई थी। और अधिक भीषण मृत्यु की जिह्वा के ही समान वह रौद्र रूप वाली समुत्पन्न हुई थी। १२६॥

अवोचत्पिप्पलादं तं किं कृत्यं मे वदस्व तत्।
पिप्पलादोऽपि तां प्राह देवान्खाद रिपून्मम ॥१२७
जग्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम्।
स प्राह किमिदं कृत्ये सा चाप्याह त्वयोदितम् ॥१२८
देवैश्च निर्मितं देहं ततो भीतं शिवं ययौ।
तुष्टाव देवं स मुनिं कृत्या प्राह तदा शिवः ॥१२९
योजनान्तं स्थितांश्चीवांश्च गृहाण मदाज्ञया।
तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्यं ततः कुरु ॥१३०
तीर्थात्तु पिप्पलात्पूर्वं यावद्योजनसंख्यया।
प्रातिष्ठद्वडवारूपा कृत्या सा ऋषिनिर्मिता ॥१३१
तस्या जातो महानग्निर्लोकसंहरणक्षमः।
तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे त्रस्ताः शंभुमुपागमन् ॥१३२
चक्रेश्वरं पिप्पलेशं पिप्पलादेन तोषितम्।
स्तुवन्तो भीतमनसः शंभुमूचुर्दिवौकसः ॥१३३

उस कृत्या ने उसी समय में पिप्पलाद से कहा था कि मुझे क्या करना है उसे शीघ्र बतला दो। इस वचन के कहने पर पिप्पलाद ने भी उसको यही उत्तर दिया था कि मेरे शत्रु देवों का भक्षण करो ॥१२७॥ 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर उसने अपने समक्ष में स्थित पिप्पलाद को ही सर्व प्रथम पकड़ लिया। तब तो उस पिप्पलाद ने उससे कहा—हे कृत्ये ! यह क्या कर रही हो ? उस कृत्या ने उससे

उत्तर देते हुए कहा था कि तुमने ही तो मुझे यह करने के लिये अभी कहा था ॥१२८॥ यह तुम्हारा देह भी तो देवों के ही द्वारा निर्मित हुआ है। तब तो वह पिप्पलाद परमाधिक भयभीत होकर भगवान् शिव की शरण मे गया था और उस मुनि ने शिव का स्तवन किया था। उस समय में भगवान् शङ्कर ने कृत्या से कहा था। श्री शिवजी ने कहा—हे कृत्ये! मेरी आज्ञा है कि एक योजन के अन्दर जो भी जीव हैं उनका तुम ग्रहण मत करो। इस कारण से हे कृत्ये! तुम दूर चली जाओ और फिर वहाँ जाकर अपना कार्य करो ॥१२६-१३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पिप्पल तीर्थ से पूर्व जहाँ तक योजन की सख्या होती है यह बडवा रूपा कृत्या जो ऋषि निर्मित है प्रतिष्ठित हो गयी थी ॥१३१॥ उस मे महान् अग्नि समुत्पन्न हो गयी थी जो सम्पूर्ण लोक के सहार कर देने मे समर्थ थी उस महान् सहारक भीषण अग्नि को देख कर सब देवगण भयभीत हो गये थे और भाग कर भगवान् शङ्कर के समीप मे पहुचे थे ॥१३२॥ भगवान् चक्रेश्वर पिप्पलेश को पिप्पलाद मुनि ने प्रसन्न कर लिया है अतएव बहुत डरे हुए मन वाले देवों ने स्तुति करते हुए भगवान् शम्भु से प्रार्थना की थी ॥१३३॥

रक्षस्व शम्भो कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भवानलः ।
शरण भव सर्वेश भीतानामभयप्रद ॥१३४
सर्वतः परिभूतानामार्तानां श्रान्तचेतसाम् ।
सर्वेषामेव जन्तूनां त्वमेव शरण शिव ॥१३५
ऋषिणाऽभ्यर्थिता कृत्या त्वच्चक्षुर्वह्निनिर्गता ।
सा जिघांसति लोकांस्त्रींस्त्व नस्त्राता न चेतरः ॥१३६
तानब्रवीज्जगन्नाथो योजनान्तर्निवासिन ।
न बाधते त्वसौ कृत्या तस्माद्युष्महर्निशम् ॥१३७
इहैवाऽऽसध्वममरास्तस्या वो न भय भवेत् ॥१३८
पुनरूचुः सुरेशान त्वया दत्त त्रिविष्टपम् ।
त्यक्त्वाऽत्र कथ नाथ वत्स्यामस्त्रिदशार्चित ॥१३९
देवाना वचन श्रुत्वा शिवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥१४०

देवो ने कहा—हे शम्भो ! हमारी रक्षा कीजिए। यह कृत्या हमको सता रही है उसके द्वारा अनल समुत्पन्न हो गया है। हे सर्वेश्वर ! आप हमारे रक्षक होइये। आप तो सर्वदा भय से भीतो को अभय प्रदान करने वाले हैं ॥१३४॥ हे शिव ! सब ओर से जो परिभव को प्राप्त करने वाले—परमाधिक आर्त्त त्रास्त चित्त वाले समस्त जन्तुओ की रक्षा करने वाले आप ही है ॥१३५॥ पिप्पलाद ऋषि ने उससे प्रार्थना की है और वह कृत्या आपके तीसरे नेत्र से प्रकट होने वाली ही वह्नि है। वह तीनो लोको का सहार करना चहती है। अब आप ही हमारे रक्षक हैं अन्य कोई भी नही है ॥१३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जगत् के नाथ भगवान् शम्भु ने उन देवगणो से कहा था कि यह कृत्या जो एक योजन के अन्दर निवास करने वाले है उनको कोई बाधा नही पहुँचाती है। इस लिये आप सब लोग यहाँ पर ही अहर्निश रहिए। हे अमरो ! फिर यहाँ पर आपको उस कृत्या से कुछ भी भय नही होगा ॥१३७-१३८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उनने पुन. सुरेशान से प्रार्थना की थी कि आपने ही हम सबको निवास करने के लिये स्वर्ग लोक प्रदान किया था। हे नाथ ! अब उसका त्याग करके यहाँ पर कैसे निवास करेगे। आप तो देवो के द्वारा अर्चित देव हैं ॥१३९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शिव ने देवो के वचन को सुन कर फिर यह वाक्य कहा था ॥१४०॥

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुख ।
यो रश्मिभिस्तु धमते नित्य यो जनको मत. ॥१४१

स सूर्य एक एवात्र साक्षाद्रूपेण सर्वदा ।
स्थिर्ति करोतु तन्मूर्तौ भविष्यन्त्यखिला. स्थिता ॥१४२

तथेति शम्भुवचनात्पारिजाततरोस्तदा ।
देवा दिवाकर चक्रुस्त्वष्टा भास्करमब्रवीत् ॥१४३

इहैवाऽऽस्स जगत्स्वामिन्रक्षेमान्विबुधान्स्वयम् ।
स्वांशैश्च वयमप्यत्र तिष्ठाम. शम्भुसंनिधौ ॥१४४

चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसख्यया ।
गङ्गाया उभयं तीरमासाद्याऽऽसन्सुरोत्तमाः ॥१४५
अङ्गुल्यर्धार्धमात्र तु गङ्गातीरं समाश्रिताः ।
तिस्रः कोट्यस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम ।
तीर्थानां तत्र व्युष्टि च कः शृणोति ब्रवीति वा ॥१४६

भगवान् शङ्कर बोले—यह सूर्य देव सम्पूर्ण विश्व के नेत्र हैं औ यह समस्त विश्व का मुख हैं। तथा जो अपनी किरणों के द्वारा निर धमन किया करते हैं तथा जो सबके जनक माने गये हैं वे सूर्यदेव ए ही यहाँ पर सर्वदा साक्षात् रूप से विद्यमान रहा करते हैं। उन सूर देव की मूर्त्ति में आप लोग अपनी स्थिति करिए। वहाँ पर आप सर्भ स्थिति हो जाँयगे ॥१४१-१४२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शम् के वचन से देवों ने ऐसा ही करेंगे—यह कर उनकी आज्ञा को स्वीका कर लिया था और उसी समय में पारिजात तरु के समीप देवगण ने भग वान् दिवाकर का दर्शन प्राप्त किया। उस समय में त्वष्टा ने भास्क प्रभु से कहा था ॥१४३॥ त्वष्टा ने कहा—हे जगत् के स्वामिन्! आ यहीं पर ही ठहरिये और इन देवों की आप स्वयं रक्षा कीजिए। औ अपने अंशो के द्वारा हम भी यहाँ पर शम्भु की सन्निधि में ठहरेंगे॥१४४॥ भगवान् चक्रेश्वर दोनों ओर जहाँ तक एक योजन के विस्तार क संख्या समाप्त होती है गङ्गा के दोनों तटों को प्राप्त करके वे सुरोत्त रहते थे ॥१४५॥ अंगुलि के अर्ध-अर्ध मात्र तक वे गङ्गा के तीर प समाश्रित हुए थे। हे मुनियों में परमश्रेष्ठ! वहाँ पर तीन करोड़ पाँ सौ तीर्थों की व्युष्टि है। उन सबको कौन तो बतलाता है और को श्रवण करता है। तात्पर्य यह है कि तीर्थों की संख्या इतनी अधिक कि उन सबको न तो कोई बतला सकता है और न कोई श्रवण कर की ही शक्ति रखता है ॥१४६॥

ततः सुरगणाः सर्वे विनीताः शिवमब्रुवन् ॥१४७
पिप्पलादं सुरेशान शम नय जगन्मय ॥१४८

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथ· पिप्पलादमवोचत ॥१४६
माशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति ।
दत्ता· पित्रा तव प्राणा देवाना कार्यसिद्धये ॥१५०
दीनार्तकरुणाबन्धु· को हि तादृग्भवे भवेत् ।
तथा याता दिव तात तव माता पतिव्रता ॥१५१
समा काऽप्यन मतया लोपामुद्राऽप्यरुन्धती ।
यदस्थिभि· सुरा· सर्वे जयिन सुखिन सदा ॥१५२
तेनावाप्त यश स्फीत तव मानाऽक्षय कृतम् ।
त्वया पुत्रेण सवन नात· परतर कृतम् ॥१५३
त्वत्प्रतापभयात्स्वर्गाच्च्युतास्त्व पातुमर्हसि ।
नाऽऽर्तत्राणादभ्यधिक सुकृत क्वापि विद्यते ॥१५४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् फिर सब देवो ने विनम्र होकर भगवान् शिव से प्रार्थना की की ॥१४७॥ देवो ने कहा—हे जगन्मय ! आप तो सुरो के स्वामी हैं। अब आप उस पिप्पलाद को शान्त कीजिए ॥१४८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अच्छा ऐसा करेगे। इस तरह से देवो की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, और फिर वे पिप्पलाद से बोले। श्री शिव ने कहा—हे पिप्पलाद ! इन सब देवो के विनष्ट कर देने पर भी तेरे पिता दधीचि तो मृत्युगत हो जाने के कारण पुन अब यहाँ पर आयेंगे नहीं। उन देवो ने ही तेरे प्राणो को देव कार्य की सिद्धि के लिये प्रदान किया है ॥१४६-१५०॥ तुम्हारे पिताजी तो दीनो आर्त्तों पर करुणा करने वाले और उनके बन्धु के समान थे। उन सरीखा इस संसार मे अन्य कौन हो सकता है ? अर्थात् वैसा दयालु तो कोई हो ही नही सकता। हे तात ! तुम्हारी माता भी परम पुनीत पतिव्रता थी। वे दोनो ही स्वर्ग वासी हो गये हैं ॥१५१॥ लोपामुद्रा और अरुन्धी के द्वारा भी सम्मानित उस तुम्हारी माता के समान यहाँ पर कौन है ? अर्थात् कोई भी नहीं है। जिनकी अस्थियो से सभी सुरगण सदा विजयी और सुखी रहते हैं। उस तुम्हारे पिता ने अपना सुयश त्रैलोक्य मे फैला दिया है और तुम्हारी माता ने तो उस यश को अक्षय ही बना

दिया है। तुम पुत्र ने सर्वत्र ही उस यश को कर दिया है। इससे अधिक किसी ने भी ऐसा यश अब तक नही किया है॥.५२-१५३॥ तुम्हारे प्रताप के भय से ये सब देवगण स्वर्ग से भी च्युत हो गये हैं अब इनकी रक्षा करने के लिये तुम योग्य होते हो। जो कोई भी आर्त्त हो उनके परित्राण से अधिक सुकृत कहीं भी नहीं होता है ॥१५४॥

यावद्यशः स्फुरति चारु मनुष्यलोके,
अहानि तावन्ति दिव गतस्य ।
दिने दिने वर्षसहस्र(स्य) परस्मि-
ल्लोके वासो जायते निर्विकारः ॥१५५
मृतास्त एवात्र यशो न येषा-
मन्यास्त एव श्रुतवर्जिता ये ।
ये दानशीला न नपुंसकास्ते,
ये धर्मशीला न त एव शोच्याः ॥१५६
भाषितं देवदेवस्य श्रुत्वा शान्तोऽभवन्मुनिः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नायमथाब्रवीत् ॥१५७
वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचि-
न्नामोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषां,
शोम नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥१५८
सारक्षितो यैरभयार्थिनश्च,
समानगोत्राश्च समानधर्मा ।
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु,
यातोऽनुमौनि प्रणमाऽस्मि नित्यम् ॥१५

येरात् कपितो निरद [illegible] ।
[illegible] तीर्थं देवदेव जगद्गुरो ॥१६०
[illegible] ।
[illegible] तीर्थानि [illegible] ॥१६१

तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता- ।
तत क्षमेऽह देवानामपराध निरञ्जन' ॥१६०

जब तक यह तुम्हारा यश इस मनुष्य लोक मे बहुत ही सुन्दरता के साथ फैला रहेगा उतने दिन तक स्वर्गलोक मे गये हुए का, विकार से रहित निवास स्वर्ग में हुआ करता है ॥१५५॥ वे ही लोग वास्तव मे मरे हुए हैं जिनका यश यहाँ पर कुछ भी नही होता है और वे ही लोग अन्धे हैं जो श्रुत से रहित होते हैं। जो दान करने के शील स्व-भाव वाले होते है वे नपु सक नही होते है और जो धर्मशील पुरुष होते हैं उनका तो कभी भी शोक करना ही नही चाहिए अर्थात् धार्मिक पुरुषो की मृत्यु हो जाने पर भी उनके विषय मे चिन्ता या शोक कभी नहीं करना चाहिए ॥१५६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से देवेश्वर प्रभु के इस भाषित को सुन कर पिप्पलाद मुनि परम शान्त हो गया था। फिर उस मुनि ने दोनो अपने हाथो को जोड कर नमस्कार किया था और फिर अपने नाथ की सेवा मे सविनय निवेदन किया ॥१५७॥ पिप्पलाद मुनि ने कहा—जो वचनो के द्वारा मनो के द्वारा और यत्नो के द्वारा मेरा उपकार किया करते हैं तथा मेरे हित करने मे रति रखते हैं उनके हित के लिये और दूसरो की भलाई के लिये सुरगण आदि के द्वारा पूज्य सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५८॥ जिन्होने मेरी सुरक्षा की थी और जिनके द्वारा मेरा अभिवर्धन हुआ था जो मेरे समान गोत्र वाले एव समान धर्म वाले हैं उन सबके अभीष्टों को भग-वान् शिव पूर्ण करें। मैं उन बालचन्द्र को मस्तक मे धारण करने वाले प्रभु को नित्य ही प्रणाम करता हूँ ॥१५९॥ हे प्रभो ! जिन्होने नित्य ही माता पिता के समान मुझे सर्वाधन किया है हे देवो के देव ! त्रैलोक्य मे उनके ही नाम से यह तीर्थ होना चाहिए ॥१६०॥ उनका यश होगा तो मैं उनसे फिर मैं अनृण हो जाऊँगा अर्थात् किये हुए उनके उपकार ऋण का भार मेरे शिर से उतर जायगा। जो भी देवो के क्षेत्र हैं और जो भी भूतल मे तीर्थ हैं उन सबसे यह तीर्थ अधिक माना जावे

और सब देवता भी इसको सबसे बड़ा मानें तभी निरञ्जन मैं देवों के अपराधों को क्षमा कर दूँगा ॥१६१-१६२॥

ततः समक्ष सुरसाक्षरां गिरं,
सहस्रचक्षुःप्रमुखांस्तथाऽग्रतः ।
उवाच देवा अपि मेनिरे वचो,
दधीचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३
बालस्य बुद्धि विनयं च विद्या,
शौर्यं बल साहसं सत्यवाचम् ।
पित्रोर्भक्ति भावसुद्धि विदित्वा,
तदाऽवादीच्छकरः पिप्पलादम् ॥१६४
वत्स यद्वै प्रियं काम यच्चापि सुरवल्लम् ।
प्राप्स्यसे वद कल्याण नान्यथा त्व मन. कृथाः ॥१६५
ये गङ्गायामाप्लुता धर्मनिष्ठाः,
सपश्यन्ति त्वत्पदाब्जं महेश ।
सर्वान्कामानाप्नुवन्तु प्रसह्य,
देहान्ते ते पदमायान्तु शैवम् ॥१६६
तातः प्राप्तस्त्वत्पद चाम्बिका मे,
नाथ प्राप्ता पिप्पलश्चामराश्च ।
सुख प्राप्ता नाथनाथ विलोक्य,
त्वा पश्येयुस्त्वत्पद ते प्रयान्तु ॥१६७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर महेन्द्र आदि देवों के आगे उसने परम सुरस अक्षरों वाली वाणी को कहा था और उस दधीचि के पुत्र के द्वारा कथित वचन को देवों ने भी बहुत आदर के साथ मान लिया था ॥१६३॥ उस समय मे उस बालक की बुद्धि-विनय-विद्या-शौर्य-बल-साहस-सत्य वचन माता-पिता की भक्ति और भावना की विशुद्धि को जानकर भगवान् शिव ने पिप्पलाद से कहा था ॥१६४॥ भगवान् शङ्कर ने कहा—हे वत्स ! जो भी तुम्हारा प्रिय हो और जो सुरों का प्रिय हो उसको तुम प्राप्त करोगे । हमेशा कल्याण का कथन करो और अन्यथा

अर्थात् कल्याण के विपरीत कभी भी अपने मन को मत करना ॥१६५॥ पिप्पलाद ने कहा—जो धर्मनिष्ठ पुरुष गङ्गा मे स्नान करने वाले हैं और हे महेश ! आपके चरण कमलो का दर्शन करते हैं वे अपने समस्त अभीप्सितों को बलात् प्राप्त कर लेवें और देह के अन्त समय मे शैव पद को गमन किया करें। मेरे पिताजी और मेरी माता आपके पद को प्राप्त हो गये हैं। हे नाथ ! पिप्पल तथा अमरगण भी नाथो के नाथ आपका अवलोकन करके सुख पूर्वक प्राप्त हो गये हैं। जो भी आपके चरण कमलो का दर्शन करें वे सभी आपके पद की प्राप्ति कर लिया करें ॥१६६-१६७॥

तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः ।
अभिनन्द्य च तं देवैः साधु वाक्यमथाब्रवीत् ॥१६८
देवा अपि मुदा युक्ता निर्भयास्तत्कृताद्भयात् ।
इदमूचुः सर्व एव दाधीच शिवसंनिधौ ॥१६९
सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसंशयम् ।
पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनी ॥१७०
याचितं च त्वया पूर्वं परार्थं नाऽऽत्मने द्विज ।
तस्मादन्यतमं ब्रूहि किंचिद्दास्यामहे वयम् ॥१७१
पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसंघा द्विजोत्तमम् ।
कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शंभुसुरानिदम् ॥
उवाच पिप्पलादश्च उमा नत्वा च पिप्पलान् ॥१७२
पितरौ द्रष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ ।
ते धन्याः प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वशे स्थिताः ॥१७३
शुश्रूषणपरा नित्यं तत्पादाज्ञाप्रतीक्षकाः ।
इन्द्रियाणि शरीरं च कुलं शक्तिं धियं वपुः ॥१७४
परिलभ्य तयोः कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम् ।
पशूनां पक्षिणां चापि सुलभं मातृदर्शनम् ॥१७५
दुर्लभं मम तत्रापि पृच्छे पापफलं नु किम् ।
दुर्लभं च तथा चेत्स्यात्सर्वेषां यस्य कस्यचित् ॥१७६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवों के देव महेश्वर प्रभु ने पिप्पलाद से ऐसा ही होगा—यह कह देवों के साथ ही उसका अभिनन्दन करके वाक्य कहा था। फिर तो सब देवगण भी आनन्द से युक्त तथा उसके किये हुए भय से निडर होकर भगवान् शिव की सन्निधि में ही सब उस दधीचि के पुत्र से इस वचन को बोले थे ॥१६८-१६९॥ देवों ने कहा—देवों का जो अभीप्सित मनोरथ था वह आपने बिना किसी संशय के पूर्ण कर दिया है और आपने देवों के देव भगवान् शिव की त्रैलोक्य मण्डनी आज्ञा का भी पूर्णतया पालन किया है ॥१७०॥ हे द्विज ! आपने जो कुछ भी याचना की है वह भी पहिले दूसरों के ही हितार्थ की है अपने लिये आपने कुछ भी नहीं माँगा है। अतएव आप कुछ अन्य भी बोलिए हम लोग आपको प्रदान करेंगे ॥१७१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन सुरों के संघों ने उस उत्तम द्विज से बारम्बार यही बात कही थी। तब तो उस पिप्पलाद ने दोनों हाथों को जोड़कर पहिले भगवान् शम्भु तथा सुरों को एवं जगदम्बा उमा देवी को और पिप्पलों को प्रणाम करके यह वचन कहा था ॥१७२॥ पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता-पिता के दर्शन करने की कामना रखता हूँ वे सदा मेरे शब्द गोचर होवें। वे प्राणी इस जगत् में परम धन्य एवं महान् भाग्यशाली हैं जो सर्वदा अपने माता-पिता के वश में ही स्थित रहा करते हैं ॥१७३॥ जो नित्य ही माता-पिता की शुश्रूषा में तत्पर रहते हैं और उन चरणों की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं। इन्द्रियाँ-शरीर-कुल-शक्ति धी वपु को प्राप्त कर माता पिता के कृत्य में स्वयं कृतकृत्य होना ही चाहिए। पशुओं को और पक्षियों को भी माता का दर्शन सुलभ होता है किन्तु मुझे वह भी दुर्लभ हो गया था। मैं यही पूछना चाहता हूँ कि कौन से मेरे पाप का यह फल उदय हुआ था। यदि वह दुर्लभ ही होता है तो सभी में जिस किसी को ही होना चाहिए ॥१७४-१७६॥

नोपपद्य त सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत् ।
तयोर्दर्शनमात्रं च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमा. ॥१७७

मनोवाक्कायकर्मभ्य. फल प्राप्त भविष्यति ।
पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) ससृतौ ॥
तेषा महापातकाना क सख्या कर्तु मीश्वर ॥१७८
तद्वचेवंचन श्रुत्वा मिथः समन्त्र्य ते सुरा ।
विमानवरमारूढौ पितरौ दपती शुभौ ॥१७९
तव सदर्शनाकाङ्क्षौ द्रक्ष्यसे चाऽद्य निश्चितम् ।
विषाद लोभमोहौ च त्यक्त्वा चित्त शम नय ॥१८०
पश्य पश्येति त प्राहुर्दधीच सुरसत्तमा. ।
विमानवरमारूढौ स्वर्गिणौ स्वर्णभूषणौ ॥१८१
तव सदर्शनाकाङ्क्षौ पितरौ दपती शुभौ ।
वीज्यमानौ सुरस्त्रीभि स्तूयमानौ च किनरैः ॥१८२

यदि यह सुलभ नही होता है तो मुझसे अन्य कोई भी पापो के करने वाला नही है। सुरोत्तमो ! यदि मैं उनका केवल दर्शन भी प्राप्त कर लूँगा तो मेरे मन-वाणी और कर्मों का फल प्राप्त हो जायगा। जो अपने माता पिता का दर्शन नही करते हैं वे तो मानो इस ससार मे उत्पन्न ही नही हुए हैं। वे वास्तव मे महान् पातकी हैं और उनके महापातकों की सख्या करने की किसमे शक्ति है अर्थात् कोई उनको गिन कर नही बता सकता है ॥१७७-१७८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ऋषि के इन वचनो का श्रवण कर उन सब सुरो ने परस्पर मे मन्त्रणा की थी। वे शुभ दम्पती तुम्हारे माता पिता परम श्रेष्ठ विमान् मे समारूढ हुए हैं और तुम्हारे दर्शन की आकाङ्क्षा वाले हैं। आज तुम निश्चित रूप से उनको देख लोगे। विषाद तथा लोभ एव मोह का त्याग करके अपने चित्त को शान्त करो ॥१७९-१८०॥ फिर तुरन्त ही उन देव गणो ने दधीचि के पुत्र से कहा था—देखो, देखो वे परमाधिक श्रेष्ठ विमान पर चढ़े हुए, स्वर्ग मे रहने वाले, स्वर्ण के भूषणो को धारण करने वाले तथा तुम्हारे देखने की आकाङ्क्षा रखने वाले शुभ दम्पती तुम्हारे माता-पिता हैं जो देवाङ्गनाओ के द्वारा पखे झलते वाले हैं और किन्नरो के द्वारा स्तुति किये जा रहे हैं ॥१८१-१८२॥

दृष्ट्वा स मातापितरौ ननाम शिवसंनिधौ ।
हर्षवाष्पाश्रुनयनौ स कथंचिदुवाच तौ ॥१८३
तारयन्त्येव पितरावन्ये पुत्राः कुलोद्वहाः ।
अहं तु मातुरुदरे केवलं भेदकारणम् ॥
एवंभूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मतिः ॥१८४
तावालोक्य ततो दुःखादन्यन्नैव शशाक सः ।
देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमथाब्रुवन् ॥१८५
धन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिर्गता दिवम् ।
साक्षात्कृतस्त्वया त्र्यक्षो देवाश्चाऽऽश्वासितास्त्वया ॥
त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६
पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि ।
जयशब्दः सुरैरुक्तः प्रादुर्भूतो महामुने ॥१८७
आदिश्य तु सुतं दृष्ट्वा दधीचिः सह भार्यया ।
शंभुं गङ्गां सुरसत्या पुत्र वाक्यमथाब्रवीत् ॥१८८
प्राप्य भार्यां शिवे भक्तिं कुरु गङ्गां च सेवय ।
पुत्रानुत्पाद्य विधिवद्यज्ञानिष्ट्वा सदक्षिणान् ॥
कृतकृत्यस्ततो वत्स आक्रमस्व चिरं दिवम् ॥१८९

भगवान् शिवजी की सन्निधि में उस ऋषि ने अपने माता-पिता का दर्शन करके उनको उसने प्रणाम किया था। वे दोनों ही हर्ष के अश्रुओं से भरे हुए लोचनों वाले थे। उस समय में वह ऋषि बड़ी ही कठिनता से उनसे बोला था ॥१८३॥ उस ऋषि पुत्र ने कहा—अपने कुल के उद्वहन करने वाले अन्य पुत्र अपने माता पिता को तार दिया करते हैं। मैं तो ऐसा अभागा हूँ कि माता के उदर में रह कर केवल उसके भेदन करने का ही कारण बन गया था। इस प्रकार का होते हुए भी अत्यन्त दुर्मति वाला मैं उन दोनों को मोह से देख रहा हूँ ॥१८४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन दोनों माता-पिता का दर्शन करके उसे इतना अधिक दुःख हुआ था कि वह और कुछ बोलने में समर्थ न हो सका था। इसके अनन्तर देवगण और उसके माता-पिता ने उस पिप्पलाद से कहा था

॥१८५॥ देवों ने कहा—हे पुत्र ! तुम परम धन्य हो, लोकों में जिसकी कीर्ति विद्यमान है और दिवलोक में भी पहुँच गयी है। हे पुत्र ! तुमने भगवान् त्रिलोचन प्रभु का साक्षात्कार किया है और समस्त देवों को भी समाश्वासन दिया है। हे पुत्र ! तेरे द्वारा सुतलोक कभी भी क्षीण नहीं किये जा रहे हैं अर्थात् तुझे अच्छे लोक सदा अक्षय ही होंगे ॥१८६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय में उसके मस्तक पर स्वर्ग से पुष्पों की वर्षा हुई थी। हे महामुने ! सुरों के द्वारा कथित जयकार का शब्द प्रादुर्भूत हो गया था अर्थात् देवों ने जय जयकार किया था ॥१८७॥ भार्या के साथ ही दधीचि ने अपने पुत्र को आशीर्वाद किया था और भगवान् शम्भु गङ्गा और सुरों की सेवा में प्रणाम करके फिर अपने पुत्र से कहा था ॥१८८॥ दधीचि ने कहा—हे वत्स ! तुम भार्या को प्राप्त करो तथा शिव की भक्ति करो और गङ्गा का सेवन करो। गार्हस्थ्य आश्रम की विधि के साथ पुत्रों को उत्पन्न करके तथा दक्षिणा के सहित यज्ञों का यजन करके तुम फिर कृतकृत्य हो जाओगे। इसके पश्चात् चिरकाल तक स्वर्ग में सञ्चरण करना ॥१८९॥

करोम्येवमिति प्राह दधीचिं पिप्पलाशन ।
दधीचि पुत्रमाश्वास्य भार्यया च पुन पुन ॥१९०
अनुज्ञात सुरगणै पुन स दिवामाक्रमत् ।
देवा अप्यूचिरे सर्वे पिप्पलाद ससम्भ्रमा ॥१९१
कृत्या शमय भद्रं ते तदुत्पन्नं महानलम् ॥१९२
पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवारणे ।
असत्य नैव वक्ताऽहं यूयं कृत्या तु ब्रूत ताम् ॥१९३
मा दृष्ट्वा सा महारौद्रा विपरीतं करिष्यति ।
तामेव गत्वा विबुधा प्रोचुस्ते शान्तिकारणम् ॥१९४
अनलं च यथाप्रीति ते उभे नेत्यवोचताम् ।
सर्वेषां भक्षणायैव सृष्टा चाह द्विजन्मना ॥१९५
तयाच मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथं भवेत् ।
महाभूतानि पञ्चापि स्थावरं जङ्गमं तथा ॥१९६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे उस पिप्पलाशन ने मैं ऐसा ही करूंगा—यह अपने पिता दधीचि से कहा था। दधीचि मुनि ने अपनी भार्या के सहित अपने पुत्र का बारम्बार समाश्वासन किया और फिर सुरगणो के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर दिवलोक मे चला गया। फिर उन देवो ने सब ने मिलकर बहुत ही सम्भ्रम के साथ पिप्पलाद से कहा था ॥१६०-१६१॥ देवो ने कहा—इस कृत्या का अब शमन कर दो—तुम्हारा कल्याण होगा क्योंकि उसके मुख से महान् भयानक अनल उत्पन्न हो गया है ॥१६२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे उन सुरो से पिप्पलाद ने कहा था कि मैं उसका निवारण करने मे समर्थ नही हूँ। मैं कभी असत्य भाषण करने वाला नही हूं। आप उस कृत्या से स्वयं पूछिये। मुझको देख कर तो वह महान् रौद्र रूप वाली विपरीत ही कर्म करेगी। तब तो देवो ने उसके समीप मे उपस्थित होकर उसकी शान्ति का कारण पूछा था ॥१६३-१६४॥ देवो ने यही कहा था कि जैसे यह अनल शान्त हो और आप प्रसन्न होवें वह बतलाइये, हम ये दोनो का होना चाहते हैं। उस कृत्या ने कहा था कि विप्र के द्वारा मैं सभी के भक्षण करने के लिए समुत्पन्न की गयी हूं ॥१६५॥ अतएव मेरे द्वारा उत्पादित की हुई यह अग्नि अन्यथा कैसे हो सकती है। पाँचो महाभूत तथा स्थावर एवं जगम इन सब को मर हुआ म समझना चाहिए ॥१६६॥

सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्वत्तन्य नावशिष्यते।
मया समन्व्य ते देवा पुनरूचुरुभावपि ॥१६७
भक्षयेतामुभौ सर्वं यथाक्रमतस्त्वया।
यदयाऽपि सुरानेवमुवाच शृणु नारद ॥ ९८
भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्य मे सुरसत्तमा ॥१९९
यद्वया या नदी जाता गङ्गया सगता मुने।
तद्भवतु महानिर्यं भासोदतिभीषिन. ॥
तमानुरगता वह्नि भूतानामादिशा विदु ॥२००

आपो ज्येष्ठतम ज्ञेयास्तथैव प्रथम भगवान् ।
तत्राप्यपांपति ज्येष्ठ समुद्र (तिर्ज्येष्ठस्तस्यात्व) मशान कुरु ॥
यथव तु वय ब्रूमो गच्छ भुङ्क्ष्व यथा सुखम् ॥२०१
अनलस्त्वमरानाह आपस्तत्र कथ त्वहम् ।
व्रजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदक महत् ॥२०२
भवन्त एव तेऽप्याहु कथ तेऽग्ने गतिर्भवेत् ।
अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी ॥२०३
हिरण्यकलशे स्थाप्य नयेद्यत्र गतिर्मम ।
तस्य तद्वचन श्रुत्वा कन्याभूत् सरस्वतीम् ॥२०४

विशेष कुछ कहना अवशिष्ट ही नहीं रह जाता है । तब जी ने कहा—मेरे साथ मे मन्त्रणा करके उन देवो ने पुन उन दाना ने कहा । आप अनुक्रम से दोनो सब का भक्षण कर लेवें । हे नारद ! उस समय मे वह वडवा भी सुरो से इस भाँति कहने लगी जिसका आप श्रवण करिए ॥१८७ १८८॥ वडवा ने कहा—हे सुरसत्तमो ! आप लोगो की इच्छा से मेरा सब ही भक्ष्य है । श्री ब्रह्माजी ने कहा- हे मुने ! वह वडवा नदी हो गयी थी और गङ्गा के साथ सगत हो गयी थी । उससे समुत्पन्न हुआ अग्नि महान् एव अत्यन्त भीषण था । अमरगणो ने उस वह्नि से कहा था कि भूतो को आदि से जान लो ॥१९९- ००॥ सुरो ने कहा—समस्त भूतो मे जल ही सबसे बड़े हैं उसी क्रम से सब प्रथम आप उनका ही भक्षण करिए । उन जलो मे भी अपांपति समुद्र सबसे ज्येष्ठ है उस समुद्र का भक्षण करे । जिस प्रकार से हम लोग आपको बतलायें उसी रीति से सुख पूवक आप भक्षण करे ॥२०१॥ श्री ब्रह्माजी न कहा—उस समय मे उन अनल ने देवो से कहा था कि जल तो वहाँ पर हैं, मैं वहाँ कसे गमन करूँ ? आप लोग यदि मुझको उस महान् जल तक प्राप्त करा देवें तो ऐसा हो सकता है । तब तो उन देवो ने भी कहा है कि हे अग्ने ! वहाँ पर आपका गमन कैसे हो सकता है ? तब तो उस अग्नि ने कहा कि यदि कोई गुण शालिनी कन्या मुझको सुवर्ण के कलश म स्थापित करके ले जावे तो मेरी गति वहाँ पर हो सकेगी ।

तब तो देवो ने उसका वचन सुन कर कन्या सरस्वती से प्रार्थना की थी ॥२०२-२०४॥

नयैनमनलं शीघ्रं शिरसा वरुणालयम् ॥२०५
सरस्वती सुरानाह नैका शक्ता च धारणे ।
युक्ता चतसृभिः शीघ्रं वहेयं वरुणालयम् ॥२०६
सरस्वत्या वच. श्रुत्वा गङ्गा च यमुना तथा ।
नर्मदा तपती चैव सुराः प्रोचुः पृथक्पृथक् ॥२०७
ताभि. समन्वितोवाह हिरण्यकलशेऽनलम् ।
संस्थाप्य शिरसाऽऽधार्य ता जग्मुर्वरुणालयम् ॥२०८
संस्थाप्य यत्र देवेशः सोमनाथो जगत्पति ।
अध्यास्ते विबुधैः सार्धं प्रभासे शशिभूषणः ॥२०९
प्रापयामासुरनलं पञ्चनद्यः सरस्वति ।
अध्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि शनै. शनैः ॥२१०

देवो ने कहा—हे सरस्वति ! इस अनल को अति शीघ्र शिर पर रख कर समुद्र मे ले जाओ ॥२०५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—सरस्वती देवी ने कहा था कि मैं अकेली उसके धारण करने मे समर्थ नहीं हूँ । मैं चार अन्य कन्याऐं हो तो मैं शीघ्र इसका वहन कर समुद्र में पहुंचा दूंगी ॥२०६॥ सरस्वती के इस वचन को सुन कर देवो ने अलग-अलग गङ्गा-यमुना-नर्मदा और तपती से यही प्रार्थना की थी ॥२०७॥ उन चारो से समन्विता होकर उस सरस्वती ने एक सुवर्ण के कलश में उस अनल को संस्थापित करके शिर पर धारण किया था और वे सब वरुणालय (सागर) मे चली गयी थी ॥२०८॥ उसको भली भाँति स्थापित करते वे चलीं थी और जहाँ पर जगत् के पति देवेश्वर सोमनाथ शशि का भूषण धारण किये हुए प्रभास मे देवो के साथ विराजमान थे वह सरस्वती और अन्य चारों के साथ पाँचो नदियो ने उस अनल को वहाँ पर पहुँचा दिया था । वह महान् अग्नि शनैः शनैः उस जल का पान करता हुआ वहाँ पर स्थित हो गया था ॥२०९-२१०॥

आपृच्छ्य पिप्पलादं तं सुराः स्वं सदनं ययुः ।
पिप्पलाः कालपर्याये स्वर्गं जग्मुरथाक्षयम् ॥२११
पादपानां पदं विप्रः पिप्पलादः प्रतापवान् ।
क्षेत्राधिपत्ये संस्थाप्य पूजयामास शंकरम् ॥२१२
दधीचिसूनुर्मुनिरग्रतेजा,
अवाप्य भार्यां गौतमस्याऽऽत्मजां च ।
पुत्रानवाप्य प्रियं यशश्च,
सुहृज्जनं स्वर्गमवाप धीरः ॥२१३
ततः प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेश्वरमुच्यते ।
सर्वक्रतुफलं पुण्यं स्मरणादघनाशनम् ॥२१४